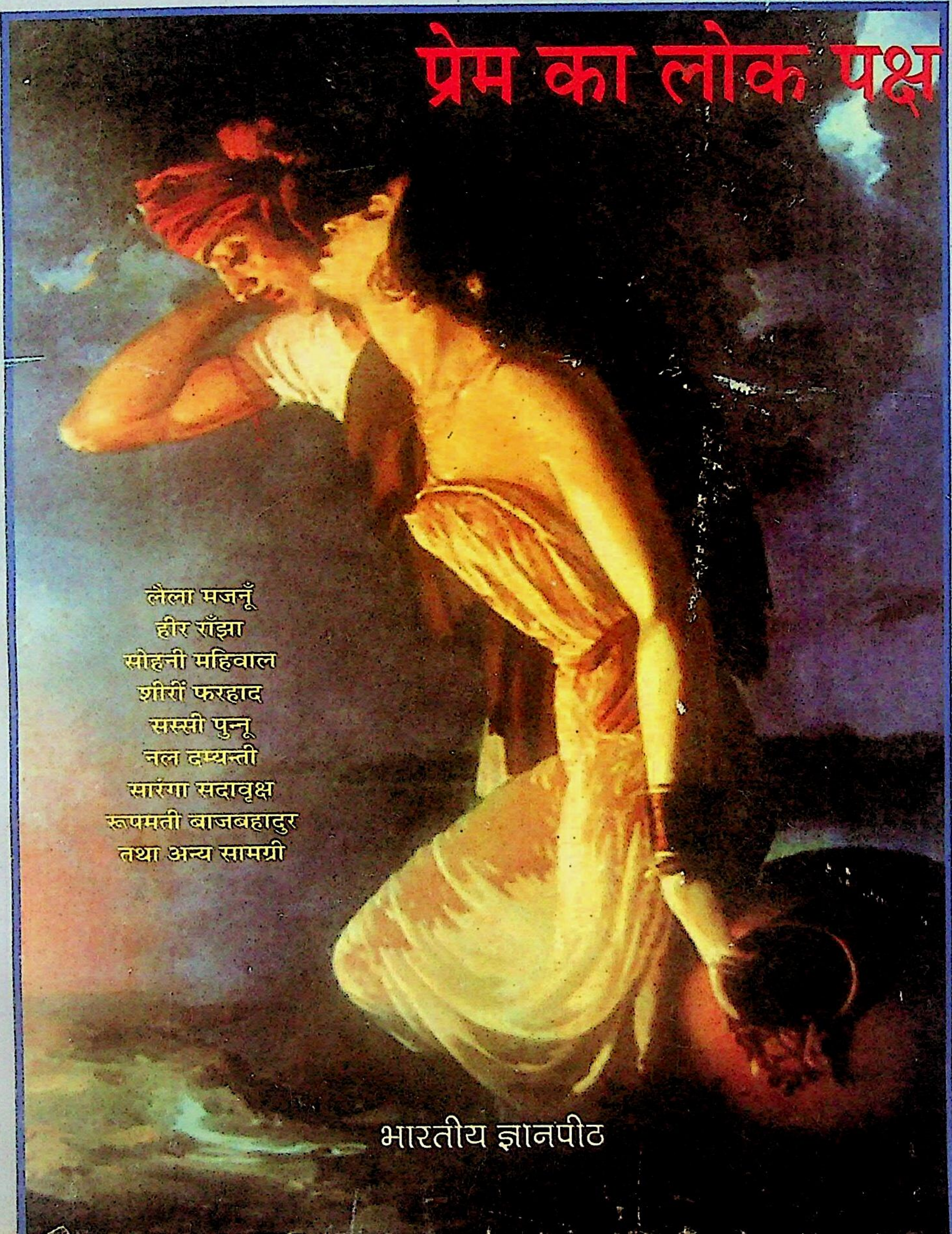
नया ज्ञानोदय

नवम्बर 09
पृष्ठ 152
35 रुपये

माँग के आधार पर पुनर्मुद्रण

प्रेम महाविशेषांक 5



प्रेम का लोक पक्ष

लैला मजनूँ
हीर राँझा
सोहनी महिवाल
शीरीं फरहाद
सस्सी पुन्नू
नल दमयन्ती
सारंगा सदावृक्ष
रूपमती बाजबहादुर
तथा अन्य सामग्री

भारतीय ज्ञानपीठ

सृजन स्मरण



यह सब फूल आये कहाँ से!
रंगों का यह वैविध्य,
इसका स्रोत कहाँ है,
उन छोटी-छोटी चीजों में है।

भगवती चरण वर्मा

(1903 - 1980)

दिल्ली सरकार

सूचना एवं प्रचार निदेशालय

भारतीय ज्ञानपीठ
संस्थापक
श्रीमती रमा जैन
श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन

माँग के आधार पर पुनर्मुद्रण
प्रथम आवृत्ति नवम्बर 2009
द्वितीय आवृत्ति नवम्बर 2009
तृतीय आवृत्ति दिसम्बर 2009

सम्पादक
रवीन्द्र कालिया



नया ज्ञानोदय

भारतीय ज्ञानपीठ की मासिक साहित्यिक पत्रिका
प्रेम महाविशेषांक 5

प्रेम का लोक पक्ष

अंक 81, नवम्बर 2009

नया ज्ञानोदय

प्रेम महाविशेषांक : 5

प्रेम का लोक पक्ष

अंक 81, नवम्बर 2009

प्रवन्ध सम्पादक

साहू अखिलेश जैन

प्रवन्ध न्यासी, भारतीय ज्ञानपीठ

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, पोस्ट बॉक्स नं. 3113

नई दिल्ली-110 003

फोन : 2462 6467, 2465 4196, 2469 8417, 2465 6201

फैक्स : 011-2465 4197; ई-मेल : jnanpith@satyam.net.in

वेबसाइट : www.jnanpith.net

मूल्य :

एक अंक 35 रुपये

व्यक्तियों के लिए :

वार्षिक : 300 रुपये / त्रैवार्षिक : 800 रुपये /

पंचवार्षिक : 1200 रुपये / आजीवन : 5000 रुपये

संस्थाओं के लिए :

वार्षिक : 350 रुपये / त्रैवार्षिक : 1000 रुपये /

पंचवार्षिक : 1650 रुपये / आजीवन : 5000 रुपये

विदेशों के लिए :

हवाई डाक : एक अंक 6 डॉलर / वार्षिक 60 डॉलर

जल मार्ग : एक अंक 4 डॉलर / वार्षिक 30 डॉलर

शुल्क 'नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ' के नाम से उपर्युक्त पते पर भेजें :

(केवल मनीआर्डर / चेक / बैंक ड्राफ्ट से)

(दिल्ली से बाहर के चेक में 35 रुपये अधिक जोड़ें)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से भारतीय ज्ञानपीठ का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

Nayā Gyānodaya
A Literary Monthly Magazine
Editor : Ravindra Kalia
Language : Hindi
Published by Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110 003



नया
ज्ञानोदय
आधुनिक भावबोध, कला संचेतना और
नवीनता की प्रतिनिधि मासिक पत्रिका
प्रेम महाविशेषांक 5

प्रेम का लोक पक्ष

अंक 81, नवम्बर 2009

प्रेम की कहानी

8 विजयमोहन सिंह : अन्ना केरेनिना

अवधी साहित्य में लोक प्रसंग

12 विद्याविन्दु सिंह : ढाई आखर— मन पटे की यारी

विद्यापति

22 मीनाक्षी जोशी : तिल-तिल नूतन होय

अभिमत

25 सुशील कुमार फुल्ल : क्या प्रेमकथाएँ प्रकारान्तर से काम कथाएँ ही हैं?

लोकरँगी प्रेमकथाएँ

26 विजयदान देथा : अनदेखा अन्तस

32 ममता कालिया : निर्मोही

36 पंकज सुबीर : महुआ घटवारिन

120 रांगेय राघव : नल दमयन्ती

प्रेम पदावली

42 कबीर, खुसरो, रानी रूपमती, बनी ठनी, यारी साहब, ताज, ललित किशोरी, बख़्शू नायक, सिया दुलारी, सनद पिया, बिन्दुजी महाराज, पलटूदास, तानसेन, बिन्दादीन, रसिक बिहारी, सरयू सखी, यकरंग, सदारंग, मीराबाई, ईसुरी, तालिब शाह, युगल प्रिया, पुरुषोत्तम, फरहत, करीबख्श, वाजिद अली शाह, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (संकलन : यतीन्द्र मिश्र)

74 मतिराम, आलम शेख, घनानन्द, भिखारी, बोधा, ग्वाल, ठाकुर, पद्माकर, रत्नाकर, भारतेन्दु (संकलन : सुरेश सलिल)

लोककथा

50 लैला मजनूँ (पुनर्लेखन : कुणाल सिंह)

55 हीर राँझा (पुनर्लेखन : ईशान अग्निहोत्री)

59 शीरीं फरहाद (पुनर्लेखन : कुणाल सिंह)

64 सोहनी महींवाल (पुनर्लेखन : ईशान अग्निहोत्री)

70 सस्सी पुन्न (पुनर्लेखन : ईशान अग्निहोत्री)

77 फूलझरी रानी (पुनर्लेखन : सुशील सिद्धार्थ)

79 चम्पा रानी (पुनर्लेखन : सुशील सिद्धार्थ)

81 सारंगा सदावृक्ष (पुनर्लेखन : सुशील सिद्धार्थ)

85 छैला सन्दु (पुनर्लेखन : रणेन्द्र)

पंजाब

47 अनुज : पंजाब की प्रेमकहानियाँ

झारखंड

86 वीरभारत तलवार : आदिवासी समाज में प्रेम

90 हिमांशु शेखर झा : सन्थाली लोकगीतों में प्रेम की अभिव्यंजना

छत्तीसगढ़

93 परदेशीराम वर्मा : लोरिक चन्दा और अन्य प्रेमकथाएँ

मध्यप्रदेश

95 भारती राणे : प्रणयसिक्त मांडू दुर्ग— बाजबहादुर और रूपमती

मालवा

118 देवव्रत जोशी : फ़कीर का हुस्न, सिन्दूर की शुरुआत

ऐतिहासिक प्रेमगाथा

99 शरद पगारे : औरंगज़ेब की प्रेमिका

मीडिया

109 प्रांजल धर : प्रेम का लोक पक्ष— लोकप्रिय मीडिया का विपक्ष

चित्रकला

114 अर्चना रानी : नारी रूप श्रृंगार से समृद्ध भारतीय चित्रकला

आलेख

116 अरविन्द मिश्र : लोक गीतों में पति पत्नी

प्रत्यंचा

144 ज्ञान चतुर्वेदी : पहला पहला प्यार



आवरण चित्र : सोभा सिंह

साज सज्जा : ज्ञानपीठ कला प्रभाग

भीतरी रेखांकन : सुरोजित

प्रेम महाविशेषांकों

की

अभूतपूर्व सफलता के बाद

नया ज्ञानोदय

का

नववर्ष पर एक और महत्त्वाकांक्षी उपक्रम

मीडिया विशेषांक

पढ़िये प्रमुख न्यूज़ चैनलों के न्यूज़ रिपोर्टरों के जीवन की सबसे कठिन रिपोर्टिंग

भारतीय संसद पर हमले की दास्तान— सुमित अवस्थी, आज तक

कैसे हुआ था दाऊद की बेटी का रिसेप्शन— शीला रावल, स्टार न्यूज़

अभिषेक बच्चन और ऐश्वर्या राय की शादी का आँखों देखा हाल— शिखा, आज तक

क्या था सरबजीत का सच— दिलीप तिवारी, ज़ी न्यूज़

गुजरात दंगों का सुप्रीम कोर्ट में हाल— शैलेश रंजन, ज़ी न्यूज़

क्या था बेअन्त सिंह की हत्या के ठीक पहले लिए गये साक्षात्कार में— अलका सक्सेना, ज़ी न्यूज़

हरभजन सिंह का 'मंकीगेट' एपीसोड— विक्रान्त गुप्ता, आज तक

एक गाँव में पचास साल बाद आई बारात— विजय विद्रोही, स्टार न्यूज़

सऊदी अरब में कैसे होता है हज— कमाल ख़ान, एनडीटीवी

इसके अलावा

मुम्बई पर हुए हालिया आतंकी हमले का मिनिट-टु-मिनिट ब्योरा देंगे

जितेन्द्र दीक्षित (स्टार न्यूज़) और मनोरंजन भारती (एनडीटीवी)

और भी कई रोचक व गम्भीर सामग्री। संग्रहणीय अंक।

जनवरी 2010 में प्रकाश्य अपनी प्रति आज ही सुरक्षित कराएँ

दस्तख़त

हिन्दी ही नहीं, विश्व की तमाम भाषाओं में कहानी विधा ने बहुत संघर्ष करने के बाद अपने लिए जगह बनायी थी। इतिहास गवाह है, कहानी जिस कुर्सी पर स्थापित थी, अनेक शक्तियाँ उसे विस्थापित करने में निरन्तर सक्रिय रही हैं। कुछ तो ऐसी जानी-मानी संस्थाएँ हैं, जिन्होंने कभी भी कहानी को गम्भीर साहित्यिक विधा के रूप में स्वीकार नहीं किया। उदाहरणार्थ 'आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑव इंग्लिश लिट्रेचर' में आप कहानी का नाम नहीं पाएँगे। हिन्दी में भी ऐसे बहुत-से विद्वान मिल जाएँगे जो कथा साहित्य में उपन्यास के अस्तित्व को तो स्वीकार कर लेते हैं, मगर कहानी उन्हें फूटी आँख नहीं सुहाती। विख्यात कवि एवं चिन्तक विजयदेव नारायण साही तो जीवनपर्यन्त कहानी को द्वितीय कोटि की विधा घोषित करते रहे। यह उस दौर की बात है जब नयी कहानी अपने उत्कर्ष पर थी और यके बाद दीगर मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, अमरकान्त, रेणु, भीष्म साहनी, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी आदि कथाकारों की बहुचर्चित, श्रेष्ठ एवं कालजयी कहानियाँ निरन्तर प्रकाशित हो रही थीं। उन्हीं दिनों साही ने नये कहानीकारों के भावबोध को गीतकारों के भावबोध के समकक्ष रख दिया था। उनका अभिप्राय था कि 'नया' विशेषण केवल कविता के सन्दर्भ में प्रासंगिक हो सकता है, कहानी के सन्दर्भ में नहीं। उनकी तथा ऐसे ही अन्य विद्वानों की टिप्पणियों के बावजूद कहानी हिन्दी की केन्द्रीय विधा बनी रही। हिन्दी में आलोचक बन्धु घूम फिर कर कुछ शब्दों का निरन्तर इस्तेमाल करते रहे हैं। साहित्य में गतिरोध भी एक ऐसा ही मुहावरा था। इधर पश्चिम से पुनः आवाज़ उठी है कि कहानी का अवसान निकट है। इंटरनेट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने कहानी के समक्ष अनेक नयी चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। हिन्दी ही नहीं, तमाम भाषाओं के समाचार पत्रों ने कहानी विधा का बहिष्कार कर दिया है। एक समय था समाचारपत्रों के रविवासरीय संस्कारणों में कहानी का एक ज़रूरी स्तम्भ रहता था। आज शायद ही कोई समाचार-पत्र हो जो कहानी को प्रश्रय देता हो। यहाँ तक कि मलयालम की दो सर्वाधिक लोकप्रिय पत्रिकाएँ 'मंगलम्' और 'मनोरमा' अब छोटी कहानी प्रकाशित नहीं करतीं। वे धारावाहिक लम्बी कहानियाँ प्रकाशित करती हैं; वे भी ऐसी कहानियाँ जिन्हें बाद में टी.वी. कार्यक्रमों के धारावाहिकों के रूप में रूपान्तरित किया जा सके। इधर भारतीय भाषाओं में दीपावली, नवरात्रि, पोंगल और ओणम के अवसर पर जो विशेषांक प्रकाशित होते हैं, उनमें लोकप्रिय क़िस्म की औसत कहानियों को अधिक स्थान मिलता है। ज़्यादा से ज़्यादा इन कहानियों में कम्प्यूटर युग के अन्तर्विरोधों और नौकरीपेशा लोगों के अतिव्यस्त जीवन का सतही चित्रण रहता है। इन कहानियों में जीवन के संघर्ष, मनुष्य के सरोकार, साम्प्रदायिकता और आतंकवाद जैसे ज्वलन्त

> कहानी की लोकप्रियता को देखते हुए साठ के दशक में कुछ व्यावसायिक पत्रिकाएँ भी इस ओर आकर्षिक हुईं और वर्षों तक कहानी को भुनाती रहीं। जैसे ही कथाकारों ने जीवन का साथ छोड़कर शिल्प पर ज़्यादा ध्यान देना शुरू किया और कहानी को पहेली जैसी दुरुह बना दिया, पाठकों ने कहानी पढ़ने से 'सुडोकू' में सिर खपाना अधिक उपयुक्त समझा। कहानी के क्षेत्र में एक नितान्त युवा पीढ़ी सक्रिय है और हिन्दी कहानी की समृद्ध परम्परा को आगे बढ़ाने में सक्षम है। जितनी बड़ी चुनौती इस पीढ़ी के सामने है, वह पूर्ववर्ती पीढ़ियों के सामने नहीं थी। यही पीढ़ी तय करेगी कि हिन्दी में वह स्थिति आएगी अथवा नहीं, जिसका शिकार विश्व की अनेक उन्नत भाषाएँ हो चुकी हैं।

प्रश्नों से कहानीकार आँख चुराता है। दूसरी ओर जिसे आज कुछ लोग उत्कृष्ट कहानी मानते हैं, वह ऐसी दुरूह होती है कि उसमें लेखक की विद्वत्ता का आतंक ज़रूर छा जाता है, मगर उसमें जीवन की धड़कन नहीं होती। ऐसी कथा रचनाएँ फ़ैशन की ग़ुलाम हैं और रचनाकार जादुई यथार्थवाद के नाम पर ऐसी फैंटेसी की रचना करता है जो ज़िन्दगी से उतनी ही दूर होती है, जितनी भारत से जादुई यथार्थवाद के देश की दूरी है। इन कहानियों को पढ़कर लगता है जैसे आप टूटे हुए आइने में अपना चेहरा देखने की कोशिश कर रहे हों। वास्तव में कथाकारों का एक वर्ग आलोचकों को रिझाने के लिए कहानी लिखता है, पाठकों को नहीं। यह भी एक कारण था कि हिन्दी में पाठक कहानी से विमुख होने लगे थे। लेकिन यह कहना ग़लत है कि हिन्दी में पाठक नहीं हैं, वे जब कुछ पठनीय और जीवन से सरोकार रखने वाली रचनाएँ पढ़ते हैं तो हुजूम में लौट-लौट आते हैं। एक समय था, हिन्दी में अनेक ऐसी पत्रिकाएँ थीं जो केवल कहानी प्रकाशित करती थीं। 'कहानी', 'नयी कहानी' और 'सारिका' ऐसी ही पत्रिकाएँ थीं। वह ज़माना लद गया, वह वापस नहीं आ सकता, जब न केवल रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्रेमचन्द के परिवारों के सदस्यों ने कहानी की पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ किया था, बल्कि मराठी में हरिनारायण आप्टे, तमिल में वा.रा. और के. श्रीनिवासन ने तीस के दशक में कहानी पर केन्द्रित लघु पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। इसी श्रृंखला में पंजाबी में 'प्रीतलड़ी' का प्रकाशन शुरू हुआ। कहानी की लोकप्रियता को देखते हुए साठ के दशक में कुछ व्यावसायिक पत्रिकाएँ भी इस ओर आकर्षिक हुईं और वर्षों तक कहानी को भुनाती रहीं। जैसे ही कथाकारों ने जीवन का साथ छोड़कर शिल्प पर ज़्यादा ध्यान देना शुरू किया और कहानी को पहेली जैसी दुरुह बना दिया, पाठकों ने कहानी पढ़ने से 'सुडोकू' में सिर खपाना अधिक उपयुक्त समझा। आज पश्चिम में माना जा रहा है कि बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध कहानी का स्वर्णकाल था, उत्तरार्द्ध में कहानी का अवसान आरम्भ हुआ, जो थमने का नाम नहीं ले रहा। कहानी में अग्रणी फ्रांस, रूस और इंग्लैंड आदि देशों में कहानी के अस्तित्व पर संकट के बादल मँडरा रहे हैं। हिन्दी कहानी का परिदृश्य कुछ भिन्न है। कहानी के क्षेत्र में एक नितान्त युवा पीढ़ी सक्रिय है और हिन्दी कहानी की समृद्ध परम्परा को आगे बढ़ाने में सक्षम है। जितनी बड़ी चुनौती इस पीढ़ी के सामने है, वह पूर्ववर्ती पीढ़ियों के सामने नहीं थी। यही पीढ़ी तय करेगी कि हिन्दी में वह स्थिति आएगी अथवा नहीं, जिसका शिकार विश्व की अनेक उन्नत भाषाएँ हो चुकी हैं।

जैसा कि पहले से घोषित था, यह अंक प्रेम के लोक पक्ष पर केन्द्रित है। साथ ही प्रेम महाविशेषांकों की सफल श्रृंखला की यह अन्तिम कड़ी भी है। विशेष रूप से इस अंक के लिए हमने लैला मजनू, सोहनी महींवाल, हीर राँझा, शीरीं फरहाद, सस्सी पुन्नू जैसी अमर प्रेम कथाओं का पुनर्लेखन करवाया है। कुणाल सिंह, ईशान अग्निहोत्री, सुशील सिद्धार्थ तथा रणेन्द्र ने इस तरह कुल नौ प्रेमकथाओं का पुनर्लेखन कर इस अंक को समृद्ध किया है। इसी तरह रांगेय राघव, विजयदान देथा, ममता कालिया और पंकज सुबीर की कहानियाँ भी हैं, जो लोककथा शैली में लिखी गईं प्रेमकथाएँ हैं।

युवा कवि यतीन्द्र मिश्र तथा सुरेश सलिल ने 'नया ज्ञानोदय' के पाठकों के लिए परिश्रमपूर्वक ऐसे पदों का संचयन-संकलन किया है, जिनसे प्रेम के सोते फूट रहे हैं। कबीर, खुसरो, घनानन्द, बोधा, देव, मतिराम आदि के ये पद सम्मिलित रूप से इस अंक की उपलब्धि कहे जा सकते हैं। विजयमोहन सिंह ने इस बार फिर से 'अन्ना केरेनिना' पर लिखा है। वीर भारत तलवार आदिवासी जीवन में प्रेम की उपस्थिति को रेखांकित कर रहे हैं, तो प्रांजल धर ने मीडिया में लोक पक्ष की अनुपस्थिति के कारणों की पड़ताल की है।

प्रेम महाविशेषांकों के अन्य अंकों को जिस तरह हमारे पाठकों का आदर व प्यार मिला, उम्मीद है उसी तरह यह अन्तिम प्रेम महाविशेषांक भी हाथोंहाथ लिया जाएगा। जल्दी ही हम 'नया ज्ञानोदय' का एक 'मीडिया विशेषांक' प्रकाशित कर रहे हैं। जनवरी में प्रकाश्य यह विशेषांक हमारी तरफ़ से पाठकों को नववर्ष के उपहारस्वरूप होगा।

रवीन्द्र कालिया

विजयमोहन सिंह

अन्ना केरेनिना



पहले भी कहा जा चुका है कि अन्ना केरेनिना उपन्यास की चरित्र रचना और संरचना को लेकर टॉल्सटॉय शुरू से ही गहरे असमंजस में थे। इसीलिए उसके प्रारूप में उन्होंने अनेक परिवर्तन किये जिनका ज़िक्र भी किया जा चुका है : संरचना सम्बन्धी अपनी उलझन को तो उन्होंने उसे क्रमशः जटिलतर बनाते हुए दूर कर दिया, किन्तु अन्ना केरेनिना के चरित्र को लेकर उनका असमंजस अन्त तक बना रहा। वे अपनी नायिका को लेकर अन्त तक आश्वस्त नहीं हो पाये। बाद में उन्होंने अपने एक मित्र को लिखा भी कि मुझे अन्त तक पता नहीं था कि अन्ना केरेनिना का क्या हश्र होने जा रहा है। सबकुछ स्वतः और अपने आप होता गया। दरअसल टॉल्सटॉय का रचनाकार उनके सभी निश्चयों को लिखने के क्रम में बदलता गया। यह पूरी 'प्रेम कहानी' ही जैसे 'डिक्टेटेड' है मानो कोई 'अदृश्य शक्ति' उन्हें वहीं ले जाने के लिए प्रेरित कर रही थी जहाँ वह पहुँची। 'रचनात्मकता' के इसी पक्ष पर विचार करते हुए ज्याँ पॉल सार्त्र ने लिखा था कि किसी उपन्यास के चरित्र तब जीवन्त और सशक्त बनते हैं जब वे अपने लेखक की आँख बचाकर और क़लम से फिसलकर अपना स्वरूप स्वयं निर्मित कर पाते हैं। अन्ना केरेनिना के साथ ठीक यही घटित होता है : वह स्वयं अपने निर्णयों के बारे में स्पष्ट नहीं है। सीधे तौर पर तो वह अपने पति से घृणा करती है और ब्रांस्की से प्रेम करती है। फिर अचानक एक क्षण विशेष में उसे लगता है कि उसका लक्ष्य प्रेम नहीं है, बल्कि स्वतन्त्रता है। अस्तित्ववादी शब्दावली में कहें तो वह प्रेम का नहीं, स्वतन्त्रता का 'वरण' करना चाहती है। बाद में समीक्षकों ने टॉल्सटॉय की अनेक रचनाओं में अस्तित्ववाद के बीज तथा संकेत पाये हैं। उपन्यास में एक स्थल पर अन्ना केरेनिना यह निर्णय लेती है कि वह न तो अपने पति के साथ रहेगी और न अपने प्रेमी के साथ, बल्कि अपने आठ वर्षीय बेटे को साथ लेकर स्वतन्त्र रहेगी। लेकिन कहाँ और कैसे? यह 'कहाँ' और 'कैसे' का प्रश्न ही उसके निर्णय को ध्वस्त कर देता है। अतः 'स्वतन्त्रता' के इस प्रश्न को यहीं स्थगित कर दिया जाता है।

'ऊब' या 'बोरडम' के प्रश्न को अन्ना केरेनिना में भी उठाया गया है। एक समारोह में अन्ना की एक सहेली उससे कहती है, ''तुम जीवन का आनन्द ले रही हो, तुम सुखी हो पर मैं हमेशा ऊबी रहती हूँ।'' अन्ना आश्चर्य से कहती है, ''तुम ऊबी रहती हो? तुम जिसे पूरे पीटर्सबर्ग की महिलाओं में सबसे जीवन्त और प्रसन्न माना जाता है?'' उसकी सहेली कहती है, ''हमारे जैसी महिलाओं के लिए कुछ भी आनन्ददायक नहीं है। है तो केवल ऊब, ऊब और केवल ऊब। सबकुछ भयानक रूप से बोरिंग है।'' वह फिर अन्ना से पूछती है कि तुम ऊब से बचने के लिए क्या करती हो? तुम हमेशा उत्फुल्ल दिखती हो। तुम सुखी या दुखी हो सकती हो, लेकिन कभी ऊब नहीं सकती।

अन्ना केरेनिना के बारे में यह धारणा विडम्बनात्मक है, पर शायद सच है, वह ऊबी हुई नहीं है। पर दुखी है, बेहद दुखी। एक आन्तरिक यातना में जीती हुई। दुखी मनुष्य कभी ऊब नहीं सकता। ऊबने के लिए बहुत फुरसत चाहिए। दरअसल अन्ना केरेनिना एक बहुत मुश्किल क़िस्म की औरत है। कोई चाहे तो उसे ग्रन्थियों से भरा चरित्र कह सकता है। ब्रांस्की केवल उससे प्रेम ही नहीं करना चाहता, वह उससे विवाह करना चाहता है, उससे बच्चे पैदा करना चाहता है। इस प्रेम के परिणाम स्वरूप एक बच्ची तो तभी पैदा हो जाती है, जब वह अपने पति के घर में है। अब ब्रांस्की चाहता है कि वह अपने पति से तलाक ले ले और उसके साथ रहे। किन्तु अन्ना को यह स्वीकार नहीं है। अपने पति से तलाक वह अन्त तक नहीं लेती। अन्ना का पति कैरेनिन इसके लिए तैयार है, वह इसके लिए एक नामी-गिरामी वकील से बात भी कर लेता है। पर अन्ना तैयार नहीं है। वह प्रेम के लिए विवाह से विद्रोह करना चाहती है। वह मन ही मन विवाह को बन्धन मानती है और एक मुक्त जीवन जीना चाहती है। एक विवाह से तलाक लेकर वह दूसरे विवाह के बन्धन में नहीं बँधना चाहती। वह विवाह को बन्धन ही नहीं ग़ुलामी भी मानती है। ब्रांस्की से पैदा हुई बच्ची के बाद वह और बच्चे पैदा करने

लायक भी नहीं रह गयी है। उसके डॉक्टर ने उसे यह बताया था। पर इस रहस्य को वह अपने तक ही सीमित रखती है। शायद उसे भी वह मुक्ति मानती है। पर क्या वह कभी मुक्त हो पाती है?

बकौल ग़ालिब, 'मौत से पहले आदमी ग़म से नजात पाये क्यों?' शायद वह इसी 'मुक्ति' के लिए बनी है। सम्भवत: यही टॉल्सटॉय का मैसेज भी है।

अन्ना केरेनिना लगातार संशयग्रस्त रहती है। अपने प्रेम को लेकर भी वह आश्वस्त नहीं है। वह अपनी मित्र और भाई की पत्नी डॉली से व्रांस्की के बारे में कहती है, ''वह मेरा पति नहीं है : ही विल लव मी ऐज़ लांग लव लास्ट्स।'' यानी वह जानती है कि इस प्रेम को कभी-न-कभी ख़त्म होना ही है। यही प्रेम से मोहभंग है।

निरन्तर संशयग्रस्त रहने के कारण अन्ना केरेनिना कभी सुखी नहीं रह पाती। वह नींद के लिए अफीम का सेवन करती है। भारतीय शास्त्रों में कहा गया है कि संशयग्रस्त व्यक्ति का विनाश हो जाता है। अन्ना केरेनिना का 'विनाश' सुनिश्चित है। वह हमेशा क्षुब्ध तथा असन्तुष्ट रहती है। टॉल्सटॉय उसे सहानुभूति देकर भी पूरी तरह उसके पक्षधर नहीं हो पाये हैं। उनकी सामन्त वर्ग से घृणा यहाँ भी परोक्ष रूप से झलक ही जाती है क्योंकि यदि तटस्थ होकर अन्ना केरेनिना के स्वभाव का विश्लेषण करें तो लगता है कि वह एक सम्भ्रान्त वर्ग की ऐसी बिगड़ैल युवती है जो 'पैम्पर्ड' है। वह कभी सुखी और सन्तुष्ट हो ही नहीं सकती। वह चाहती है कि उसकी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति हो। ऐसे व्यक्ति की नियति हमेशा अभिशप्त होती है। उसकी आत्महत्या 'त्रासदी' नहीं है, वह उस वर्ग के व्यक्ति के प्रेम की तार्किक परिणति है। यद्यपि सम्भवत: टॉल्सटॉय इस निहितार्थ के प्रति स्वयं कांसस न रहे हों, किन्तु अन्ना के चरित्र विश्लेषण से यह छुपा हुआ निहितार्थ झलक ज़रूर जाता है।

टॉल्सटॉय इस उपन्यास को एक प्रेम कहानी तक सीमित नहीं रखना चाहते थे। वे उसके प्रेम के माध्यम से अपने समय और उस वर्ग को चित्रित करना चाहते थे जिसकी प्रतिनिधि अन्ना तो है ही, वे स्वयं भी थे और जिसकी कथा अन्ना की कथा के समानान्तर लेविन और किटी की उस कथा के रूप में पूरे उपन्यास में चलती रहती है जो अन्ना की प्रेम कहानी की एंटी थिसिस है। उपन्यास का अन्त भी लेविन और किटी की कथा से ही होता है। समीक्षकों के अनुसार लेविन के माध्यम से टॉल्सटॉय स्वयं अपनी कहानी कहते हैं— अपने प्रेम, परिवार और जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण की कहानी। किन्तु यहाँ हमारा मकसद प्रेम के इस दूसरे पक्ष का विश्लेषण नहीं है। वह एक पृथक विश्लेषण की माँग करता है। अत: वह फिर कभी।

उपन्यास के दूसरे भाग में हम अन्ना की 'नयी ज़िन्दगी' के विश्लेषण से उस 'जन्नत की हक़ीक़त' को समझ सकते हैं जो वस्तुत: अन्ना के 'प्रेम की हक़ीक़त' है। तीन महीने तक अन्ना और व्रांस्की यूरोप में घूमते रहते हैं। इसे उनका 'हनीमून ट्रिप' भी कह सकते हैं। वे वहाँ के महँगे होटलों के शानदार कमरों में ठहरते हैं और वहाँ के सम्भ्रान्त वर्ग के लोगों को दावतें देते हैं जिनमें लजीज़ व्यंजन और महँगी शराब परोसी जाती है। पूरे शहर के लोग जान जाते हैं कि वहाँ रूस का कोई बड़ा जागीरदार ठहरा हुआ है। इटली में व्रांस्की वहाँ के महान चित्रकारों के



अन्तोन चेखव (बाएँ) के साथ गुफ्तगू करते टॉलस्टॉय

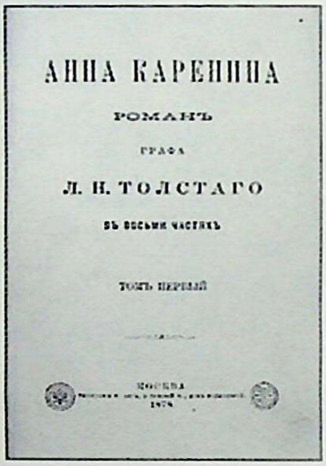
चित्रों से प्रेरित होकर स्वयं पेंटिंग करना शुरू कर देता है जो उसका पुराना शौक़ है। वह वहाँ के समकालीन चित्रकारों से भी मिलता है और उनसे चित्रकला की विशेषताओं के बारे में लम्बी-लम्बी बहसें करता है। स्पष्टत: अन्ना को दावतें तथा संगीत समारोह तो पसन्द आते हैं किन्तु चित्रकला में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं है। वह उनकी लम्बी बहसों से बोर हो जाती है। फिर भी उसके सामने एक नई जगमगाती हुई दुनिया है जो रूस से अधिक सम्पन्न, सुरुचिपूर्ण और विकसित है। अपनी 'मुक्ति' के इस पहले चरण में अन्ना एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करती है। वह भूल जाती है कि अपने पति से विलग होकर उसने उसे कितना बड़ा दुख दिया है। ''उनका दाम्पत्य दो डूब रहे व्यक्तियों की तरह था जिनमें से एक अपने को छुड़ाकर बच जाता है और दूसरा डूब जाता है।''

किन्तु एक दुख उसे इस 'सुख के स्वर्ग' में भी सालता रहता है और वह है अपने बेटे की याद जिसे वह छोड़कर चली आई है। उसको लेकर अन्ना के मन में अपराध बोध है। वह सोचती है कि मुझे सुखी होने का कोई अधिकार नहीं है। वह दुखी होना चाहती है पर नहीं हो पाती। इस नयी ज़िन्दगी और नयी दुनिया के सुख से वह इतनी आप्लावित है कि दुखी होने का अभिनय भी नहीं कर पाती। व्रांस्की को वह जितना अधिक जानती जाती है, उतना ही अपने प्रति उसके प्यार से अभिभूत होती जाती है।

लेकिन दूसरी ओर व्रांस्की यद्यपि वह सबकुछ प्राप्त कर चुका है जो प्राप्त करना चाहता था, उतनी प्रसन्नता और सुख का अनुभव नहीं कर पाता जितना उसे करना चाहिए था। उसके जीवन में एक मूलभूत रिक्तता बनी रहती है जिसे वह समझ नहीं पाता। सुख के इस अम्बार में ''कहीं

रेत का कोई कण रह गया है जो किरकिराता रहता है।'' उसे अपने मुक्त और कुँवारे जीवन की याद आती रहती है जब वह देर रात तक मौज मस्ती में डूबा रहता था बिना किसी ज़िम्मेदारी के और बिना किसी बाध्यता के। अब उसकी कोई निजी मित्र मंडली नहीं रही। अब उसकी दिनचर्या के केन्द्र में बस अन्ना ही अन्ना है। अत: वह जल्दी ही कोई 'डाईवर्ज़न' ढूँढने लगा। अपने पुराने शौक़ पेंटिंग की ओर तो वह लौट ही चुका था, अब आसपास की राजनीति में भी दिलचस्पी लेने गया। बाक़ी बचे समय में वह किताबें पढ़ता रहता।

यूरोप से लौटकर वे पीटर्सबर्ग जाते हैं। वहाँ भी वे एक शानदार होटल में ठहरते हैं। लेकिन अन्ना का असली मकसद वहाँ अपने बेटे से मिलना था। केरेनिन इसकी अनुमति नहीं देता। अत: अन्ना उसकी अनुपस्थित में छुपकर बेटे से मिलती है और उससे लिपटकर कहती है, ''तुम अपने पिता को प्यार करो। वे एक भले व्यक्ति हैं। मैं अभागन हूँ और मैंने एक बड़ी ग़लती की है। जब तुम बड़े हो जाओगे तब तुम ख़ुद यह समझ सकोगे।'' तभी अचानक केरेनिन आ जाता है। अन्ना उसे देखते ही तेज़ी से बाहर निकलती है। केरेनिन बिना कुछ कहे सिर झुका कर उसका अभिवादन करता है और अन्दर चला जाता है।


АННА КАРЕНИНА
РОМАНЪ
ГРАФА
Л. Н. ТОЛСТАГО
ВЪ ВОСЬМИ ЧАСТЯХЪ
ТОМЪ ПЕРВЫЙ
МОСКВА

'अन्ना केरेनिना' के प्रथम संस्करण (मास्को, सन् 1878) का मुखपृष्ठ

बेटे से मिलने के बाद जब वह वापस लौटती है तो महसूस करती है कि इस मुलाक़ात ने उसे बुरी तरह झकझोर दिया है। उसे सबकुछ बेमानी लगने लगता है। इसके अलावा पीटर्सबर्ग के भद्र समाज में जिस तरह उसे अपमानित और लांछित होना पड़ता है, उससे वह बुरी तरह टूट जाती है। यद्यपि इस तथाकथित भद्र समाज के पुरुष और स्त्रियाँ सब नितान्त भ्रष्ट, ऐय्याश और पाखंडी हैं, पर उन्हें अन्ना का यह मुक्त जीवन स्वीकार्य नहीं है। स्वयं केरेनिन अब एक काउंटेस लिडिया इवानोवा की गिरफ़्त में है। इस काउंटेस के बारे में टॉल्सटॉय लिखते हैं— ''काउंटेस लिडिया इवानोवा का बहुत पहले से ही अपने पति से कोई प्रेम सम्बन्ध नहीं रह गया था, पर वह हमेशा किसी-न-किसी से प्यार करती रहती थी। उसके बारे में मशहूर था कि वह एक साथ कई लोगों से प्यार करती रहती थी। इनमें मर्द और औरतें दोनों होते थे। वह हमेशा किसी प्रभावशाली व्यक्ति को ही अपने प्रेम का शिकार बनाती थी। उनमें अधिकांश राजघरानों के राजकुमार और राजकुमारियाँ होती थीं।'' अब केरेनिन की बारी थी। इस काउंटेस ने केरेनिन सहित उसके पूरे घर के रखरखाव की ज़िम्मेदारी ले ली थी। केरेनिन बिना उसकी राय के कोई निर्णय नहीं लेता था।

ऐसे ही 'भद्र समाज' से अन्ना बहिस्कृत थी। इसके बाद व्रांस्की अपने पैतृक जायदाद की देखभाल के लिए अन्ना के साथ अपने गाँव चला जाता है। वहाँ महलनुमा भव्य घर और पर्याप्त सम्पत्ति है। व्रांस्की उस घर का नये सिरे से निर्माण करवाता है और उसे उन दिनों यूरोप में प्रचलित आधुनिकतम उपकरणों से सुसज्जित कर दिया जाता है। इन सबके पीछे उसका मकसद है कि अन्ना यहाँ हर तरह से सुखी और सन्तुष्ट रहे। किन्तु सुख और सन्तोष मानो अन्ना की नियति में ही न हो। कुछ दिनों के बाद ही अन्ना का मन वहाँ से भी उचटने लगता है। व्रांस्की को सरकारी तथा जायदाद से जुड़े मामलों को सुलझाने के लिए बीच-बीच में शहर जाना पड़ता है, जहाँ वह अकसर कई दिनों तक रह जाता है। अन्ना गाँव के उस विशाल वीरान घर में अकेली ऊबती रहती है। हालाँकि सही मायने में वह घर वीरान नहीं है : उसमें दास-दासियों का अच्छा-ख़ासा हुजूम है, जिनके कारण अन्ना को कभी अकेली नहीं रहना पड़ता। शानदार बग्घियों में वह कहीं भी घूम-फिर सकती है। पर उसके प्राण केवल व्रांस्की में अटके रहते हैं। व्रांस्की का बार-बार शहर आना-जाना और वहाँ कभी-कभी हफ़्तों रुक जाना उसे खटकने लगता है। कहा गया है कि ख़ाली दिमाग़ शैतान का घर होता है : अन्ना को लगता है कि व्रांस्की वहाँ किसी दूसरी स्त्री को प्यार करने लगा है और धीरे-धीरे उससे ऊबता जा रहा है। यह नाकाबिले बर्दाश्त है और जैसा कि कहा जा चुका है कि वह बेहद शंकालु और 'हिस्टिरीकल' होती जाती है। वह व्रांस्की से बेवजह तथा बेबात झगड़ पड़ती है। तब काफ़ी बक-झक के बाद यह झगड़ा 'बिस्तर' पर जाकर ख़त्म होता है। पर यह समझौता और शान्ति भी बहुत देर तक क़ायम नहीं रहती। इस झगड़े की पुनरावृत्तियाँ होने लगती हैं और इस तथाकथित 'दाम्पत्य जीवन' में ज़हर घुलने लगता है।

उपन्यास में यद्यपि लेविन और किटी की समानान्तर प्रेम कथा को लोगों ने टॉल्सटॉय के अपने दाम्पत्य जीवन का प्रतिरूप माना है किन्तु अन्ना केरेनिना और व्रांस्की की प्रेम कथा में भी कहीं-कहीं टॉल्सटॉय के जीवन तथा जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण की छवि झलक जाती है। शायद प्रत्येक महान उपन्यास के महत्त्वपूर्ण चरित्रों में लेखक के व्यक्तित्व का अलग-अलग हिस्सा विभाजित होकर अन्तर्निहित रहता है। अत: कोई भी बड़ा कथाकार किसी एक चरित्र में अपने को पूरी तरह स्थापित कर अपना प्रतिरूप नहीं गढ़ता। जो कथाकार ऐसा करते हैं, वे उस चरित्र तथा पूरी कृति को कमज़ोर ही बनाते हैं : हिन्दी की कालजयी उपन्यास कहलाने वाले 'शेखर : एक जीवनी' में यह कमज़ोरी देखी जा सकती है।

व्रांस्की और अन्ना केरेनिना के दाम्पत्य में टॉल्सटॉय के अपने दाम्पत्य की छवि इन पंक्तियों में देखी जा सकती है : ''पति तथा पत्नी के बीच सन्तुलन के लिए आवश्यक है कि या तो उनके सम्बन्धों में पूरी तरह 'एकतानता' (हारमोनी) हो या पूरी तरह मतभेद (डिस्कॉर्ड) हो। ऐसा न होने पर कोई भी महत्त्वपूर्ण निर्णय लेना असम्भव हो जाता है। अनेक दम्पती वर्षों तक ऐसी ही अनिर्णय की स्थिति में जीते चले जाते हैं।'' टॉल्सटॉय के अपने दाम्पत्य जीवन को जानने वाले लोग उपरोक्त पंक्तियों में उसकी झलक पा सकते हैं। अन्ना और व्रांस्की का दाम्पत्य भी काफ़ी दिनों तक ऐसी ही डगमगाती स्थिति में घिसटता रहता है : अन्ना सोचती है कि ज़रूर कोई दूसरी औरत व्रांस्की और उसके बीच आ गयी है तभी उसका प्यार अन्ना के प्रति घटता जा रहा है। किन्तु अन्ना के पास उसका कोई प्रमाण नहीं है। वह प्रमाण की तलाश करती रहती है। उस दिन मास्को

में (जहाँ वे कुछ दिनों के लिए गए थे) एक 'बैचलर पार्टी' से व्रांस्की दिन भर नहीं लौटा। वह रात को दस बजे लौटा। अन्ना अकेली बैठी कुढ़ती रहती है। उसका अकेलापन उदासी और ग़ुस्सा बढ़ता जाता है। जब लौटकर व्रांस्की बताता है कि पार्टी शानदार थी और उसके बाद वे लोग बोटिंग के लिए गये थे जहाँ एक महिला टीचर ने उन लोगों को तैरना सिखलाने के लिए ख़ुद तैर कर प्रदर्शन किया : अन्ना चिल्लाकर पूछती है, ''क्या वह तुम लोगों के सामने तैरती रही?'' फिर उनकी बातों में बदमजगी बढ़ती जाती है। व्रांस्की भी चीख़ कर कहता है, ''तुम क्यों मेरे धैर्य की परीक्षा लेना चाहती हो? यह असहनीय है।'' लेकिन इस झगड़े का अन्त भी हमेशा की तरह बिस्तर में जाकर होता है।

पर यह समझौता भी क्षणिक साबित होता है और अगले दिन व्रांस्की की माँ को लेकर अन्ना उससे झगड़ पड़ती है। वह कहती है कि तुम्हारी माँ एक हृदयहीन महिला है : मैं उन्हें पसन्द नहीं करती। व्रांस्की चिढ़कर कहता है, ''तुम्हें मेरी माँ के प्रति अनादरपूर्ण शब्दों का व्यवहार नहीं करना चाहिए।'' उत्तर में अन्ना उसकी ओर घृणा से देखती हुई कहती है, ''तुम्हें अपनी माँ से प्यार नहीं है। 'प्यार' तुम्हारे लिए एक खोखला शब्द है— केवल शब्द, शब्द, शब्द (वर्ड्स, वर्ड्स, वर्ड्स— देखें, शेक्सपियर का नाटक हैमलेट)।'' आपको याद होगा कि प्यार को लेकर ऐसे ही शब्द अन्ना ने अपने पति के लिए भी व्यक्त किये थे, जैसे वह मानती हो कि उसके अलावा कोई प्यार कर ही नहीं सकता।

अन्ततः अन्ना समझने लगती है कि केवल 'मृत्यु' ही उसके प्रति व्रांस्की के प्यार को वापस ला सकती है। उसे सज़ा देना ज़रूरी है। इसी में उसकी जीत है। कुछ भी नहीं बचा है, केवल प्रतिशोध ही इसका एकमात्र विकल्प है। और यह प्रतिशोध केवल मर कर ही लिया जा सकता है।

हम देखते हैं कि यहाँ अन्ना केरेनिना की प्रेम कहानी भी एक वृत्त बनाती हुई 'वर्थर' वाले प्रतिशोध के आसपास लौट रही है, जहाँ उसकी आत्महत्या ही उसकी परांगमुखी प्रेमिका से उसका प्रतिशोध है।

अन्ना की यह 'प्रेम कहानी' रेलवे स्टेशन से शुरू होकर रेलवे स्टेशन पर ही ख़त्म होती है। रेलवे स्टेशन उपन्यास में बड़े प्रतीकात्मक ढंग से प्रयुक्त हुआ है। सभी जानते हैं, और यह जानना बेहद दिलचस्प तथा आश्चर्यजनक है कि स्वयं टॉल्सटॉय के जीवन का अन्त भी रेलवे स्टेशन पर ही हुआ था। 'अन्ना केरेनिना' में रेलवे स्टेशन बार-बार आता है, हर बार नये सन्दर्भ में और नई अर्थवत्ता के साथ, जैसे वह जीवन का ही प्रतीक हो।

अन्त तक आते-आते अन्ना को जीवन पूरी तरह निरर्थक लगने लगता है— अर्थहीन और ऐबसर्ड। अन्त में जब वह अपने इस जीवन को समाप्त कर देने के लिए रेलवे स्टेशन की ओर जा रही है— तो उस वक़्त की उसकी मनःस्थिति का जो चित्रण टॉल्सटॉय ने किया है, वह उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश है। एक तरह से उपन्यास के रहस्य को खोलता हुआ। अन्ना सोच रही है— ''मैं जहाँ से चली थी वहीं वापस आ गयी हूँ। किसी ने, शायद याशिन ने कहा था कि प्रेम नहीं बल्कि घृणा हम सबको बाँधकर रखती है।'' बग्घी में बैठकर स्टेशन जाती हुई अन्ना के सामने उसका पूरा जीवन परत-दर-परत खुलता जाता है। ''सब व्यर्थ है। तुम अपने आपसे भाग कर कहीं नहीं जा सकते।'' अचानक एक तेज़ रोशनी में अन्ना के सामने व्रांस्की के साथ अपना सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है : ''व्रांस्की ने मुझमें क्या देखा था? वह मुझसे क्या पाना चाहता था? शायद वह प्यार नहीं था। वह दर्प था। वह मुझे जीतना चाहता था। अब वह विजेता है। वह जो कुछ पाना चाहता था, पा चुका। अब उसे मेरी कोई ज़रूरत नहीं है। प्रारम्भ में उसके प्रेम की अभिव्यक्ति एक वफ़ादार कुत्ते की तरह थी जो हर वक़्त अपने मालिक के सामने दुम हिलाता रहता है। अब सबकुछ समाप्त हो चुका है। अब उसे प्रेम या दर्प भी नहीं है। अब केवल उसे अपने किये पर शर्म है। अब मैं उसके लिए एक बोझ बन गयी हूँ। काउंट व्रांस्की और मैं अपने प्रेम में कभी अपनी अपेक्षाओं के अनुरूप सुख नहीं प्राप्त कर सके।''

व्रांस्की और अपने सम्बन्धों का विश्लेषण करते हुए जैसे अन्ना के सामने 'जीवन का अर्थ' आलोकित हो गया। उसे लगा यही 'नर्क' (हेल) है— (हेल इज़ अदर पिपुल— ज्यॉ पॉल सार्त्र)। मानवीय सम्बन्ध ही नर्क है। ''प्रेम जहाँ ख़त्म हो जाता है, वहीं से घृणा शुरू होती है।'' अन्ना बग्घी से बाहर देखती है। ''एक पुलिसवाला एक शराबी को पकड़ कर ले जा रहा है। ये पहाड़ियाँ, ये घर, ये तमाम घर और इनमें रहने वाले लोग! ये सभी एक-दूसरे से नफ़रत करते हैं। क्या इसीलिए हम हमेशा अपने को और दूसरों को पीड़ित करते रहते हैं?... यह भीख माँगने वाली अपने बच्चे के साथ जा रही है। एक बच्चा हँसता हुआ स्कूल जा रहा है। क्या यह सर्जइ (उसका बेटा) है?''

प्लेटफॉर्म पर वह एक गन्दे, बूढ़े और बदहाल आदमी को देखती है। उसका चेहरा उसे परिचित लगता है। क्या यह वही बूढ़ा नहीं है जो उसके दुःस्वप्नों में अकसर आता रहा है? क्या उसका प्रेम एक दुःस्वप्न था जो यहाँ भी उसका पीछा कर रहा है?

अचानक उसे याद आता है जब प्लेटफॉर्म पर वह पहली बार व्रांस्की से मिली थी और एक 'वाचमैन' ट्रेन के नीचे कटकर मर गया था। सामने से एक ट्रेन आ रही है धीरे-धीरे। उसका पहला डिब्बा उसके सामने से गुज़र गया। दूसरा डिब्बा सामने आते ही उसके पीछे की जंजीरोंवाली ख़ाली जगह में वह आँखें बन्द कर कूद पड़ी। उसने उठने की कोशिश की पर एक भारी चीज़ उसके सिर से टकराई और वह गिर पड़ी। जिस मोमबत्ती की रोशनी में वह एक किताब (जीवन की किताब) पढ़ रही थी उस मोमबत्ती की रोशनी तेज़ होकर फड़फड़ाई और बुझ गयी!

यह अन्ना केरेनिना का अन्त है। पर उपन्यास यहाँ ख़त्म नहीं होता, आगे बढ़ जाता है लेविन और किटी के जीवन की ओर। व्रांस्की वापस फ़ौज में भर्ती हो जाता है। 'प्रेम' ख़त्म हो जाता है पर 'जीवन' चलता रहता है— 'लव एंड्स बट लाइफ गोज़ ऑन'!

77, अनुपम अपार्टमेंट्स
वसुन्धरा एन्क्लेव
दिल्ली - 110 096
फोन : 011-22619030

विद्याविन्दु सिंह

ढाई आखर : मन पटे की यारी



संस्कृत साहित्य से लेकर प्राकृत, अपभ्रंश हिन्दी से होती हुई संयोग-वियोग के भावों को सहज अभिव्यक्ति देने वाली यह अवधारणा लोक भाषाओं की वाचिक परम्परा में अत्यन्त सहज, रसवती हो गयी है। लोकगीतों ने श्रृंगार के दोनों पक्षों को सहज अभिव्यक्ति दी पर वियोग की गहन अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति इतनी करुण हो उठी कि लोक मन उसकी करुणा से नहा उठा।

यह ढाई आख़र क्या है, जिसे पढ़कर पंडित होने का प्रमाण पत्र देने की घोषणा सन्तों ने कर दी, तो वहीं सूफी सन्तों ने इश्क हकीकी और इश्क मजाजी कहकर इसके दो भेद कर दिये। प्रेमतत्त्व को समझने-समझाने के लिए जाने कितने ग्रंथ रचे गये पर प्रेम का रस इतना गूढ़, कठिन था कि पढ़कर नहीं जाना जा सकता उसे चख कर ही केवल समझा जा सकता है, उसे कहा नहीं जा सकता। वह तो गूँगे का गुड़ हो जाता है। इसी प्रेम को जिस सहजता, सरलता के साथ हमारी वाचिक परम्परा बाँचती आयी है, यह एक अनोखा उदाहरण है।

लोक साहित्य हमारे जीवन के छन्द के साथ मेल खाता है और जीवन के छन्द का आधार प्रेम है। यह प्रेम जाने कितने रूपों में सदियों से अभिव्यक्ति पाता रहा है।

शास्त्रों में श्रृंगार रस को रसराज कहा गया है। उसका कारण सम्भवत: यही रहा कि प्रेमानुभूति सबसे प्राणवान और सशक्त अनुभूति है। यह प्रकृति के कण-कण में व्याप्त है। यही सृष्टि का कारक है। यही जीवन को गति भी देता है और ठहराव भी। लोक साहित्य में इस अनुभूति का वैभव सर्वत्र व्याप्त है।

भारत श्री कृष्ण और श्री राम की लीला भूमि है। श्री कृष्ण की प्रेम लीला में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्ष चरमोत्कर्ष पाते हैं। श्री राम का आदर्श दाम्पत्य जीवन लोक में प्रेम का आधार है। राम-सीता, राधा-कृष्ण का वियोग दुख वियोग की चरम पराकाष्ठा है।

लोक में प्रेम का भाव लोक मंगल से जुड़ा है। राधा-कृष्ण की प्रेमकथा जन-मन में इतनी समा गयी है कि वे प्रेम के अधिष्ठान हो गये हैं। एक ओर शिव-पार्वती के दाम्पत्य प्रेम में लोक मंगल इतना गहराया कि परस्पर नोक-झोंक से उनका प्रेम और प्रगाढ़ होता रहा। शिव को लोक कल्याण के लिए विवश करने वाली पार्वती हर सुहागिन का आदर्श बन गयीं। दूसरी ओर राम-सीता का प्रेम सुख-दुख में साथ निभाने का दाम्पत्य भाव लोक मन में इतना बस गया कि इतना कष्ट उठाने वाली सीता हर नारी के लिए अनुकरणीय बन गयीं।

मोटे तौर पर देंखे तो लोक साहित्य में ऐसा लगता है कि पति-पत्नी ही प्रेमी-प्रेमिका हैं। पर कहीं-कहीं परकीया प्रेम की झलक भी मिलती है। किन्तु लोक की सहानुभूति परकीया को कम मिली है। इसी प्रकार पर पुरुष के प्रति आसक्ति यदि किसी स्त्री की दिखती भी है तो उसका कारण क्षोभ और तिरस्कार ही है। एक लोकगीत है जिसमें पति का तिरस्कार पाकर क्षुब्ध होकर पत्नी घर से निकल पड़ती है। यमुना तट पर दुखी होकर खड़ी हो जाती है। वहाँ केवट उसके प्रति सहानुभूति दिखाकर उसको अपने वश में कर लेता है। जब वह कुछ दिन बाद केवट से उसकी जाति पूछती है तब वह उत्तर देता है तुम मेरे अंग से लगी, मेरा जूठन खाया और इसके बाद मेरी जाति पूछकर क्या करोगी? तब उसे आवेश में हुई अपनी भूल का ध्यान आता है तब वह पश्चाताप से भरकर कह उठती है कि काले कलूटे केवट ने मेरा आँसू पोंछकर मुझे ठग लिया— *सेजिया से रूठी रनियवाँ, जमुना तीरे ठाढ़ भई। / करिया लुआठा केवटवा, अँसुइया पोंछि भोरवै। / मैं तोंसे पूछौं ऐ रसिया! कवन तोरी जतिया? / अंग लगि सोइउ, जूठ मोरा खाइउ, / अब केस पूछत मोरी जतिया? हम तौ हई तोहार रसिया। / गोरा बदन आपन पियवा, घरे छोड़ि आयउँ। / करिया लुआठा केवटवा, अँसुइया पोंछि ठगि लीनि।*

यह गीत प्रकारान्तर में श्री कृष्ण और गोपी के प्रेम की ओर भी इंगित करता है। लोक गाथाओं के रूप में जाने कितने प्रेम काव्य आज भी कंठ से फूटते रहते हैं— हीर-राँझा, लैला-मजनूँ, सोहनी-महिवाल, रानी सारंगा-सदावृज, राजा उदित, नीलकंठ, गोपीचन्द जैसी प्रेम कथाएँ लोकगाथाओं में अमर है। खलनायक नायिका के रूप में प्राय: भूत-प्रेत, परियाँ और परीक्षा लेने वाली देवियाँ आती रही हैं।

उक्त सभी प्रेम गाथाएँ अवधी में भी अपने परिवेश के अनुकूल परिवर्तन के साथ मिलती हैं।

नीलकंठ में प्रेमिका अपने नृत्य से इन्द्र देव को प्रसन्न करती है। अपने बिछुड़े प्रिय को वापस प्राप्त कर लेती है।

लोक साहित्य में स्वकीया के प्रेम का पलड़ा अधिक भारी है। परकीया का स्थान दूसरे स्थान पर है।

एक गीत में मालिन को अपने रूप और प्रेमी की अपने प्रति आसक्ति पर गर्व हो उठता है वह प्रिय के घर सोहर की गूँज और ढोलक की थाप

सुनकर पूछती है कि तुम तो कहते हो कि मैं ही तुम्हारी सब कुछ हूँ फिर तुम्हारे घर पुत्र कैसे हुआ? वह उत्तर देता है कि पत्नी तो सोने की थाली है जिसमें रोज भोजन किया जाता है किन्तु विवाहित व्यक्ति की प्रेमिका तो पत्तल के समान है जिसमें खाने के बाद उसे रखा नहीं जाता है।

स्वकीया रूप गर्विता है जो कहती है कि मेरा मन तो खौलता पानी है और शरीर चावल है, मेरे नयन मूँग की दाल हैं। मैं अपने प्रिय को बिना लकड़ी और बिना आग के ही भोजन कराऊँगी।

मन मोरा अदहन, तन मोरा चाउर, नयना मूँगि कै दाल।
अपने बलम काँ ज्योंना जेंवइबै, बिनु लकड़ी बिनु आगि।

इसी प्रकार प्रिय भी उसकी एक झलक पाने के अवसर ढूँढ़ता रहता है। वह आस-पास ही भैंस चराता है और बार-बार घर आकर पत्नी के माथे की बिन्दी अर्थात उसका मुख मंडल झाँक-झाँक जाता है।

गोंइड़े-मेड़े भैंस चरावैं, मेहरी कै टिकुली झाँकि-देखि जायँ।

इस प्रेम ने जाने कितने बलिदान लिये हैं। ये लोकगीत और कथाएँ इसकी साक्षी हैं। एक लोक कथा है जिसमें बारह वर्षों बाद परदेश से लौटते हुए एक राजा को मार्ग में किसी स्त्री के पहले हँसने और फिर रोने की आवाज़ सुनाई देती है। वह आवाज़ की दिशा में बढ़ता है तो पता चलता है कि वह आवाज़ एक कुँए के पास से आ रही है। बाहर खूँटी पर किसी स्त्री के वस्त्र टँगे हैं। यह आवाज़ उसी जनाने (स्त्रियों के) वस्त्र से आ रही है। वह उन वस्त्रों से पूछते हैं कि तुम किसकी वस्त्र हो? वह उत्तर देती है— इस कुँए में जो है उसकी हैं। उस कुएँ में वह झाँक कर देखते हैं तो एक सुन्दरी दिखाई देती है। राजा उससे वस्त्रों के हँसने और रोने का कारण पूछते हैं। वह उत्तर देती है कि मैंने किसी को प्रेम किया इस प्रसन्नता में वह हँस रही थी किन्तु वह मुझे छोड़कर बारह वर्ष पहले चला गया इसलिए उसके वियोग में वह रो रही है। राजा ने पूछा कि मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ? नायिका ने उत्तर दिया कि हम तो उस निर्मोही पापी के प्यार में डूब गये हैं आओ तुम भी डूब मरो। इतना सुनते ही राजा समझ गये कि यह हमारी बचपन की सखी है और वह भी उसी कुँए में कूद जाते हैं।

एक लोकगाथा राजा उदित की मिलती है जो इस प्रकार है—

राजा उदित की प्रिया पत्नी अपने मायके में थी, पुत्र भी उन्हीं के पास था। राजा को ससुराल से बार-बार निमन्त्रण आता था कि आप आइए और अपनी पत्नी को ले जाइए। किन्तु राजा का घोड़ा उन्हें बार-बार चेतावनी देता कि इस पत्र को फाड़कर फेंक दो यह निमन्त्रण नहीं आपकी मौत का पैगाम है। राजा उदित इस तथ्य को जानते थे कि मेरी ससुराल वाले मुझे मारकर मेरी पत्नी को मुझसे अलग करना चाहते हैं किन्तु अपनी प्रिया और पुत्र का बिछोह अब उनके लिए असह्य था। इस बार वे घोड़े पर चढ़कर ससुराल चले गये। घोड़े की चेतावनी से विषयुक्त जलपान और भोजन से एक-दो बार बच गये। गड्ढे में साँप-गोजर भरकर उसके ऊपर बिना बुना पलँग बिछाकर उस पर बिस्तर लगा दिया गया। इस बार भी घोड़े के कहने पर वहाँ न सोकर ज़मीन पर सो गये। किन्तु एक बार घोड़े की चेतावनी को नहीं माना और विषैला भोजन खाकर मृत्यु को प्राप्त हुए। तब उनके पुत्र रूपा को पुकार कर घोड़े ने युक्ति बतायी कि तुम अपनी माँ को लेकर मेरी पीठ पर सवार हो जाओ। इस प्रकार उनकी प्रेयसी और पुत्र की रक्षा तो हुई किन्तु वे अन्तिम बार उनसे मिल नहीं सके। इस कथा के संवाद गा-गाकर कहे जाते हैं—

"ऊदित हमरा कहनवाँ जौ माना हो ना,
ई चिठिया फारि के बहावा हो ना।
राजा ई चिठिया होइहैं जियरा मारन हो ना।"...

एक दूसरी लोक कथा है जिसमें प्रिय विवाह के वर्ष में ही बरगद और पाकड़ का पेड़ लगाता है, मोर पालता है और परदेश चला जाता है। वहाँ चोरी के जुर्म में पकड़ लिया जाता है। प्रिया को पता चलता है तो वह मोर के द्वारा सन्देश भेजती हैं— *बर फुटी बर्रोहिया औ पकड़ी समया बैठि। / मोर भये बाँकुरा, रानी भईं समरथ, / अबहीं पापी लौटबा कि नायँ।* (बरगद में जटाएँ निकल आयीं, पाकड़ का पेड़ बड़ा हो गया है, मोर बाँकुरा जवान हो गया है और रानी समर्थ सयानी हो गयी हैं। हे पापी प्रिय! अभी लौटोगे कि नहीं?)

मोर की बोली सुनकर प्रिय उत्तर देता है—

हथवाँ पड़ी हथाकड़ी, गोड़वाँ पड़ी जंजीर।
जाय कह्या मोरी बारी धना से, कसिकै बन्हीं सरीर।

(हाथ में हथकड़ी है पाँवों में जंजीर है। हे मोर! जाकर मेरी प्रिया से कहना कि मेरा शरीर कसकर बँधा हुआ है।)

यह संवाद बन्दीगृह में डालने वाला राजा सुन लेता है। उस बन्दी को मुक्त कराकर अपने सामने लाने का आदेश देता है। राजा इस संवाद का अर्थ पूछता है और बन्दी प्रिय अपनी कहानी सुना देता है जिसे सुनकर शासक राजा का ह्रदय द्रवित हो जाता है और वह उसे मुक्त कर देता है।

एक लोक कथा में पत्नी का प्रेम एक नाग से हो जाता है। एक दिन उसका पति जल्दी घर आ जाता है और पत्नी की सेज पर नाग को देखकर उसे मार देता है। पत्नी अपने प्रेमी की मृत्यु पर बहुत दुखी हो उठती है और उसके टुकड़ों को अलग-अलग जगहों पर छिपाकर रख देती है। एक टुकड़ा चारपाई पर, एक मचिया पर, एक अपने जूड़े में और एक दीपक में रख देती है। वह अपने पति से एक शर्त रखती है कि यदि तुम मेरी एक पहेली का उत्तर नहीं दे पाओगे तो तुम्हें मरना पड़ेगा। वह पहेली पूछती है— *एक खटिया धरा, एक मचिया धरा, एक जुरवाँ धरा, एक दियना धरा। / दियना क तेल जरै सारी राति, बूझो क्या?*

पति पहेली का उत्तर नहीं दे पाता वह कहता है कि मैं मरने के लिए तैयार हूँ पर मृत्यु से पूर्व एक बार अपनी बहन से मिलना चाहता हूँ। पत्नी ने उसे अनुमति दे दी। तमाम बाधाएँ पार कर वह बहन के पास पहुँचता है। अपनी राम कहानी बताकर पहेली सुना देता है। बहन की भी समझ में नहीं आता है। वह रात भर चिन्ता में जगती रहती है और ब्रह्म मुहूर्त में ख़ेत में जाती है तो वहाँ कुछ आवाज़ें सुनाई देती हैं। एक आवाज़ कहती है मैं मन्दिर का दीपक हूँ। रात भर सुगन्ध में जलता रहा। दूसरी आवाज़ कहती है— मैं एक विरहिणी के घर का दीपक हूँ जो रात भर अपने प्रिय की प्रतीक्षा में मेरी बाती उकसाती हुई जगती रही उसके दुख से मैं दुखी हूँ। तीसरी आवाज़ आयी मैं भी एक विरहिणी के घर का दीपक हूँ। मैं बहुत रात तक जलता रहा पर मुझे सन्तोष कि उसका प्रिय घर लौट आया और मुझे जल्दी विश्राम मिल गया। एक दर्दीली आवाज़ सुनाई दी, मुझे तो रात भर दुर्गन्ध के कारण चैन नहीं मिला। सबने उससे प्रश्न किया क्यों? उसने कहना शुरू किया मैं एक ऐसी स्त्री के घर का दीपक हूँ जो अपने प्रेमी नाग के मार दिये जाने से क्रोधित होकर अपने पति को मारना चाहती है। इसके लिए उसने जो पहेली पूछी है वह कोई बूझ नहीं सकता पर मुझे मालूम है। उसने नाग के टुकड़ों को खटिया, मचिया और जूड़े में छिपा दिया है। एक टुकड़ा मुझमें भी डाल दिया था

जिसके जलने से हुई दुर्गन्ध से मुझे बहुत कष्ट हुआ। उसका पति अगर यह रहस्य बताकर पहेली बूझ ले तभी वह बच सकता है।

बहन ने भाई को पहेली का रहस्य बता दिया और साथ चली गयी। भाई ने जाकर नाग के टुकड़ों को निकालकर पत्नी के सामने रख दिया और अपने प्राणों की रक्षा की।

एक अन्य लोककथा में प्रिया का वध हो जाने पर उसके रक्त की बूँदों से एक पेड़ निकलता है। बचपन में ही उसका विवाह हो गया था। ससुराल से गौने की तिथि लेकर नाई आता है तो पेड़ से आवाज़ आती है—*ससुरे के नउवा डारि जिनि छूवा, पात जिनि छूवा, डारि हहरइहैं पात झहरइहैं...* (ससुराल के नाई! पंडित! परिजन! मेरी डाल-पत्ती मत छूवो। डालें हिलने लगेगीं, पत्ते झड़ने लगेंगे। मेरा वध हो चुका है। मेरे रक्त की बूँदों से यह पेड़ उगा है।)

इसी प्रकार ससुराल से पंडित और अन्य परिजनों के आने पर छूने का निषेध पेड़ करता है। किन्तु जब उसका पति आता है तो आवाज़ आती है— *प्राण पियारे डारि तूँ छूवा, पात तूँ छूवा, डारि बिछि जइहैं, पात बिछि जइहैं।...* (हे प्राण प्रिया! तुम मेरी डालों-पत्तों का स्पर्श करो, मेरी डालें, पत्ते तुम्हारे स्वागत में बिछ जाएँगे। मेरा वध हो चुका है। मेरे रक्त की बून्दों से यह पेड़ उगा है।)

इसी प्रकार छल से सम्बन्धित लोक कथाएँ मिलती हैं जिसमें छल से प्रेमी को प्रेमिका से अलग करके उसके स्थान पर स्वयं को स्थापित करने की कहानी है। किन्तु सच्चा प्रेम कभी हार नहीं मानता और अन्त में दोनों का मिलन होता है तथा छली को दंड मिलता है।

"सारी सुइयाँ मैंने निकालीं एक सुई चेरी ने निकाली, चेरी हो गई रानी, मैं हो गई चेरी" के प्रसंग वाली कहानी तथा "हँसने पर लाल और रोने पर मोती" आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं।

एक रूपगर्विता विरहिणी बटोही से कहती है कि मेरे प्रिय से कहना— गर्मी का महीना है मेरे गोरे मुख से पसीना ढुरकता है, मेरे लिए नगीना जड़ी पंखी भेज दे—

'गोरे मुख चूवै पसीना, अहो गर्मी का महीना।'

'जाइ कह्या मोरे पिया के अगवाँ, भेजि देइहैं पंखी नगीना,' अहो...

लोकगीतों में नख-सिख वर्णन शास्त्रीय पद्धति से नहीं किया गया है। प्रायः रूप-चित्रण में भी लोकगीतों में अंगज, अयत्नज, स्वभावज आदि अलंकारों, नायिका के बत्तीस लक्षणों एवं सोलह श्रृंगारों आदि का क्रमबद्ध आकलन प्रस्तुत नहीं किया गया, वरन् सामग्री और सहजता पर बल देते हुए चित्रण किया गया है।

लोकगीतों में नारी का रूप-चित्रण उसकी विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार ही हुआ है। नारी के विभिन्न रूपों का परिचय उसकी वेश-भूषा के द्वारा लोक-संस्कृति के परिवेश में भली प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है।

'पद्मिनी' नायिका के रूप-चित्रण में प्रायः कमल की सुगन्ध का वर्णन हुआ है। पर केसर की सुगन्ध रूप-विधान में नवीनता की सर्जना करती हैं केसर में सुगन्ध के साथ वर्ण की आभा भी प्रकट होती है। नारी के रूप का सर्वथा मौलिक बिम्ब एक लोकगीत में प्रस्तुत है। जो न केवल उपमान की नवीनता की दृष्टि से वरन् शब्द विन्यास की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

पनवाँ की नइयाँ सीता पातरि, सुपारी यस ढुरहुरि।
सीता फुलवा बरन हलुकैया, केसर यस महकैं।

(सीता की देहयष्टि पान की तरह तन्वंगी तथा सुपारी की भाँति सुडौल और चिकनी है। वे फूल के समान हल्की तथा केसर-सी सुरभित है।)

लोकगीतों में प्रसिद्ध उपमानों को उपमेय के रूप में और उपमेय को उपमान बनाकर प्रतीक अलंकार के माध्यम से रूप वर्णन किया गया है— *एक दिन स्याम से पूछ्यों अँजोरिया कैसन होति है।*
जइसे माथे की बिन्दिया अँजोरिया वैसे होति है।
एक दिन स्याम से पूछेन अन्हेरिया कैसन होति है।
जइसे आँखि कै कजरा अन्हेरिया वैसे होति है।

इसी प्रकार विरहिणी नायिका की उपमा देते हुए कहा गया है—
जब नारि सुनैं गौनें का दिनवाँ,
ठाढ़ी उखुड़िया यस झुरायँ।

(जब नायिका अपने गौने की तिथि तय हो जाने की बात सुनती है तो वह ख़ेत में खड़ी ईख की तरह सूखने लगती है क्योंकि ससुराल चले जाने पर अपने प्रमी से बिछोह की चिन्ता हो जाती है। यहाँ सूखने में रस के सूखने का भाव भी व्यंजित हुआ है।)

एक प्रिया रूप गर्विता तो है ही वह प्रिय को चुनौती देती हुई, आमन्त्रण देती हुई-सी लगती है कि तुम मेरे प्रेम में, मेरे प्रेम बाण से बिंधकर क्यों नहीं आते?

पवन रस डोलत्या केस नाहीं रे। / हमार पिया बोलत्या केस नाहीं रे। / मैं चम्पे की हूँ कली रे, तुम पिया फूल गुलाब / गमे-गम महकत्या केस नाहीं रे? / मैं जंगल की हीरनी रे, तुम पिया छत्री के पूत, / उठाइ बान मरत्या केस नाहीं रे? / मैं ताले की माछरी रे, तुम पिया मछुवा के पूत। / उठाइ जाल फेंकत्या केस नाहीं रे?... / मैं राजा की लाड़ली रे, तुम पिया राजा के पूत, / हिरदैयाँ लगवत्या केस नाहीं रे?

(हे पवन! तुम रस से भरकर क्यों नहीं डोल रहे हो? हे प्रिय तुम क्यों नहीं बोल रहे हो? मैं चम्पे की कली हूँ तुम गुलाब के फूल हो, मेरे साथ मिलकर क्यों नहीं महक रहे हो? मैं जंगल की हरिणी हूँ तुम क्षत्रिय के पुत्र हो, मुझ पर बाण क्यों नहीं चला रहे हो? मैं तालाब की मछली हूँ तुम मछुआरे के पुत्र हो, मुझ पर अपना जाल क्यों नहीं फेंक रहे हो? हे प्रिय! मैं राजा की लाड़ली बेटी हूँ तुम राजा के पुत्र हो मुझे अपने हृदय से क्यों नहीं लगा रहे हो।)

वह प्रिय के रूप पर मुग्ध है और सखियों से अपने प्रिय की पहचान बताती है—*कहीं देखा रे सखियाँ हमारो सनम,*
हमरे सनम कै यही निसानी, दिये गोल टोपी उड़ावैं पतंग।
हमरे सनम कै दूसरी निसानी, हाथे गुलेल मुँहा पाने कै रंग।
कहीं देखा रे सखिया हमारो सनम।

(सखियो! कहीं तुमने मेरे प्रिय को देखा है? वह गोल टोपी लगाये हैं, पतंग उड़ाते हैं, उनके हाथों में गुलेल (पक्षी का शिकार करने के लिए लकड़ी का बना एक यन्त्र) है उनके मुख में पान की लालिमा है।)

प्रिया कहीं-कहीं अत्यन्त प्रगल्भ भी है। वह प्रिय से प्रणय निवेदन करती हुई कहती है। मन पटने की शर्त ही प्रेम की एकमात्र शर्त है। मन पट गया तभी समर्पण है—

मन पटे की यारी, चलो यार खोलो केंवारी।

दाम्पत्य जीवन की नोंक-झोंक के अनेक सरस उदाहरण मन को गुदगुदा जाते हैं—

रुनझुन खोला न हो केंवड़िया, हम विदेसवाँ जइबै ना।
जौ तूँ राजा जइबा विदेसवाँ, हो विदेसवाँ जाब्या ना।

हमरे बिरना काँ हो बुलावा, हम नइहरवा जइबै ना।
जौ तूँ जइबू रानी नैंइहरवाँ, तूँ नइहरवाँ जाबू ना।
जेतना लागी बा रुपइया, वतना दैके जायू ना।
जौ हे राजा! हम रुपइया देबै ना, हाँ रुपइया लेब्या ना।
जैसेन बाबा घर से आयेन, वैसेन कइके भेज्या ना।

(हे रुनझुन पायल बिछुवों वाली! द्वार खोलो मैं विदेश जाऊँगा। यदि तुम विदेश जाओगे तो मेरे भाई को बुला दो मैं मायके जाऊँगी। यदि तुम मायके जाओगी तो तुम्हें लाने में जितना धन खर्च हुआ, वह देकर जाना। मैं यदि तुम्हें रुपया दूँगी और तुम लोगे तो मैं जैसी अपने पिता के घर से आयी थी वैसे ही करके मुझे वापस भेजना होगा।)

एक अन्य गीत में सुहागरात की बेला में गरमी से परेशान नववधू अपने पति से कहती है कि आप मुझसे थोड़ा परे हटें, मेरी चूनर पसीने से भीग रही है। पति रूठ जाता है और कक्ष से बाहर चला जाता है। वह कहती है यदि मैं अपने पिता की बेटी हूँ तो तुम स्वयं वापस आने के लिए द्वार खटकाओगे। वधू काली बदली से प्रार्थना करती है कि हे बदली! तुम मेरी माँ, बहन हो ऐसा पानी बरसाओ कि मेरे प्रिय भीग जाएँ और भीतर आने के लिए विवश हो उठें। बदली घिर आयी, पानी बरसने लगा। प्रिय अपनी चारपाई भीगने से बचाने के लिए इधर-उधर खींचने लगे पर भीगने से बच नहीं पाये। वह पत्नी से द्वार खोलने की मनुहार करते हैं द्वार खोल दो। वह शर्त रखती है कि मैं द्वार तब खोलूँगी जब वादा करो कि मुझसे फिर तकरार नहीं करोगे। वह भी शर्त रखता है कि मैं तुमसे कभी तकरार नहीं करूँगा किन्तु मेरी शर्त है कि मेरे माता-पिता, परिजनों से कभी तकरार नहीं करोगी। द्वार खुल जाता है, दोनों हिल-मिल जाते हैं। शर्त और नोंक-झोंक संवाद का एक बहाना होता है जो प्यार का एक खुला आकाश होता है।

एक सोहर गीत में पति अपनी पत्नी से मिलने रात में छिपकर आता है। वह गर्भवती हो जाती है। सास-ननद उससे पूछती हैं कि तुमने किस छैल से अपना चित्त लगाया? मेरा पुत्र तो वृन्दावन में है। वह उत्तर देती है कि रात को भौंरे के वेश में आते हैं और मेरे आँचल से विलास करते हैं किन्तु जब कोई विश्वास नहीं करता तब वह प्रिय को आते ही चारपाई से बाँध देती है और सास-ननद को पुकारती है कि आकर अपने पुत्र को, भाई को पहचानो, मेरे ऊपर लांछन लगाया। सास-ननद हाथ जोड़ती हैं बहू! चोर बहुत सुकुमार है बन्धन ढीले रखना। पति भी हाथ जोड़कर कहता है कि इस बार का बन्धन छुड़ा दो, मैं तुम्हारे सौरगृह की रखवाली करूँगा, तुम्हारे बच्चे को सँभालूँगा। जब वह बन्धन खोल देती है तो पति अकड़ते हुए कहता है कि मैं दक्षिण देश जाँऊगा वहाँ से तुम्हारे लिए सौत ले आँऊगा। वह कह उठती है कि वह क्षण याद करो जब चारपाई की पाटी से तुम बँधे थे। आज तुम मेरे लिए सौत लाने की धमकी दे रहे हो। फिर दोनों खिलखिलाकर हँस उठते हैं।

एक सास ने खिड़की से देखा कि मेरा पुत्र अपनी पत्नी को पंखी डुला रहा है और वह आराम से लेटी है। वह पुत्र से रुष्ट होकर कहती है कि अपनी पत्नी को मायके भेज दो। उसने मेरे बेटे को अपना गुलाम बना लिया है। पति माँ के संकोचवश उससे कुछ नहीं कह पाता और पत्नी से कहता है कि तुम ऐसा कुछ करो कि माँ का क्रोध कम हो जाए और हम दोनों अलग होने से बच जाएँ। पत्नी समझ जाती है अपने पति की चिन्ता और प्यार। वह सास को अपनी वाणी से, सेवा से प्रसन्न कर लेती है। उन्हें समझा लेती है कि हम दोनों एक-दूसरे के गुलाम नहीं, साथी हैं। इस प्रकार के जाने कितने गीत और कथाएँ लोक के कंठ में आज भी सुरक्षित हैं जो संयुक्त परिवार को बचाये रखने में सहायक हैं।

लोकगीतों में प्रिय की ओर निहारने वाली 'चितवन' की अनेकानेक भंगिमाएँ देखने को मिलती हैं। यह चितवन संयोग का एक ऐसा मधुर अस्त्र है जिससे घायल होने में सुख है। इस चितवन की लालसा में सबकुछ न्योछावर करने को प्रेमी तत्पर रहता है।

सावन-भादों की अँधेरी रात है। प्रिया, प्रिय के लिए शृंगार करके, उसके लिए ज्योंना (भोजन) लेकर प्रतीक्षारत है। पर इस अँधेरी रात में न प्रिय उसकी ओर निहार कर उसका सौन्दर्य देख पा रहा है और न प्रिय की उस निहारने वाली दृष्टि को प्रिया देख पा रही है। रात मिलन की है, पर परस्पर 'परस' तो है 'दरस' नहीं। इसलिए प्रिया को यह अँधेरी रात नहीं भाती।

फिर आती है माघ-पूस की कड़कड़ाती सर्दी की ऋतु। प्रिय गन्ना काटने-छीलने और कोल्हार में लाकर पेरने में रात-दिन जुटा है। प्रिया उसके लिए सोलहों शृंगार करके उसका भोजन लेकर कोल्हुवारी में जाती है। पर प्रिय तो ऐसे काम में तल्लीन हैं कि उसकी ओर देखते ही नहीं। वह जानती है कि काम जरूरी है, व्यस्त हैं, पर ऐसी भी क्या व्यस्तता कि मेरी ओर एक नज़र नहीं डाल सकते। वह अपने कठकरेजी पति के प्रति मान से भर उठती है और कहती है कि कोल्हू टूट जाए, कातरि टूट जाए, ख़ूब रस पौदारी में बह जाय ताकि उनका ध्यान भंग हो और वह मेरी ओर देखें—

सोलहों सिंगार कै के गयों कोल्हुवरिया, जेवनवाँ लिहे ठाढ़ी रे कोल्हुवरिया।
हमरे बलमुवा क कठिन करेजा, उलटि नाहीं चितवैं रे मोरी ओरियाँ।
कोल्हू तोरा टूटै, कातरि तोरी फाटै, खूबै रस बहै रे पौदरियाँ।

(सोलहों शृंगार करके मैं कोल्हार में उनका भोजन लेकर गयी, लेकिन मेरे कठोर ह्रदय वाले प्रिय ने मेरी ओर एक बार भी नहीं देखा। वह रुष्ट होकर कहती है कोल्हू टूट जाए, कातरि टूट जाए और बहुत सा रस बह जाए।)

यह गीत प्रेम की उस कविता का स्मरण कराता है जहाँ प्रिय का स्पर्श पाने के लिए प्रिया घर जल जाने पर भी प्रसन्न होती है—*आगि लागि घर जरिगा, बड़ सुख कीन। / पिय के हाथ घइलवा, भरि-भरि दीन।*

प्रिय की छवि रात-दिन चित्त पर नाचती रहती है। जब से प्रिय आँखों से ओट हुए सब सुख चैन चला गया और प्रिया दुखी रहती है—
नाचै चित पै सुरतिया तुम्हारी, छयल बनवारी। / अँखियन ओट भये हरि जब से, हम तजि चैन दुखारी।

एक अन्य गीत में चितवों शब्द को प्रतीक्षा के अर्थ में प्रयोग किया गया है— *जइसे बूँन सेवाती म बरसै, पपिहा मरै पियासा / वइसे चितवौं बिरही बालम तोर अवनवाँ ना।*

(जिस प्रकार स्वाती की बूँद स्वाती नक्षत्र में ही गिरती है किन्तु पपीहा उसी की प्रतीक्षा में प्यास से मरता रहता है उसी प्रकार हे वियोगी प्रिय! मैं तुम्हारे आने की राह देख रही हूँ।)

दिन तो राह देखते बीत जाता है और रात जागते बीतती है— *दिनवाँ तौ बीतै जोहि-जोहि बटिया, / रतिया बीतै जागि-जागि रे विदेसिया।*

कभी-कभी राह देखते आँखें दुखने लगती हैं, नींद खो जाती है तब विरहिणी कहती है—

निदिया हेराय गयीं अँखिया पिराय गयीं चितवन रहिया तुहार / अँगना म केतनी तरइया टेघरि गयीं, केतनी कोइयवन क अँखिया निचुरि गयीं / भरि-भरि सुधिया तुहार।

(मेरे आँगन में जाने कितनी तारिकाएँ पिघल गयीं, तालाब में जाने कितनी कुमुदनी की आँखें निचुड़ गयीं तुम्हारी सुधि आँखों में भरते-भरते, पर तुम नहीं आये।)

पर पुरुष की भ्रमर जैसी प्रीति को भी लोकगीतों में बार-बार रेखांकित किया गया है। पत्नी कभी भी यह सहन नहीं कर पाती कि उसका पति किसी और का हो जाए। मालिन से अपने पति के प्रेम को जानकर वह क्षुब्ध होती है और कहती है कि मैं मालिन की फुलवारी उजड़वा दूँगी पर उसका पति कहता है कि मैं उसकी फुलवारी को ऐसा सीचूँगा कि वह फिर से हरी-भरी हो जाएगी। वह निराश दुखी होकर लौटने लगती है तब उसका पति उसे समझाता है कि मालिन की बेटी तो मेरी बाल सखी है।

अन्य गीत में जब उसे पूरा विश्वास हो जाता है कि मालिन की प्रेम भरी चितवन से मुग्ध पति मालिन पर अनुरक्त है तब परकीया प्रेम में लिप्त पति से दुखी पत्नी पति की प्रेयसी मालिन से पूछती है। मालिन! तुमने ऐसा क्या जादू किया कि मेरे प्रिय तुम पर अनुरक्त हैं और मेरी ओर देखते भी नहीं। मालिन उत्तर देती है— रानी! मैंने प्रेम से रच-रचकर सेज सजायी उस पर फूल छितराया, सारी रात पंखा झलती रही और अपने नयनों के रस से उन्हें बाँधे रखा—

रचि-रचि सेजिया बिछायों त फूल छितरायों।
रानी सारी राति बेनियाँ डोलायों नयन रस राख्यों।

नयनों के सम्मोहन की मधुर गाथा साहित्य में भरी पड़ी है। रूप गर्विताएँ इसी के बल पर अपनी हर माँग पूरी कराती रही हैं। एक नायिका कहती है कि मेरे लिए झुलनी बनवा दो। मैं अपने नयनों में काजल लगाकर, ईंगुर की बिन्दी लगाकर और शृंगार करके जब तुम्हारी ओर प्रेम भरी चितवन से देखूँगी तब तुम्हारा जन्म सफल हो जाएगा—

झुलनी हमकाँ दिलदारे दिया हो बनवाई / काजर नैन देब सिंकिया से ईंगुर बुन्द लगाई / करिके सिंगार तुहैं जब चितउब / जनम सुफल होइ जाई, दिया हो बनवाई।

सुन्दरी अपने हाथों में गुलाब का फूल लेकर, नयनों में काजल लगाकर अपने प्रिय से नयनों-नयनों में ही सम्भाषण करती हुई उसके मन को रिझाती है—

गोरी लालही लाल दिखावै, ललन ललचावै,
फूल गुलाब लाल हाथन धरि, नैना-से-नैना मिलावे, ललन ललचावै।

एक भोली-भाली नववधू का चित्र बहुत ही सहज रूप से व्यक्त हुआ है— *मचियहिं बइठी सासू त बहुअरि अरज करैं,*
सासू! हथिया चढ़ल हथिवनावाँ हमैं सनकारैं।
सँवरे बरन तुहरे ससुरू क हथिया लाल झूलने ओढ़े।
बहुअरि गोरे बरन तोहरा पुरुप, तुहैं सनकारे।
नाहिं देख्यों जोड़वाँ से जमवाँ, त सिर पै मौरवा।
सासू नाहीं देख्यों एड़िया महावर, अपने कैसे चीन्हौं।

(वह अपनी सास से कहती है कि एक हाथी पर बैठा हाथी वाला मुझे आँखों के संकेत से बुला रहा था। मैं डरकर भाग आयी। उसकी सास हँसते हुए कहती है कि वह साँवले रंग का हाथी तुम्हारे ससुर का है और उस पर लाल झूलन पड़ा है। उस पर बैठा गोरे रंग का हाथी वाला तुम्हारा पति है जो तुम्हें इशारे से बुला रहा था। नववधू कहती है कि न उनके शरीर पर जोड़ा जामा था न सिर पर मौड़ न ऐड़ी में महावर थी। मैं उन्हें देखकर कैसे पहचान पाती।)

जिनका प्रिय से मिलन नहीं हो पाता और प्रिय की चितवन प्रेम की कसक बनकर सालने लगती है तो वह कह उठते हैं कि कटारी मारकर मर जाना अच्छा है अपेक्षाकृत इसके कि किसी के नेत्रों-से-नेत्रों को मिलाना— *मारि कटारी मरि जाना, नजरिया न केहू से मिलाना।*

नज़र का मिलना भी बुरा, उसका लगना भी बुरा कहा गया है। बुरी नज़र से तो भगवान ही बचाये। देवर-भाभी, नन्दोई-सलहज के बीच परिहास का रिश्ता होता है। लोकगीतों में देवर और नन्दोई की नज़र लगने की बात बार-बार कही गयी है। देवर का नज़र मारना उसकी कुटिल चितवन की शिकायत वह बार-बार करती है और देवर को धमकी भी देती है कि तुम्हारे भइया से तुम्हारी शिकायत करूँगी—

निहुरि बहारौं अँगनवाँ हो, देवरा मारै नजरिया।

चितवन जब बुरी नज़र बन जाती है तो उससे बचने के तमाम उपाय भी सोचे जाते हैं। यह नज़र प्रिय को ही नहीं प्रिय के घर को भी लग जाती है तब प्रिया कहती है कि यदि मैं काली कोयल होती तो कूकती रहती और तुम्हारे घर को बुरी नज़रों से बचाती। यदि मैं बेला, चमेली होती तो तुम्हारे घर के सामने लटक कर तुम्हारे घर को नज़र से बचाती।

नज़र लागी राजा तोरे बँगले पर।
जो मैं होती राजा, बेला चमेलिया, लटकि रहती राजा तोरे बँगले पर।
जौ मैं होती राजा काली कोयलिया, कुहुक रहती राजा तोरे बँगले पर।

एक गीत में रूपगर्विता कहती है—

कान्हा रे मोरी भर दे गगरिया,
भर दे भराय दे सिर पै उठाय दे, कान्हा रे बतलाय दे डगरिया।
दखिन देस म लागी बजरिया, कान्हा रे मँगावाय दे चुनरिया।
चुनरी पहिरि मैं सोयौं ओसरवा, कान्हा रे मोहें लागी नज़रिया।
पटने सहर से वैद बुलाय दे, कान्हा रे झरवाय दे नज़रिया।

(हे कान्हा! मेरी गागर भर दो, सिर पर उठा दो, मुझे राह बता दो, मुझे दक्षिण देस से चूनर मँगवा दो। मैं चूनर पहन कर बरामदे में सोयी, मुझे नजर लग गयी, पटना शहर से वैद्य बुला दो जो मेरी नज़र झाड़ दे।)

एक अन्य गीत में भी इसी प्रकार का भाव है—

मोरे पिछवरवाँ रे टेसू क फुलवा, टेसू फूलै आधी राति रे रसिया।
फुलवा मैं तूरि-तूरि रसा गरायों, हौदा भरा रस होय रे रसिया।
वही रसा म चुनरी रंगायौं, चुनरी बड़ी बूटेदार रे रसिया।
चुनरी पहिरि मैं सोयौं ओसरवाँ, पियवा क मन ललचाय रे रसिया।

(मेरे पिछवाड़े टेसू का पेड़ है। टेसू आधी रात को फूलता है। फूल चुन-चुन कर मैंने रस निकाला। हौदी भरकर रस हुआ। उसी रस में मैंने चुनरी रँगायी। चुनरी बूटेदार है। वही चुनर पहनकर मैं बरामदे में सोयी, प्रिय का मन ललचा उठा।)

प्रिय के बिना शृंगार की चाह ही नहीं होती—

पिया बिनु कौन निरखै मोरि सोभा।
अब केहि पर करौं सिंगारा, धरौं कैसे धीरा।

(प्रिय के बिना कौन मेरी शोभा देखेगा, मैं किस पर शृंगार करूँ, प्रिय के बिना कैसे धैर्य धारण करूँ?)

प्रिय की प्रशंसा भरी चितवन से ही प्रिया का शृंगार सार्थक होता है। उसे प्रिय का सम्भाषण याद आता है। प्रिय कहता है कि दाँतों में मिस्सी लगाकर सुन्दरी बरामदे में खड़ी है। उसके दाँतों में सोनार ने कीली जड़

दी है, उसके नयन रतनारे हैं। उन रतनारे नयनों में सुरमा लगाकर जब वह मेरी ओर देखती है तो उस चितवन से मेरे प्राण निकल जाते हैं और उसमें समा जाते हैं—

मिसिया देकैं ठाढ़ी ओसारे, मोरा जिया मारे।
जड़े सोनार दाँत म कीली, नयना हैं रतनारे।
तापर बाढ़ि धरै सुरमा कै चितवन महँ प्राण निसारे, जिया मोरा मारे।

इस प्रकार लोकगीतों में चितवन की विविध अभिव्यंजना हुई है। वह कहीं शृंगार रस के संयोग में सनी है तो कहीं वियोग की घड़ियों में अटकी है। कहीं छवि निहार रही है तो कहीं परिहास करती है।

लोक साहित्य प्रिय के प्रति प्रेम भाव प्रदर्शन का नहीं, प्रेम का रहस्य हृदय की सात परतों के भीतर छिपा कर रखने का है। पर वह व्यक्त हुए बिना नहीं रहता, वह व्यक्त होता है, प्रेम के सात्विक अनुभवों में।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रामचरितमानस की श्री सीता की ऐसी ही छवि का उल्लेख करते हुए कहा है कि इस भाव को समझने के लिए लोक का मन, लोक की दृष्टि चाहिए।

बहुरि बदन विधु अंचल ढाँकी। पियतन चितइ भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिँय सयननि।

यह प्रेम व्यक्त करने का सौष्टव आज के हाय-हेलो युग में पलने वाली पीढ़ी नहीं समझ सकती। आज 'आइ लव यू' तीन शब्दों को बार-बार दुहराने वाले युगल तुलसी के राम के उस भाव को समझने में कठिनाई का अनुभव करेंगे—

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं।

संयुक्त परिवार में संकोच को शील का पर्याय समझा जाता रहा है यहाँ तक कि संकोच के कारण नवयुगल का मिलन बाधित होता है। प्रिया रात भर प्रिय से मिलने नहीं जा पाती—

उगि गै बैरिन जोन्हइया मैं का करौं?
विनती मैं करि-करि जोन्हइया डुबायौं, जागै मोरी ससुइया मैं का करौं?
मीजि माँजि जब सासू सोवायौं, जागै मोरी ननदिया मैं का करौं?
दै के गुड़िया ननदि बहलायौं, जागै लहुरा देवरवा मैं का करौं?
दैके गेंदा देवर बहलायों, जागै मोरी सवतिया मैं का करौं?
लड़ि झगड़ि जब सवती सोवायौं, बोलै रतनी चिरइया मैं का करौं?
कंकरी मारि-मारि चिरई उड़ायौं, होइ गै भोर भिनुसरवा मैं का करौं?

(बैरिन चाँदनी उग गयी। उसके प्रकाश में प्रिय से मिलने कैसे जाऊँ? विनती करके चाँदनी को डुबाया तो सास जग रही थी। सास के हाथ-पैरों की मालिश करके उन्हें सुलाया तो छोटी ननद और छोटे देवर साथ नहीं छोड़ रहे थे। ननद को गुड़िया और देवर को गेंद देकर बहलाकर सुलाया तो सौत जग रही थी। लड़-झगड़कर सौत को सुलाया तो भोर का सन्देश देने वाली रतन चिड़िया बोलने लगी। कंकड़ मारकर जब चिड़िया को उड़ाया इतने में भोर हो गयी और प्रिय से मिलन न हो सका।)

प्रेम के इस गूढ़ रहस्य को व्यक्त करने वाले अनेक लोक गीत मिलते हैं जिसमें इस संकोच के भाव सहज ढंग से मुखरित हुए हैं।

प्रिय विदेश जाने को तैयार हैं पर नवयुगल का संकोच विदा के क्षण मिलने में बाधक है—

सैंया सलाम करत सासू से, हम ढिंग ठाढ़ि केंवारी,
तौं लग निसरि गये घर बाहर, जौं लग हम घूँघट टारी, दगा दैके मारी।
जाइके ताक्यों खिरकिया से, पिया चितवत जात अटारी,



परि गई डीठ पीठ के ऊपर से, मोरी अँसुवन भीजत सारी, दगा दैके मारी।
तब से तनिक चैन ना आवत, ना हँसि बोलि सुहाई,
सब सखियाँ मिलि मोहि समुझावत, मोहि लागत हनिकै कटारी, दगा दैके मारी।

(प्रिय माँ को प्रणाम करके विदेश जा रहा है, किवाड़ के पीछे खड़ी पत्नी से संकोचवश मिलने नहीं जाता। वह भागकर खिड़की से देखने लगती है। पर पति की आँखें उसे अटारी पर खोज रही हैं। वह दौड़कर अटारी पर जाती है, पर तब तक निराश होकर प्रिय आगे बढ़ जाते हैं। नयनों का मिलन विदा के क्षण नहीं हो पाता प्रिय की जाती हुई पीठ ही वह देख पाती है। उसके आँसुओं से उसकी चूनर भीग जाती है। विरह की यह कसक उसे रात-दिन रुलाती है। सखियाँ उसे समझाती हैं पर उसे हँसी और बोली कुछ भी नहीं सुहाता ऐसा लगता है कि ये हँसी और बोल उसे कटार मार रहे हों।)

जीवनयापन के लिए यात्रा और प्रवास सदैव होते रहे हैं और प्रवासी पति की याद में विह्वल प्रिया पत्नी की पीर को लोकगीत वाणी देता रहा।

प्राकृत और अपभ्रंश में भी इनके मार्मिक उदाहरण मिलते हैं। प्रिया अपने प्रिय के चले जाने पर दीवाल पर दिन गिनने के लिए चिह्न बनाती है कि प्रिय को गये कितने दिन हुए। पर वियोग कातर, विस्मृत-विमुग्ध होकर एक ही दिन में वह पूरी दीवाल चिह्नों से भर देती है।

अज्जंगओति अज्जंगओति।

मेरा प्रिय आज गया है, आज गया है, आज गया है।

इसी प्रकार का भाव लोकगीतों में भी व्यक्त हुआ है।

दिनवाँ गिनत मोरी अँगुरी खियानी।
रहिया तकत अँखिया भइ बेसरमवाँ ना।

(दिन गिनते-गिनते मेरी अँगुलियाँ घिस गयीं और तुम्हारे आने की राह देखते-देखते आँखें बेहया हो गयीं। पर तुम नहीं आये।)

इसी प्रकार अनेकानेक उदाहरण इस पीड़ा को अभिव्यक्ति देते हुए मिलते हैं। विदेश यात्राएँ धन कमाने के लिए होती थीं। प्रिय धन के लोभ

में दूर गये और लौट नहीं सके। यह करुणा विह्वल कंठों से फूट पड़ी।

सोना लादन पिउ गये, वहि माटी के देस।

सोना मिला न पिउ मिले, रूपा होइ गये केस।

(प्रिय सोना लादकर लाने के लिए गये। वह देश भले ही सोने का हो पर मेरे लिए तो मिट्टी का देश है, जिसने मेरी ज़िन्दगी के स्वर्णिम दिन छीन लिये। मुझे तो न सोना मिला न प्रिय मिले। बस उनकी प्रतीक्षा मिली और उस प्रतीक्षा में मेरे केश चाँदी (श्वेत रंग के) हो गये। हो सकता है उन्हें सोना मिला भी होगा पर उन्होंने भी तो जीवन के जो बसन्त खो दिये, क्या सोना उसकी पूर्ति कर सकेगा?)

वह उसके स्वर्ण के मोह को तो बराबर कोसती ही है। यातायात के उन साधनों को भी कोसती है जो प्रिय को ले तो गये पर वापस लेकर नहीं लौटे। न ये साधन होते, न प्रिय जा पाते। वह फिर मन को समझाती है। अरे मैं इनको क्यों कोस रही हूँ? सबसे ज्यादा बैरी तो पैसा है जिसके लिए प्रिय परदेशी हुए।

वह प्रिय को समझाती है— मेरे लिए धन महत्त्वपूर्ण नही है, तुम्हारा महत्त्व है। मुझे तो बस तुम्हारा सान्निध्य चाहिए।

यह बहु प्रचलित लोकगीत है—

पुरबा से रेलिया आवै पछुआँ से जहजिया, पिया के लादी लैगै ना।
रेलिया बैरिन मोरी सवतिया, उहे जहजिया मोरी सवतिया।
पिया के लादी लैगै ना।
सेर भर गेहुआँ बरिस भरि खाबै, पिया के जाये न देबौ ना।
रखबौ अँखिया के हजुरवाँ, पिया के जाये न देबौ ना।
कोटि जतन किहयों, कहना न माने, पिया परदेसी होइगै ना।
लाख जतन करौं जियरा न मानै, हमका मोहिया लागै ना।
सोचि के पिया की सुरतिया न मानै, हमका मोहिया लागै ना।
कैसे जियरा समझावौं, हमकाँ मोहिया लागै ना।

(पूर्व से रेल आयी और पश्चिम से जहाज। पिया को लादकर ले गयी। यह रेल, यह जहाज तो मेरी बैरिन सौत बन गयी, मुझे प्रिय से अलग कर दिया। पर क्यों इन्हें कोसूँ? सबसे अधिक बैरी तो यह पैसा है तो देश-देश उन्हें भटका रहा है, भरमा रहा है। मेरे बिना कौन उनकी सुख-सुविधाओं का ध्यान रखता होगा? मैं तो सेर भर गेहूँ में पूरा वर्ष गुज़र कर लेना चाहती हूँ पर प्रिय को अपने से दूर नहीं जाने देना चाहती, अपनी आँखों के समक्ष रखना चाहती हूँ। पर मेरा लाख यत्न व्यर्थ गया। प्रिय नहीं माने वे चले गये, परदेशी हो गये। मुझे उनकी याद आती है मोह लगता है। मैं कैसे अपने मन को समझाऊँ?)

एक गीत की पंक्तियाँ हैं—

सुधि परदेसिया। दीया के टेम बरै छतिया॥

(परदेशी प्रिय की सुध दीपक की लौ के समान ह्रदय में जलती रहती है। इसका दूसरा भाव भी है। संध्या समय दीपक जलने की बेला में मुझे उनकी सुध और आती है।)

इसीलिए वह प्रिय के परदेश चले जाने की कल्पना से भी भयभीत हो उठती है— *कैसे बलम निनिया आई, जब जइवा विदेसवाँ।*

(हे प्रिय! जब तुम विदेश चले जाओगे तो मुझे नींद कैसे आएगी इसलिए तुम कहीं मत जाओ।)

यह तो प्रिया की मनोदशा है प्रिय भी चिन्तित है कि प्रिया के बिना कैसे रह पाऊँगा?

जब तूँ बारी धनिया जाइउ नइहरवाँ, त टीका धरे जाइउ हो सेजरियाँ।
टीका कै जुगुनू चमकै सारी रतियाँ, कि जनू धना बाटीं रे सेजरियाँ...॥

(हे प्रिया! जब तुम मायके जाना तो अपनी माँग का टीका, कंगन, तिलरी सेज पर रखकर जाना। इन आभूषणों का जुगुनू (नग) सारी रात चमकेगा तो मुझे लगेगा कि प्रिया सेज पर है।)

भारतीय 'प्रवासी' जिन परिस्थितियों में देश को छोड़कर परदेश जाने को विवश हुए और अपने पीछे छोड़ गये रोता कलपता घर-संसार, जिसकी व्यथा-कथा की करुण अनुभूति लोकगीतों में फूट पड़ी। आज भी उन विरहिणियों के उच्छवास मन को आर्द्र कर जाते हैं। उस उच्छवास में आसुँओं के साथ ही आक्रोश की ज्वाला भी है, जो विवशता का लाभ उठाने वाले शोषकों के प्रति मन में जगती है। यहाँ एक गीत उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है— *लादे जहजिया पिया के चली जाय रे / जौने सहरवा के मोर हरि नौकर / लागै अगिनियाँ सहर जरि जाय रे। / जौने सहबवा के मोर हरि नौकर / आवै बिमरिया साहेब मरि जाय रे। / जौनी तिरियवा के मोर पिया राखे / डसे नगिनियाँ सवति मरि जाय रे।* (जहाज मेरे प्रिय को लादकर चला जा रहा है। जिस शहर ने मेरे प्रिय को नौकर बनाया, उस शहर में आग लगे और वह शहर जल जाए। जिस 'साहब' ने मेरे हरि को नौकर बनाया है, उस साहब को बीमारी लगे और वह मर जाए। जिस स्त्री को मेरे प्रिय ने अपने पास रखा है, उसे नागिन डस ले और मेरी सौत मर जाए।)

प्रियतम के प्रवास का समय दिन, महीनों, वर्षों में नहीं गिना जा सकता। समय का पैमाना तो छोटा पड़ गया, विरह की पीर बड़ी हो गयी। उसके लिए तो ये पेड़ साक्षी हो सकते हैं जिन्होंने प्रिया को प्रतीक्षा करते देखा है। वह रोयी है, हारी है, फिर भी प्रिय के आने की आशा नहीं छोड़ी है। यह पेड़ उसके प्रिय ने लगाया था, उस प्रतीक्षा का यह दीर्घ अन्तराल प्रकृति के अकूत पैमाने से मापने की कोशिश की जाती है। वह अपनी सास से पूछती है— "सास जी! मेरे प्रिय ने यह नीम का पेड़ कब लगाया था? कब विदेश गये?" उसकी सास साक्षी है उसके विरह की। उनकी ममता ने भी यह वियोग झेला है। माँ की पीड़ा वह समझती है। अपने संवाद से माँ की और अपनी जड़ीभूत पीड़ा को पिघला कर वह दोनों के ह्रदय को हल्का करना चाहती है। माँ का उच्छवास फूटता है— बहू! खेलने-कूदने की उम्र में मेरे लाल ने, तेरे पति ने कौतुकवश यह नीम का पेड़ लगाया था और रेख (मसें) भीगते ही, किशोर होते ही विदेश चला गया।

यह नीम का पेड़ साक्षी है उस लम्बे समय का, वह बड़ा हो गया, उसकी डालें फूलों से भर गयीं, उसमें निमौली फल गयी, उसके भार से वह झुक गया, पर मेरा परदेसी अभी लौटकर नहीं आया।

इसी नीम की तरह मैं भी तो सयानी हुई, मेरे अंग-अंग खिल गये, सुरभित हुए, पर मुझमें फल नही लगे, मुझे जीवन का फल नहीं मिला, क्योंकि मेरे प्रिय परदेश में हैं।

कौनी उमिरियाँ सासू निबिया लगाये, कौनी उमिरियाँ गये बिदेसवाँ हो राम
खेलत कुदत बहुअरि निबिया लगाये, रेखिया भिनत गये बिदेसवाँ हो राम
फरि गई निबिया लहसि गई डरिया, तबहू न आये मोर बिदेसिया हो राम।

इस प्रकार नारी मन की सहज अनुभूति निष्कपट भाव से लोकगीतों में अभिव्यक्त हुई हैं। उसके ह्रदय की एक-एक पर्त खुलती हुई, बिछती हुई प्रतीत होती है। प्रिय के विरह में वर्ष के बारहों महीने दुख देते हैं।

चैत्र का चन्द्रमा तो प्रिय को भी अपनी प्रिया की सुधि में विह्वल कर देता है। दोनों को विरह की पीर से भर देता है।

चैत चनरमा न भावै हो रामा, दरद जगावै,
याद सनेहिया के आवे हो रामा दरद जगावै।

मन अँगराई जाय खेत खरिहनवाँ
रहि-रहि पीर सतावे, हो रामा दरद जगावै।
चैत चनरमा न भावै हो रामा... ।

(चैत्र का चन्द्रमा वियोगी मन को नहीं भाता, अपने स्नेही की याद आती है और दर्द जगाती है। मन बार-बार ख़ेत-खलिहान में अँगड़ाई लेता, दर्दीला हो उठता है। रह-रहकर पीर सताती है।)

प्रवासी पति की प्रिया बारहों महीने दुख और चिन्ता देते हैं—
बैसाख म बँसवा कटावइ, के बँगला छववाइ,
ना घर मोरे बलुमवा केकरे संग बैठउँ।

(वह सोचती है कि बैसाख महीने में बाँस कटाकर प्रिय के बिना कौन घर छवाएगा। किसके साथ बैठूँगी।)

जेठ की तपन तो विरहिणी के तन-मन दोनों को झुलसा देती है—
जेठ में तपै तपनिया, पिया बिन रहा न जाय।
भूभुरि उड़त आकास अब मिरगा रहा न जाय।

(जेठ में तपन तप रही है प्रिय के बिना रहा नहीं जाता। जलती हुई धूल, रेत आकाश में उड़ रही है मृगतृष्णा के भ्रम में मृग भटक रहे हैं, प्यास नहीं बुझ रही है।)

आषाढ़ की वर्षा तथा नयनों का बहता जल दोनों मिलकर उसके मन को शीतल नहीं कर पाते।
असाढ़हि मेह झमाझम बरिसे ओरी से चुवै पानी,
अखियाँ बरसे अँचरा भीजै तबो न जलन सिरानी,
कैसे धरौं सखि धीर पिया बिनु... ।

(आषाढ़ के मेघ झम-झम बरस रहे हैं, ओरी से जल चू रहा है। उसी प्रकार आँखें भी बरस रहीं है, आँचल भीग रहा है किन्तु भीतर की तपन शीतल नहीं हो रही है। हे सखि! प्रिय के बिना कैसे धैर्य धारण करूँ?)

महाकवि जायसी की विरहिणी नायिका की व्यथा से भी अधिक स्वाभाविक चित्र लोक गीतों में मिलता है—
झिरझिर बरसै झाँझरि चूवै मोर मकनवा ना।
धना छोड़ि पिया लुभाने मधुबनवाँ ना।

(रिमझिम वर्षा हो रही है, मेरे पुराने महल की झँझरी (सन्धि) से पानी झर रहा है। पिया के बिना महल कौन छवाये। मेरे प्रिय अपनी प्रिया को छोड़कर मधुबन के लोभी हो गये हैं।)

सावन में जिसका प्रिय न आये उसकी पीड़ा का तो अन्त ही नहीं।
गरजै चमकै बरसै बदरा, अँचरा धरि गोरी मनावै सवनवाँ न आवे।

(बादल गरज चमक रहे हैं। वर्षा हो रही है। आँचल पसार कर गोरी प्रार्थना करती है यदि पिया न आएँ तो सावन आये ही नहीं।)

सावन-भादों के काले बादल, बिजली कोयल की कूक, शीतल बयार सभी उसे बैरी लगते हैं।
हरे रामा बिरहिन कै बैरिनियाँ, बदरिया कारी रे हारी,
बिजुरी तड़-तड़ तड़के रामा, जियरा रहि-रहि धड़के रामा
हरे रामा कान्हा गये परदेस, नींन ना आवै रे हारी।

(बिरहिणी की शत्रु काली बदली है। बिजुली तड़क रही है, रह-रहकर हृदय धड़क रहा है। मेरे कान्हा परदेश गये और मुझे नींद नहीं आती।)

प्रिया दुखी है कि वह अँधेरी रात और बादलों से डरकर कहाँ, किसकी शरण में जाए— *सावन की अन्हियरिया ना सूझै आरो पार / भादों कै यस बिजुरी चमकै घन घहराय / केकरी सरन उठि लागों ना घर कन्ता हमार।* (सावन की अँधेरी रात में आर-पार कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। भादों की ऐसी बिजली ऐसी चमकती है, घन गरजते हैं। मेरे पिया घर में नहीं मैं किसकी शरण में जाऊँ?)

साथी के बिना उसे सावनी बहार और हरियाली से भी भय लगता है— *दूजे सावन की हरियारी, सासू लागै डर भारी,*
नाही मोरा है संघारी, इहाँ आई बा बहरिया हरे साँवरिया—

(सावन की हरियाली भी उसे डराती है। हे सास जी! मेरा साथी यहाँ नहीं है और यहाँ बहार आयी है।)

कुवार में वह प्रिय को आने के लिए बार-बार सन्देश भेजती है—
क्वार कुसल नाही मेटै, ना केहू आवे न जाय,
लिखि-लिखि चिठिया मैं पठवौं, वही निरमोहिया के हाथ।

(आश्विन का महीना खलमास होता है, उसमें कोई आता जाता नहीं क्योंकि सकुशल यात्रा का सुदिन नहीं माना जाता। मैं लिख-लिख कर उस निर्मोही के पास पत्र भेजती हूँ।)

कार्तिक की चाँदनी रात तो पिया के बिना उदास ही लगती है अगहन में प्रिय ने आने को कहा था पर आये नहीं— वह विकल है—
तुहरा सनेस आय, अउबै अगहनवाँ,
तबै से बालमा, ताकौ तोर अवनवाँ तबै से बालमा।
नाहीं आये पियवा मैं कैसे बोधौं जियरा,
तबै से बालमा, मोरा फरकै नयनवाँ तबै से बालमा।

(हे पिया! तुम्हारा सन्देश आया कि अग्रहायण मास में आऊँगा तभी से तुम्हारे आने की राह देख रही हूँ। तुम नहीं आये मैं कैसे अपने हृदय को समझाऊँ? तभी से मेरे नेत्र फड़क कर तुम्हारे आने की सूचना दे रहे हैं।)

पूस का जाड़ा उसके तन-मन को कँपकँपा देता है।
पूस म हनै टुसरवा, सब सखि पनियाँ के जायँ
काँपै लेजुरी घइलवा, काँपै सगरो सरीर।

(पौष मास में तुषारापात हो रहा है, सब सखियाँ पानी भरने जाती हैं। ठंड के कारण रस्सी और घड़ा तो काँपते ही हैं मेरा सारा शरीर भी काँपता है।)

माघ में मन्दिर तथा घर और भी सूना-सूना लगता है—
माघ के बसन्त पंचमी, सब सखी पूजन जाएँ,
उलटि-पुलटि मन्दिर चितवौं और भवना लागै उदास।

(माघ की बसन्त पंचमी को मन्दिर तथा घर और भी सूना तथा उदास लगता है। मैं उलट-पलट कर घर देखती हूँ, भवन और उदास लगता है।)

फाल्गुन रस-रंग का महीना है पर पिया के बिना फीका और दुखदायी—
फागुन रस रंग महिनवाँ, सब सखि खेलथि फाग,
नाहीं घर मोर रंगरसिया, केहि संग खैलो मैं फाग।

(फाल्गुन रस-रंग का महीना है सब सखियाँ फाग खेलती हैं। मेरा रंगरसिया घर नहीं मैं किसके साथ फाग खेलूँ?)

वह पपीहे से पिया के पास जाकर पिउ-पिउ पुकारने की प्रार्थना करती है— *उड़ि जा रे पंछी जहाँ पिया प्यारे / उड़िके बइठ्या कदमवा के डारी, पिया-पिया गोहराना।*

(हे पपीहे पक्षी! तुम उड़कर वहाँ जाओ जहाँ हमारे प्रिय हैं। तुम उड़कर कदम्ब की डाल पर बैठना और पिया-पिया की पुकार लगाना।)

फागुन आ गया पर प्रिय नहीं आये— *आइगै फागनुआँ न आये कन्हाई, ऐसे बेदर्दी से कैसे निभाई। / फागुन मास अबीर उड़त है, द्वारे*

ठाढ़ि हम अँचरा बिछाई। / फागुन फाग केकरे संग खेलौं, अब केहि पर डारौं अबीरा, / धरौं कैसे धीरा...

(फाल्गुन का महीना आ गया पर कन्हाई नहीं आये, ऐसे बेदर्दी से कैसे निर्वाह करूँ? फाल्गुन महीने में अबीर उड़ रही है। मैं अपने द्वार पर प्रतीक्षा में आँचल बिछाये बैठी हूँ— किसके साथ फाग खेलूँ)

प्रिया के बिना श्रृंगार, भोजन, जल, शैया कुछ भी नहीं भाता— *जब से पिया तू गया विदेसवाँ तबै से बालमा, / छोड्यों आँखि के कजरवा तबै से बालमा, / नाहीं भावै भोजनवाँ तबै से बालमा। / अँखियन के सखि छूटि गै कजरा, / तन सोरहौ सिंगार न भावै सवनवाँ न आवै।* (प्रिय जब से तुम विदेश गये तब से मैंने आँख में काजल लगाना छोड़ दिया, मुझे भोजन नहीं भाता, रोते-रोते मेरी आँखों का काजल छूट गया। तन को सोलहों श्रृंगार नहीं भाता। प्रिय नहीं हैं तो सावन भी न आये।)

वह देवर से कहती है—

आल्हर निनियाँ न आवे बिरवा न भावै,
हो मोरे देवरा तोरा भइया छाये मधुबनवाँ लवटि नाहीं आवैं।

(देवर जी! मुझे प्रिय के बिना न नींद आती है न पान भाता है जबसे तुम्हारे भाई मधुबन गये और लौट कर नहीं आये।)

जिस चिट्ठी में प्रिय के आने का सन्देश न हो वह उसे चिट्ठी लगती ही नहीं क्योंकि वह वियोग की घड़ियों को और बढ़ा देती है।

चिठिया न भेजै, एकौ पतिया न भेजै,
लिखि-लिखि भेजथ्ये, विरोगवा हरे साँवरिया।

(मेरे प्रिय ने कोई पत्र नहीं भेजा वह केवल वियोग लिख-लिख कर भेजते हैं।)

प्रिय की राह देखते आँखें थक गयीं—

जब से बलमुआ गये परदेसवाँ, तबै से बालमा
सेजिया होइगै मोर सपनवाँ तबै से बालमा
दिनवाँ गिनत मोरी अँगुरी खियानी,
रहिया चितवन, अँखिया होइगै बेसरमवाँ, तबै से बालमा।

(जब प्रिय विदेश गये, दिन गिनते-गिनते अँगुलिया घिस गयीं, सेज तो स्वप्न ही हो गयी।)

प्रिय की छवि तो प्रिया के चित पर उतरती ही नहीं—

नाचै चित पै सुरतिया तुम्हारी छैल बनवारी।

रेल की सीटी और सिंगल का गिरना उसे प्रिय की विदा के क्षण याद दिला देते हैं।

गिरा सिंगल, बजी सीटी सुरतिया आवे साजन की।

प्रिय छः महीने को कहकर गये पर बारह वर्ष बीत गये, अभी नहीं आये।

छवहि महिनवाँ कहिके गये परदेसवाँ,
बीति गये बरहा बरीस रे विदेसिया।

विरह की मनोदशा के सहज चित्र इन गीतों में मिलते हैं—

निनियाँ हेराइ गई, अखियाँ पिराई गई, जोहि-जोहि बटिया तोहार आवा मिलनियाँ कै बेलवा फिरलि जाले, परली दियरिया मा बतिया जरल जाले, दियना सरापै कोंहार।

(आँखों की नींद खो गयी, राह ताकते आँखें दुखने लगीं। वह कहती है आओ मेरे प्रिय। नहीं तो मिलन की बेला बीत जाएगी। मेरी तरह तुम्हारी प्रतीक्षा में दीये की बाती भी जल रही है। यह दीपक कुम्हार को शाप दे रहा है कि बिरहिणी के साथ जलने के लिए मुझे क्यों बनाया?)

प्रिया की व्यथा अकथनीय है, वे विवश हैं—

कोइल होइकै वन-वन टहरति, धैके जोगिनी कै भेस करारा, मिलन न हमारा। / जौ पर होत उड़ित यहि अवसर, तब करि याद किनारा।

(पंख होते तो उड़कर पहुँच जाती, विरह में जलकर कोयल बनी वह वन-वन भटक रही है पर मिलन नहीं होता।)

उसकी विवशता कही नहीं जा सकती— *परी बेहाल भवन बीचे अहकति, सोंचति हिरदै मझारी, बिना हो बनवारी।*

(विवश होकर वह भवन में पड़ी आहें भरती है, केवल मन में सोचती है उसका प्रिय उसके साथ नहीं है।)

पर कभी अधीर होकर कहती है— *माई-बाप घर छोड़ेन, सखियाँ सहेली छूटीं / तू पिया होइ गया हमकाँ सपनवाँ, / कब लै जोहौं तोरी बटिया रे पिया।* (प्रिय तुम्हारे कारण ही पिता का घर तथा सखियों को छोड़ा पर तुम स्वप्न बन गये अब कब तक तुम्हारी राह देखूँ।)

प्रिय के बिना बातचीत किसी की सीख भी तो नहीं भाती।

घर-आँगन मोहि नीक न लागत, / ननदी बोलो मैं बतिया लचारी, बिना हो बनवारी। / रान परोसिन जे केऊ गोतिनि सिखै गई सब हारी। / सुनत न बात कही ना मानत, भावत नाही भोजन-बारी, बिना हो बनवारी।

(घर-आँगन मुझे अच्छा नहीं लगता। हे ननद जी! मैं अपनी लाचारी की बात बताती हूँ। पड़ोस और गोत्र की स्त्रियाँ सब मुझे समझाकर थक गयीं पर मेरा मन न किसी की सुनता है न मानता। मुझे वह कहती है पिया के बिना भोजन और जल कुछ भी नहीं अच्छा लगता है।)

गवना कराइ सैंया घर बैठाये, अपुना छवावैं परदेस रे बिदेसिया।
दिनवाँ बीतै मोरा जोहि-जोहि बटिया, रतिया बीतथि जागि-जागि रे बिदेसिया।

(गौना कराकर मुझको घर में बिठा दिया स्वयं परदेश चले गये। जब परदेश ही जाना था तो प्रिय ने गौना ही क्यों कराया। प्रतिदिन प्रतीक्षा में राह देखते दिन और रातें जाग-जागकर बीतती है।)

वह सोचती है जब प्रियतम का प्यार समझने लायक उमर हुई तो वे दूर हो गये—*जब हम रहेन बारह बरिस कै,*
तब सैंया लाये गवनवा हो रामा मोर सनेहिया।
अब जब हम भयन न सोरह बरिस कै,
तब सैंया छाये बिदेसवाँ हो रामा मोर सनेहिया।

(जब मैं बारह वर्ष की थी तब प्रिय मेरा गौना ले आये और अब जब मैं सोलह वर्ष की हो गयी तो प्रिय विदेश में जाकर बस गये।)

समय के दीर्घ अन्तराल को प्रदर्शित करके नैराश्यपूर्ण मानसिक स्थिति का प्रकाशन करने में ये पंक्तियाँ कितनी सक्षम हैं। तेल, सिन्दूर का चुकना इस बात का प्रतीक है कि अब उसकी श्रृंगार के प्रति रुचि समाप्त हो गयी। किसके लिए श्रृंगार करे वह? चरखा उसके शरीर का प्रतीक है जिसे वह पति की धरोहर के रूप में रखती आयी पर उसमें रोग और वृद्धावस्था का घुन लग गया। वह अनजान बटोही से अपनी व्यथा कह उठती है।

चुकि गये कुपवन, तेल, हरपवन, सेन्दुर हो,
मैया घुनै लागे चनन चरखवा, ढहइ गज ओबरि हो,
अब चुकै लागी हमरी उमिरिया, अबहीं ना लौटिन हो।

(श्रृंगार के लिए तेल, सिन्दूर, मन बहलाने के लिए चरखा, रहने को महल देकर और धर्म की रक्षा के लिए अपनी शपथ देकर प्रिय चले गये। तेल, सिन्दूर समाप्त हो गया, चरखे में घुन लग गया। महल गिरने लगा और प्रिया की उमर भी ढलने लगी पर उसका निर्मोही लौटकर नहीं

आया।)

पत्नी अपने पति की भूख-प्यास नींद के प्रति भी चिन्तित रहती है—

सोने की थारी म ज्योंना परोस्यों,
मोरा जेंवन वाला बिदेसे तरसै।

(कौन वहाँ उनका ध्यान रखता होगा। वह यहाँ सबके लिये भोजन बनाती है पर उसका प्रिय तो विदेश में तरस रहा होगा।)

पति के साथ वह जोगिनी बनने को तैयार है—

मोरे लेखे अँगना रे रनबन होइगैं डेहरी त होइगै पहड़वा ना,
सेजिया पै लोटे कारी नागिनियाँ, घरवा म फेंकरे सियरवा ना,
रनवन पिपरा के पत्ता डोले, जल बिच डोलै सेवरवा ना,
जिया मोरा डोले अपने पिया बिनु, हमैं तजि गये सँवरिया ना।

(मेरे लिए आँगन वन हो गया है। घर की देहली पहाड़ हो गयी है। ऐसे लगता है कि जैसे सेज पर काली नागिन लोट रही हो और घर में सियार (गीदड़) रो रहे हों। उसके जोगी पति ने उसका वैसे ही त्याग कर दिया जैसा साँप अपनी केंचुली का और गंगा अपने तट का। जैसे हवा में पीपल का पत्ता और जल में सेवार काँपता है वैसे ही उसका मन विरह में काँपता है। उसे लगता है उसका सोलहों श्रृंगार जल गया। अब कोई न कपास बोओ, न कुसुम। कुसुमी चूनर की लालसा भी प्रिय के साथ ही चली गयी।)

एक विरहिणी तो किवाड़ बन्द करके बिना खाये-पिये अपने प्राणों का अन्त ही कर देती है। बारह वर्ष बाद लौटकर जब पति किवाड़ तोड़कर देखता है— *अँगिया त खाई देंवकियन जमिगै कुस डाभर हो राम, / धनिया बरहा बरिस कै कमइया, मै केकाँ देखावों हो राम।*

(पत्नी के वस्त्र दीमक खा गई है। उसके शरीर पर कुश घास उग आयी है, वह हाहाकार कर उठता है। हे प्रिये अपनी बारह वर्षो का कमाई अब किसे दिखाऊँ?)

इस प्रकार लोकगीतों में विरह के अत्यधिक मार्मिक, ह्रदय को छूने वाले चित्र मिलते हैं। लोकगीत आदर्श भारतीय दाम्पत्य संस्कृति के उद्गार हैं, अत: इनमें पति-पत्नी का विरह ही अधिकतर वर्णित है। पति-पत्नी ही लोकगीतों में प्रेमी-प्रेमिका हैं।

चइती गीतों में बहुत कुछ ऐसे खो जाने का भाव रहता है जैसे कि वह मिलेगा ही नहीं। बीते हुए दिनों का उल्लसित, उन्मादी उत्सव और वहाँ जो कुछ लुट रहा है वापस नहीं आएगा, इसकी कसक मन को सालती रहती है। एक पारम्परिक बड़ी पुरानी चइती है जिसमें यह वेदना है कि इसी जगह किशोरावस्था का प्यार कहीं खो गया। कौन बताएगा कि कहाँ खो गया?

यही ठइयाँ झुलनी हेरानी हो रामा, कसौ मैं पूछौं
बाग बगइया हेर्यों, कतहू न पायों,
मलिया से पूछत लजाय गयों रामा, कासौ में पूछौं।
कुअँना जगतिया पे हेरयों, कतहू ना पायों।
कहँरा से पूछत लजाय गयों रामा, कासो मैं पूछौं।
महला दुमहला में हेर्यों, कतहूँ न पायों
सासू से पूछत लजाय गयों रामा, कासौं मैं पूछौं।
सेजा सुपेतिया पै हेर्यों, कतहू न पायों
देवरा से पूछत लजाय गयों रामा, कासौं मैं पूछो।

(इसी स्थान पर झुलनी कहीं खो गयी। मैं किससे पूछूँ? बाग, कुआँ, महल, सेज सब जगह ढूँढ़कर थक गयी, कहीं नहीं मिली। मैं माली, कहाँर, सासजी, देवर सबसे पूछते-पूछते लजा गयी।)

कुछ चइती निर्गुन भी है जिन्हें घाँटों कहते हैं। इसमें मन के माणिक्य के खो जाने का गहरा दुख है।

मानिक मोरा हेराने हो रामा, यही काली मटियाँ।
यहि रे जमुनवाँ के निर्मल पनियाँ
हेरि-हेरि मैं हार्यों हो रामा, यही काली मटियाँ।

(मेरा माणिक्य इसी काली मिट्टी में कहीं खो गया है। इस यमुना के निर्मल जल में खोज-खोज कर मैं थक-हार गयी।)

प्रिय से संयोग में बाधा डालने वाले को मन सहन नहीं कर पाता। एक बहुत प्रसिद्ध चइती है जिसमें कोयल के बोलने से प्रिय रूठ जाता है। और प्रिया कोयल का बसेरा उजाड़ने की धमकी देती है :-

सेजिया से सइयाँ रूठि गइलै हो रामा, कोइलरि तोरि बोलियाँ।
औरि दिना बोलै कोइलरि दिन-दुपहरियाँ, आज बोलै आधी रतियाँ।
हो रामा, कोइलति तोरि बोलियाँ
भोर होत कोइलरि तोर खोंतवा उजरिवौं,
बगिया म अगिया लगइबों हो रामा, कोइलरि तोरी बोलियाँ।

(हे कोयल! तेरे बोलने से मेरे प्रिय सेज से रूठकर चले गये। और दिन तो तुम दिन-दोपहर में बोलती थीं आज आधी रात में बोल पड़ी। मैं भोर होते ही तुम्हारा घोंसला उजाड़ दूँगी, बाग में आग लगा दूँगी।)

इसमें कोयल एक उपलक्षण यानी बहाना है, एक दूसरे आकर्षण अथवा चाहना का, जो प्रिय से बिछुड़ा देता है। ऐसे में सारा आक्रोश इस अनजाने आकर्षण के ऊपर आ जाता है। चइती में संक्षेप में लम्बे विषाद की छाया रहती है, आशा की उत्तेजना नहीं रहती।

प्रकृति के उल्लसित उन्मादी रूप को देखकर विरह वेदना और गहरी हो जाती है श्री कृष्ण की दानलीला, मानलीला तथा उनके चले जाने पर गोपियों के ह्रदय की वेदना इन गीतों से छलक पड़ती है :-

रामा कान्हा जो मोरा बिछुरि गये हो रामा, चइत मासे।

मिलन और विरह धूप-छाँव की तरह, दिन-रात की तरह संसार का सत्य है। इस सत्य को सहज कोमलता और मानवीय संवेदना के साथ देखने की दृष्टि लोक मानस की है। शृंगार के वियोग पक्ष को साहित्य में सर्वाधिक महत्त्व मिला है। सूरदास के भ्रमर गीत की संवेदना लोकगीतों में भी सहज रूप से उतरी है।

आज जब जीवन से प्रेम ही लुप्त होता जा रहा है। बिना स्नेह के जीवन की दीप टिमटिमाता हुआ बुझने की ओर अग्रसर है। सम्बन्धों की मिठास ही समाप्त होती जा रही है, मन में तरह-तरह की खटास और रिक्तता भरती जा रही है तब उस गहरे रागबोध से मन को ये लोकगीत ही जोड़ सकते हैं। राग होगा तभी वियोग होगा, वियोग के बिना राग का अनुभव नहीं होता और राग के अनुभव के बिना जीवन, जीवन नहीं रह जाता। इसीलिए लोकगीतों के रूप में रची गयी मन की प्रेम भरी पाती को पढ़ने की दृष्टि पाना आज की अपरिहार्य आवश्यकता है।

प्यार के देवता श्रीकृष्ण ने जो प्रीति का रस छलकाकर जीवन को नेह-छोह से जोड़ने का सन्देश दिया, उस नेह से सराबोर होने के लिए लोक की नेह भरी छुवन लेकर बहने वाली लोकसाहित्य की रसधार में अवगाहन करना होगा तभी ढाई आखर का रस और मर्म समझ में आएगा, तभी मन से मन का जुड़ाव होगा।

'श्रीवत्स्', 45 गोखले विहार मार्ग, लखनऊ - 226 001
दूरभाष - 0522-2206454, 9335904929

मीनाक्षी जोशी

तिल-तिल नूतन होय



मनुष्य के भीतर संवेदना के कई-कई रंग होते हैं। मनोविज्ञान स्वीकार करता है कि सबके हृदय में एक रागात्मक वृत्ति होती है जिसे 'लिबिडो' कहते हैं। जीवन के सारे स्वप्न इसी वृत्ति में होते हैं और इसका मूल तत्त्व होता है— प्रेम। प्रेम ही सृष्टि के विस्तार का आधार है। अन्य सभी क्रियाओं की तरह प्रेम की भी एक परम्परा रही है। वह एक-दूसरे के लिए समर्पण और परित्याग की भूमि पर पनपता रहा है। उसकी क्रियान्विति, जहाँ तक स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की बात है शनै: शनै: यौन परिणति तक पहुँच ही जाती है। अब यह तय करना भी मुश्किल है कि यौनेच्छा को ही हम प्रेम मान रहे हैं या प्रेम की पूर्णता के लिए यौनेच्छा का उपक्रम है? जो भी है उसकी अभिव्यक्ति अनेक रूपों में हुई है। कहीं उत्कट रूप में, कहीं विकृत रूप में, कहीं बन्धन, कहीं विलास, कहीं विवशता, कहीं हिंसा और कहीं व्यभिचार तो कहीं वैवाहिक बन्धन के रूप में।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में इसी प्रवृत्ति पर आधारित एक युग विशेष अपनी अनोखी व अलग पहचान बना गया जिसे 'रीतिकाल' या 'शृंगार काल' नाम से अभिहीत किया गया। इसके पूर्ववर्ती युग के कवियों में एक प्रमुख कवि हैं विद्यापति, जिनके पदों को मूर्च्छना भरे संगीत की रंगस्थली और आत्म-विस्मृत कर देने वाली अनुभूतियों का साधना-मन्दिर माना गया है। वस्तुत: सरस भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में कृष्ण-भक्ति-साहित्य बेजोड़ है। इस साहित्य का स्थायी भाव रति है। दम्पति विषयक रति भाव शृंगार कहलाता है। कृष्ण भक्ति साहित्य में शृंगार भाव को ही प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। चूँकि विद्यापति के काव्य का शृंगार भाव पूर्ण रूप से लौकिक है अत: इनकी प्रेम-क्रीड़ाओं में कहीं भी कृत्रिमता नहीं है। बाह्य आडम्बरों तथा साधनों का आश्रय नहीं है पर हाँ वय:सन्धि, प्रथम समागम, नायिका भेद, नखशिख वर्णन आदि में कवि की अतिशयोक्तिपूर्ण अभिव्यंजना ने उन्हें घोर शृंगारिक (बल्कि अश्लील) वर्णन के कटघरे में खड़ा कर दिया, फिर भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि मिलन-विरह की मनोदशाओं का अति सूक्ष्म अंकन विद्यापति काव्य की विशेषता है। उन्हें 'अभिनव जयदेव', 'कवि रंजन', 'कवि-शेखर', 'कवि कंठदार' तथा 'मैथिल कोकिल' की उपाधियाँ यूँ ही तो नहीं मिली होंगी।

प्रणय के अनेक नवीन भावों का मनोवैज्ञानिक वर्णन, एवं प्रथम परिचय विद्यापति के पदों में मिलता है। यौवन अपने को छिपाना नहीं जानता। आवेग और लज्जा का एक साथ उदय होने से कभी तो छल से रस की बातें जानने के लिए सम-वयस्क सखियों का सहारा लिया जाता है। कभी एकान्त का आश्रय, वय: सन्धि की जिन चंचल स्थितियों (प्रसन्नता, आश्चर्य, मस्ती, लज्जा, चतुराई, भोलापन, मर्यादा, वासना आदि) को बाँधने में समय असमर्थ रहता है, उसे विद्यापति ने अपनी कला की पंखुरियों में बन्दी बना लिया है—

''खने लने दसन छटा छुट हास। खने खने अधर आगे बहु बास॥
हिरदय मुकुल हेरि-हेरि थोर। खने आँचर दए, खन होए भोर॥''

विद्यापति ने जिस काव्य-लोक का सृजन किया उसमें यौवन की उद्दाम तरंगें निर्बाध रूप से हिलोरें लेती रहीं। सच तो यह है कि अँग्रेज़ी कवि बायरन के समान ही विद्यापति ने यौवन काल को ही गौरव के दिन समझा था। ''The days of youths are the days of glory'' इन्हीं गौरव के दिनों की रक्षा के लिए विद्यापति ने विलक्षण काव्य की सर्जना की। यद्यपि कुछ विद्वान राधा-कृष्ण विषयक सभी पदों को अन्योक्ति मानते हैं एवं उसे माधुर्य भक्ति की संज्ञा देते हैं किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्त सिद्ध करने वालों की अटकलों को व्यर्थ सिद्ध करते हुए कहा है कि आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गये हैं। बहरहाल हमारा उद्देश्य इस विवाद की चर्चा में पड़ना नहीं अपितु विद्यापति की प्रेममयी काव्य-कला एवं रससिक्त अभिव्यक्ति का अवलोकन करना है।

विद्यापति की प्रमुख रचना 'कीर्तिलता' की भूमिका में लिखा गया है, ''उनके रसिक होने का प्रमाण इसी बात से मिल जाता है कि उन्होंने जौनपुर की वेश्याओं का बड़ा ही शृंगारी वर्णन किया है। दूसरे उन्होंने ग्रन्थ के आरम्भ में सरस्वती को शृंगारादि-रस-प्रसाद-लहरी बतलाया है।'' नख-शिख वर्णन का आरम्भ भी लगभग विद्यापति से ही माना जाता है। कवि ने प्रकृति से उन उपमानों को चुना है जो सामान्य रूप से संस्कृत में पहले ही प्रचलित थे। वैसे युग-युग के संस्कारों के संकलित होने के कारण अंग-प्रत्यंग के उपमानों में कोई विशेष भाव भर गया है, पर सौन्दर्य-सृष्टि के लिए विद्यापति समस्त उपमानों को एक क्रम और

सही अनुपात में सजाने के सिद्धहस्त हैं। आपने कभी कल्पना की है कि चाँदनी का उद्‌गम क्या है? विद्यापति बताते हैं कि ब्रह्मा ने चन्द्रमा का सार लेकर राधा के मुख को गढ़ा था। राधा के अमृत से मुँह धोने पर कुछ बूँदें इधर-उधर छिटक पड़ीं। उन्हीं से दसों दिशाओं में प्रकाश हो गया। कितनी रम्य, विलक्षण, भाव भरी एवं सटीक कल्पना है, ''चाँद सार लए मुख घटना करु, लोचन चकित चकोरे; अमिय धोय आँचर धनि पोंछल, दह दिस भेल उँजोरे।'' विद्यापति ने नायिका के अंगों की सुन्दरता, सुकुमारता, वेशभूषा, हाव-भाव एवं मांसल-सौन्दर्य के जो अनुपम चित्र अंकित किये हैं, क्या उसे चित्र कहना ठीक होगा? चित्र तो जड़ है, उसमें गति आवेग कहाँ? पर विद्यापति ने तो माधुर्य का (रति रूप में ही सही) एक अनिर्वचनीय अजस्र धारा प्रवाहित कर दी है। यहाँ कीट्स के विचार सत्य प्रमाणित होते हैं— A thing of beauty is a joy for ever.

''बदन पोंछल पर चुरे, साजि धएल जनु कनक मुकेरे'' ऐसी स्थिति में प्रभावशाली चितवन के घूमने, यहाँ-वहाँ के अंगों के खुलने, फिर स्वाभाविक लज्जा से उन्हें ढँकने, वस्त्रों के शिथिल और अस्त-व्यस्त होने, नेत्रों से काजल धुलने पर उनमें हल्की लालिमा छाने का उल्लेख बड़ा आकर्षक बन पड़ा है। सद्य:स्नाता की सबसे रमणीक कल्पना है भीगी वस्त्रों का राधा के शरीर से चिपटे रहने की। वस्त्रों को इस बात का पता चल गया है कि राधा मोह रहित होकर उन्हें अलग कर देगी। अत: वे और भी अधीरता से चिपटे चले जाते हैं। इधर जलधारा ने अनुभव किया कि ऐसा रस अन्य शरीर में नहीं मिलेगा, सो वह विदाई पर आँसू बहा रही है। जड़ वस्तुओं में ऐसी प्राण-प्रतिष्ठा करना विद्यापति के ही बस की बात थी। कवि की दृष्टि में राधा परकीया ही थी परन्तु पदावली के मिलन-प्रसंग में उन्होंने लौकिक रीति का पालन किया है। परकीया के साथ प्रेम का निर्वाह बहुत ही कठिन काम है। इस कठिनाई को यदि प्रेमिकाएँ अपने साहस से सरल न कर देतीं तो पार पाना सम्भव न होता। इस साहस का नाम अभिसार है, जिसमें नायिका सबसे छिपकर नायक से मिलने जाती है। विद्यापति की पदावली में दिवा और निशाभिसारिका दोनों के वर्णन हैं। लज्जा का वर्णन लोकनीति के अनुसार है। राधा एक बार पुरुष वेश में भी अभिसार कर कृष्ण को चकित कर देती है। पर स्पर्श से पहचान ली जाती है। कितनी विषम परिस्थितियों में नायिका अपने अविचल प्रेम का परिचय देती है। रीति-मर्यादा का भय, गुरुजन-परिजन का भय, लोक-लाज का भय, घर से आँख बचाकर निकले तो पथिकों का भय, पथिकों से प्राण बचे तो प्रकृति है। कभी चाँदनी भेद खोलने पर तुली है, कभी दोपहर की तपती धरती सुकुमार चरणों को झुलसाती है, कभी घोर अन्धकार, कभी तेज़ बारिश में कड़कती बिजलियाँ... पर बाधाओं के समक्ष प्रेम कब हार मानता है? पहले जिन प्रश्नों का उत्तर देने में नायिका लजाती थी, अब चतुराई



से अपने को बचा लेती है। यमुना पार करनी थी। नौका नहीं मिली। जल में धँस कर किनारे तक आई इसी से हार टूट गया, चूड़ियाँ चटक गयीं, कुंडल खिसक गये, तिलक घुल गया। शृंगार के लिए एक कमल तोड़ा तो भौंरे ने निकल कर अधर पर चिह्न बना दिये। मार्ग के काँटों में उलझकर वस्त्र फट गये। जलभरा घड़ा सिर पर रखकर लायी इसी से कबरी शिथिल हो गयी। तेज़ गति से चलने के कारण लम्बी-लम्बी साँसें चल रही हैं आदि...। इस पर बैरिन ननद यदि अन्य अर्थ लगाती है तो यह उस पर अत्याचार है।

विद्यापति की पदावली में विदग्ध-विलास शीर्षक से एक प्रणय-प्रसंग है, जिसे यदि कवि बचा जाते तो वे घोर शृंगारिक वर्णन के आरोप से कुछ हद तक मुक्त हो जाते। परन्तु उसे बचाना सम्भव नहीं था क्योंकि प्रेम की चरम सीमा अर्थात् द्वैत की समाप्ति जीवन में अनिवार्य रूप से सामने आती है। कवि ने इसमें उन क्षणों को बाँधने का प्रयास किया है जो नितान्त ऐकान्तिक हैं।

संयोग का सुख जितना व्यापक और बहुमुखी होता है वियोग का दुख उतना ही गहरा और तीव्र। विरह प्रेम की जागृति है। विद्यापति संयोग वर्णन के जैसे उन्मत्त गायक रहे वैसे विरह-वर्णन एवं उसकी अनुभूति के नहीं। वियोग तीन प्रकार का होता है— पूर्व राग जनित, मान जनित और प्रवास जनित। विद्यापति-काव्य में तीनों प्रकार के वर्णन मिलते हैं। सखी नायक या नायिका के रूप-सौन्दर्य का वर्णन कर उनमें रति भाव उत्पन्न करने की चेष्टा करती है जिससे दोनों एक-दूसरे को देखने के लिए व्याकुल होते हैं। ऐसे पूर्वराग जनित विरह के वर्णन पदों में भरे पड़े हैं। कभी कृष्ण मान के कारण राधा से नहीं मिलते और राधा अधीर हो जाती है, कभी राधा मान करके कृष्ण को तड़पाती है। कृष्ण के मथुरा-गमन पर प्रवासजनित विरह का वर्णन भी कवि ने किया है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर राधा के दिन भिन्न हैं, रातें भिन्न, गति भिन्न, जीवन भिन्न।

विरह के पदों में सबसे पहली बात है चारों ओर के वातावरण में सूनेपन, एकाकीपन और विषाद की भावना। प्रियतम के बिना घर नहीं भाता, शरीर नहीं भाता, यौवन नहीं भाता। चन्दन कपूर केशर नहीं भाता। शैया तो क्या भाये? बाह्य सृष्टि में अब कुछ भी सुन्दर प्रतीत नहीं होता। सब कुछ दाहक लगता है। एक-एक वस्तु पीड़ा को गहराई देने आती है। वर्षा ऋतु में जब बादल छाते हैं, वज्रपात होता है, अन्धकार भर जाता है, घर सूना रहता है तब नयन और हृदय दुख की जिस घनी छाया में डूबे रहते हैं उसकी अभिव्यक्ति अनुभूति से ही सम्भव होती है। राधा की अनन्यता और कृष्ण की कठोरता दोनों का चित्रण विद्यापति के पदों में मिलता है। विरह काल में एक सन्देह बार-बार राधा को विचलित करता है। वह सोचती है कि कृष्ण का प्रेम उसके यौवन और रूप के कारण ही था। विरह में अब वह रूप-यौवन न रहा। इस कल्पना से उसे बड़ी पीड़ा होती है। जहाँ प्रेम गुणों पर नहीं शरीर सौन्दर्य पर आधारित होता है वहाँ इस स्थिति

भारतीय ज्ञानपीठ की नवलेखन प्रतियोगिता

1. भारतीय ज्ञानपीठ ने वर्ष 2009 को **उपन्यास वर्ष** के रूप में मनाने का संकल्प किया है। इसी संकल्प को ध्यान में रखकर वर्ष 2009 की नवलेखन प्रतियोगिता को एक विशेष रूप प्रदान किया जा रहा है।
2. इस बार 40 वर्ष तक के लेखकों से उपन्यास की पांडुलिपियाँ आमन्त्रित हैं।
3. लेखक का प्रथम उपन्यास होना चाहिए, भले ही लेखक की रचनाएँ अन्य विधाओं में प्रकाशित हुई हों।
4. उपन्यास की पांडुलिपि कम से कम 200 टंकित पृष्ठों की होनी चाहिए।
5. लेखक द्वारा जन्मतिथि सहित अपना पूरा परिचय भेजना आवश्यक है।
6. पांडुलिपि की गुणवत्ता के अनुसार चयनित पांडुलिपि पर **रु. 51,000** का पुरस्कार प्रदान किया जाएगा। चयनित पांडुलिपि को भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशित करेगा। ज्ञानपीठ के नियमानुसार प्रकाशित पुस्तक के लिए लेखक को रॉयल्टी दी जाएगी।
7. निर्णायक मंडल प्राप्त पांडुलिपि में से जिन्हें प्रकाशन योग्य घोषित करेगा, उनको भी भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित किया जाएगा और ज्ञानपीठ के नियमानुसार रॉयल्टी दी जाएगी।
8. प्रतियोगिता में भेजी जाने वाली पांडुलिपि पर 'नवलेखन प्रतियोगिता के लिए' जरूर लिखें।
9. यदि कोई कृति पुरस्कार के योग्य नहीं पायी गयी तो इस वर्ष पुरस्कार नहीं दिया जाएगा।
10. निर्णायक मंडल के अध्यक्ष होंगे डॉ नामवर सिंह। निर्णायक मंडल का निर्णय मान्य और अन्तिम होगा।
11. इस वर्ष कार्यालय में पांडुलिपि प्राप्त होने की अन्तिम तिथि **15 दिसम्बर 2009** है। *कृपया पुरस्कार सम्बन्धी कोई पत्र व्यवहार न करें। किसी से भी अनुशंसा कराने वाले लेखक को प्रतियागिता के अयोग्य घोपित किया जा सकता है।*

का सामना करने पर उस पीड़ा का अहसास होता है जो भीतर ही भीतर घुमड़ती रह जाती है। इतना सब होने पर भी राधा का प्रेम अडिग है। न दोष दूषकों की बातें उसे प्रभावित कर पाती हैं न कृष्ण की कठोरता, न विधि का विपरीत विधान। हाँ, इस बात का दुख ज़रूर है कि कुब्जा जैसी नारी के वश में होकर कृष्ण उस सुख से वंचित रह गये जो राधा के भरे हृदय के सम्पर्क से उन्हें प्राप्त होता। कुछ मिला नहीं इस बात का दुख प्रेमी को नहीं होता, जी भरकर अपना अब कुछ दे भी न पाये, इतनी-सी साध काँटा बनकर चुभती रहती है। ऐसा ही एक मार्मिक वर्णन देखिए— "बनहिं गमन करुँ होएति दोसर मति, बिसर जाएब पति मोरा। हीरा मनि मानिक एको नहीं माँगब, फेरी माँगब पहु तोरा।"

जिस प्रकार साधना जगत में जीव और ब्रह्म का मिलन प्रसिद्ध है उसी प्रकार प्रेम-जगत में प्रेमी-प्रेमिका का। व्याकुलता की पराकाष्ठा पर राधा स्वयं को ही कृष्ण समझ कर राधा-राधा पुकारती है फिर सुध आने पर कृष्ण-कृष्ण, "असुवन माधव माधव सुमरत, राधा भेल मधाई।"

दुनिया का सम्पूर्ण सौन्दर्य और प्रेम, समस्त विरह व्याकुलता को मथ कर जिस कोमल-मंजुल मूर्ति का निर्माण किया गया— वह है राधा। राधा का प्रेम इतना प्रबल है कि वे धर्म, कर्म मान-मर्यादा, विधि-विधान सब अपने प्रेमी पर न्योछावर कर देती है। ऐसे उद्दाम वेग से बहने वाला प्रेम ही आत्मा के लिए आदर्श हो सकता है। विद्यापति इसी मधुर भाव के उपासक थे। जो राधा अपने हार को तोड़कर सखियों को मोती बीनने की आज्ञा इसलिए देती है कि इस अवकाश में आँख बचाकर वह अपने प्रियतम को देख ले, जो अभिसार के समय सर्प को पैर से लिपटा हुआ देख उसे अपना हितैषी इसलिए मानती है कि अच्छा हुआ अब नूपुर नहीं बजेंगे, जो भोली बनकर कृष्ण से पूछती है कि 'मेरी गाँठ' में 'सुरत धन' कहाँ है? वही पगली राधा अपने जीवन के अनुभव को इस प्रकार व्यक्त करती है— "सखि, कि पूछसि अनुभव मोय। से हो पिरीत अनुराग बखानिए तिल-तिल नूतन होय॥"

इस प्रेम में कृत्रिमता नहीं बल्कि शब्द-शब्द जैसे विह्वलता की मूक पुकार है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इन्हीं पंक्तियों पर आधारित परमात्मा के प्रति आत्मा की उत्कट अभिलाषा व्यक्त की—"It seems to me that I have gazed at your beauty from the beginning of my existence, that I have kept you in my arms for countless ages, yet it has not been enough for me."

विद्यापति ने हृदय में उमड़ते भावों की ऐसी सरस अभिव्यक्ति की है कि उसमें किंचित मात्र परिवर्तन भी समस्त भावधारा को विशृंखल कर देती है। निस्सन्देह बाह्य शरीर के वर्णन में उनकी कलम अधिक रमी है फिर भी मन की गहराई में भी वे पूरे उतरे हैं। यौवन-काल का इतना मनोमुग्धकारी चित्र उपस्थित करने वाला हिन्दी में कोई अन्य दूसरा कवि नहीं। यहाँ तक कि इसी रस के साथ किसी अन्य भाषा में इन पदों का अनुवाद भी असम्भव है। संसार में जब तक यौवन है, रूप है, प्रेम में उमड़ता हृदय है, आकर्षण है, मिलन है, विरह है, तब तक विद्यापति का काव्य अमर रहेगा नये-नये रूपों में विमर्श की सम्भावना के साथ।

रामायण नगरी, भंडारा-(महाराष्ट्र)
09823315230

सुशील कुमार फुल्ल

क्या प्रेम-कथाएँ प्रकारान्तर से काम-कथाएँ ही हैं?



काम-कथाओं के क्षेत्र में भारत विश्वभर में अग्रणी रहा है। ऐसा कहने में भी संकोच नहीं होना चाहिए कि प्राकृत की 'बड्डकहा', संस्कृत की 'कथासरित्सागर' तथा 'शुकसप्तति में पुंश्चली स्त्रियों की अनेक ऐसी कहानियाँ मिलती हैं, जो समय के अन्तराल पर विश्व साहित्य में प्रसारित हो गयीं। पति की उपस्थिति में प्रेमी से रमण करने वाली पत्नी की कहानी तो शुकसप्तति से यूनानी, मध्यपूर्व एवं पश्चिम के साहित्य में भी पहुँच गयी। अनेक प्रेमियों को एक साथ छिपा-बचा रखने में सक्षम 'नैण' की कहानी भी 'त्रिया चरित्तर' की अद्भुत भारतीय लोक-कथा है, जो विश्व के साहित्य में घुल-मिल गयी है।

वास्तव में काम-कथाओं का प्रभाव मध्यकालीन प्रेमाख्यानों अर्थात् सन्त परम्परा के कवियों की रचनाओं में भी स्पष्ट झलकता है। लोक-लाज की भावना से इन आख्यानों में चित्रित प्रेम को लौकिक के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति कहा है, जबकि इनमें नर-नारी के परस्पर दैहिक आकर्षण पर आधारित कथाओं का प्रणयन किया है। सूफी (?) कवि दाऊद द्वारा रचित 'चान्दायन-प्रेमाख्यान में चान्दा एवं लोरिक विवाहित होते हुए भी संभोग में रत होते हैं। और कवि की यह प्रार्थना कि सम्भोग या रति के ये क्षण इतने लम्बे हो जाएँ कि रात ही छह महीने की हो जाए। यहाँ 'चान्दायन' के कड़वक 218 से यह अंश उद्धृत करना प्रासंगिक होगा :

धन सु राति जिहि सजन मिरावा रइणं छमासी होउ।
पंच भूत आतमा सिराने अस बिरसे (सउ) सब कोउ॥

प्राय: विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि सूफी भक्त कवियों ने सूफी मत के प्रचार हेतु भारतीय लोक-कथाओं को ग्रहण कर प्रेमाख्यानों की रचना की। 'चान्दायन' भी 'लोरकहा' पर आधारित है। लोरिक के शौर्य का प्रदर्शन दाऊद के 'चान्दायन' में चित्रित है। चान्दा का विवाह चार वर्ष की आयु में हुआ था परन्तु बारह वर्ष तक उसे शय्या सुख न मिला। वह मायके लौट गयी। राव रूपचन्द का आक्रमण और लोरिक का युद्ध में शौर्य। चान्दा लोरिक एक-दूसरे पर मुग्ध होते हैं।

उल्लेखनीय तन्तु यह है कि नारी यानी चान्दा ही लोरिक को आमन्त्रित करती है। वह धवलगृह पर चढ़ जाता है। और चान्दा उसे छिपाये रखती है। दूसरी रात में दोनों रति रत होते हैं और कवि का आह्लाद कड़वक 218 की पंक्तियों में पहले ही उद्धृत किया जा चुका है। मालिक मुहम्मद जायसी के प्रेमाख्यान 'पद्मावत' में भी नायिका पद्मावती रत्नसेन को ललकारती है कि वह प्रयत्न करे और उसे प्राप्त कर ले। मन्दिर में जब वह योगी रत्नसेन से मिलने गयी तो रत्नसेन मूर्च्छित हो गया। वह उसकी छाती पर लिख आयी 'जब मिलन की बेला आयी, तुम सो गये।' अब प्रयत्न से ही प्राप्त कर पाओगे! और वह अन्ततः कर भी लेता है।

'पद्मावत' में भी गोरा-बादल के स्थानीय प्रसंग प्रेमाख्यान का आधार बने हैं। लोक-गाथाओं में लोक नायकों का चरित्रांकन योद्धाओं के रूप में हुआ है! ये योद्धा तो बेचारे बलि के बकरे ही बने हैं या कहें आरोपित आदर्श के खम्भे। और जहाँ तक नायिकाओं की बात है, वे बहुत ही प्रबल एवं सबल सिद्ध हुई हैं। सूफी साधना में नायक आत्मा और नायिका परमात्मा की प्रतीक है। साधना पद्धति के अनुसार तो आत्मा को परमात्मा से मिलने के लिए आतुर होना चाहिए जबकि इन प्रेमाख्यानों में नायिकाएँ अर्थात् परमात्मा ही आत्मा यानी नायक को फाँसने के लिए प्रयत्नशील है। और फिर नायक पहले ही विवाहित हैं। 'चान्दायन' में मैना तथा 'पद्मावत' में नागमती पहली पत्नियाँ हैं। अतः सूफी साधना का रूपक तो सूफी विद्वानों डॉ. नित्यानन्द तिवारी, डॉ. हरिकान्त श्रीवास्तव, डॉ. श्याम मनोहर पांडेय, डॉ. रामपूजन तिवारी, परशुराम चतुर्वेदी, डॉ. श्रीनिवास दास बत्रा, डॉ. सरला शुक्ल, डॉ. कुलश्रेष्ठ, डॉ. शिवसहाय पाठक आदि की दूरारूढ़ परिकल्पना मात्र है, जबकि मृगावती, चान्दायन, पद्मावत, चित्रावली, पुहुपावती, माधवानल कामकन्दला, इन्द्रावती आदि मध्यकालीन आख्यानक काव्य विशुद्ध सांसारिक प्रेम का चित्रण करते हैं... एकदम भारतीय कामकथा परम्परा का ज्वलन्त उदाहरण। यही कारण है कि शृंगारवर्णन में, नखशिख वर्णन में कवियों ने रस ले लेकर मांसलता का चित्रण किया है।

ऐसा चित्रण साहित्य में शाश्वत है। गुलेरी की कहानी 'बुद्धू का काँटा' में 'अनाड़ी के आगे लहँगा पसारने न पसारने' की समस्या का ज्वलन्त चित्रण है और चुलबुली भागवन्ती का दहकता हुआ मांसल प्रेम ठाठें मारता है, इसी प्रकार 'नया ज्ञानोदय' के प्रेम महाविशेषांक भारतीय काम कथाओं की परिवर्तित महक का समकालीन परिदृश्य प्रस्तुत करते हैं... प्रेम की अदम्य भावनाओं का लावा।

पुष्पांजलि
राजपुर (पालमपुर)-176 061
हिमाचल

विजयदान देथा

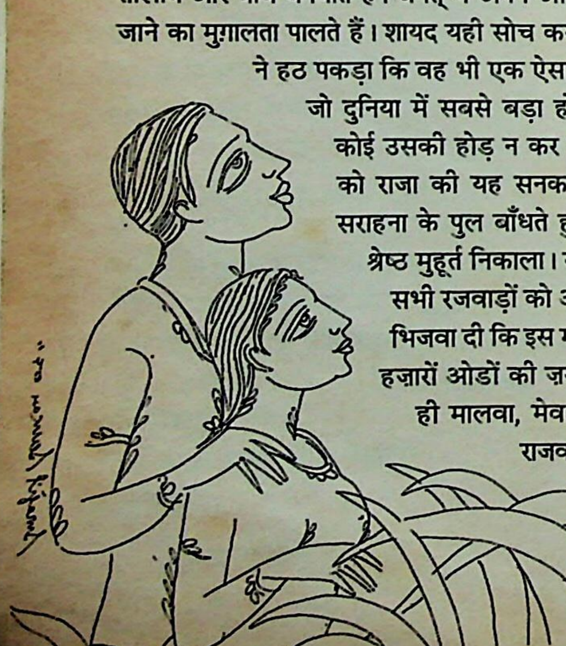
अनदेखा अन्तस

(राजस्थान और गुजरात में प्रचलित 'जसमा-ओडण' की प्रेमकथा)



ओडों का काम कल्याण का। स्वार्थ का स्वार्थ और परमार्थ का परमार्थ। भूख मिटाने के लिए तो कई झंझट करने पड़ते हैं, लेकिन प्यास बुझाने के लिए तो फ़क़त पानी ही पर्याप्त है। पानी भी दो तरह का। एक गहरे स्रोतों से निकालता हुआ वाकल पानी और दूसरा बरसात का पालर पानी। धरती के गर्भ से पानी प्राप्त करने के लिए कुएँ खुदवाने पड़ते हैं, बावड़ियाँ खुदवानी पड़ती हैं। उन्हें पक्का बनवाना पड़ता है, पानी निकालने के लिए कई उपकरण जुटाने पड़ते हैं। वहीं वर्षा के पालर पानी को सहेज कर रखना आवश्यक है। इसके लिए ताल-तलैया, बाँध-सरोवर बाँधने पड़ते हैं। फिर चौमासे में उन्हें भरने के लिए दूर-दूर तक आड़ बनवानी पड़ती है। और इन कामों का हुनर ओड ख़ूब जानते हैं। उनके खोदे हुए जलाशयों से बस्ती के लोग-बाग तो प्यास बुझाते ही हैं, पर उनके साथ-साथ असंख्य पंछी-जानवर भी अपने सूखे गले तर कर लेते हैं, आँतों की जलन मिटा लेते हैं। पनिहारिनें अपनी पायल खनकाती सिर पर बेवड़ा उठाए सारे घर का पानी वहीं से भरती हैं। इस तरह ओडों को परोक्ष रूप में कई जीवों की अबोली आसीस मिलती रहती है।

कई बार अपने नाम को अमर रखने के लिए भी लोग कुएँ, बावड़ियाँ, तालाब और बाँध बनवाते हैं। जगत् में अपने अस्तित्व की स्मृति छोड़ जाने का मुग़ालता पालते हैं। शायद यही सोच कर पाटन के राव खंगार ने हठ पकड़ा कि वह भी एक ऐसा जंगी सरोवर बनवाए जो दुनिया में सबसे बड़ा हो और भविष्य में भी कोई उसकी होड़ न कर सके। जोशी-पण्डितों को राजा की यह सनक बहुत पसन्द आयी। सराहना के पुल बाँधते हुए पंचांग टटोले और श्रेष्ठ मुहूर्त निकाला। राजा ने इस सम्बन्ध में सभी रजवाड़ों को अदेर आवश्यक सूचना भिजवा दी कि इस मांगलिक कार्य के लिए हज़ारों ओडों की ज़रूरत है। ख़बर मिलते ही मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ जैसे राजवाड़ों से झुण्ड-के-झुण्ड ओड परिवारों ने गुजरात का रास्ता लिया। राह चलते प्रत्येक ओड परिवार के मुँह से राम-नाम के साथ-साथ राव खंगार का नाम भी सुनायी पड़ने लगा। तीन-चार बरस को रोजगार पक्का। काम की तलाश में इधर-उधर भटकने की ज़रूरत नहीं! कहने वालों ने ठीक ही कहा है कि जन्म देने वाले से रोजगार देने वाला बड़ा होता है।



वैसी अचीती सहूलियत के विश्वास पर तीन-तीन सौ कोस की दूरी तक ओड नाम का कोई प्राणी तक पीछे नहीं रहा। उन सबके साथ-साथ गधे-गधियों के भाग जागे। एक ही ठौर घास चरेंगे, मोटे-ताजे होंगे और तबीयत से चींभों-चींभों का राग अलापेंगे। शायद भूले-भटके एकाध गुणीजन तो उनके तरानों का मर्म समझेगा। मनुष्यों की भीड़-ही-भीड़ और गधों के झुण्ड-के-झुण्ड धरती पर समा नहीं रहे थे। गधों की पीठ पर लकड़ी के ढाँचे, जिन पर कुदालें, फावड़े, गुदड़ियाँ, बरतन-बासन और तरह-तरह का अगड़म-बगड़म कबाड़। दूध पीते बच्चे, गोद में उठाए बालक, पाँवों चलते टींगर, मुटियार और बूढ़े-बुजुर्ग सब एक ही दिशा में बढ़ रहे थे। ओडों के कन्धों पर भी कुदालें, फावड़े और खाली गूणतियाँ। चिलमों के उड़ते धुएँ के साथ, दूरी काटने का अदम्य हौसला! चलना, चलना और चलना!

जो चल पड़ते हैं, वे देर-सवेर अपनी मन्ज़िल पर पहुँचते ही हैं। अलग-अलग ठौर-ठिकानों से आये ओड वहाँ पहुँचते ही अपनी-अपनी झोंपड़ियाँ बनाने में जुट गए। देखते-देखते एक भरी-पूरी बस्ती बस गई। चूल्हों की जगह चूल्हे और मटकियों की जगह मटकियाँ सज गईं। अपने-अपने बदन में खोयी स्त्रियाँ रोटी-पानी के जुगाड़ में लग गईं। गधों ने राहत की साँस ली। वे नए चारागाह में बेफ़िक्र हो चरने लगे।

वैसे तो मेहनतकश ओड स्त्रियाँ रूपवान होती हैं, लेकिन जसमा ओडन की ख़ूबसूरती के सामने इन्द्रलोक की अप्सराएँ भी पानी भरती थीं। उसे देखने पर विश्वास ही नहीं होता कि विधाता को ऐसा साँचा मिला तो मिला कहाँ से? मानो हज़ार स्त्रियों का रूप एक ही देह में समा गया हो! उसका रूप देखकर लगता कि पुराने कवियों की ढेरों-ढेर उपमाएँ फीकी पड़ गईं हो। ठौर-ठौर से आई ओड-स्त्रियाँ झुण्ड बना कर जसमा को देखने आतीं। बूढ़े और बुढ़ियाएँ बिना देखे ही उसके रूप

की चर्चा सुनकर थुथकी डालते और जब वह उनके सामने आती तो वे अपनी सुध-बुध ही खो बैठतीं। दो बच्चे होने पर तो उसका रूप और अधिक निखर आया! लज्जा से सिमटती जसमा कई बार सोचती कि किसी कलजीभी औरत की नज़र लग जाती और वह बदसूरत हो जाती तो आफत ही मिट जाती! एकटक घूरने वाली आँखों से पीछा छूट जाता। और तो और सुहागरात के मद्धिम उजाले में उसके रूप की झलक पड़ते ही पति की आँखें मुँद गईं। ऐसा झटका लगा कि नौ महीने तक उसे छूने का साहस तक नहीं जुट सका। उसके ख़्याल से ऐसा अनोखा रूप तो फकत देवताओं के लिए ही होता है, मृत्युलोक के जीवों से उसका कोई वास्ता नहीं।

संयोग की बात कि कुछ दिन बाद राव खंगार घोड़े पर सवार हो सरोवर की खुदाई देखने की मंशा से वहाँ आया। यकायक उसकी नज़र पाल से नीचे उतरती जसमा की पीठ पर पड़ी और अगले ही क्षण मूर्च्छित हो गया। यदि पास खड़े दो ओड युवक उसे नहीं सँभाल पाते तो वहीं ढेर हो जाता। समाचार पहुँचने में देर हुई-सो-हुई, पर राज-दरबार से चार घोड़ों का रथ आने में कतई देर नहीं हुई। अन्तः पुर की अत्यधिक रूपवती दासियाँ उस मूर्छा का टोना जानती थीं। तुरत-फुरत रथ में सुलाकर उसे रंग-महल की सेज पर सुलाया। आख़िर मूर्छा टूटने पर राजा ने डरते-सहमते पलकें उघाड़ीं। याचक दृष्टि घुमा कर उसने इधर-उधर देखा। पलंग के पायों से सटी हुई चारों दासियाँ पंखियाँ झलती हुई मुस्कराईं, जिसका मर्म पाटन का राजा अच्छी तरह समझता था। अदेर आँखें मूँद कर बड़बड़ाने लगा, ''नहीं... नहीं... ओडन... ओडन!''

तत्पश्चात् दो-तीन बार फिर पलकें उघड़ीं। दासियाँ फिर मुस्कराईं। उसके होंठों से फिर वही जाप, ''नहीं... नहीं... ओडन... ओडन!'' पर चौथी बार उसके जाप का राग बदल गया, ''तुम सब तो बिजूका हो... बिजूका! रूप-रूप तो सरोवर की पाल पर दमक रहा है!'' सोलह सिंगार सजी तीनों रानियों का भी कुछ वश नहीं चला। राजा के अधरों पर तो फकत एक ही सुमिरन, ''नहीं... नहीं... ओडन... ओडन...!''

सारे शहर में जसमा ओडन के रूप में हल्ला फूट गया। लेकिन राजा की मूर्छा और सुमिरन की बात सुन कर किसी की भी हिम्मत सरोवर के पास तक फटकने की नहीं हुई। दीवान और सेनापति का भी दाँव नहीं लगा। उसका मन तो मार फड़फड़ाने लगता, पर हिम्मत एकदम पस्त हो गई थी। ऐसे कारनामों के लिए राजा की कड़कती खीज किसी से भी छिपी हुई नहीं थी। बारी-बारी से सभी सजा भुगत चुके थे।

दूसरे दिन अल्ल-सवेरे राजा ने किसी दासी या चाकर को पास नहीं बुला कर, अपनी इच्छा से अपने ही हाथों पहली बार स्नान किया। रेशमी लिबास पहना। इत्र-फुलेल की ख़ुशबू छिड़की। दो-तीन बार काले-भँवर बाल सँवारे। सुनहरी मोजड़ियाँ पहनीं। पाँवों से मानो सूरज की किरणें चमक रही हों। उन पर इत्र लगाया अस्तबल में जाकर अपने-आप ही सफेद बुर्राक घोड़े पर जीन कसी और सरोवर की पहचानी राह शुरू होते ही घोड़े को एड़ लगाई। सरपट उड़ते हुए उसे तेज हवा लगी। दुबारा के शराब पर मानो पाँखें उग आई हों। उसकी चेतना के परे ही होठ फरफराने लगे, ''मैं पाटन का सिरमौर राव खंगार हूँ... राव खंगार और वह एक आदमी ओडन! गधों की पीठ पर भर-भर गुणतियाँ माटी ढोने वाली। पाज पर माटी का ढेर लगाने वाली। धूल से अटी हुई। राजा के मन की बात सुनकर अपना भाग्य सराहेगी!''

किन्तु राजा की मनचीती हुई। उसके चेहरे की झलक देखते ही उसे लगा कि आज दिन तक उसने किसी स्त्री का स्वाद ही नहीं चखा है। औरत का रूप तो जैसे आज पहली बार ही देखा हो! फकत औरत जात के भरम-ही-भरम में लिपटा रहा। अभी-अभी घोड़े पर सवार राजा ने सरोवर की तीन बार परिक्रमा लगाई। तमाम ओड-ओडनियों ने 'खम्मा-घणी', 'खम्मा-घणी' की जय-जयकारों से आसमान ऊपर उठा लिया, मगर जसमा तो जैसे निपट अन्धी और बहरी हो! अपने गधे को हाँकने के उन्माद में उसके घोड़े की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। वह तो सिर्फ़ अपने दन्द-फन्द में मगन! ईकड़ से बुनी गूणतियों में लीन। धूल से सटी सूरत ऐसी दिखाई दी मानो चाँद पर छितरी बदरिया छाई हो। रज्जी पर स्वेद की लकीरें ऐसी लगतीं जैसे सुरंगें माँडने उकेरे हुए हों। उसके रूप की झाँकी मिलते ही राजा-वाजा और सिंहासन-विंहासन का पूरा मद झड़ गया। राज्य की हेकड़ी मिट्टी में मिल गई। उसने आवाज़ देने की व्यर्थ चेष्टा की, पर जिह्वा तो मानो तालू से चिपक गई हो। आख़िर घोड़े से उतरकर वह पास आया। हकलाते हुए पूछा, ''रूपसी, तेरा नाम...!''

एक बार तो उसने सुनी-अनसुनी कर दी। गधे का लम्बा ललाट सहलाते-सहलाते सरोवर की पाल से नीचे उतर आई! राजा की नज़र और उसकी वाणी का मैल उससे किंचित भी छिपा नहीं रहा। उसने तो अब तक किसी भिखारी को भी कड़वा ज़वाब नहीं दिया था। लेकिन यह तो राजा होकर मँगते से भी बुरा क्यूँ दिख रहा है? काफी दूर तक उसके पीछे चलते-चलते बमुश्किल वही सवाल फिर दुहराया, ''रूपसी, तेरा नाम तो बता...?''

जसमा के मन में मामूली मज़ाक करने की जँची। इन राजा-महाराजाओं का पानी तो परखे...। इतने बरस केवल नाम-ही-नाम सुना था। माटी और गधों की पूजा से फुरसत ही नहीं मिलती! पहनावा तो चमाचम चमक रहा है, पर हिम्मत मसोते से भी बदतर! शहर की नाईं मीठे सुर में बोली, ''मेरा नाम, भगवान का नाम तो नहीं है, सो उसकी माला जपोगी!''

किसी मनुष्य बन्दे की ऐसी अमृत-वाणी हो सकती है...? जैसे वीणा के तार झनझनाए हों। ऐसे रूप के साथ, यही... केवल यही बोली सुहाती है। गज़ब आश्चर्य की बात उसने तो अपने काम की उपासना के दौरान राजा की तनिक भी परवाह नहीं की। कहीं उसका ध्यान बँट नहीं जाए! निर्बल की नाईं उसका पीछा करते हुए फिर दीन भाव से पूछा, ''एक बार तेरा नाम बता तो सही, मैं उसे आठों पहर जपूँगा...।'' राजा के मन में अकस्मात् एक नयी बात कौंधी— चलो, और कुछ नहीं तो उसके पीछे-पीछे चलने से ही उस में कुछ-कुछ बुद्धि तो बढ़ने लगी! पहले तो ऐसी बातें उपजती ही कहाँ थीं। अचानक खिलखिल हँसी सुनकर चौंका, मानो उगते सूरज की किरणें

हँसी हों। अचरज़ करते पूछा, "मेरा नाम क्यों जपोगे... और वह भी आठों पहर, तुम्हारी अक्ल भाँग तो नहीं चरने लगी... ?"

बेचारे राजा की बची-कुची हिम्मत भी पैंदे बैठ गई। इस रूप और इस वाणी का तो जादू ही निराला है। इसने तो शायद मृत्युलोक में जन्म ही लिया हो! मानो किसी अदृष्ट-लोक से अवतरित हुई हो! सम्भवतया यह राजा-महाराजाओं के ठाठ-बाट देखना तो दूर, उनके बारे में सुना तक नहीं हो। बताने पर ज़रूर रुतवा मानेगी। यह बात तो बढ़िया सूझी। उतावली दरसाते कहा, "मेरा नाम राव खंगार है— राव खंगार! पाटन का राजा हूँ। तुम लोगों को काम पर लगाने की ख़ातिर यह सरोवर खुदवाने की इच्छा हुई। तू कहे तो मैं हर रोज़ तुझे सोने की मोहर मजूरी में दूँ...!"

जसमा को यह बात काफी बुरी लगी। सुगम्भीर भाव से ज़वाब दिया, "मेरा नाम जसमा ओडन है।— जसमा। सब जानते हैं कि ऐसी बेहूदी बातें मुझे सपने में भी नहीं सूझतीं। मजूरी से एक कौड़ी भी अधिक लेना गाय का लहू समझती हूँ। तुम जैसे अनेक ठाकुरों ने, सेठ-साहूकारों ने मुझे बहुतेरे लालच दिए, पर मैंने उधर कान तक नहीं दिया। मेरे गधे भले, लकड़ी का ढाँचा भला और यह माटी भली! काम, काम और काम ही मेरा इष्ट है। मेरी आस्था है! लोभ-लालच के मारे इधर-उधर झाँकती भी नहीं। रही सुख-दुख की बात, अपने से सुखी मैं ईश्वर को भी नहीं मानती! मैं बामन-पण्डितों की तरह पढ़ी-लिखी भी नहीं हूँ। पर तुम्हारी बातें सुनकर मुझे लगा कि जानना चाहो तो तुम्हें बहुत-कुछ बता सकती हूँ। समझ नहीं पड़ता कि तुम जैसा ठोट राजा क्योंकर राज चलाता है? कैसा न्याय करता होगा... ?"

जब वह किशोर हुआ ही था, तब पण्डितों से ख़ूब विद्या सीखी थी— क्या महाभारत, क्या रामायण, क्या वेद-पुराण, क्या पंचतन्त्र। अब यह जसमा ओडन कोई नयी विद्या सिखाना चाहे तो सिखाने दो। इसी बहाने उसकी संगत का अवसर तो मिलेगा! माटी खरीदने का गन्दा काम छुड़वाकर इसे सीने की मैड़ी में रखूँगा। हमेशा दोनों जून नया भोजन पाकर यह बहुत खुशी होगी। वहाँ धूल का तो वास्ता ही नहीं। बिना नहाए भी दमकती रहेगी, फिर नहाने के बाद तो कहना ही क्या, जैसे पूनम का चाँद नहाया हो! इससे पहले कई सुन्दर-सुन्दर औरतों का सहवास मिला। पाँच सातेक नखराली औरतें नहीं मानीं तो उनके साथ ज़बरदस्ती भी करनी पड़ी। पर जसमा की तो रंगत ही निराली है! कैसा भी ज़हरीला साँप इसे डसते समय सात बार सोचेगा! इसका रूप तो ऐसा पवित्र है, जिसे देखने का मन तो बार-बार मचलता है, पर छूने का मन ही नहीं करता। अन्य रानियों और बाँदियों के ठाट देखने पर यह तो चकित रह जाएगी। पति को छोड़ कर मेरे आगे-पीछे न घूमे तो अपना नाम बदल दूँ। इसके नाख़ून की एवज में सारा राज्य भी लुटा दूँ, यदि यह मान जाए तो...! कम-से-कम हज़ार विधाता ने मिल-जुल कर ऐसे रूप और ऐसी अमृत वाणी का साँचा गढ़ा होगा! जब वह स्वयं अपनी मर्ज़ी से फँसने को तैयार है तो मग़ज़मारी करने की ज़रूरत ही क्या है! ऐसे अकल्पनीय रूप की महारानी और इतनी भोली! उसने बिना किसी हील-हुज्जत के उसी क्षण हामी भरी, "तू जो भी सिखाए, सीखने को तैयार हूँ। पर यहाँ जंगल में नहीं, महलों में, स्वर्ण निकेतन में! उसके सुनहरे चित्र देखकर तू बौरा जाएगी। यदि तूने मुझे पारंगत कर दिया तो अमोलक हीरे-मोतियों से तेरी टोकरी भर दूँगा। तेरी इच्छा होगी तो आधा राज्य सौंप दूँगा। मुझे ऐसी-ऐसी विद्या सिखा, जिसे अब तक कोई सीख नहीं सका!"

"लेकिन अपना काम छोड़कर मैं तो स्वर्ग में भी नहीं जाना चाहती! काम करते-करते ही काफी-कुछ सिखाती चलूँगी। सबसे पहले धरती को बाँचने का हुनर बताऊँगी। बस, आँखें खुली रखने की ज़रूरत है! इस सरोवर के बहाने हम इसका कलेजा खोदते हैं, अनगिनत घाव करते हैं, फिर भी वह मुस्कराती है! जब ज़रूरत के हिसाब से इसका कलेजा खोदना बन्द करेंगे और इसी चौमासे में वह छिलाछिल भर जाएगी, तब हज़ारों पंछी-जानवर, ढोर-डाँगर और बटोही इसका पानी पीकर अपनी प्यास बुझाएँगे। पनिहारिनें पायल झनकाती पानी भरेंगी। कुओं के बहाने गहरे घाव खोदेंगे, तब भी वह लहू की बजाये ऐसा अमृत सौंपेगी, जिसके सहारे हम सबकी काया टिकती है! हल की तीखी नोक से उसकी देह उजाड़ कर जब उस में बीज गेरते हैं तो एक दाने के बदले अनेक दाने लुटाती है। धरती पर चलने वाले प्राणियों को बाँचो, हवा में उड़ते पंछियों को बाँचों, झाड़-बिरछ और फूलों को बाँचो, चाँदनी और उजाले को बाँचो। रात के अँधेरे में टिमटिमाते अंसख्य तारों को बाँचो तो सुख और आनन्द का पार नहीं रहेगा। एक बात पूछती हूँ। सच बताना कि तुमने बादल, बिजली और बरखा को कभी भूल-चूक से भी बाँचा है? बरसती बूँद-बूँद में तो अथाह ज्ञान भरा है...!"

राव खंगार तो उसकी वाणी सुनकर ही तुष्ट हो गया, पर उसकी बातों का झीना मर्म तो कुछ पल्ले ही नहीं पड़ा। उसका मज़ाक उड़ाए जैसी औक़ात तो उसकी नहीं थी, फिर भी उसके अज्ञान का आभास कराने की मंशा से गुमान के लहज़े में कहने लगा, "ये भी कोई बाँचने की चीज़ें हैं...! मेरे गुरुजी की सीख के अनुसार महाभारत बाँचो, गीता-रामायण बाँचो, पंचतन्त्र बाँचो तो बुद्धि पर ऐसी चमक आए कि क्या कहना...!"

जसमा ठहाका मार कर इतने ज़ोर से हँसी कि राव खंगार का सारा जोश ही पैंदे बैठ गया। लेकिन पाण्डित्य की दृष्टि से वह भी किसी से कम नहीं है। शास्त्रों की कई सूक्तियाँ उसे याद थीं। बरसों पहले रटे हुए कई श्लोक उसे आज भी कण्ठस्थ हैं। वह सुनना चाहे तो अभी सुना दे। विद्या और ज्ञान की शक्ति भी कम नहीं होती। तिस पर पाटन का सिंहासन और उसका अखूट खजाना! आँखों से देखने की देर, वह तो अपनी सुध-बुध ही बिसर जाएगी! न राजा का पीछा छोड़ेगी और न राजमहल से एक कदम बाहर रखेगी।

बोलने से पहले जसमा के दमकते ललाट में त्रिशूल-सा उभर आया। धीरज के स्वर में बोली, "शुरुआत में आपसे एक बात मैंने छिपाई, इसलिए कि तुम मेरे लिए निपट अजाने थे, दुराव रखना ही चाहिए था। अब कुछ पहचान हो गई तो बता रही हूँ कि तुमने जिन पोथियों के नाम बताए उन्हें अच्छी तरह समझने के बाद ही कह सकती हूँ कि कुदरत के कण-कण में उनसे ज़्यादा ज्ञान भरा है! हाँ, अलबत्ता उन्हें लिखने वाले बहुत अनुभवी और ऊँचे ज्ञानी थे। लेकिन सुनहरे महल और उनकी चमकती पच्चीकारी को देखने पर भी मेरे मन में रत्ती भर भी ईर्ष्या नहीं होगी। उलटे मेरी झोंपड़ी ज़्यादा सुन्दर लगेगी! मनुष्य बाहर

की सम्पत्ति से मालदार नहीं बनता, भीतर की पूँजी से बड़ा बनता है। रात को समय मिले तो ज़रूर आना, अपने पति से मिलाऊँगी। वह सचमुच मुझसे अधिक गुणवान हैं। दो नन्हे-मुन्ने बच्चे हैं मेरे! एक बेटा और एक बेटी। मेरा वश चला तो उन्हें पुख्ता मनुष्य बनाऊँगी, जो भीतर से भी धनवान हों! उनके अन्तस् में चाँद जैसी चाँदनी घुली रहे! हमारी तरह काम ही उनका धर्म और ईश्वर हो और वे उसी की पूजा करें! काम करते-करते ही बात करने का मन हो तो दिन के समय चाहे जब आ जाना।'' कुछ सोच कर थोड़ी देर बाद कहा, ''जो राजा भीतर से इतना कंगाल हो उसे राज करने का कोई अधिकार नहीं है।''

भरी हुई गूणतियाँ गधे की पीठ पर लाद कर वह पाज की तरफ़ मुड़ी। एक गँवार ओडन के मुँह से ऐसी बातें सुनकर राजा हतप्रभ-सा हो गया। कुछ देर तक चुपचाप पीछा करने के बाद उसके मन में घुमड़ती घुटन पूरी मिट गई, तब उससे बोले बिना रहा नहीं गया। अचरज़ और हताशा के लहज़े में कहने लगा, ''मैं तो तुम्हें अक्षत युवती मान रहा था! दो बच्चों की माँ का शरीर ऐसा गठा हुआ नहीं होता! तेरा पति कितना भाग्यशाली है कि उसे तुझ जैसी बहू मिली। सच बताना, दोनों एक ही खाट पर सोते हो... ?''

जसमा ने बीच में ही मुस्कराते हुए प्रतिवाद किया, ''खाट पर तो हम अब तक नहीं सोए! साफ-सुथरा आँगन ही हमारी सेज है! सहवास की वेला में एक-एक तारे को बीनकर अपने हृदय में जड़ती हूँ। तुम कभी इस तरह के आनन्द को बरतकर तो आजमाओ! जब दो बार मेरी कोख में आशा का संचार हुआ तो पहले तेरस का चाँद कोख में जड़ा और दूसरी बार पूनम का! मेरे कहने से ही रानीजी को पूछना कि उन्होंने कोख में किस चाँद या सितारे को धारण किया? इसमें संकोच जैसी कोई बात नहीं। यदि तुम नहीं पूछ सको तो रानीजी को यहाँ ले आना, मैं पूँछ लूँगी। यही तो बातें हैं पूछने की!''

वह आकबाक-सा मुँह फाड़े ओडन की आँखों में घूरने लगा। कुछ होश आते ही आश्चर्यचकित होकर पूछा, ''पाटन की रानियों को यहाँ लाऊँ, ओडो की बस्ती में... तेरी अक़्ल तो नहीं मारी गई... ?''

जसमा ने फिर ज़ोर से ठहाका लगाया। हँसते-हँसते ही कहा, ''मेरे ख़्याल से राजा तो रानियों से बढ़कर ही होता है। जब वह एक भिखारी के उनमान मुझ जैसी ओडन के पीछे-पीछे लार टपकता है, तब उसकी शान नहीं घटती? फिर रानियों के यहाँ आने पर उनका मान क्योंकर घटेगा? ऐसी दोगली मर्यादा से राजा का काम चल सकता है, हम ओडो का नहीं चलता! कल मेरी पीठ देखने से ही तुम बेहोश हो गए थे, तभी मुझे अनुमान हो गया कि पाटन के राजा को मेरे तलवे चाटने में कतई आनाकानी नहीं होगी!''

राजमद को झटका लगते ही उसके चेहरे पर खीज उभर आई। कड़कते सुर में पूछा, ''क्या कहा... मैं तेरे तलवे चाटूँगा... ?''

जसमा ने मुस्कराते हुए धीमे से कहा, ''मैं चाटने दूँ तब ना... !''

राजा अपने ही जाल में फँसता गया। हकलाते पूछा, ''क्या मैं इतना गया-गुज़रा हूँ कि तू मुझे अपने तलवे भी नहीं चाटने देगी? एक अदनी ओडन का इतना गुमान... ! याद रखना मैं तेरे तलवे चाट कर ही रहूँगा। सच्ची मुहब्बत गाल, होंठ, हथेली और तलवों में भेद नहीं करती! अभेद की पवित्र भावना ही प्यार की सही पहचान है... !''

जसमा ने ख़ुशी का अभिनय करते गम्भीर स्वर में पूछा, ''क्या सचमुच आप मुझसे सच्ची प्रीत करते हैं... ?''

''हाँ सच्ची प्रीत... सोलह आने सच्ची प्रीत... !''

होठों तक उछली मुस्कान को दबाने की व्यर्थ चेष्टा करते जसमा ने फिर पूछा, ''मुझसे पहले कितनी रानियों और बाँदियों से सोलह आने सच्ची प्रीत कर चुके हैं... ?''

राजा कुछ देर तक असमंजस में उलझा रहा। फिर यह सोच कर कि राजा पर कैसा अंकुश! गर्व के साथ कहने लगा, ''रानियाँ तो केवल तीन... पर बाँदियों का कोई हिसाब ही नहीं! राजा तो जितनी औरतों से प्रीत करे, उसकी उतनी ही शान बढ़ती है। उसकी सत्ता और शक्ति की यही पहचान है। वह तो भगवान का अवतार होता है! तेरा रूप देखकर मुझे पहली बार यह महसूस हुआ कि पहले वाली प्रीत सच्ची नहीं थी, प्रीत का वहम था, फक़त वहम... !''

राजा को आश्वस्त करने की मंशा से जसमा ने कहा, ''मानती हूँ, आपकी बात एकदम सही मानती हूँ। यदि मुझसे बेशी रूप वाली कोई अप्सरा मिल गई तो प्रीत जो आपकी खरी मोहब्बत है, वह वहम की धुन्ध मात्र रह जाएगी! और तुम्हें नई अप्सरा से सच्ची प्रीत हो जाएगी— सोलह आने सच्ची प्रीत... !''

राजा ने चुनौती के लहजे में कहा, ''ऐसी बात सपने में भी नहीं हो सकती... तुझसे अधिक रूपवती अप्सरा सारी दुनिया में नहीं मिल सकती, मेरे कहे पर विश्वास कर... ।''

''कैसे विश्वास करूँ... ?'' जसमा ने मजबूरी के आशय से जवाब दिया, ''यह दुनिया बहुत लम्बी-चौड़ी है। सभी सुन्दर औरतों की तलाश करने में हज़ार जन्म भी थोड़े हैं! मेरे हिसाब से तो पहुँच के परे की औरत सबसे ज़्यादा खूबसूरत होती है... !''

उस मनपसन्द बातचीत के बीच जसमा के पति ने दोनों की पीठ पीछे बाधा उपस्थित कर दी, ''बातचीत भले ही करो, पर काम में नुकसान नहीं होना चाहिए। अपने लिए काम ही राम है... !''

दोनों ने चौंक कर पीछे देखा। जसमा ने बेहिचक परिचय कराया— ''ये मेरे पति हैं, मेरे बच्चों के पिता! इनके अलावा दूसरा पुरुष मुझे नज़र नहीं आता... !''

पाटन के राजा ने नज़र भर कर उस बन्दे को निहारा— मनुष्य क्या था, प्रत्यक्ष अग्नि का ही वंशज! बजर-बट्ट भरपूर लम्बा-तगड़ा। साँवला रंग। सिर पर घुँघराला ताज, काला-स्याहा। लम्बी भुजाएँ। माँसपेशियाँ मछलियों-सी थिरकतीं। प्रीत-सनी मतवाली आँखें! तीखी नासिका। दमकती बत्तीसी। पतले होंठ। सुहानी सूरत।

मौन का बोझ असह्य लगा तो जसमा ने हाथ का इशारा करते कहा, ''ये पाटन के राजा हैं, मुझसे सच्ची प्रीत करते हैं... !''

''कोई बात नहीं, प्रीत करना बुरा नहीं है... !''

''लेकिन प्रीत के बदले आधा राज्य देना चाहते हैं।''

''यह बुरी बात है! प्रीत के बदले भाव-तनाव तो वेश्याओं से किया जाता है! प्रेम तो

बदले में निखालिस प्रेम की ही माँग करता है। तू इनसे प्रेम करे तो मुझे एतराज नहीं होना चाहिए! यह बहुत बेजा बात है...!''

''ऐसे लिजलिजे आदमी की प्रीत फकत रानियों और बाँदियों के भाग्य में ही लिखी होती है!'' फिर हँसते-हँसते कहने लगी, ''इस तरह के राजा या महाराजा से प्रीत करने की ख़ातिर मेरी गधी भी तीन बार सोचेगी... तीन बार! दुनिया की किसी औरत को मँगते वाली प्रीत सपने में भी नहीं सुहाती! प्रीत करे तो रिरियाने की दरकार ही कहाँ है! भले ही वह राजा हो चाहे अखूट मायापति। सच पूछिए तो मुझे बेचारी रानियों और बाँदियों पर तरस आता है कि उन्हें एक ढुलमुल राव-उमरावों से मोहब्बत करनी पड़ती है!''

पाटन के प्रतापी राजा की आज बेजा कलई उतरी! युद्ध में बिना लड़े ऐसी बुरी हार तो कभी नहीं हुई। यह कोई औरत है या कोई बला है! न इसके रूप की सीमा और इन इसकी निर्लज्जता का कोई दायरा! पति के रूबरू ऐसी गन्दी बात करने में इसे किंचित् भी संकोच नहीं हुआ? और न पति को ऐसी फूहड़ बात सुनकर गुस्सा ही आया! सचमुच इस दम्पती के सामने तो वह जूँ के समान है! आज पहली बार उसे अपना सही आकलन करने का अवसर मिला। जाने यह कैसी औरत है और यह कैसा आदमी है! कभी इस तरह के व्यक्तियों से साबका भी तो नहीं पड़ा। स्वार्थी तो बिल्कुल नहीं है! किसी भी तरह के लोभ-लालच से कोसों दूर! या तो राज-दरबार के लोग मनुष्य नहीं है या ओड जाति के ये दोनों लोग-लुगाई मनुष्य नहीं हैं! यह तो बानगी ही अलग है। यह तो किस्म ही दूसरी है! क्या करने से ये कब्जे में आ सकते हैं? सत्ता, माया और तलवार की शक्ति को तो ये शक्ति ही नहीं मानते! और भीतर की शक्ति का तो उसमें तनिक भी अंश नहीं है। वह तो हमेशा से ही बाहर की सम्पदा को ही सब कुछ मान रहा था। किसी मन्त्र या जादू-टोने से यह आन्तरिक शक्ति हाथ नहीं लगती। यह तो एक जन्मजात अन्दरूनी देन है। कुदरत के हाथों सौंपी हुई, जिसका इन्होंने अच्छी तरह पोषण किया है। ऐसी विरासत तो भाग्य से ही मिलती है। फलीभूत होती है। आया तो था राज्य सिंहासन के रुतबा जताने, पर जसमा और उसके पति ने तो उसे इल्ली से भी गया-गुजरा साबित कर दिया...। ऐसी बातें न तो उसने शास्त्रों में ही बाँची और न पण्डितों के मुँह से ही सुनीं। यह तो जैसे बादल-बरखा की वाणी हो!

जसमा ओडन पाज पर गुणतियाँ डाल कर वापस लौट रही थी, तब तक पाटन का राव खंगार वहीं खड़ा रहा, जैसे एक ठौर चिपक गया हो। न एक बाल भर आगे बढ़ा और न तिनका भर पीछे खिसका। उसकी ऐसी हालत देखते ही पहले तो हँसी का वातचक्र ही फूट पड़ना चाहता था, पर निरीह राजा के भीतर आलोड़न का आभास होने पर उसे थोड़ी-सी चिन्ता होने लगी। पास आते ही मीठे सुर में पूछा, ''ऐसी क्या बात हो गई? किसी गुत्थी में उलझे हो...?''

राव खंगार की सारी ख्याति डगमगाने लगी, फिर भी उसने झुकना नहीं चाहा। तनिक रुआब से जवाब दिया, ''बात तो हुई जैसी ही हुई है। पर अभी बताना नहीं चाहता। तीन बरस बाद सरोवर पूरा खुदने पर मन की बात दरसाने की योग्यता मुझमें हुई तो अवश्य बताऊँगा! मगर उससे पहले एक छोटी-सी बात अभी बताना चाहता हूँ, मान ले तो मैं जीवन भर तेरा एहसान मानूँगा। पहले वचन दे...!''

''पहले वचन कैसे दूँ...! कितनी बचकानी बात करते हैं? मानने जैसी बात होगी तो पल भर देरी नहीं करूँगी और न मानने जैसी होगी तो उम्र भर नहीं मानूँगी।''

''बात तो मानने जैसी ही है, पर कहने में संकोच होता है...।''

''ठहरो मत, चलते रहो... मेहनत और पसीने की नियामत ही मेरे लिए सब कुछ है! इसका नुकसान मैं झेल नहीं सकती। पूरा काम न करूँ तो मुझे नींद नहीं आती। निशंक बताओ...।''

''बिना बताए मुझे चैन नहीं पड़ेगा। मगर बताना आसान भी नहीं है! तू वचन देती तो मेरा हौसला बढ़ जाता। फिर भी बताना ज़रूरी है कि जबसे तुम लोग काम पर लगे हो, उस दिन से मैं मजदूरी तिगुनी करना चाहता हूँ। प्रत्यक्ष देखने पर ही मुझे पता चला कि तुम लोगों का काम बहुत कठिन और कल्याणकारी है!''

जसमा ने जो बात सोची, वही सामने आई! गहरा विचार करे जैसा मसला नहीं था। सहज भाव से बोली, ''यदि शुरुआत से ही यह मजदूरी खुल जाती तो किसे भी ऐतराज नहीं होता। लेकिन अब यह बात मानने पर व्यक्ति यही सोचेगा कि मेरी प्रीत की वज़ह से ही यह दक्षिणा मिली है। दूसरों की बात तो दरकिनार, मुझे और मेरे पति को भी यह इनायत मंजूर नहीं होगी। हम ओड हैं, बामन नहीं! बेबात की यह दक्षिणा हमें पचेगी नहीं! फिर भी इतनी जल्दबाजी करने की ज़रूरत ही क्या है? तीन बरस बाद जब यह तालाब हिलोरें लेने लगेगा तब अपने पसीने का उचित प्राप्य हम राजी-खुशी कबूल कर लेंगे। पर होना चाहिए प्रीत की बजाय मेहनत और पसीने का मोल! आपको मंजूर हो तो मैं अभी वचन देने को तैयार हूँ...।''

पाटन के राव खंगार को तत्काल कुछ उत्तर नहीं सूझा। तब जसमा ओडन का धीरज छूटने लगा। तकाजा करते बोली, ''कुछ जवाब तो दो... यों चुप रहने से क्या पता चलेगा!'' राजा का हृदय होंठों की राह प्रकट हुआ, ''आज दबाव देने का कुछ मतलब नहीं है। जिस शुभ-घड़ी में यह तालाब छिलाछिल भर उठेगा, तब तट पर खड़े रहकर जो भी जवाब सूझेगा, वही सच्चा जवाब होगा...।''

राव खंगार के ये खरे बोल सुनकर जसमा ओडन विचलित तो जरूर हुई, पर उसके कदम डगमगाये नहीं! उतावली दरसाते कहने लगी, ''चलते चलो, रुको मत...।''

उसने मुस्कराते हुए अदेर जवाब दिया, ''अब साथ चलने की शक्ति नहीं है। रुकना ही पड़ेगा। पर याद रखने की सारी बात यही है कि हम सात कदम से अधिक साथ चले हैं...।'' इतना मन्त्र सुनाकर पाटन का राव खंगाल तत्काल मुड़ कर तेज क़दमों से चलने लगा। जसमा ओडन थोड़ी देर ठहर कर तब देखती रही, जब तक वह ढलान से उतरकर अदीठ नहीं हो गया! उम्र के इस पड़ाव पर पहली बार वह तनिक ऊहापोह में उलझ गई थी। हाँ, कुछ ऊहापोह में...!

विपाशा

अखिल भारतीय कविता प्रतियोगिता – 2009

प्रथम पुरस्कार : 5000 रुपये, द्वितीय पुरस्कार : 4000 रुपये,

तृतीय पुरस्कार : 3000 रुपये, चार सांत्वना पुरस्कार : 2000 रुपये (प्रत्येक)

- आकार को देखते हुए तीन से पाँच कविताएँ कागज़ के एक तरफ स्पष्ट लिखित अथवा टंकित रूप में इस प्रतियोगिता हेतु आमंत्रित हैं।
- कविताओं की प्रति अपने पास सुरक्षित रखें, वापिस भेजने की व्यवस्था नहीं होगी। प्राप्ति सूचना के लिए पता लिखा पोस्ट कार्ड संलग्न करें।
- कविताओं की शीर्षक-सूची सहित कवि का नाम, पता व दूरभाष नम्बर अग्रेषण पत्र में रहेगा, कविताओं में नहीं।
- कविताएँ मौलिक, अप्रकाशित एवं अप्रसारित होनी चाहिए। इस आशय को स्वयं प्रमाणित करें।
- निर्णायकों का निर्णय अंतिम व सर्वमान्य होगा।
- पुरस्कृत कविताएँ विपाशा के विशेषांक में प्रकाशित की जाएँगी।
- ये कविताएँ 31 दिसम्बर, 2009 तक निम्नलिखित पते पर पहुँच जानी चाहिए।

संपादक – विपाशा

भाषा एवं संस्कृति विभाग,

39 – एस.डी.ए., शिमला – 171009

फोन : 0177 – 2626614 – 15

मोबाइल – 094180 – 86986

साहित्य, संस्कृति एवं कला को समर्पित विपाशा का

वार्षिक शुल्क : 60 रुपए, त्रैवार्षिक : 150 रुपए।

पूर्व प्रकाशित अखिल भारतीय **'कहानी प्रतियोगिता विशेषांक'**

से शुरु करके भी ग्राहक बन सकते हैं। पत्रिका विक्रेताओं को

25 प्रतिशत कमीशन देय। ग्राहकता शुल्क संपादक – विपाशा के

पते पर मनीआर्डर द्वारा ही भेजें।



ममता कालिया

निर्मोही

बाबा की पुरानी कोठी। लम्बे-लम्बे किवाड़ों वाला फाटक, जहाँ पहुँच रेल की पटरी ट्राम की पटरी जैसी चौड़ी हो जाती। जब बन्द होता, ताँगों की कतार लग जाती कोठी के सामने। रेल क्रासिंग के पार झाड़बिरिख और कुछ दूर पर सौंताल। कभी इसका नाम शिवताल रहा होगा पर सब उसे अब सौंताल कहते। उसके पार जंगम जंगल। बीच-बीच में जर्जर टूटी दीवारें। कहते हैं वहाँ राजा सूरसेन की कोठी थी कभी। घर की छत पर मोरों की आवाज़ उठती— मेहाओ मेहाओ। जब तक हम दौड़े-दौड़े छत पर पहुँचते मोर उड़ जाते। लम्बी उड़ान नहीं भरते। बस सौंताल के पास कभी कदम पर या कटहल पर बैठ जाते। सौंताल से हमारी छुट्टियों का गाथा-लोक बँधा हुआ था। शाम को ठंडी बयार चलती। दादी हाथ का पंखा रोक कर कहतीं— जे देखो सौंताल से आया सील समीरन। कभी आकाश में बड़ी देर से टिका एक बादल थोड़ी देर के लिए बरस जाता। दादी का आह्लाद देखने वाला होता, ''आज सिदौसी से मोर-पपीहा मल्हार गा रहे थे। मैं जानू मेह परेगौ।''



दादी दिन-रात सौंताल की रागिनी से बँधी रहतीं। बाज़ार में पहली-पहली कटहरी आयी, हरी कच्च। दादी कुँजड़िन से पूछें— सौंताल की है न।

कुँजड़िन को गहकी करनी है, सत्त कमाने नहीं निकली है।

''हम्बै मैया।''

''और जे कचनार, जे लाली सेम? सब सौंताल की है न!''

''हम्बै मैया। सारा झउआ उँहई भरायौ ए।''

दादी तरकारी लेकर आँगन में बैठ जातीं तख्त पर। एक एक तरकारी छाँटती-छीलतीं। उनकी पोथी का एक-एक पन्ना खुलता जाता।

''जे कचनार राजाजी ने लगवायौ हौ। उनकी रसोई में एक दिन पूरी ब्यालू कचनार की रँधे ही। कचनार की भुजिया, कचनार का रायता, कचनार का अचार, बाजरे की बेड़मी। एक दिन शकरकन्दी का राज रहतौ। शकरकन्दी का हलवा, शकरकन्दी की खीर, शकरकन्दी की चाट, शकरकन्दी की पूड़ियाँ।''

दादी की निगाह में यह राजाजी की वैभवगाथा थी, पर हम तीनों बहन इस विवरण से ज़रा भी प्रभावित न होतीं।

''बड़ा इकरंगा जीवन था राजाजी का। उनकी रानी तो ऊब से अधमुई हो जाती होंगी।'' हम कहते।

''जे लो छोरियों, तुम्हें सुख में दुख दिखे, दुख में सुख दिखे। कौन चाल मेल की हो तुम?''

रात को हम छत पर छिड़काव करतीं। एक-एक कर सबके बिस्तर बिछातीं। एक ऊँची पटिया पर सुराही रखतीं, सुराही पर गिलास मूँदा मारतीं। भग्गो बुआ काले उदले में आलू की रसेदार तरकारी ला कर रखती। दादी कठौते में परांठे। मैं कचनार के रायते पर भुना हुआ पिसा जीरा छिड़कती। कटोरियाँ गिनती, एक दो तीन चार पाँच छः सात आठ। धत्त तेरे की। कटोरी थाली तो बस छह ले जानी हैं। मम्मी पापा तो आये नहीं हैं। तभी तो रोज़ खाट पर पड़ जाने के बाद दादी जागती रहतीं। जब फ्रंटियर मेल का इंजन अपनी भट्टा जैसी एक आँख चमकाता, चिंघाड़ता गुज़र जाता, उसके दो-तीन मिनट बाद दादी जम्हाई लेतीं ''सो जा री छोरी! लगै आज भी विद्याभूसण नायं आयौ।''

बाबा अपनी खाट से कहते, ''ससुरे में छटाँक भर भी ममता नहीं है माई बाप की। दिल्लीवारौ बनौ बैठो ए।''

दादी बमक पड़तीं, ''जे बताओ, तुमने कभी नैक ममता करी लड़कन

की। कान खींचे, गेंदुआ दबाये, कभी तराजू दे मारें, कभी बाँट फेंके। कौन करम नायँ किये। मेरे दोनों लालाए देस निकारा दे डारौ।''

बाबा आग बबूला हो जाते, ''बिरचो समझै नायँ। तेरे छोरान पे बाबूसाहबी छाई रही। पैंट बुशकोट पहरें, गिटपिट बोलें, कुर्सी तोड़ें। गद्दी पे बैठ बूरा तोलने में उनकी मैया मरै थी। एक कबिताई करे लगौ, दूसरे को साहबियत चाट गयी।''

दादी बिखरा दूध समेटतीं, ''अच्छा बस करौ। तुम तो बर्र के छत्ते से छिड़ परौ हौ। नतनियाँ सुनेंगी, सरम करौ।''

''जब बेटे सगे नायँ निकरै तो नाती धेवते कौन किरिया करेंगे। कोऊ काम नायँ आयेगौ, समझी रहौ।''

बाबा तो पड़ी लगाकर सो जाते, दादी रात भर घुट-घुट कर उमड़तीं-घुमड़तीं।

''जेईमारे निकर गये दौऊ भइया। न कभी उन्हें दुलराया न पुचकारा। बस दुर-दुर करते रहे। ज़िन्दगी भर हर चीज़ बाँट तराजू से तोली। मैं कहूँ अजी प्यार का मोल और तोल बतावै, ऐसी तराग कहाँ पाओगे। पर नायँ, जे तो छोटे के कागज़ पत्तर कापी उठा-उठा के चूल्हे में झोंके। बड़े की किताबें रद्दीवाले को बेच आये। दो दिन रोटी नहीं खायी मेरे लालों ने।''

मैं दादी के पैर दबाती। उन्हें थपकती कि किसी तरह वे सो जाएँ। सुबह सौंताल की तरफ दादी के साथ जाती हुई कहती, ''दादी इस बार तुम हमारे साथ दिल्ली चलो।''

दादी निहाल हो जातीं। मुझे कमर से चिपका कर, मेरे बिखरे बालों पर हाथ फेरतीं ''बिल्कुल बाप पे गयौ है मेरौ लटूरबाबा। मैं जानू बिद्दाभूसण भी मुझे हुड़कता होगौ। जब बारहवीं में आगरे पढ़ै था, रात में मेरी पाटी पर आकर पूछै, जीजी च्यौं रो रई हों? मैं चुप।

''कान में दरद है?'' मैं चुप। ''दौत में दरद है?'' मैं चुप की चुप।

''पैर दबा दूँ? नई।''

''जीजी सुबह तुम्हें डाक्टर के लै चलूँगा, चुप हो जाओ।''

तभी तेरे बाबा अपने तखत पे से किल्ला उठें ''याके लिए तेरे पास डागडर की फीस है तो मेरे को दे दीजौ। कातिक में आढ़त भरनी है काम आएगी।'' बिद्दाभूसण में ऐसी खटास भर जाती अगले ही रोज वह अपना बिस्तरा गोल कर लेतौ।''

हमें बाबा से डर लगने लगता। शाम की सैर के बाद घर लौटने में दहशत होती। हम कहतीं ''दादी आज यहीं रह जायँ, घर ना जाएँ।''

दादी कहतीं, ''घर तो जानौ ही परैगो। अपने द्वार से हट के तो फूलमती भी नायँ जी, हम तुम कौन गिनत में।''

अन्नो कहती, ''देखो ये अर्जुन और कदम के नीचे कैसी पत्तों की छैयाँ है, पीने को बावड़ी का मीठा पानी और खाने को झरबेरी के लाल लाल बेर।''

दादी तड़प जातीं, ''ऐ री अन्नो! अब की तो कह दिया, फिर कभी न कहियो जे बात।''

''क्यों दादी?'' मैं ज़िद करती।

''तुझे नायँ पतौ! बहू ने नायँ सुनायौ वा किस्सौ?''

हम वापसी के लिए चल पड़ते। दादी अपनी एक टाँग पर उचक-उचक कर चलतीं। और किस्सा भी उचक-उचक कर आगे बढ़ता।

''एक थी फूलमती। बाके ये बड़ी-बड़ी आँखें, कोई कहे मिरगनैनी कोई कहे डाबरनैनी। एक बाकी ननद लब्बावती। जेई सौंताल से लगी हवेली राजा सूरसेन की। राजाजी के सन्तरी-मन्तरी ने भतेरा समझायो 'या बावड़ी ठीक नई, नेक परे नींव धरो' पर राजाजी अड़े सो अड़े रहे मैं तो यईं बनवाऊँगौ महल। एम्मे का बुरौ है।''

''राजाजी पीपल के पेड़ पर भूत-पिसाच और परेत तीनों का बसेरौ है। जैसे भी भीत उठवाओगे, पीपल की छैयाँ जरूर छू जाएगी, जनै उगती, जनै डूबती।'' सन्तरी बोले।

बस इत्ती सी बात।

ये लो। राजाजी ने पीपल समूल उखड़वा दियौ।

राजा सूरसेन को अपनी रानी से बड़ी परेम है। रानी फूलमती बोली, 'राजाजी ऐसौ बाग बनाओ कि मैं पूरब करवट लूँ तो मौलसिरी महके, पच्छिम घूम जाऊँ तो बेला चमेली।' राजा ने ऐसौ ही कर्‌यौ। हैरानी देखो बेलों की जड़ सौंताल की मिट्टी में और फूल खिलें रानी के चौबारे।

''राजकुमारी लब्बावती का विवाह हाथरस के कुँअर वृषभानलला के पोते से हो गया। अभी गौना नहीं हुआ था। नन्द-भाभी घर में जोड़े से बोलें, जोड़े से डोलें, सास बलैयाँ लेती, मेरी बहू-बेटी दोनों सुमतिया।''

''पर तुम जानो जहाँ सौ सुख हों, वहाँ एक दुख आके कोने में दुबक कर बैठ जाए तो सारे सुख नास हो जायँ। सोई हुआ राजा की हवेली में।''

''कैसे?'' अन्नो ने कहा।

''अरे विवाह को एक साल बीता, दो साल बीते, साल पे साल बीते, फूलमती की कोख हरी न भई।''

''सास लाख झाड़-फूँक करावै, राजाजी ओझा-बैद बुलावैं, नन्द किशन कन्हाई की बाललीला सुनावै पर कोई उपाय नायँ फलै।''

''एक दिन लब्बावती को सुपनौ आयौ कि तेरे भैया ने पीपर समूल उपारौ, येई मारे महल अटारी निचाट परै हैं। एकास्सी के दिन सौंताल के किनारे फिर से तेरी भाभी पीपर लगाएँ, रोज ताल में नहाएँ, पीपर पूजै अन जल लें तब जाके जे कलंक मिटै। फिर तू नौ महीनन में जौले-जौले दो भतीजे खिलइयौ।''

''लब्बावती ने सुबह सबको सपना बखानौ। अगले ही दिन एकास्सी थी। सो सात सुहागनें पूजा की थाली सजाए, सोलहों सिंगार किए, सोने का कूजा डाबरनैनी फूलमती के सिर पर धरा कर पीपल रोपने चलीं। महल की मालिन का इकलौता बेटा सबके आगे-आगे रास्ता सुझाये। बाके हाथ में फड़वा खुरपी।

''राजा महलन में से देखते रहे। रानी फूलमती ने लोट-लोटकर पूजा की। आपै बाप बावड़ी में उतर सोने का कूजा भरयौ और पीपर-मूर पे जल चढ़ायौ। फिर सातों सुहागनों ने असीसें उचारीं। सब की सब राजी ख़ुशी घर लौटीं।

''रोज सबेरे
पंछी-पंखेरू के
ज ग त े -



मुसकते फूलमती, लब्बावती, दोनों जाग जातीं और सौंताल नहाने, पीपर पूजने निकल पड़तीं। कभी राजाजी जाग जाते, कभी करवट बदल कर सो जाते।

''फूलमती भायली ननद से कहती, 'तेरे भइया तो पलिका से लगते ही सोय जायँ। इनकी ऐसी नींद तो न कभी देखी न सुनीं।'

''लब्बावती कहतीं, 'मेरे भइया की नींद को नज़र न लगा भाभी! जे भी तो सोच जित्ती देर जागेंगे तुम्हें भी जगाएँगे कि नायँ।'

''डाबरनैनी फूलमती उलटी साँस भरती, 'हम तो सारी रात जगें, भला हमें जगाबे बारो कौन?'

''लब्बावती को काटो तो ख़ून नहीं। बोली— 'क्या बात है?'

फूलमती बोली— अभी तुम गौनियाई नायँ, तुम्हें का बतायँ का सुनाएँ। तोरे भैया तो जाने कौन सी पाटी पढ़े हैं कि मन लेहु पे देहु छटाँक नहीं। फिर फूलमती ने बात पलटी— 'तुम्हारी ससुराल से सन्देसो आया है अबकी पूरनमासी को लिवाने आयेंगे।'

''लब्बावती ने भाभी की गटई से झूल कर लाड़ लड़ाया— 'कह दो बिन से, पहले हम अपने भतीजे की काजल लगाई का नेग तो ले लें तब गौना जाएँ।'

''माँ ने सुना तो बरज दिया, 'समधी जमाई राजी रहें। इस बार गौना कर दें, फिर तू सौ बार अइयौ, सौ बार जइयौ, घर दुआर तेरौ।' बड़े सरंजाम से लब्बावती की बिदाई भई। गौने में माँ और भैया ने इत्तौ दियौ कि समधी की दस गाड़ी और राजाजी की दस गाड़ी ठसाठस भर गयीं। डोली में बैठते लब्बावती ने भाभी को घपची में भर लीनो— 'भाभी मेरी, मेरे भैया की पत रखना। पीपल पूजा, बावड़ी नहान का नेम निभाना। मोय जल्दी बुलौआ भेजना।'

''फूलमती ननद के जाने से उदास भई। राजाजी ने कठपुतली का तमाशा करायौ, नन्दगाँव का मेला दिखायौ पर रानी का जी भारी सो भारी।

''सुबह-सबेरे अभी भी वह रोज सौंताल नहाये, पीपल पूजे तब जाकर अनजल छुए। अब इस काम में संगी साथी कोई न रह्यौ। एक दिना रानी भोर होते उठी। एक हाथ पे धोती जम्पर धर्यो दूसरे पे पूजा की थाली और चल दी नहाने।

''उस दिन गर्मी कछू ज़्यादा रही कि फूलमती की अग्नि। गले-गले पानी में फूलमती ख़ूब नहायी। अबेरी होते देख फूलमती पानी से निकरी। अभी वह कपड़े बदल ही रही थी कि बाकी नज़र झरबेरी पे परी। गर्मी में झरबेरी लाल बेरों से बौरानी रही।''

इत्ते में घर आ गया। अन्नो बोली, ''दादी तुम्हारी कहानी बहुत लम्बी होती है।''

दादी अपनी छोटी टाँग पर हाथ फेरते हुए बोलीं, ''जे कहानी नहीं जिनगानी है लाली! देर तो लगैगी ही।''

दादी घर पहुँच कर काम-काज में लग गयी। मुझे लगता रहा, लो डाबरनैनी को दादी ने सौंताल पर गीला नंगा छोड़ दिया, जाने वह कब घर पहुँची। पर दादी को कहाँ वक़्त। कभी बटलोई चूल्हे पर धरें, कभी उतारें। कभी रोटी तवे पर, कभी थाली में। हम तीनों उनकी भरसक मदद करतीं पर चौके में दादी के बिना कुछ होय ही ना।

दिन में दो बार मैंने और अन्नो ने याद दिलायी, ''दादी कहानी?''

दादी ने बरज दिया, ''ना दिन में ना सुनी जाती कहानी, मामा गैल भूल जायेगो।''

मैं चुप। मेरे चार मामा थे और अन्नो-शन्नो के तीन। सात लोग रास्ता भूल जाएँ, यह कैसे हो सकता है।

रात की ब्यालू निपटते ही हम दादी को घेर कर बैठ गये। अन्नो उनकी टाँगें दबाने लगी। मैंने सिर दबाना शुरू किया। ''दादी फिर क्या हुआ?''

''अज्जे राम रे, मैं तो बहौत थक गयी। देखो हुंकारा भरती रहना। कहीं भटक-भूल जाऊँ तो टोक देना नहीं फूलमती को न्याव नायँ मिलैगौ।

''हाँ तो फिर क्या था। फूलमती ने न आगा सोचा न पीछा, बस बेर तोड़ने ठाड़ी ह्वै गयी। उचक-उचक कर बेर तोड़े और पल्ले में डारै। वहीं थोड़ी दूर पर मालिन का लड़का पूजा के लिए फूल तोड़ रह्यौ थौ। तभी रानी की उंगरी मा बेरी का काँटा चुभ गयौ। फूलमती तो फूलमती ही, बाने काँटा कब देखौ। उंगरी में ऐसी पीर भई कि आहें भरती वह दोहरी हो गयी। मालिन के छोरे कन्हाई ने रानीजी की आह सुनी तो दौड़ा आयौ।

''काँटा झाड़ी से टूट कर उंगरी की पोर में धँस गयौ। मालिन का छोरा काँटे से काँटा निकारनौ जानतौ रहौ। सो बाने झरबेरी से एक और काँटा तोड़ रानी की उँगरी कुरेद काढ़ दियौ। काँटे के कढ़ते ही लोहू की एक बूँद पोर पे छलछलायी। कन्हाई ने झट से झुक कर रानी की उँगरी अपने मुँह में दाब ली और चूस-चूस कर उनकी सारी पीर पी गयौ। छोरे की जीभ का भभकारा ऐसा कि रानी पसीने-पसीने हो गई।

''उधर राजा सूरसेन की आँख वा दिना जल्दी खुल गयी। सेज पे हाथ बढ़ाया तो सेज खाली। थोड़ी देर राजाजी अलसाते, अँगड़ाई लेते रहे। उन्हें लगा आज रानी को नहाने पूजने में बड़ी अबेर है रही है। राजाजी ने वातायन खोला। सौंताल में न रानी न वाकी छाया। पीपल पे पूजा अर्चन का कोई निशान नहीं। रानी गईं तो कहाँ गईं। सूरसेन अल्ली पार देखें, पल्ली पार देखें। तभी उन्हें सौंताल के पल्ली पार झरबेरी के नीचे रानी फूलमती और मालिन का छोरा कन्हाई दिखे। फूलमती की उँगरी कन्हाई के मुँह में परी ही और रानी फूलों की डाली-सी लचकती वाके ऊपर झुकी खड़ी।

''राजा सूरसेन को काटो तो ख़ून नहीं! थोड़ी देर में सुध-बुध लौटी तो मार गुस्से के अपनी तलवार उठायी। पर जे का! तलवार मियान में परे-परे इत्ती जंग खा गयी कि बामें ते निकरेंई नायँ। राजा ने भतेरौ ज़ोर लगायौ, तलवार ज्यों की त्यों। उधर डाबरनैनी फूलमती की उँगरी की पोर मालिन के छोरे के मुँह में परी सो परी।

''राजा, परजा की तरह अपनी रानी को घसीट कर महलन में लावै तौ कैसे लावै, बस खड़ा-खड़ा किल्लावै। उसने अपने सारे ताबेदारों को फरमान सुनायौ कि महल के सारे दुआर मूँद लो, रानी घुसने न पाय। कोई उदूली करै तो सिर कटाय।

''रानी फूलमती नित्त की भाँत खम्म-खम्म जीना चढ़ के रनिवास तक आई। जे का। बारह हाथ ऊँचा किवार अन्दर से बन्द। अर्गला चढ़ी भई। रानी दूसरे किवार पे गयी। वह भी बन्द। इस तरह डाबरनैनी ने एक-एक कर सातों किवार खड़काये पर वहाँ कोई हो तो बोले।

''सूरसेन की माता ने पूछो, 'क्यों लाला आज बहू पे रिसाने च्यों हो'?''

''सूरसेन मुँह फेर कर बोले, 'माँ तुम्हारी बहू कुलच्छनी निकरी। अब या अटा पे मैं रहूँगो या वो'।''

''माँ ने माली से पूछा, मालिन से पूछा, महाराज से पूछा, महाराजिन से पूछा, चौकीदार से पूछा, चोबदार से पूछा। सबका बस एकैई जवाब राजाजी का हुकुम मिला है जो दरवज्जा खोले तो सिर कटाय।

''सात दिना रानी फूलमती अपना सिर सातों दरब्बजों पे पटकती रही। माथा फूट कर ख़ून खच्चर हो गयौ। सूरसेन नायँ पसीजौ...।''

अन्नो ने भड़क कर कहा, ''ये क्या दादी, तुम्हारी कहानी में औरत हमेशा हारती है, ऐसे थोड़ी होती है कहानी।''

दादी ने कहा, ''अरे जे कहानी हम तुम नईं बना रहे, जे तो सुनी भई सच्ची कहानी है।''

मैंने कहा, ''आगे की कहानी मैं बोलूँ दादी?''

''नईं तेरे से अच्छी तो अन्नो बोल लेवे। चल अन्नो तू पूरी कर। मेरो तो म्हौंड़ो सूख गयो। एक पान का बीरा लगा दे।''

मैं भागमभाग दादी के लिए पान का बीड़ा लगा लायी। उस वक़्त अन्नो बिस्तर पर अपने दोनों हाथ सिर के पीछे कैंची बना कर लेटी हुई थी और कहानी चल रही थी।

''दादी फिर यह हुआ कि जैसे ही डाबरनैनी फूलमती को घर-दुआर पे दुतकार पड़ी, वह खम्म-खम्म जीना उतर गयी। सौंताल पर कन्हाई उसकी राह देख रहा था। उसने रानी का हाथ पकड़ा और अपनी कुटिया में ले गया। सात दिन में रानी अच्छी बिच्छी हो गयी। मालिन ने दोनों की पिरितिया देखी तो बोली, 'रे कन्हाई, राधा भी किशन से बड़ी ही, जे तेरी राधारानी ही दीखै।' डाबरनैनी वहीं रहने लगी। रोज सुबह मालिन और कन्हाई फूल तोड़ कर लाते, फूलमती उनकी मालाएँ बनाती।

''इधर राजा सूरसेन उदास रहने लगे। माँ ने लब्बावती को बुला भेजा। लब्बावती ने भाई से पूछा, 'प्यारे भैया, मेरी राजरानी भाभी में कौन खोट देखा जो उसे वनवास भेज दिया।'

''सूरसेन ने कहा, 'तेरी भौजाई हरजाई निकली। वह मालिन के बेटे के साथ खड़ी थी। दोनों हँस रहे थे।'

''बहन बोली, 'ये तो अनर्थ हुआ। अरे हँसना तो उसका स्वभाव था। अरे सूरज का उगना, नदिया का बहना और चिड़िया का चूँ चूँ करना कभी किसी ने रोका है?'

''राजा सूरसेन को लगा उन्होंने अपनी पत्नी को ज़्यादा ही सजा दे दी।

''सात दिन राजा ने उधेड़बुन में बिता दिये। आठवें दिन लब्बावती की विदा थी। लब्बावती जाते-जाते बोली, 'भैया, अगली बार मैं हँसते बोलते घर में जाऊँ, भाभी को ले कर आओ।'

''कई साल बीत गये। राजा रोज सोचते आज जाऊँ कल जाऊँ। आख़िर एक दिन वे घोड़े पे सवार होकर निकले। साथ में कारिन्दे, मन्तरी और सन्तरी। जंगम जंगल में चलते-चलते राजाजी का गला चटक गया। घोड़ा अलग पियासा। एक जगह पेड़ों की छैयाँ और बावड़ी दिखी। राजा ने वहीं विश्राम की सोची। बावड़ी से ओक में लेके ज्योंही राजा पानी पीने झुके, किसी ने ऐसा तीर चलाया कि राजा के कान के पास से सन्नाता हुआ निकल गया। मन्तरी-सन्तरी चौकन्ने हो गये। तभी सब ने देखा, थोड़ी दूर पर एक छोटा-सा लड़का, साच्छात कन्हैया बना, पीताम्बर पहने खड़ा है और दनादन तीर चला रहा है। राजा कच्ची डोर में खिंचे उसके पास पहुँचे। छोरा क्या बूझे राजा-वजीर। वह चुपचाप अपने काम में लगा रहा।

''राजा ने बेबस मोह से पूछा, 'तुम्हारा गाम क्या है, तुम्हारा नाम क्या है?' नन्हें बनवारी ने आधी नज़र राजा के लाव-लश्कर पे डाली और कुटिया की तरफ जाते-जाते पुकारा 'मैया मोरी जे लोगन से बचइयो री।' लरिका की मैया दौड़ी-दौड़ी आयी। बिना किनारे की रंगीन मोटी धोती, मोटा ढीला जम्पर, नंगे पाँव, पर लगती थी एकदम राजरानी। उसके मुख पर सात रंग झिलमिल-झिलमिल नाचें।

''राजा ने ध्यान से देखा। अरे ये तो उसकी डाबरनैनी फूलमती थी।

''सूरसेन को अपनी सारी मान मर्यादा बिसर गयी। सबके सामने बोला, 'परानपियारी तुम यहाँ कैसे?'

''फूलमती ने एक हाथ लम्बा घूँघट काढ़ा और पीठ फेर कर खड़ी हो गयी।

''तब तक बनवारी का बाप कन्हाई आ गया। राजा ने कारिन्दों से कहा, 'पकड़ लो इसे, जाने न पाये।'

''कन्हाई बोला, 'जाओ राजाजी तुम क्या प्रीत निभाओगे। महलन में बैठ के राज करो।'

''मन्तरी बोले, 'बावला है, राजा की रानी को कौन सुख देगा। क्या खिलाएगा, क्या पिलाएगा।?'

''कन्हाई ने छाती ठोंक कर कहा, 'पिरितिया खवाऊँगौ, पिरितिया पिलाऊँगौ। तुमने तो जाके पिरान निकारै, मैंने जामें वापस जान डारी। तो जे हुई मेरी परानपियारी।'

''और जे चिरौंटा?'' मन्तरी ने पूछा।

''जे हमारी डाली का फूल हैं।''

''राजा के कलेजे में आग लगी। मालिन के बेटे की यह मजाल कि उसी की रानी को अपनी पत्नी बनाया वह भी डंके की चोट पर। उसने घुड़सवार सिपहिये दौड़ा दिये।

दादी की ऊँघ हवा हो गयी, ''अन्नो तू ऐंचातानी बहौत कर रई ए। आगे मैं सुनाऊँ।''

अन्नो की समझ में नहीं आ रहा था कि कहानी को कैसे समेटे। उसने हारी मान ली, ''अच्छा दादी तुम्हीं करो खतम।''

दादी बोली, ''हाँ तो कन्हाई और फूलमती बिसात भर लड़े। नन्हा बनवारी भी तान-तान कर तीर चलायौ। पर तलवारों के आगे तीर और डंडा का चीज़। सौंताल के पल्ली पार की धरती लाल चक्क हो गयी। थोड़ी देर में राजा के सिपहिया तलवारों की नोक पे तीन सिर उठाये लौट आये।''

मैंने कहा, ''दादी तीनों मर गये?''

दादी ने उसाँस भरी, ''हम्बै लाली। तीनोंई ने बीरगति पायी। येईमारे आज तक सौंताल की धरती लाल दीखै। वहाँ पे सेम उगाओ तो हरी नहीं लाल ऊगे। अनार उगाओ तो कन्धारी को मात देवै। और तो और वहाँ के पंछी पखेरू के गेटुए पे भी लाल धारी जरूर होवै। ना रानी घर-दुआर छोड़ती ना बाकी ऐसी गत्त होती।''

अन्नो और मैं एक साथ बोले, ''गलत, एकदम गलत। निर्मोही के साथ उमर काटने से अच्छा था घर छोड़ना। रानी ने बिल्कुल ठीक किया।''

ए-1/73
लाजपत नगर-1
नयी दिल्ली - 110 024

पंकज सुबीर

महुआ घटवारिन



''सर रेणु जी ने महुआ घटवारिन की पूरी कहानी नहीं लिखी, उसका अन्त क्या हुआ ये पता नहीं चलता।'' कुसुम ने प्रोफेसर आनन्द कान्त शर्मा की ओर देखते हुए पूछा।

''पूरी तो है, मेरे विचार में तो कहानी पूरी है, हाँ ज़्यादा विस्तृत इसलिए नही, क्योंकि मूल कथा तो हीरामन और उसकी तीन क़समों की है, महुआ घटवारिन की कहानी तो लोककथा के रूप में उसमें प्रवेश करती है।'' प्रोफेसर आनन्द ने अपना चश्मा ठीक करते हुए कहा।

''नहीं सर, मेरे विचार में महुआ घटवारिन की कहानी में और भी कुछ हुआ होगा, इतनी छोटी-सी कहानी भला लोकगाथा कैसे बन सकती है!'' कुसुम ने दृढ़तापूर्वक कहा। कुसुम प्रोफेसर आनन्द कान्त शर्मा के मार्गदर्शन में फणीश्वर नाथ रेणु पर शोध कार्य कर रही है। उसने हिन्दी साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की है, तथा संयोगवश प्रोफेसर आनन्द कान्त शर्मा ने ही कालेज में भी उसे हिन्दी साहित्य पढ़ाया है, इसलिए वह उनसे काफी खुलकर अपने प्रश्न कर लेती है, उनके सामने विचार रख लेती है। शोध विद्यार्थी तथा गाइड के बीच जो औपचारिकताओं का कुहासा रहता है, वह उनके बीच नहीं है।

प्रोफेसर आनन्द कान्त शर्मा उम्र के पचपन वर्ष पूरे कर चुके हैं, वे न केवल हिन्दी विषय के प्रोफेसर हैं, बल्कि हिन्दी साहित्य में भी उनका नाम काफी श्रद्धा के साथ लिया जाता है, एक अच्छे कवि के रूप में भी और एक अच्छे कहानीकार के रूप में भी। पूरा व्यक्तित्व अत्यन्त गरिमामय एवं प्रभावशाली है, खादी का कुर्ता पायजामा, जैकेट, चेहरे पर किंचित मोटे ऐनक का चश्मा, घनी रोबदार मूँछें, और करीने से जमे आधे सफ़ेद आधे काले बाल, और इन सबके साथ बोलने का एक अत्यन्त प्रभावशाली अन्दाज़ जिसके चलते उनसे मिलने वाला उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता। एक हिन्दी साहित्य के प्रोफेसर की, एक हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार की जैसी छवि होनी चाहिए, उसका हुबहू प्रतिमान हैं, प्रोफेसर आनन्द कान्त शर्मा।

''तुम्हें रेणु पर पी-एच.डी करनी है, या महुआ घटवारिन पर? महुआ घटवारिन की कथा 'मारे गए गुलफाम' की एक अन्तर्कथा है, और अन्तर्कथाएँ ऐसी ही होती हैं। ये भी हो सकता है, महुआ घटवारिन की कोई लोककथा हो ही नहीं।'' प्रोफेसर आनन्द ने कुछ झिड़की लगाने वाले अन्दाज़ में कहा।

''नहीं सर, ये तो हो नहीं हो सकता, महुआ घटवारिन की तो पूरी की पूरी कथा होगी, बल्कि मैं तो जहाँ पर रेणु जी ने उसकी कहानी को अधूरा सा छोड़ा है, उसके बाद की पूरी कथा को कल्पित कर सकती हूँ।'' हाथ में पकड़ी पुस्तक बन्द करते हुए कुछ और दृढ़ स्वर में कहा कुसुम ने।

''अच्छा...?'' उत्सुकतापूर्वक तथा प्रश्नात्मक लहजे में कुसुम की ओर गहरी दृष्टि से देखते हुए कहा प्रोफेसर आनन्द ने, ''तो बताओ फिर क्या हुआ होगा तुम्हारे हिसाब से महुआ घटवारिन के साथ, उसके बाद?''

''देखिए सर, महुआ घटवारिन की कथा जिस प्रकार चली है उसको पढ़ने के बाद तथा यह जानने के बाद कि आज भी महुआ घटवारिन के गीत गाए जाते हैं, मैं कम से कम यह तो कह ही सकती हूँ, कि महुआ घटवारिन की कथा का अन्त कोई सुखद नहीं हुआ होगा।'' कुसुम ने कुछ उदासी भरे स्वर में अपनी बात समाप्त की।

''तो तुम्हारे विचार में किस प्रकार अन्त हुआ होगा उस कहानी का?'' प्रोफेसर आनन्द ने धीरे से मुस्कराते हुए प्रश्न किया।

कुसुम कुछ देर तक मौन रही, शून्य में ताकती रही। फिर बोली, ''सर, महुआ घटवारिन की जो कथा है उसमें महुआ, जो नदी किनारे की घटवारिन है, वह अपनी सौतेली माँ के द्वारा दी जा रहीं यातनाएँ भोगती-भोगती जवान होती है, और जब वह जवान होती है, तो सौतेली माँ उसे किसी सौदागर के हाथों बेच देती है। सौदागर उसे जिस नाव में बैठाकर ले जा रहा है, महुआ उससे कूदकर नदी में तैरती हुई सौदागर के चंगुल से भागने का प्रयास करती है, जिसमें उसे कोई मुश्किल भी नहीं होती है, क्योंकि वह एक घटवारिन है, तथा घाट के पत्थरों और नदी की लहरों पर ही रह कर बड़ी हुई है। महुआ के पीछे ही सौदागर का वह सेवक भी कूद पड़ता है जो इस बीच महुआ से प्रेम करने लग गया है। दोनों तैरते जा रहे हैं और हीरामन वहीं कहानी को समाप्त कर देता है।'' लम्बी बात कह कर साँस लेने के लिए रुकी कुसुम।

प्रोफेसर आनन्द की मुस्कराहट कुछ गहरी हो गई। बोले, ''हूँ ठीक है। इसके बाद क्या हुआ?''

''उसके बाद...'' कुसुम ने बात फिर शुरू की, ''उसके बाद यह हुआ होगा कि महुआ तो चूँकि घटवारिन है, अत: वह तो नदी में धार के विपरीत भी तैरती रही लेकिन वह सौदागर का नौकर लड़का डूबने लगा। उसे डूबता देख महुआ उसे भी बचाकर किनारे पर ले आई, जहाँ वे दोनों महुआ की सौतेली माँ और सौदागर से छिप कर साथ रहने लगे।'' कुसुम कुछ देर के लिए रुकी।

''और फिर वे दोनों सुखमय जीवन व्यतीत करते रहे।'' हँसते हुए कहा प्रोफेसर आनन्द ने। ''लेकिन ये तो फ़िल्मी सुखान्त है, तुम तो दुखान्त कह रही थी।''

''कहानी यहाँ समाप्त नहीं होती है सर।'' कुसुम ने विरोध के स्वर में कहा, ''बल्कि कहानी तो यहाँ शुरू होती है। दोनों साथ-साथ जीवन व्यतीत करते हैं कि एक दिन वह लड़का महुआ को काफी पैसा कमा कर लाने का वादा करके किसी नौटंकी कम्पनी के साथ चला जाता है, और फिर कभी नहीं लौटता। महुआ उसकी प्रतीक्षा में नदी के घाटों पर बावरी होकर दिन-दिन भर बैठी रहती है। पागलों की तरह दौड़-दौड़कर हर आने वाले से उस लड़के का पता पूछती है, लेकिन कोई कुछ नहीं बताता। ऐसे ही घाटों पर प्रतीक्षा में दौड़-दौड़ कर घाटों की पुत्री महुआ घटवारिन एक दिन उन्हीं घाटों पर गिर जाती है— थककर, टूटकर और मरकर। हवा में गूँजते रह जाते हैं केवल उसके गीत, जो आज भी रात को लोगों को घाट पर सुनाई दे जाते हैं।'' कुसुम की आवाज़ में पीड़ा के कारण कँप कँपाहट आ गई। उसने देखा कि प्रोफेसर आनन्द कान्त के चेहरे के भाव कुछ बिगड़ गये हैं, तथा उनके माथे पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आई हैं। कुसुम को अपनी ओर ग़ौर से देखता पाकर प्रोफेसर आनन्द बोले, ''ऐसा तुम कैसे कह सकती हो? यह भी तो हो सकता है, कि वह लड़का लौट आया हो, या यह भी हो सकता है कि नौटंकी कम्पनी के साथ वह लड़का अकेला न गया हो, वो दोनों ही गए हों।'' कुछ अटकते-अटकते कहा प्रोफेसर आनन्द ने।

''नहीं सर।'' प्रोफेसर आनन्द की बात का विरोध करते हुए कुसुम ने कहा, ''ऐसा नहीं हो सकता। महुआ तो घाटों की पुत्री है, अत: वो तो घाट छोड़ कर जा ही नहीं सकती। और जहाँ तक उस लड़के का प्रश्न है, वह इसलिए नहीं लौटेगा क्योंकि वह पुरुष है, छल देना तो पुरुषों के स्वभाव में ही होता है। इस छल को वह एक सुन्दर नाम देता है— 'प्रेम', लेकिन वस्तुत: तो वह स्त्री को छलता ही है और यह भी सत्य है, कि एक बार पुरुष को उड़ने के लिए विस्तृत आकाश मिल जाए तो वह फिर भूल जाता है, कि कहीं कोई है, जो उसके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है।'' कुसुम ने अपनी बात ख़त्म करके देखा कि प्रोफेसर आनन्द के चेहरे के भाव काफी बिगड़ गये हैं, वे रूमाल निकाल कर माथे पर छलक आया पसीना पोंछने लगे।

''क्या बात है, सर! आपकी तबीयत तो ठीक है?'' कुसुम ने चिन्तित स्वर में पूछा।

''हाँ कुछ असहज लग रहा है, अब मैं आराम करूँगा।'' प्रोफेसर आनन्द ने कहा।

''ठीक है सर, अब मैं चलती हूँ, आप आराम कीजिए।'' कुसुम ने अपनी किताबें और काग़ज़ात समेटते हुए कहा। किताबें वग़ैरह समेटने के बाद कुसुम चली गई। प्रोफेसर आनन्द अकेले रह गये। रीडिंग टेबल से उठ कर वे खिड़की के पास रखी आराम कुर्सी पर आकर बैठ गए। उनके कानों में कुसुम द्वारा कहे गए शब्द गूँज रहे थे, ''वह फिर भूल जाता है कि कहीं कोई है, जो उसकी प्रतीक्षा कर रहा है।'' उनके दृश्य पटल पर उभरने लगा नर्मदा नदी के किनारे बसा वह छोटा सा क़स्बा जिसे लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व वे इस तरह छोड़कर आ गये कि फिर लौट कर देखा भी नहीं कि वह क़स्बा किस हालत में है।

प्रोफेसर आनन्द के सामने पूरा जीवन वृत्त स्मृतिकोश से निकल कर आ गया। वह जीवन वृत्त, जिसके बारे में उन्होंने कभी नहीं सोचा। नर्मदा के किनारे बसे उस छोटे से क़स्बे शाहगंज के विद्यालय में उनके पिता हिन्दी के अध्यापक थे। उसी छोटे क़स्बे से इस महानगर इन्दौर तक की यात्रा वास्तव में एक ठहरे हुए झील के पानी की गाथा है। इस गाथा का सबसे विचारणीय पहलू यह है कि यह उस जीवन के झील हो जाने की कथा है, जो पला बढ़ा उस चिर कुँवारी नर्मदा नदी के किनारे, जिसे कोई नहीं बाँध पाया, जिसके पानी ने कभी थमना नहीं सीखा। वह वेगवती नदी जिसने कहा कि जो मुझे एक रात में बाँध देगा तो मैं उसी की हो जाऊँगी अन्यथा चिरकुँवारी ही रहूँगी। ऐसी सलिला के तट पर पला-बढ़ा जीवन स्वयं तीस वर्षों से झील के पानी की तरह ठहर कर एक ही स्थान पर खड़ा है, विश्वास करना ज़रा मुश्किल है।

''वह फिर भूल जाता है कि कहीं कोई है, जो उसके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है।'' एक ही वाक्य रह-रहकर सदियों से सूने और वीरान घर के दरवाज़े पर दस्तक की तरह गूँज रहा है। प्रोफेसर आनन्द ने आराम कुर्सी की पुश्त से सर टिकाया और अपना पूरा शरीर ढीला छोड़ दिया, मानो युगों की थकान के बारे में अभी-अभी पता चला है, कि अरे कब से थका हुआ हूँ मैं!

शाहगंज के जिस विद्यालय में उनके पिता

'ईस्ट इंडिया कम्पनी' वाले पंकज की कई कहानियाँ उनके इस संग्रह में पहले ही पढ़ चुका था, 'महुआ घटवारिन' कहानी को पढ़ने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सका। पंकज सुबीर ने इस कहानी को वहीं से उठाया है, जहाँ रेणु ने छोड़ा था। लेकिन पंकज के कहानी कौशल का यह कमाल है कि पाठकों में रेणु द्वारा इस लोकप्रिय लोकगाथा के प्रति जैसी उत्सुकता छोड़ दी गयी थी उसे उन्होंने आज के समकालीन परिवेश, परिस्थिति और बेबसी के द्वन्द्व के बीच से उठाते हुए परिणति तक पहुँचा दिया है— भाषिक संवेदना के धरातल पर।

पंकज सुबीर की कहानी 'महुआ घटवारिन' का आरम्भ होता है— ''सर, रेणुजी ने महुआ घटवारिन की पूरी कहानी नहीं लिखी, उसका अन्त क्या हुआ ये पता नहीं चलता।'' कुसुम ने प्रो. आनन्द कान्त शर्मा की ओर देखते हुए पूछा।

''पूरी तो है, मेरे विचार में तो कहानी पूरी है, हाँ, ज़्यादा विस्तृत इसलिए नहीं लिखा है, क्योंकि मूलकथा तो हीरामन और उसकी तीन क़समों की है, महुआ घटवारिन की कहानी तो लोककथा के रूप में उसमें प्रवेश करती है।''

''नहीं, सर, मेरे विचार में महुआ घटवारिन की कहानी में और भी कुछ हुआ होगा, इतनी छोटी-सी कहानी भला लोककथा कैसे बन सकती है?''

और कुसुम सच थी। महुआ घटवारिन की कथा को पूरा किया प्रो. शर्मा ने। मुझे यह देखकर हैरानी के साथ प्रसन्नता हुई है कि पंकज सुबीर ने महुआ घटवारिन की पुनर्रचना करते हुए उस रहस्य से पूरा पर्दा उठा दिया है।

—भारत भारद्वाज

राम स्वरूप शर्मा हिन्दी पढ़ाते थे, उसी विद्यालय मे संस्कृत पढ़ाते थे पंडित पृथ्वी वल्लभ दुबे। दोनों के परिवारों में आपसी प्रगाढ़ता के काफी सारे सुखद कारण थे, दोनों का मालवा क्षेत्र से सम्बन्ध, दोनों ब्राह्मण कुल और उस पर दोनों अध्यापन में, और अध्यापन में भी दोनों ही भाषा के शिक्षक— एक संस्कृत का तो दूसरा हिन्दी का।

पंडित पृथ्वी वल्लभ दुबे की ही बेटी थी शारदा, आनन्द की सहपाठिनी, मित्र और हमदर्द। हमदर्द इसलिए कि पढ़ाई लिखाई में लगभग औसत दर्जे का होने के कारण आनन्द की हमेशा शामत आई रहती थी। इधर राम स्वरूप शर्मा थे, तो उधर पंडित पृथ्वी वल्लभ दुबे, लेकिन आनन्द के मन को, उसमें भरी हुई यायावरता को अगर कोई समझता था, तो वो थी शारदा। दोनों शिक्षकों के मन में आनन्द के प्रति जो भावना थी उसको बदलने का कार्य शारदा का ही था, जिसे वो बख़ूबी करती रहती थी।

समय गुज़रता रहा, नर्मदा में पानी बहता रहा, आनन्द के मन की नाव हवा के झोंके के साथ असीम की ओर निकल जाने को मचलती रही और शारदा उसे खींचकर वापस तट से बाँधती रही। अगर रिश्ते की व्याख्या करनी हो तो शायद अच्छे-अच्छे मीमांसकों को भी पसीना आ जाए कि शारदा और आनन्द के बीच के इस रिश्ते को किस प्रकार परिभाषित किया जाए। एक तरफ़ आनन्द था : घर, परिवार, शारदा यहाँ तक कि स्वयं से भी अजनबी, और दूसरी तरफ़ शारदा थी, जिसके लिए आनन्द को सही दिशा में बढ़ जाने की प्रेरणा देना ही सबकुछ था। एक तरफ़ आनन्द था शारदा के हर प्रयास को जानकर भी बेख़बर था, और दूसरी तरफ़ शारदा थी उस बेख़बरी को नगण्य मानते हुए अपने प्रयास में जुटी हुई। दोनों ने स्वयं ही कभी अपने बीच के रिश्ते को कोई भी नाम देने का प्रयास नहीं किया। शायद इसलिए वो रिश्ता नर्मदा के जल की तरह प्रवहमान था दोनों के बीच।

आनन्द को आज तक याद है शारदा का वह उत्तर जो उसने आनन्द को उसके प्रश्न के जबाव में दिया था। शाम का समय था, नर्मदा के किनारे दोनों बैठे थे, आनन्द ने पूछा, ''शारदा अगर मैं स्वयं को नर्मदा में समर्पित कर दूँ, तो ये मुझे डुबाएगी या पार लगा देगी?'' डूबते सूरज की लालिमा में आनन्द ने देखा कि शारदा के चेहरे पर दृढ़ता आ गई है। बोली, ''यक़ीनन डुबो देगी क्योंकि नर्मदा ने कभी भी कायरता को स्वीकार नहीं किया। उसका तो कहना है, कि अगर कायरता को स्वीकार कर लिया होता, तो आज मैं चिरकुँवारी नहीं होती। समर्पण चाहे जिस भी रूप में हो लेकिन समर्पण हमेशा कायरता ही कहलाता है। ईश्वर ने हमें जूझने के लिए भेजा है, पलायन के लिए नहीं, ज़िम्मेदारियों से मुँह फेरकर किया गया त्याग, वैराग्य नहीं पलायन कहलाता है।'' अपनी बात ख़त्म करते-करते शारदा के चेहरे पर एक विचित्र-सी आभा आ गई थी। उस दिन के पश्चात फिर आनन्द ने इस तरह की कोई बात पूछने का साहस नहीं किया था शारदा से, शारदा का बिल्कुल अलग ही रूप था वह।

यों तो पंडित रामस्वरूप शर्मा काफी समय से अपने गृह नगर महू स्थानान्तरण चाह रहे थे लेकिन आनन्द के वीतरागपन के चलते और नर्मदा तट की इस उक्ति के चलते कि चिरकुँवारी नर्मदा का सान्निध्य मानव मन में वैराग्य भाव को पुष्ट करता है, वे अब स्थानान्तरण के लिए पूरी शक्ति से प्रयासरत हो गए थे। मैट्रिक की परीक्षा में आनन्द के परिणाम ने उनके माथे की लकीरें गहरी कर दी थीं। पुश्तैनी घर और ज़मीन भी महू में रख रखाव के अभाव में ख़राब हो रही थीं। इन्हीं सब कारणों से अन्ततः एक दिन पंडित रामस्वरूप शर्मा ने अपने महू स्थानान्तरण का आदेश लाकर पत्नी के हाथ पर रख दिया था। एक तरफ़ इतने वर्षों के साथ के बिछोह का दुख था, तो दूसरी ओर अपने घर लौटने का सुख, जहाँ सेवा निवृत्ति के बाद वैसे भी लौटना ही था।

विदाई के एक दिन पूर्व अन्तिम बार आनन्द और शारदा नर्मदा के तट पर बैठे थे। वही सन्ध्या का समय था। सूर्य अपनी प्रखरता को त्याग सौम्यता के साथ कल्पित क्षितिज के उस तरफ़ प्रस्थान कर रहा था, चारों तरफ़ मौन था, निःस्तब्धता थी। कोई स्वर था तो नर्मदा की लहरों का स्वर था। दोनों के बीच कोई संवाद नहीं हुआ। जब रात गहराने लगी तो शारदा ने मौन तोड़ते हुए पूछा, ''अब घर चलें?'' आनन्द कुछ देर मौन रहा, फिर बोला, ''मैं तुमसे मिलने आता रहूँगा।'' शारदा ने आनन्द की बात सुनी और बोली, ''आनन्द तुमने आम्रपाली की कथा पढ़ी है? उसमें जब आम्रपाली को वैशाली द्वारा ज़बरदस्ती नगरवधू बना दिया जाता है, तब एक दिन उसका पूर्व प्रेमी हर्ष सारे बन्धन तोड़ते हुए आम्रपाली तक पहुँच जाता है और उसे अपने साथ भाग चलने को कहता है। तब आम्रपाली उससे कहती है, कि ऐसे नहीं, सारे वैशाली में आग लगा कर आना मेरे पास, तब मैं चलूँगी तुम्हारे साथ, अभी नहीं।''

आनन्द ने कहा, ''तो...? इस कथा को सुनाने का अभी क्या प्रयोजन है?''

''है।'' शारदा ने कहा था, ''प्रयोजन यह है, कि तुम्हारे परिवार की यहाँ से विदाई के कई सारे कारणों में, मैं स्वयं को भी एक कारण समझती हूँ। यह अपराधबोध है मेरे अन्दर, जो तुम्हारे बार-बार आने से और गहरा होगा, इसीलिए मैं भी वही कहती हूँ कि इस तरह मत आना मेरे पास, कुछ बन जाओ तब आना। मैं तब तक तुम्हारी प्रतीक्षा कर लूँगी, पर इस आधे अधूरे पलायनवादी अस्तित्व के साथ तुम्हारा बार-बार आना स्वीकार नहीं कर पाऊँगी।''

दोनों के बीच यह अन्तिम वार्तालाप था, दूसरे दिन शर्मा परिवार बिछोह और विरह के पानी से भीगी कई सारी आँखों से विदा लेता हुआ शाहगंज से महू की ओर प्रस्थान कर गया, अपनी कई सारी स्मृतियाँ वहाँ छोड़कर और वहाँ की कई सारी स्मृतियाँ अपने साथ लेकर।

कालेज की पढ़ाई के लिए रोज़ महू से इन्दौर आना-जाना भी किया जा सकता था, लेकिन आनन्द ने इन्दौर में ही होस्टल में रहकर आगे की पढ़ाई करने का निर्णय लिया था। समय फिर अपने कार्य में लग गया, और स्मृतियों पर विस्मृतियों की परत बिछाता गया— गुज़रता गया, गुज़रता गया, गुज़रता गया।

स्नातक होने के पश्चात जब हिन्दी में स्नातकोत्तर उपाधि लेने के लिए आनन्द ने एम. ए. में प्रवेश लिया, तब वह प्रोफेसर विश्वेश्वर दीक्षित के सम्पर्क में आया था। वास्तव में प्रोफेसर विश्वेश्वर दीक्षित के रूप में आनन्द को शारदा के पश्चात जीवन में दूसरा गुरु मिला था। शारदा के छोड़े हुए अधूरे कार्य को प्रोफेसर दीक्षित ने ही पूरा किया। आनन्द को तराशने, मन के वीतरागीपन को साहित्य की समृद्धि की ओर मोड़ने, और आनन्द को प्रोफेसर आनन्द कान्त शर्मा बनाने में प्रोफेसर दीक्षित के गुरु गम्भीर व्यक्तित्व की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही। शारदा ने जिस पत्थर को आधा गढ़ा था, उसे पूरा गढ़ कर प्रतिमा

बना दी प्रोफेसर दीक्षित ने।

स्नातकोत्तर उपाधि लेने के पश्चात जब आनन्द प्रोफेसर दीक्षित के मार्गदर्शन में पी-एच.डी. कर रहा था तभी एक दिन श्री और श्रीमती दीक्षित महू पहुँच गए थे, अपनी पुत्री सरिता के लिए आनन्द का हाथ माँगने। आनन्द के लिए यह बात स्तब्ध कर देने वाली थी, किन्तु फिर भी वह अस्वीकार करने वाली स्थिति में नहीं था। जब परिवार के लोगों ने आनन्द की राय जाननी चाही तो अपनी स्वीकृति प्रदान करते हुए केवल उसने एक ही इच्छा रखी थी, कि शादी अत्यन्त सादगीपूर्वक होगी। इसमें केवल दोनों परिवारों के लोग ही सम्मिलित रहेंगे। परिवार वालों के लिए आनन्द की स्वीकृति ही बड़ी बात थी, इसलिए शर्त के स्वीकृत होने में कोई बाधा नहीं आई। केवल दोनों परिवार की उपस्थिति में विवाह करके आनन्द ने शारदा का सामना करने से अपने आपको बचा लिया था।

पी-एच.डी. पूरी होने के बाद प्रोफेसर दीक्षित ने अपने प्रभाव का उपयोग करते हुए आनन्द को भी प्राध्यापक के पद पर नियुक्त करवा दिया, और उसके बाद घर, परिवार, बच्चे, व्याख्यान, साहित्य सेवा— सारा घटनाक्रम चलता रहा। समय चक्र में फँसकर दिन, माह, वर्ष अतीत का हिस्सा बनते रहे और आनन्द को भी पता नहीं चला कि कब कल का वीतरागी आनन्द, प्रोफेसर आनन्द कान्त शर्मा हो गया, एक सम्मानित प्रोफेसर और हिन्दी साहित्य का एक सशक्त हस्ताक्षर। पैंतीस वर्ष बीत गए, इस बीच आनन्द ने साहित्यकार के रूप में देश के कोने कोने की यात्रा की, नहीं जा पाया तो केवल नर्मदा तट पर बसे उस छोटे से कस्बे शाहगंज, जिसे पैंतीस वर्ष पूर्व छोड़ आया था। अब तो दोनों बेटे भी सेटल हो गए हैं, और एक बार फिर सरिता और आनन्द बड़े-से घर में अकेले हैं, जैसे तब थे जब गृहस्थ जीवन की शुरुआत की थी दोनों ने। प्रोफेसर आनन्द की निगाहें खिड़की के पार किसी अदृश्य बिन्दु पर स्थिर थीं, शायद स्वयं को भुलावे में रखने के लिए। और मन में गूँज रही थीं दो बातें, पहली पैंतीस वर्ष पूर्व कही गई शारदा की बात कि कुछ बन जाओ तब आना मेरे पास, मैं तब तक तुम्हारी प्रतीक्षा कर लूँगी, और दूसरी आज कही गई कुसुम की बात कि वह फिर भूल जाता है कि कहीं कोई है जो उसकी प्रतीक्षा कर रहा है।'' दोनो बातों के कहे जाने के बीच में पैंतीस वर्ष का कालान्तर है, किन्तु लग रहा है जैसे दोनों बातें अभी की हैं, आज ही की हैं।

''क्या बात है, टहलने नहीं जाना है क्या... ? शाम हो गई है।'' सरिता ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा।

''हाँ... '' प्रोफेसर आनन्द पैंतीस वर्ष पूर्व के ठिठके हुए अतीत से वर्तमान में लौट आए, ''शाम हो गई क्या ? पता ही नहीं चला।''

सरिता ने पास रखे हुए स्टूल पर प्रोफेसर आनन्द की चाय का कप रख दिया और स्वयं भी पास की कुर्सी पर बैठ गई।

''कुछ परेशान लग रहे हो।'' सरिता ने पूछा।

''नहीं तो... बस यों ही सोच रहा था कि जब से शाहगंज छोड़ा तब से एक बार भी नहीं गया। अपनी जन्मभूमि और नर्मदा की याद नहीं आई कभी।'' आनन्द ने सरिता से नज़रें चुराते हुए कहा।

''वहाँ इसलिए क्योंकि यहाँ इन्दौर में भी तो तुम नल चला कर नर्मदा के पानी से ही तो नहाते हो।'' सरिता ने हँसते हुए कहा। आनन्द ने कोई जवाब नहीं दिया, अपनी चाय का कप उठा कर पीने लगा।

कुछ देर बाद सरिता ने कहा, ''जाना चाहो तो हो आओ, पुराने दोस्तों से मुलाक़ात भी हो जाएगी, और तुम्हारा अपराधबोध भी कम हो जाएगा।''

''दोस्त तो अब क्या मिलेंगे ? हाँ जन्मभूमि को फिर से देखना हो जाएगा।'' कह कर एक क्षण को आनन्द ने रुककर सरिता की तरफ़ देखा और पूछा, ''तुम चलोगी क्या?''

''न बाबा न, मैं क्यों जाऊँगी, तुम अकेले ही जाओ। मुझे साथ ले जाओगे तो खुलकर घूम फिर नहीं पाओगे, सबसे मिल नहीं पाओगे।'' सरिता ने कुछ मीठे स्वर में कहा।

''हूँ, देखते हैं क्या होता है!'' कह कर आनन्द ने चुप्पी साध ली।

एक सप्ताह बाद जब प्रोफेसर आनन्द शाहगंज पहुँचे तो ऐसा लगा जैसे समय वहीं ठहर गया हो, जहाँ वे पैंतीस वर्ष पहले छोड़ गए थे। हाँ प्रगति नाम की प्रक्रिया ने अपना पूरा प्रभाव इन पैंतीस वर्षों में दिखाया था, किन्तु इस प्रगति के पीछे कहीं कहीं कुछ ऐसा झाँक रहा था, निहार रहा था प्रोफेसर आनन्द को पूरे अपनेपन के साथ, मानो पूछना चाह रहा हो कि, अरे! इतने बड़े हो गए तुम...! कल जब यहाँ से गए थे तब तो...। आनन्द ने लम्बी साँस खींची— वही सोंधापन, वही सुगन्ध! इतने सारे बदलाव के बाद भी मानो कुछ भी नहीं बदला हो।

सबसे पहले नर्मदा के तट पर पहुँचे प्रोफेसर आनन्द, नर्मदा को प्रणाम किया, जल को आँखों से लगाया। कुछ घाट नए बन गए हैं, परन्तु पुराने घाट अभी भी जस के तस हैं। अपने उसी पुराने घाट के पत्थर पर बैठ गए प्रोफेसर आनन्द। वहीं बैठे-बैठे पूर्ववत नर्मदा की लहरों को निहारने लगे। ऐसा लग ही नहीं रहा था कि कई वर्ष बीच में गुज़र गए हैं, ऐसा लग रहा है मानो कल ही की बात है, जब वे शारदा के साथ यहाँ बैठे थे। शारदा...! शारदा की स्मृति आते ही प्रोफेसर आनन्द उठ कर खड़े हो गए और बस्ती की ओर चल दिये।

चारों तरफ़ चेहरे ही चेहरे थे, कुछ चेहरे सर्वथा अपरिचित तो कुछ कहीं-कहीं से परिचित होने का भाव लिये, लेकिन चूँकि दोनों तरफ़ समय ने अपनी छाप छोड़ रखी थी इसलिए पहचान के चिन्ह ढूँढना मुश्किल हो रहा था। कोई कोई चेहरा आनन्द को देखकर ठिठकता, कुछ संशय में पड़ता, फिर चल देता। जानी-पहचानी गलियों से होते हुए प्रोफेसर आनन्द पंडित पृथ्वी वल्लभ दुबे के घर पहुँचे, देखा कि वे बाहर ही आँगन में बैठे हुए कोई पुस्तक पढ़ रहे हैं।

काफी वृद्ध हो चुके पंडित पृथ्वी वल्लभ दुबे के चेहरे पर अभी भी वही तेज था। आनन्द ने बढ़कर उनके चरण छू लिये। दुबे जी ने हाथों की पुस्तक बन्द कर कुछ अपरिचित नज़रों से आनन्द की ओर देखा और कुछ पूछना चाहा, किन्तु उनके कुछ कहने के पूर्व ही आनन्द ने कहा, ''मैं आनन्द हूँ गुरुजी, राम स्वरूप जी का बेटा।''

आनन्द के इतना कहते ही दुबे जी की ठोड़ी में कम्पन-सा हुआ, फिर आँखों में चमक-सी आ गई। उठकर उन्होंने आनन्द को सीने से लगा लिया और भाव विह्वल होकर बोले, ''अरे...! तू है बेटा!''

दो दिन तक दुबे जी के यहाँ मेहमान रहे आनन्द, दिन भर घूमना फिरना, और रात को अतीत की चर्चा करना कि कौन कब क्या था ? अब कहाँ है ? और क्या हो गया ? उस दौर के एक एक व्यक्ति से मिलाने ले गए आनन्द को दुबे जी। एक ही वाक्य कह कर मिलाते ''अपने रामस्वरूप का बेटा है, हिन्दी का बड़ा

प्रोफेसर और साहित्यकार हो गया है।'' प्रोफेसर आनन्द ने देखा कि वाक्य का पहला हिस्सा बोलते समय दुबे जी का स्वर अपनेपन से भीगा होता था, किन्तु दूसरा हिस्सा बोलते समय उस स्वर में गर्व छलक आता था।

दुबे जी के बेटे-बहुओं ने ख़ूब सेवा की प्रोफेसर आनन्द की। रात को भोजन वग़ैरह करके जब दोनो बातें करने बैठते तो समय का पता ही नहीं चलता। बातों में कुछ भी नहीं केवल अतीत की बातें, अतीत से किसी भी पात्र को चुनना और उसको लेकर अपने-अपने प्रश्नों का समाधान करना। इसी दौरान पता चला कि शारदा की शादी भोपाल में हुई है। शारदा शादी के पहले ही शिक्षक हो गई थी, आजकल भोपाल के किसी विद्यालय में प्राचार्य है। पति भोपाल में ही चिकित्सक हैं। अपनी घर गृहस्थी में पूर्णत: ख़ुश है। शारदा के बारे में सुनकर अच्छा लगा आनन्द को। ऐसा लगा कि कोई अपराधबोध उतर गया है मन से। शारदा के घर का पता और स्कूल का पता ले लिया आनन्द ने, जाना तो भोपाल होकर ही है, और फिर आने का प्रमुख प्रयोजन तो शारदा से मिलना ही था।

दो दिन बाद प्रोफेसर आनन्द रवाना हुए तो दुबे जी का पूरा परिवार बस अड्डे तक छोड़ने आया था। साथ में वे कई लोग भी आए थे जो आनन्द के पुराने परिचित थे। सभी की आँखों में नमी थी जैसे कई वर्ष पूर्व विदाई के समय थी।

भोपाल पहुँचते-पहुँचते ही दोपहर हो गई, आटो रिक्शा लेकर सीधे शारदा के स्कूल की ओर रवाना हो गए प्रोफेसर आनन्द। तीन दिन हो गए इन्दौर से निकले, जाने क्यों घर की याद आ रही है, जबकि अब तक ऐसा कभी नहीं हुआ। पहले भी साहित्यिक आयोजनों के सिलसिले में अक्सर घर से बाहर जाना हुआ था, लेकिन इस बार जाने क्यों सरिता को इतने दिनों के लिए छोड़ना कुछ अच्छा नहीं लग रहा। मन कर रहा है अब जल्दी वापस लौटा जाए। स्कूल पहुँचकर शारदा के बारे में पूछा तो ज्ञात हुआ मैडम अपने ऑफिस कक्ष में बैठी हैं। आनन्द जैसे ही प्रिंसिपल के कक्ष के बाहर पहुँचे कि परदा हटा कर शारदा बाहर निकली। निकलते ही आनन्द को देखा, कुछ चौंकी, फिर हँसते हुए बोली, ''अरे..! आनन्द तुम...! आज कैसे याद आ गई?''

प्रोफेसर आनन्द बोले, ''तुमने मुझे पहचान लिया...!''

''आए दिन तो तुम्हारी कहानियों के साथ तुम्हारा फोटो छपता है पत्रिकाओं में, पहचानती कैसे नहीं!'' उसी तरह हँसते हुए कहा शारदा ने। ''चलो अन्दर चलकर बैठते हैं।'' कहते हुए शारदा ने अपने कक्ष का परदा हटा कर आनन्द को अन्दर चलने का इशारा किया।

''हाँ अब बताओ, क्या पियोगे चाय या काफी?'' कुर्सी पर बैठते हुए शारदा ने पूछा।

''कुछ भी मँगवा लो, तुम्हें तो पता है कि खाने-पीने के मामले में मेरी कोई विशेष पसन्द नहीं रही।'' आनन्द ने कहा। शारदा ने घंटी बजाकर चपरासी को बुलाया और दो कप चाय लाने को कहा।

''कहाँ से चले आ रहे हो...?'' शारदा ने पूछा।

''शाहगंज से।'' आनन्द ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

''शाहगंज से...!'' शारदा ने कुछ चौंकते हुए कहा, ''वहाँ किस प्रयोजन से गए थे...?''

आनन्द ने मुस्कुराते हुए कहा, ''तुमसे मिलने। तुमने कहा था न कि कुछ बन जाओ तब आना मुझसे मिलने, लेकिन मैंने आते-आते कुछ देर कर दी।''

इसी बीच चपरासी टेबल पर चाय का कप रख गया। चपरासी के जाने के बाद शारदा ने चाय का कप उठाते हुए कहा, ''नहीं आनन्द तुमने देर कहाँ की, मैंने तुमसे कहा ही था कि कुछ बन जाओ तब आना मुझसे मिलने, तब तक प्रतीक्षा करूँगी।''

''हाँ वही तो। तभी तो कह रहा हूँ कि मैं लेट हो गया।'' आनन्द ने चाय की चुस्की लेते हुए कहा।

''नहीं आनन्द, कॉलेज में प्रोफेसर हो जाने से मेरा आशय तब नहीं था, वह तो हज़ारों लोग बन जाते हैं। मैं तो वही चाहती थी जो तुम आज हो, आज साहित्य में तुम जिस स्थान पर हो वह स्थान वही है जिसके बारे में मैंने कहा था। इसलिए तो मैं कह रही हूँ कि तुम सही समय पर आये हो कुछ बन जाने के बाद।'' शारदा ने कहा।

कुछ देर की चुप्पी के बाद आनन्द ने कहा, ''मुझे कुछ दिनों से यह अपराधबोध था कि मुझे तुम्हारे पास बरसों पूर्व आना चाहिए था। तुम मेरी प्रतीक्षा में हो।''

''प्रतीक्षा तो मैंने की है लेकिन तुम्हारा अपराधबोध बरसों पुराना होकर केवल एक ही वर्ष का होना चाहिए।'' शारदा ने कहा।

''कैसे...?'' आनन्द ने पूछा।

''वो ऐसे कि पिछले साल तुम्हें शिखर सम्मान मिला है, बस तभी से मुझे उम्मीद थी कि अब तुम्हें आना चाहिए क्योंकि अब तुम वह बन गए हो जो मैं चाहती थी।'' शारदा ने कहा।

''तुम्हारी बातों ने मेरा बोझ हल्का कर दिया।'' आनन्द ने चाय का कप रखते हुए कहा।

देर तक दोनों घर परिवार की बातें करते रहे। बातें करते-करते आनन्द ने घड़ी देखी। चार बज गए थे। ''अच्छा शारदा चलता हूँ।'' आनन्द ने कहा।

''अरे ये क्या बात हुई? घर नहीं चलोगे क्या?'' शारदा ने उठते हुए कहा।

''नहीं शारदा आज नहीं, दस दिन बाद एक कार्यक्रम में भोपाल आना है, तब आऊँगा। सरिता को भी साथ लेकर आऊँगा। तुम्हारे घर ही ठहरूँगा। अभी तीन दिन हो गए इन्दौर छोड़े, सरिता वहाँ अकेली है।'' आनन्द ने कहा।

''अच्छा लगा यह जानकर कि तुम्हें अपनों की परवाह है। तुम सचमुच वही बनकर आए हो जो मैं चाहती थी।'' कहते हुए आनन्द के कन्धे पर धीरे से हाथ रख दिया शारदा ने। प्रोफेसर आनन्द ने देखा कि शारदा की आँखों में एक चमक-सी आ गई है। अपने कन्धे पर रखे शारदा के हाथ पर अपना हाथ रख दिया और धीरे से मुस्करा दिये। प्रोफेसर आनन्द को लगा अब वे कुसुम के साथ बहस कर सकते हैं, महुआ घटवारिन की कहानी के बारे में, क्योंकि अब वह कहानी पूरी हो गई है।

पी सी लैब, शाप नं. -3,4,5, बेसमेंट,
सम्राट कॉम्प्लेक्स, नए बस स्टैंड के सामने,
सीहोर, मध्य-प्रदेश-466001
मो. 09977855399

नई पुस्तकें

आलोचना

प्रगतिशील हिंदी आलोचना : विवाद और विमर्श/ *मृत्युंजय सिंह* 200.00
मिथक का काव्यात्मक आख्यान/ *चपले साईंनाथ विट्ठल* 175.00
समकालीन कविता और मार्क्सवाद/ *आशुतोष कुमार* 300.00
कविता का नीलम आकाश/ *कुमार मुकुल* 200.00
'कलिकथा : वाया बाइपास' प्रयोगात्मक संदर्भ/ *रामगोपाल मीणा* 200.00
'बहती गंगा' में काशी/ *वंदना चौबे* 125.00
सृजना और आलोचना/ *सं. डॉ. चंद्रलेखा डिसूजा* 300.00
अंगिका लोक साहित्य/ *रंजन* 150.00

उपन्यास

अतः किम्/ *शिवकरण सिंह* 300.00
मशालची/ *गुरचरण सिंह राओ* 275.00
उलटे आखर/ *तरसेम गुजराल* 250.00
कश्मीर का दर्द/ *सुजाता* 250.00

कहानी

हीरामन अमर्त्य सेन/ *द्वारकेश नेमा* 200.00
धुआं/ *निरंजन श्रोत्रिय* 130.00
यहीं कहीं से/ *शैलेय* 175.00
आशियाना/ *जीवन सिंह ठाकुर* 130.00
समय से बाहर/ *एस. अहमद* 150.00
हनिया तथा अन्य कहानियाँ/ *विवेक मिश्र* 150.00
रोशनी पर अँधेरे/ *राजेश झरपुरे* 175.00

कविता

जिन्हें डर नहीं लगता/ *उमेश चौहान* 175.00
जहाँ धूप आकार लेती है/ *दुर्गा प्रसाद गुप्त* 100.00
पृथ्वी पर एक जगह/ *शिरीष कुमार मौर्य* 250.00
आगे अंधा मोड़ है/ *शिवकरण सिंह* 200.00
होने की सुगंध/ *प्रकाश* 140.00

ग़ज़ल

नवाए-ज़फ़र/ *ख़लीलुर्रहमान आज़मी* 250.00
इंतज़ार है अब तक/ *जितेंद्र त्रिपाठी* 100.00
तन्हा तन्हा/ *रश्मि सानन* 125.00

लघुकथा

अपने-अपने तालिबान/ *आलोक सातपुते* 150.00

व्यंग्य

फक्कड़नामा/ *परितोष चक्रवर्ती* 150.00
एक मुफ्तिया मकान का मास्टर प्लान/ *द्विजेंद्रनाथ सैगल* 175.00
अब तक पैंतीस/ *मोनिका गुप्ता* 140.00

दलित-विमर्श

दलित चेतना : साहित्य/ *संपा. रमणिका गुप्ता* 175.00
दलित दर्शन/ *संपा. ज्ञान सिंह बल-रमणिका गुप्ता* 400.00
दलित लेखन के अंतर्विरोध/ *सं. रामकली सर्राफ* 275.00
आधुनिक भारत में पिछड़ा वर्ग/ *संजीव खुदशाह* 200.00

स्त्री-विमर्श

भक्तिकाव्य में पितृसत्ता और स्त्रीविमर्श/ *शहनाज बानो* 300.00
आधुनिक महिला लेखन/ *सं. रमणिका गुप्ता* 250.00
संघर्ष बनाम सम्भावना/ *डॉ. परिमला अंबेकर* 200.00
स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण/ *संपा. रमणिका गुप्ता-विमल थोराट-अनिता भारती* 300.00

सिनेमा

फिल्म का सौन्दर्यशास्त्र और भारतीय सिनेमा/ *संपा. कमला प्रसाद* 275.00

नाटक

काग के भाग बड़े सजनी/ *शिवचरण विश्वकर्मा* 60.00

यात्रा-संस्मरण

अपना क्षितिज, अपना सूरज/ *सांवरमल सांगानेरिया* 275.00

विविध

कमज़ोर दुनिया का रास्ता/ *संतोष भारतीय* 250.00
वी.पी. सिंह : कैसे पहुँचे वोट की राजनीति तक/ *बच्चन सिंह* 150.00
नजरबंद तसलीमा/ *कृपाशंकर चौबे* 130.00

विस्तृत सूचीपत्र एवं क्रयादेश के लिए हमें पत्र लिखें या ईमेल करें

शिल्पायन

10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032
फोन : 011-22821174, 9810101036 ईमेल : shilpayan2005@yahoo.co.in

बन्दिशों, भक्ति पदों और बानियों में प्रेम का राग

संकलन : यतीन्द्र मिश्र



भारतीय कविता का एक रूप गेय पदों एवं वाचिक कविता का रहा है। इस परम्परा से निकलने वाली पदावलियों, चर्या गीतियों, दोहों आदि ने कविता-परिदृश्य को रचनात्मक तरीक़े से प्रभावित किया है। इस पूरी कविता परम्परा को आरम्भ से देखने पर आश्चर्यजनक रूप से इस धारणा को बल मिलता है कि साहित्य और संगीत के अन्यतम विकास में प्रेम और प्रेम में समर्पण की केन्द्रीय एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। दक्षिण में आलवार सन्त और त्यागराज, उड़ीसा में जयदेव, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु एवं बाउल लोगों का अलौकिक संसार, गुजरात में नरसी मेहता, महाराष्ट्र में तुकाराम, बिहार में विद्यापति और राजस्थान में मीरा तथा उत्तर प्रदेश में हरिदासी सम्प्रदाय एवं पुष्टिमार्गी कवियों ने साहित्य के साथ-साथ, संगीत को भी प्रेम के रूपकों में बाँधकर अनुपमेय विस्तार दिया है।

बन्दिशों की परम्परा भारत में अत्यन्त प्राचीन है। बन्दिश अर्थात् बाँधने की क्रिया या भाव, पहले से किया हुआ प्रबन्ध-गान, कविता, गीत आदि की शब्द-योजना। कविता और संगीत में प्रेम की प्रमुख उपस्थिति एक प्रकार से बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जयदेव के 'गीत-गोविन्द' के माध्यम से सामने आती है। इसके पूर्व अमीर ख़ुसरो के माध्यम से प्रेम का सूफी रंग हिन्दी कविता का एक अतुलनीय संग्रह बनता है, जिसमें बाद में ढेरों सन्तों, निर्गुणियों, औलियाओं, पीर-फकीरों, बन्दिशकारों एवं मन्दिरों में पूजा-अर्चन करने वाले वैष्णव भक्त कवियों से यह परम्परा उन्नत होती दिखाई पड़ती है।

इस खण्ड में पिछले हज़ार सालों की बन्दिश परम्परा से हमने कुछ विशिष्ट तथा कुछ ऐसे अल्प प्रचलित नामों का चयन किया है, जिसके माध्यम से हम संगीत में बन्दिशकारों की सर्जना भूमि, सन्तों निर्गुणियों की वचन, बानियों की परम्परा तथा वाचिक कविता से प्रेम का वह सलोना रंग आपके सामने प्रस्तुत कर सकें, जो आज भी अपनी गेय एवं श्रुति परम्परा के साथ-साथ साहित्यिक धरातल पर भी उत्कृष्ट होते हुए प्रासंगिक बने हुए हैं। इस योजना में यह अवश्य हो सकता है कि कुछ महत्त्वपूर्ण वाग्गेयकार (बन्दिश रचने वाले) एवं सन्त-कवि छूट गये हों तथा कुछ अल्पज्ञात नामों का चयन हुआ हो। कुछ सांगीतिक विभूतियों मसलन तानसेन, बख्शू नायक, सदारंग एवं वाजिद अली शाह आदि को भी यहाँ शामिल किया गया है। इन पदों के संकलन के पीछे का ध्येय मात्र इतना है कि कालक्रम की अवधारणा से अलग, इस तथ्य की प्रासंगिकता रेखांकित हो सके, जिसमें कबीर और तानसेन, पल्टूदास और निराला तथा वाजिद अली शाह और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे मूर्धन्यों की प्रेमाभिव्यक्ति को एक ही धरातल पर रेखांकित किया जा सके।

यह बन्दिशों में ही सम्भव था कि पल्टूदास जैसा जोगी प्रेम का बान मारने की बात करता है तो रसिक बिहारी रास के लिए राधा को रंगों भरी रात में आमन्त्रण देते हैं। सदारंग प्रेम से प्रियतम को गले लगाने को प्रिय के गले में हार डालना कहते हैं, तो खुसरो के यहाँ प्रेम के लिए सदा से यह अमर पंक्ति दर्ज हो गयी— बहुत कठिन है डगर पनघट की। कबीर अपनी साफ़गोई में ख़ुद को इश्क में मस्त हुआ मानते हैं, जिसके लिए होशियारी या चालाकी का कोई स्थान नहीं है तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी प्रेम की मदिरा पीने की बात करते हैं। कहने का लब्बो लुआब यह है कि प्रेम की प्रासंगिक और सार्वजनिक उपस्थिति ने हज़ार सालों के लम्बे कालबोध के बाद भी इन कविताओं के रंग को फीका नहीं होने दिया है।

इसी प्रयास को दिखाने के लिए बन्दिशों की एक बहुत छोटी झाँकी यहाँ विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत है।



कबीर

हमन हैं इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या
रहें आजाद या जग से हमन दुनिया से यारी क्या
जो बिछड़े हैं पियारे से भटकते दर-ब-दर फिरते
हमारा यार है हममें हमन को इन्तज़ारी क्या
खलक सब नाम अपने को बहुत कर सिर पटकता है
हमन गुरनाम साँचा है हमन दुनिया से यारी क्या
न पल बिछड़े पिया हमसे न हम बिछुड़ें पियारे से
उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या
कबीरा इश्क का माता दुई को दूर कर दिल से
जो चलना राह नाजुक है हमन सिर बोझ भारी क्या।

शेख ज़माल कम्बोह 'खुसरो' द्वितीय

बहुत कठिन है डगर पनघट की
कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी
पनिया भरन को जो मैं गई थी,
दौड़ झपट मोरी मटकी पटकी
खुसरो निज़ाम के बल-बल जाइये,
लाज राखे मेरे घूँघट पटकी।

रानी रूपमती

श्याम बिना उमगे री दोऊ बदरा
सुन री सखी पिया सपने में देखे
भर आए नीर ढरक गयो कजरा
कासों कहौं सुने को मेरी
जोहत बैठी पिया को भगरा
रूपमती पी बाज बहादुर
तज गए गोकुल मिट गयो झगरा।

बनी ठनी

रतनारी हो थारी आँखड़ियाँ
प्रेम छकी रसबस अलसाड़ी, जाणे कमल की पाँखड़ियाँ
सुन्दर रूप लुभाई गति मति, हो गईं ज्यूँ मधु माँखड़ियाँ
रसिक बिहारी वारी प्यारी, कौन बसी निस काँखड़ियाँ।

यारी साहब

हौं तो खेलौं पियासँग होरी
दरस-परस पतिबरता पियकी, छवि निरखत भइ बौरी
सोलह कला सँपूरन देखौ, रवि ससि भे इक ठौरी
जबतें दृष्टि पर्‍यो अबिनासी लागी रूप ठगौरी
रसना रटति रहति निसि बासर, नैन लगे यहि ठौरी
कह 'यारी' यादि करु हरिकी, कोई कहैं सौ कहौ री।

ताज

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं
देवपूजा ठानी मैं निवाजहू भुलानी, तजे
कलमा-कुरान साड़े गुननि गहूँगी मैं
साँवला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये,
तेरे नेह दाग में निदाघ ह्वै दहूँगी मैं
नन्द के कुमार, कुरबान तेरी सूरत पै,
हौं तौ मुगलानी हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं।

ललित किशोरी

एक

युगल बर झूलत दे गलबाहीं
बादर बरसें चपला चमकें सघन कदम की छाहीं
इत उत पैंग बढ़ावत सुन्दर मदन उमंगन माहीं
ललित किशोरी हिंडोरा झूलें बढ़ यमुना लौं जाहीं।

दो

जंगल में अब रमते हैं दिल बस्ती से घबराता है
मानुष गन्ध न भाती है संग मर्कट मोर सुहाता है
चाक गरेवाँ करके दमदम आहीं भरने भाता है
ललित किशोरी इश्क रैन दिन यह सब खेल खिलाता है।

तीन

देखो री यह नन्द का छोरा बरछी मारे जाता है
बरछी सी तिरछी चितवन की सैनो छुरी चलाता है
हमको घायल देख बेदरदी मन्द-मन्द मुस्काता है
ललित किशोरी जखम जिगर पर नोन पुरी बुरकाता है



बख्शू नायक

पिया छाँड दे मोरी बहियाँ रे अपने गरज के सइयाँ
लगर झगर के लिपट जात हो ठइयाँ
हस-हस कर रसबस पड़ गइलो ऐसे मन के छइयाँ
गई सो गई मेरी वयस अकारथ अबहूँ समझ गुसइयाँ
सब तज के धाम तेरे अइलो और आय परो पइयाँ
अवगुन बख्शू नित दर्शन पइये चरण कमल बल जइयाँ।

सियादुलारी

प्रीतम हँस-हँस री प्यारी गरे लागे
मदमाते प्यारे रस लम्पट महीप हिये जागे
परस कपोल कंठ भुज मेलत अधरामृत पीवत रस पागे
दोउ करत मधुर रस बतियाँ छाके प्रेम मदन अनुरागे
सियादुलारि बिलोकि दम्पती वर सखी प्रेम भक्ति बर माँगे।

सनद पिया

का करूँ ना माने री
मोर मुकुटवारो ढीट लंगर
पनियाँ भरत डगर चलत
ठिठोरी करत
सनदपिया मोरी मानत नाही
बार-बार मोसे बरजोरी करत।

गोस्वामी बिन्दु जी महाराज

घनश्याम तुझे ढूँढ़ने जायें कहाँ कहाँ
अपने विरह की याद दिलायें कहाँ कहाँ
तेरी नज़र में, जुल्फ में, मुस्क्यान मधुर में
उलझा है सब में दिल, तो छुड़ायें कहाँ कहाँ
चरणों की ख़ाकसारी में ख़ुद ख़ाक बन गये
अब ख़ाक पै हम ख़ाक रमाएँ कहाँ कहाँ
जिनको तबीब देख के ख़ुद बन गये मरीज़
ऐसे मरीज़ मर्ज़ दिखाएँ कहाँ कहाँ
दिन रात अश्रु 'बिन्दु' बरसते तो हैं मगर
सब तन में लगी आग बुझाएँ कहाँ कहाँ।

पलटूदास

प्रेम बान जोगी मारल हो फाटा हिय मोर
सिंगी गगन बजायनि हो ताकेनि मोरी ओर
अरुन नयन मन हरलेनि जोगी बड़ चोर
गंगा जमुन के बिचवा हो बहै झिरिहिर नीर
वही ठइयाँ जुरली सनेहिया हो हरिलेनि मोरी पीर
जोगी कै लेबों मृग छलवा हो आपन पट चीर
दूनों करब गँठिजोरवा हो हम होइबै फकीर
जोगी अमर मरैं नाहीं हो पूजली मोरी आस
कर्म लिखा वर पावल हो कहैं पलटूदास।

तानसेन

भले ही मेरे आए हो पिय, ठीक दुपहरी की बिरियाँ
सुभ दिन, सुभ नक्षत्र, सुभ महूरत, सुभ पल छिन, सुभ घरियाँ
भयो है आनन्द-कन्द मिट्यौ बिरह दुख द्वन्द्व
चन्दन घिस लेपत अंग और पायन परियाँ
तानसेन के प्रभु दया कींनी मों पर सूखी बेल, कींनीं हरियाँ।

बिन्दादीन

एक

जान दे मैंका सुनो सजनवा,
काहे करत तुम नित-नित हम सन रार?
नाहीं नाहीं मानूँगी अब मैं तोरी
छेड़ करत नहीं माने,
बरजोरी करत गहे लीनी श्याम मोहे,
बिन्दा कहत तुम नित-नित हम सन रार,
नाहीं-नाहीं मानूँगी अब मैं तोरी।

दो

मोहे छोड़त मोहन गिरधारी
डगर चलत मोहे देखो देत गारी
मैं जमुना जल भरन जात थी
बिन्दा देखो मैं हारी।

रसिक बिहारी

कुंजन पधारो राधे रंग भरी रैन
रंग भरी दुलहन रंगभरे पिया श्याम सुन्दर सुख दैन
रंगभरी सैनी बिछी सेज पर रंग भर्‌यो उलहत मैन
रसिक बिहारी पिय प्यारी जी दोऊ मिल करो सेज सुख शैन।



सरयूसखी

जरा झूलो न लाला हमारे संग
तुम प्रीतम हम प्यारी बनी हैं तुम दीपक मेरे नैना पतंग
तुम रसिया हम आली छबीली लागो है नेह पिया तुम्हरे संग
'सरयूसखी' झूलन को निकसी बाजैं मृदंग तहँ उठैं तरंग।

यकरंग

पिया मिलन कैसे जाओगी गोरी, रंग-रूप सब जात रहो री
ना अच्छे गुन ढँग, ना अच्छे जोबन, मैली भई अब चूनरि तोरी
करके सिंगार पियाघर जैयो, तब देखिहैं पिया तोरी ओरी
जाय कहो कोई 'यकरंग' पियासों, तुम बिन या गत हो गई मोरी।

सदारंग

गरवा हरवा डारूँगी मा जब पिया आवै मोरे अँगनवा
चतुर सुघर बलमुवा मोरा कवन देश रहिलवा
सदारंग कोई जाय सुनावै इनके कान भनकवा।

मीराबाई

बाला मैं बैरागण हूँगी
जिन भेषाँ म्हारो साहिब रीझे, सोही भेष धरूँगी
सील सन्तोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी
जा को नाम निरंजन कहिये, ता को ध्यान धरूँगी
गुरु के ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूँगी
प्रेम प्रीत से हरि गुण गाऊँगी, चरणन लिपट रहूँगी।
यातन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम कहूँगी
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, साधा संग रहूँगी।

ईसुरी

नैना भँवर भये वारी के, रंगरेजिन प्यारी के
एक से दोउ भेस धरे हैं, रुचिर रेख कारी के
सालिगराम बीच कमलन के, चितवन अनयारी के
लेत सुगन्ध फूल नये फूले, मानस संसारी के
ईसुरी परे इशक के फन्दे, आशिक हैं यारी के।

तालिब शाह

महबूब बागे सुहागे बने हैं, सुमोहन गरे माल फूलौ हिये हैं
महारंग माते-अमाते मदन के, बिलोकत बदन खौरि चन्दन दिये हैं
यही वेश हरिदेव भृकुटी तुम्हारे, सुलकुटी भँवर लेख या लख लिये हैं
दिवाना हुआ है निमाना दरश का, सुतालिब वही स्याम गिरवर लिये हैं।

युगल प्रिया

जादू भरी पिया तोरी नजरिया
जिहिं चितवन तिहिं वश कर राखत
सुन्दर श्याम राम धनुधरिया
जुलफन युत मुखचन्द प्रकाशे
नासा मणि लटकत मन हरिया
युगल प्रिया मिथिलापुर बासिन
फँसी जाल मनो रूप मछरिया।

पुरुषोत्तम

प्यारी को श्रृंगार करत नँदलाला
बार-बार मैं मोती पोहे कन बिच झलके बाला
कलीदार जरी को लहँगा ऊपर सुर्ख दुशाला
पुरुषोत्तम प्रभु रसिक शिरोमणि छबि निरखत ब्रजबाला।

फ़रहत

मारो-मारो हो स्याम पिचकारी हो
ताक लगाये खड़ी सखियन सँग ओट लिये राधा प्यारी हो
देखो-देखो स्याम वहै कोउ आवति, अबीर लिये भरि थारी हो
इक पिचकारी और प्रभु मारो, भींज जाय तन सारी हो
'फ़रहत' निरखि-निरखि यह लीला, हरिचरना वलिहारी हो।

करीमबक्श

ना जानों, पियासों कैसे होयँ बतियाँ
उनके मन की जुगति नहिं सीखी, यह जिय सोच रहै दिन रतियाँ
वहाँ न कोऊको कोऊ पूछत, सुन-सुन हाल फटति है छतियाँ
और सखी पिया अपने मिलन की करति 'करीम' है लाखन घतियाँ।

वाज़िद अली शाह

नन्द के छैल छाँड़ दे गागर मोरी
जिनि छुओ री गगरिया
हा हा करत हूँ पैंया परत हूँ
चल बसे मथुरा नगरिया
केसर रंग को मेंह बरसायो
अबीर गुलाल की छाई बदरिया
जैसी भीज मोरी सुरख चुनरिया
तैसी भिजोउँ पगरिया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

हम तौ मदिरा प्रेम पिए
अब कबहूँ न उतरि है यह रंग ऐसो नेम लिए
भई मतवार निडर डोलत नहिं कुल भय तनिक हिए
डगमग पग कछु गैल न सूझत निज मन मान किए
रहत चूर अपुने प्रीतम पै तिन पैं प्रान दिए
हरिचन्द मोहन छैला विनु कैसे बनत जिए।

राजसदन, अयोध्या, फैजाबाद, उत्तर प्रदेश



इस खंड के समस्त चित्र : गोपाल खेतांची

अनुज

पंजाब की प्रेम कहानियाँ



पंजाब प्रेम और अलमस्ती की भूमि है। सात नदियाँ और अनगिनत प्रेम कहानियाँ। यह है पंजाब। गेहूँ के लहलहाते खेत और खेतों में 'हीर' गाती और दुपट्टा ओढ़े दौड़ती-भागती लड़कियाँ। गाड़ियों के दौड़ने लायक खेतों की चौड़ी मेड़ और मेड़ के किनारे हहाता हुआ पानी उगलता पम्पिंग-सेट। कहीं थ्रेसर मशीन से उड़ता भूसा तो कहीं जलते अलाव के चारों ओर घेरे में गिद्धा नाचती महिलाएँ। यह है पंजाब। यहाँ पंजाब कहने से बोध विभाजन पूर्व के पंजाब से है! यही वह पंजाब है जहाँ महाभारत का सब कुछ समाप्त कर देने वाला युद्ध लड़ा जाता है, तो इसी पंजाब की भूमि पर मन को विश्रान्त कर देने वाली ऋग्वेद की ऋचाएँ रची जाती हैं। इसी पंजाब में, जहाँ एक ओर पानीपत की तीन-तीन लड़ाइयाँ लड़ी जाती हैं, नादिर शाह का ख़ूनी खेल चलता है, तो दूसरी ओर प्रेम का पाठ पढ़ाने वाले शाह हुसैन, बुल्लेशाह, शेख़ फरीदुद्दीन जैसे सूफ़ी सन्त पैदा हो जाते हैं। यही वह पंजाब है जिसने भारत-पाक विभाजन के दंश को सबसे ज़्यादा तल्खी से महसूस किया था, तो इसी पंजाब में 'हीर' जैसी अमर प्रेमगाथा रचने वाले वारिस शाह और 'शाह-जो-रिसालो' रचने वाले शाह अब्दुल लतीफ भिट्टई भी मिल जाते हैं। यह है पंजाब, बेफिक्री और अलमस्ती की पहचान वाला पंजाब।

यह सचमुच एक विचित्र बात है कि किसी एक क्षेत्र में इतनी विविधताएँ एक साथ मौजूद हों। समाजशास्त्रियों के लिए पंजाब की पंजाबियत और इसकी अलमस्ती शोध का विषय रही है। इतिहासकार इस मस्ती और सूफियाना जीवन-शैली का उत्स उन विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमणों में देखते हैं जो कभी 'खैबर' और 'बोलन' दर्रों से होकर भारत पर होते रहे थे। आक्रान्ता आते, लूटते और वापस लौट जाते। बस पिसता रहता पंजाब का आम जन-जीवन। ज़िन्दगी का कुछ ठिकाना नहीं रहता कि कब कोई नादिर शाह आ जाए और कब समाप्त हो जाए यह जीवन-लीला! बस, जी लो जितना जीवन है—कल किसने देखा है! यही फलसफा था जीवन का। इसीलिए हरपल जीना सीख लिया पंजाबी जीवन ने। शायद इसीलिए पंजाबी जीवन में संघर्ष एक बीज तत्व रहा और पंजाबी जीवन शैली एक जुझारू जीवन शैली बनकर उभरी। समाजशास्त्री तो यह भी मानते हैं कि पंजाब की यह सूफियाना बेफिक्री और कलन्दर जैसी अलमस्ती का मूल भी इसी असुरक्षा की भावना ('सेंस ऑफ इन्सिक्योरिटी') वाले जीवन का बाई प्रोडक्ट है। अगर ऐसा है तो साहित्य के लिए यह छद्मवेष में एक वरदान की तरह ही रहा है।

रोटी की टोकरी कहा जाने वाला पंजाब अपने प्रेम-साहित्य के लिए अधिक याद किया जाता रहा है। आधुनिक पंजाबी साहित्यिक आसमान में भाई वीर सिंह, धनीराम चत्रिक और प्रो. पुरन सिंह, भाई मोहन सिंह जैसे साहित्यकार तो हैं ही, राजिन्दर सिंह बेदी और अमृता प्रीतम भी शीर्ष पर हैं। लेकिन सच मानिए तो पंजाबी साहित्य की वास्तविक उपलब्धि सत्रहवीं और अठारहवीं सदी के मध्यकालीन पुनर्जागरण काल की वो सभी प्रेम-रचनाएँ हैं जिसमें वारिस शाह की 'हीर', हाशिम की 'सस्सी', फजल शाह की 'सोहनी महिवाल', पीलू की 'मिर्जा साहिबां' आदि रचनाएँ शुमार हैं। यह एक सुखद संयोग है कि इसी में शाह अब्दुल लतीफ भिट्टई जैसे सूफी सन्त भी हुए जिनकी 'शाह-जो-रिसालो' में संकलित सात अमर प्रेम रचनाओं— 'सस्सी पुन्नू', 'उमर मारवी', 'मोमल रानो', 'सोहनी महिवाल', 'नूरि जाम तमाची', 'लैला चनेसर', और 'सोरठ राय दियाच' ने पंजाबी साहित्य को प्रेम से सराबोर किया है।

प्रेम एक ऐसा विषय है जिसने न केवल भारतीय साहित्यकारों को बल्कि विश्व भर के साहित्यकारों को अपनी ओर आकृष्ट किया है और यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि विश्व साहित्यिक परिदृश्य में जितनी भी महान रचनाएँ हैं उनमें से ज़्यादातर रचनाएँ प्रेम-साहित्य ही हैं। अब चाहे वह कालिदास का 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' और 'मेघदूतम' हो या कि शेक्सपीयर का 'रोमियो जूलियट' और 'एंटनी-क्लियोपैट्रा', चाहे वह जायसी का 'पदमावत' हो या कि 'एंड्रूय मार्बेल का 'टू हिज क्वॉय मिस्ट्रेस' या फिर कि वारिस शाह की 'हीर' रही हो, सभी प्रेम की भाव-भूमि वाली अमर गाथाएँ हैं। शायद साहित्यकारों और समाजशास्त्रियों को यह बात हमेशा से चौंकाती रही है कि ऐसा क्यों होता है कि इस दुनिया के लाखों-करोड़ों लोगों की भीड़ में किसी एक व्यक्ति को कोई एक व्यक्ति इतना अच्छा लगने लगता है कि वह उस पर अपना सब कुछ उत्सर्ग कर देने को आमादा हो जाता है? यह विश्लेषण का एक रोचक विषय हो सकता है कि आख़िर वे कौन-सी परिस्थितियाँ होती हैं, मनुष्य की वह कौन-सी मानसिक स्थिति होती है जब आदमी हीर-राँझा या सस्सी-पुन्नू जैसी मनोवस्था में चला जाता है? समाज में सदियों से आदमी की इस मनोदशा को प्रेम की मनोदशा कहने का चलन रहा है।

जीव वैज्ञानिक इसे 'फेरोमोन्स' की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि जिस तरह हरेक आदमी के अँगूठे का निशान अलग होता है या उसकी संरचना अलग होती है या फिर यों कहें कि हरेक आदमी की अपनी वैयक्तिकता होती है, ठीक उसी प्रकार हरेक आदमी के ज़िस्म से एक ख़ास क़िस्म की ख़ुशबू निकलती है। इसी ख़ास क़िस्म की ख़ुशबू से एक ख़ास हारमोन्स का रिसाव होता है और आदमी उस अवस्था को प्राप्त करता है। (जीव विज्ञान के विशेषज्ञ इसका विश्लेषण बेहतर कर पाएँगे)।

सन् 1959 में पीटर कार्ल्सन और मार्टिन लूसर नामक वैज्ञानिकों ने रेशम के कीड़ों पर फेरोमोन्स के प्रभाव का विस्तृत अध्ययन करके यह स्थापना दी थी कि ये एक प्रकार के रासायनिक संकेत होते हैं जो किसी भी जीव में नर और मादा के बीच भावनात्मक स्तर पर घटित होने वाली प्रक्रिया के संवाहक होते हैं। शिकागो विश्वविद्यालय में इस विषय पर कई गम्भीर शोध हुए हैं। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण शोध, जिसे वैज्ञानिक मार्था मैक क्लिंटोक के नाम पर 'मैक क्लिंटोक इफेक्ट' के नाम से जाना जाता है। इसी 'मैक क्लिंटोक इफेक्ट' के प्रभाव से मनुष्य काम की उस चरम स्थिति को प्राप्त होता है और यदि ओशो के शब्दों में कहें तो वह वास्तविक परमानन्द की स्थिति में पहुँचता है। इस 'मैक' क्लिंटोक इफेक्ट की साहित्यिक अभिव्यक्ति हमें अमृता प्रीतम के यहाँ मिलती है जहाँ वे चर्चा करती हैं कि ''प्रेमी के पसीने से आती गन्ध में सिगरेट के धुएँ की घुली-मिली ख़ुशबू मदहोश करने वाली होती थी।''

अब चाहे यह फेरोमोन्स का कमाल हो या कि आदम-हौवा द्वारा खाए जाने वाले उस सेब का, प्रेमी-मन की यह अवस्था कवि, लेखकों और शायरों के लिए हमेशा से रचनात्मकता का स्रोत रही है। फिर चाहे वह दामोदर दास और वारिस शाह की 'हीर-राँझा' हो, पीलू की 'मिर्जा-साहिबां' हो या फिर कि हाशिम और शाह अब्दुल लतीफ भिट्टई की 'सस्सी-पुन्नू' हो, ये सभी रचनाएँ प्रेम में सब कुछ उत्सर्ग कर देने की कथाएँ हैं।

यहाँ यह भी कहना समीचीन है कि पंजाब की प्रेम कथाएँ सूफी सन्तों द्वारा रची गयी रचनाएँ हैं और ज़्यादातर स्थितियों में यह मान्यता रही है कि इन प्रेम-कथाओं के पात्र कालान्तर में कभी हुए थे अर्थात् वे इतिहास के वास्तविक चरित्र रहे थे। यह एक रोचक तथ्य है। वस्तुत: यह भारतीय महाकाव्यों की एक विशेषता रही है कि प्रेम-कथाओं के चरित्र प्राय: स्थितियों में वास्तविक ऐतिहासिक चरित्र रहे हैं— अब चाहे वह कालिदास के 'दुष्यन्त' और 'शकुन्तला' हों, शूद्रक के 'वसन्तसेना' और 'चारूदत्त' हों, भवभूति के 'मालती-माधव' हों, जायसी की 'पदमावती' हो या फिर कि पंजाब की प्रेम-कथाओं के चर्चित नायक-नायिकाएँ हों, सभी दन्तकथाओं के अंग रहे हैं और लोक में यह प्रचलित धारणा रही है कि ये सभी चरित्र वास्तव में कभी रहे थे। लेकिन यदि कुछ यूनानी और रोमन साहित्य को छोड़ दें तो विश्व के दूसरे प्रेम-साहित्य में ऐसे चरित्र कम हैं जिनके बारे में सम्बन्धित समाज में ऐसी धारणा मिलती हो। सिर्फ़ रोमियो-जूलियट और ऐंटनी-क्लियोपैट्रा के बारे में कहा जाता है कि वे ऐतिहासिक चरित्र रहे थे जिनको पात्र बनाकर शेक्सपीयर ने सोलहवीं सदी के अन्त में 'रोमियो-जूलियट' और 'ऐंटनी-क्लियोपैट्रा' नामक नाटक लिखा और बाद के वर्षों में जॉन ड्रायडन ने 'ऐंटनी-क्लियोपैट्रा' को पात्र बनाकर 'हीरोइक कपलेट' के फॉर्म में रचना की थी। लेकिन पंजाब की प्रेम कहानियों के पात्रों के बारे में सम्बन्धित समाज में ऐसी धारणा रही है कि वे कवि की कल्पना नहीं बल्कि जीते-जागते इंसान थे जो ऐतिहासिक चरित्र रहे थे।

पंजाब की प्रेम-कथाओं की एक ख़ास विशेषता उनके रचयिताओं का सूफ़ी मतावलम्बी होना भी है। यदि अलबरूनी की पुस्तक 'किताब-उल-हिन्द' को आधार मानें तो कह सकते हैं कि सत्रहवीं और अठारहवीं सदी अर्थात् पंजाब की प्रेम-कथाओं के रचना-काल तक इस्लाम और हिन्दू-दर्शन और विश्वास एक-दूसरे के लिए अपरिचित नहीं थे और वे आपस में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित कर चुके थे। ऐसे में सूफ़ियों ने हिन्दू और इस्लाम के लिए एक समान मंच उपलब्ध कराने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी, यह कहना अतिश्योक्ति नहीं लगती। हालाँकि सूफ़ी स्वयं बारह सिलसिलों में बँटे हुए थे, लेकिन मूल रूप से उनकी विचारधारा एक ही थी जो एक विशेष क़िस्म का रहस्यवाद होता था। सूफ़ियों में पीर (गुरु) और मुरीद (शिष्य) के सम्बन्धों का बड़ा महत्त्व होता था। भारत में सूफ़ियों के बा-शरा सिलसिले की दो शाखाएँ— चिश्ती और सुहरवर्दी सिलसिले का प्रचलन रहा था। भारत में चिश्ती सिलसिले की स्थापना ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती ने की थी। बाद में उनके मुरीद (शिष्य) बख़्तियार काकी ने उत्तर भारत में इस सिलसिले को आगे बढ़ाया था। निजामुद्दीन औलिया इसी सम्प्रदाय के सन्त थे। भारतीय सूफ़ियों में इसी सिलसिले का बोलबाला रहा जो बा-शरा सिलसिले से आते थे अर्थात् ये इस्लामी विधान को मानकर चलने वाले थे। इसीलिए पंजाब की प्रेम-कथाओं में एक प्रकार का इस्लामी रहस्यवाद दीख पड़ता है। 'सस्सी-पुन्नू' की कथा में जब नायिका 'सस्सी' को यह प्रतीत होता है कि उसके साथ धोखा हुआ है तब वह 'पुन्नू' से मिलने नंगे पाँव ही 'किचम' शहर की ओर दौड़ पड़ती है। रेगिस्तान का मीलों लम्बा सफ़र वह तय नहीं कर पाती और मृत्यु को प्राप्त होती है। 'सस्सी-पुन्नू' की कथा में 'सस्सी' की तुलना उस चिड़िये से की जाती है जो अपने ही पंखों से उठती हुई आग में झुलस जाती है और राख के ढेर में तबदील हो जाती है। 'सस्सी-पुन्नू' की कथा में 'सस्सी' की मृत्यु वाले प्रसंग को पढ़ते हुए जायसी की नायिका 'पद्मावती' की याद आती है। ठीक उसी तरह 'सोहनी-महिवाल' में नायक-नायिक का साथ-साथ नदी में डूबना भी उसी रहस्यवाद की अभिव्यक्ति दिखता है जो सूफ़ियों की इश्क़-ए-हक़ीक़ी में परिलक्षित होता है।

ऐसा नहीं है कि साहित्य का यह रहस्यवाद सिर्फ़ सूफ़ियों में ही है। बंगाल का 'बाऊल' संगीत भी जीव और ब्रह्म के बीच के सम्बन्धों का विश्लेषण करता है। अँग्रेज़ी साहित्य में टी.एस. इलियट पहले आलोचक हैं जिन्होंने 'मेटाफिजिकल स्कूल' के अस्तित्व की बात की थी। इलियट ने अपने 'द सेलेक्टेड एसेज' में इस विषय पर लम्बी चर्चा की है। ग्रियर्सन ने भी इस आशय की चर्चा की है। अँग्रेजी में सत्रहवीं सदी का साहित्य 'मेटाफिजिकल स्कूल' के प्रभाव में रहा था। यहाँ प्रेम आध्यात्म की अभिव्यक्ति के रूप में आता है— चाहे जॉर्ज हर्बर्ट का 'वर्च्यू', 'द कॉलर्स' और 'द पूली' हो या हेनरी वॉन का 'द रिट्रिट'। और यह भी एक सुखद संयोग ही है कि इन रचनाओं के कई वर्षों बाद पंजाब में वारिस शाह 'हीर' की रचना करते हैं। वारिस शाह के 'हीर' से कई वर्ष पूर्व अँग्रेज़ी में जॉन डन 'ए हीम टू गॉड द फादर' लिख चुके थे। मसलन, उस दौर में सिर्फ़ पंजाब की प्रेम-कथाओं में ही नहीं बल्कि पूरे अँग्रेज़ी साहित्य में रहस्यवाद का बोलबाला रहा था। जॉन डन के 'लवर्स इनफाइनाइटनेस' में उसी तरह का मांसल सौन्दर्य है, जैसा कि 'मिर्जा-साहिबां' और 'सस्सी-पुन्नू' में देखने को मिलता है। वारिस शाह की रचना 'हीर' में उसी रहस्यवाद की झलक मिलती है जैसी कि अँग्रेज़ी के मिस्टिसिज्म में मिलती है। घटनाओं के स्तर पर भी कई कहानियों में समानता दिखती है, जैसे पीलू के 'मिर्जा-साहिबां' की नायिका ठीक उसी तरह से अपने सीने में खंजर घोंप लेती है, जैसे कि शेक्सपीयर की नायिक जूलिएट अपने सीने में तलवार उतारती है। हालाँकि सूफ़ियों के परकीया प्रेम की अवधारणा उनकी अपनी अवधारणा थी, यह अन्यत्र कहीं और नहीं मिलती है। अँग्रेज़ी में पंजाब की प्रेम कहानियों की तरह परकीया प्रेम का भाव नहीं है, लेकिन आत्मोसर्ग का भाव दोनों साहित्य में समान रूप से मुखर मिलता है।

पंजाब की प्रेम कहानियाँ एक और स्तर पर परम्परागत भारतीय साहित्यिक परिदृश्य के साहित्य से भिन्नता लिए हुई हैं। यदि हम संगम काल के तमिल साहित्य को देखें जिसके दौरान 'शिलप्पदिगरम' या 'मणिमेगलै' आदि की रचना हुई थी या तीसरी-चौथी सदी के गुप्तकाल के दौरान जिसमें कालिदास, शूद्रक आदि हैं या उसके बाद में काल अर्थात् सामन्तवाद-काल के दौरान रचित संस्कृत साहित्य जिसमें भवभूति, विशाखदत्त, हर्ष, महेन्द्र विक्रमवर्मन, राजशेखर आदि महत्त्वपूर्ण हैं को देखें तो एक विशेषता सामान्यत: मिलती है कि उस काल में भारतीय साहित्यकारों ने अपनी रचनाएँ सुखान्त की हैं। भारतीय मानस ने दुखान्त प्रेम-साहित्य को अपनी स्वीकृति नहीं दी थी। अँग्रेज़ी साहित्य में भी यदि 'रोमियो-जूलियट' और 'एंटनी-क्लियोपैट्रा' को छोड़ दें तो दुखान्त प्रेम कहानियाँ नहीं के बराबर मिलती हैं। उन्नीसवीं सदी के अन्त में और बीसवीं सदी के प्रारम्भ में थॉमस हार्डी के यहाँ यह ज़रूर मुख होकर आता है लेकिन यह बहुत बाद के समय (सन् 1840-1928) की बात है और यह भी ग़ौरतलब है कि हार्डी के यहाँ कथानक और चरित्र ऐतिहासिक नहीं है, बल्कि काल्पनिक हैं। किन्तु पंजाब की अधिकतर प्रेम-कथाएँ अनिवार्यत: दुखान्त ही हैं— चाहे 'हीर-रांझा' हो, 'सोहनी-महिवाल' हो, या 'सस्सी-पुन्नू' की कथा हो, सभी दुखान्त हैं। हालाँकि वारिस शाह पर यह आरोप अवश्य लगता रहा है कि उन्होंने 'हीर-रांझा' की सुखान्त कहानी को बदलकर दुखान्त बना दिया है। आज भी पंजाब की महिलाएँ 'हीर' गाते हुए उन सुखान्त क्षणों का वर्णन करती हैं जब हीर और रांझा सुखद वैवाहिक और पारिवारिक जीवन जी रहे होते हैं। लेकिन वारिस शाह की 'हीर' को उसका चाचा खैदन ज़हर दे देता है। वारिस शाह के 'हीर' के नायक-नायिका अन्त में अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। आलोचकों का यह आरोप है कि वारिस शाह ने ऐसा करके 'हीर' को एक क्लासिक रंग दे दिया है।

पंजाब की प्रेम-कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता उन कथाओं की नायिकाओं में निहित है। जैसा की प्रारम्भ में ही चर्चा की गयी है कि पंजाब एक कृषि-प्रधान क्षेत्र है और रहा है, इसलिए यह भी उतना ही सत्य है कि सोच के स्तर पर भी पंजाब का तेवर सामन्ती रहा था, जैसा कि आम कृषि-प्रधान क्षेत्र हुआ करते हैं। उदाहरण के लिए, जब आज के अत्याधुनिक कहे जाने वाले 21वीं सदी के समाज में भी प्रेमी-प्रेमिकाओं को मार डालना सामान्य-सी बात हो गयी-सी दिख रही है, और हैरत तो तब और भी होती है जब इस तरह की हत्या को समर्थन देने वाले लोग भी उसी समाज से उठ खड़े होते हैं (हाल ही में हरियाणा में घटित दुर्भाग्यपूर्ण घटना का सन्दर्भ लें), कोई सामान्य समझ का व्यक्ति भी यह अन्दाज़ा लगा सकता है कि सत्रहवीं और अठारहवीं सदी के दौरान, जब ये रचनाएँ हो रहीं थीं, समाज किस प्रकार का रहा होगा! इस आलोक में यह देखना और इसका विश्लेषण करना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि उन कथाओं की नायिकाओं में कितना जुझारूपन था!

पंजाब की इन प्रेम-कथाओं में एक बात ग़ौरतलब है कि लगभग सभी रचनाओं में नायिकाएँ जुझारू हैं और प्रेम के मुखर इज़हार में नायकों से ज़्यादा बढ़-चढ़कर आगे आती हैं। मध्यकालीन समाज वर्जनाओं में जकड़ा हुआ समाज था जहाँ महिलाओं की स्थिति नारकीय थी। प्रेम का मुखर इज़हार तो दूर वे विनिमय की वस्तु बनी हुई अश्वेत ग़ुलामों से भी बदतर ज़िन्दगी जी रही थीं। ऐसे में, एक 'हीर' मिलती है जो मुखर होकर कहती है कि "मुझे हीर नहीं, धीधो रांझा पुकारो"। यह 'हीर' ही होती है— जब जबरन उसकी शादी की जा रही होती है तब शादी की वेदी पर बैठकर भी वह काज़ी की सत्ता को चुनौती देने का साहस रखती है। हीर कहती है, "काजी साहब, दुख इस बात का है कि आप जैसे लोग बड़ी आसानी से अपने धर्म और विश्वास को गिरवी रख देते हैं।" यह बहुत महत्त्वपूर्ण इस अर्थ में भी है क्योंकि वह काजी महज एक काजी नहीं है बल्कि वह सामाजिक वर्जनाओं और जड़ता का प्रतीक है, वह प्रतीक है उस मध्ययुगीन वर्जनाओं का जिसे 'हीर' खुलेआम चुनौती देती है। कथा का यह प्रसंग भी महत्त्वपूर्ण है कि हीर सामाजिक और धार्मिक वर्जनाओं के प्रतीक बन चुके अकेले काजी को ही चुनौती नहीं देती बल्कि वह अपने साथियों की सेना बनाकर सत्ता के प्रतीक सरदार नूरा से भी लड़ती है और उसे परास्त करती है।

जब 'सस्सी-पुन्नू' की 'सस्सी' को यह मालूम हो जाता है कि वह बादशाह आदमखान की बेटी है जो परिस्थितिवश उस धोबी के घर पलती-बढ़ती है, तब वह उस धोबी को छोड़कर नहीं चली जाती बल्कि उसी घर में रहती है। इस तरह 'सस्सी' आत्मोसर्ग और नैतिकता का एक उच्चस्तरीय 'पैराडाइम' गढ़ती है।

इसी तरह 'सोहनी-महिवाल' का इज़्ज़त बेग़ का फकीर हो जाता है और नदी के पार एक झोंपड़ी में रहने लगता है, लेकिन 'सोहनी' वैराग नहीं लेती, वह लड़ती है परिस्थितियों से, इस समाज से और इस समाज की वर्जनाओं से। लेकिन यह कहने का अर्थ यह नहीं है कि इज़्ज़त बेग अर्थात् महिवाल में आत्मोसर्ग का भाव नहीं क्योंकि यह महिवाल ही होता है जो सोहनी के लिए मछली पकड़ने हेतु अपने शरीर का मांस काट डालता है। कथा में सोहनी का आगे बढ़कर नदी पार करना और फिर उसी दौरान डूब कर मर जाना कथा के कई आयामों की परत-दर-परत मीमांसा करता है।

पंजाब की इन कथाओं में सामाजिक बन्धनों और वर्जनाओं के विरुद्ध नायिकाओं द्वारा किया जाने वाला विरोध नायकों से ज़्यादा तल्ख और मुखर दिखता है। 'काजी' और 'नूरा' से लड़ने का काम 'हीर' करती है जबकि कीचम शहर की ओर नंगे पाँव दौड़कर 'सस्सी' ही जाती है। उसी तरह, नदी पार करने का साहस 'सोहनी' दिखाती है जबकि प्रेमी के साथ घोड़े पर चढ़कर भाग जाने और अपने ही सीने से खंजर घोंप लेने का साहस 'साहिबां' ही दिखा पाती है।

यह एक ध्यान देने वाली बात है कि इन कथाओं की नायिकाएँ कहीं भी समाज से भागती नहीं हैं। उनमें पलायन नहीं है। उनमें एक नकार है— वर्जनाओं के प्रति, सामाजिक जड़ताओं के प्रति। ये नायिकायें मरती भी हैं तो स्वयं नहीं मरती, कहीं आत्महत्या नहीं करतीं बल्कि उन्हें मारा जाता है धोखे से या फिर कि उन्हें मजबूर किया जाता है मर जाने को। 'साहिबा' भी यदि अपने सीने में खंजर घोंपती है तो इसलिए नहीं कि वह 'मिर्जा' को मार डालने वाले अपने भाइयों से लड़ नहीं पाती, बल्कि इसलिए कि वह एक पवित्र आत्मा होती है और ख़ूनखराबा नहीं करना चाहती। इन कहानियों का विश्लेषण और भी कई कोणों से किया जा सकता है और विद्वानों द्वारा आगे किया जाएगा भी लेकिन यह एक तथ्य है कि पंजाब की ये कथाएँ मूलत: नायिकाओं की कथाएँ हैं, नायिकाओं को ध्यान में रखकर लिखी गयी हैं और इसमें सन्देह नहीं कि ये कथाएँ सदियों तक पंजाब के नारी-समाज का सर गर्व से ऊँचा रखेंगी।

मो. : 9868009750

लैला मजनू



बसरे के सरदार की इकलौती बेटी लैला की सुन्दरता किसी परिचय का मोहताज नहीं थी। उसकी एक दासी ने अभी हाल ही में किसी से प्यार किया था और उसके अन्दर से संगीत का कोई सोता फूट निकला था। एक दिन उसने लैला से उस प्रेमियों के चश्मे का जिक्र किया, जहाँ प्रेमी चाँद की चाँदनी में मिलते और मुरादें पाते थे।

''कहाँ है वह चश्मा?'' लैला ने आह भरकर पूछा।

''जहाँ आपके बाग की हद खत्म होती है, कुछ दूर जाने पर, खुली जगह यह चश्मा है।''

कोई नहीं जानता था लैला उस चश्मे पर क्यों और किससे मिलना चाहती थी। वह यमन के सरदार का बेटा था जिसे लैला ने कई बार रवा-दवाँ देखा था और अपना दिल दे दिया था। क्या वह लैला को जानता था? क्या वह भी चश्मे पर लैला से मिलना चाहता था? लेकिन यमन के सरदार के साथ तो बसरे के सरदार की जाती दुश्मनी थी। फिर कैसे होगा उनका मिलन?

कई राजकुमार लैला का हाथ माँगने आते, पर उसका पिता बेटी को प्यार की ओर से लापरवाह-सा देखकर कह देता, ''लैला अभी बच्ची है। बड़ी हो ले, फिर देखा जाएगा।''

पर लैला की लापरवाही बचपन की निशानी नहीं थी, वह तो प्यार में सुध-बुध खोने की निशानी थी। उसने फाख्ताओं का एक जोड़ा पाला हुआ था। दूधिया सफेद फाख्ताएँ थीं वे। उनकी प्यार-क्रीड़ाएँ देखकर वह भविष्य में होने वाली अपनी प्यार क्रीड़ाओं की कल्पना करती, और इस प्रकार अपने दिल को तसल्ली देती।

पर उसका यह ख़्याल बिलकुल ग़लत था कि उनकी ख़ानदानी दुश्मनी का कैस पर भी असर होगा। और जितना उसका ख़्याल ग़लत था, उतना ही सही उसका यह सोचना था कि उसकी आँखों की नज़र लम्बे फासले तय करके, दो बाँहों की तरह उससे लिपट जाती थी। वह कैस के निकट नहीं गयी थी। हाँ, कई और राजकुमारों के साथ घूमते हुए उसने उसे देखा था, जबकि वे सब मिलकर शिकार खेलने के लिए जाया करते थे। तब लैला को लगता था कि उनसे आँख चुराकर, इतनी दूर से भी, कैस अपनी नज़र की बाँहें लैला तक पहुँचा देता था। ऐसी थी उसकी नज़र! ऐसी रोशनी जैसी नज़रवाला आदमी उसकी दुनिया में पहले कभी नहीं आया था।

फिर इस नज़र से प्यार का कोई मोती, चाहे वह रात के समय ही चमकनेवाला हो, कैसे छिपा रह सकता था! कैस ने ज़ैद को अपने दिल के अरमान बता दिये थे। ज़ैद था तो उसका नौकर, पर आशिक़ किसी को नौकर नहीं रखते, उसे दिल का महरम बनाकर रखते हैं। और ज़ैद तो महरमों का भी महरम था। उससे कैस ने सलाह ली, ''अगर मैं बसरे के सरदार के पास चला जाऊँ, और ख़ानदानी दुश्मनी की पोटली उसके पाँवों में रखकर कहूँ कि वह मुझे भी लैला की तरह अपना बना ले?''

''पर मेरे शहजादे, रुतबे में बेशक वह हमारे यमन के सरदार से बहुत छोटा है, पर जिद्द में बहुत बड़ा है। मुझे डर है, वह आपकी पूरी

इज्ज़त नहीं करेगा।''

''तो फिर, ज़ैद, मुझे वह फ़ाख़्ताओंवाली बात बताओ,'' कैस ने ठंडी सांस लेकर कहा। ''क्या सचमुच लैला रोज़ रात को एक फ़ाख़्ता उड़ाती है?''

''इस बात को कौन नहीं जानता? उसके महल के आसपास बसनेवाली हर किसी की जवानी कू-कू करने लग गयी है।''

''तो फिर जाओ तुम, एक रात उस पेड़ पर छिपकर बैठ जाओ, और उस फ़ाख़्ता को पकड़कर मेरे पास ले आओ। पकड़ सकोगे?'' कैस की आँखों में कोई आशा चमकी।

''अपने कैस के लिए मैं क्या नहीं कर सकता! आपके पास आने से पहले जंगल ही मेरा घर-बार था, और परिन्दे मेरा इश्क थे।''



दूसरी रात लैला की फ़ाख़्ता एक ही बार कू-कू करके चुप हो गयी। लैला ने कई बार कान लगाकर सुना, खिड़की में से गर्दन निकालकर इधर-उधर देखा; पर उस पेड़ की ओर से कोई आवाज़ न आयी। आख़िर उसने अपने सीने से लगायी हुई दूसरी फ़ाख़्ता को भी उड़ा दिया ताकि उसे ढूँढकर लाये। पर उसकी कू-कू अन्त में जैसे दर्द की हिचकी बन गयी, और वह लौटकर लैला के पास आ गयी। लैला ने उसे सीने से लगाकर प्यार किया, पर वह उसे तसल्ली न दे सकी, न ख़ुद तसल्ली पा सकी। हाँ, उसे यह तसल्ली ज़रूर हुई कि वे दोनों एक ही ग़म में डूबी हुई हैं।

फ़ाख़्ता का वियोग लैला का अपना वियोग बन गया। उस पेड़ पर फ़ाख़्ताओं के प्यार-मिलन में वह अपना प्यार-मिलन देखा करती थी। दुआएँ की गयीं कि ख़ुदा लैला की फ़ाख़्ता को उसकी साथन से मिला दे।

दुआ क़बूल हुई। अगली रात ही उस पेड़ परप्यार भरी कू-कू सुनायी दी। लैला ने बड़ी उत्सुकता से खिड़की खोली और दूसरी फ़ाख़्ता की चोंच को चूमकर उसे उड़ा दिया। चाँद की सोई हुई चाँदनी मचल उठी, जब दो विरही आपस में मिलकर कू-कू करने लगे। कुछ ही देर में दोनों फ़ाख़्ताएँ पंख फड़फड़ाती हुई उसकी खिड़की के पास आयीं। लैला ने दोनों को पकड़कर अपने धड़कते हुए सीने से लगा लिया।

और यह क्या था— फ़ाख़्ता के पंजे में बँधा हुआ? शमा की रोशनी में उसने उसे खोलकर देखा। वह एक खत था। कैस का खत। लिखा था— आज रात मैं चश्मे पर तुम्हारा इन्तज़ार करूँगा।

लैला सोचने लगी, जाऊँ या न जाऊँ? चश्मे का रास्ता वह जानती नहीं थी।

एक पेड़ की छाया में वह खड़ी हो गयी, जिस पर चाँद की नाजुक किरणों ने नक्काशी की हुई थी। उसका दिल पहली मुलाक़ात के चाव में धड़क रहा था।

लैला पेड़ की छाया में से निकल आयी। वे आँखें उसने पहचान ली थीं, जिनके समान आँखें उसे और कहीं दिखाई नहीं दी थी, और जिनकी नज़र में बाँहों के आलिंगन का आभास होता था।

दोनों में से किसी को भी पता नहीं लगा कि उनके बीच का फासला कब मिट गया, और कैसे अछूती और अपरिचित आत्माएँ एक-दूसरी को ऐसे पहचान गयीं जैसे उनका बहुत पुराना परिचय हो।

रात के मोती पर सपनों का स्वामी मुस्कराया, और कैस की प्यार-तरंग का साथ देने के लिए शान्त चश्मा एकबारगी छलक उठा। दोनों ने दिलों का सौदा कर लिया, दोनों की आत्माएँ एक-दूसरी में अभेद हो गयीं। उनकी इस मुलाक़ात को कई प्रेमियों ने चाँद के सीने पर अंकित हुए देखा है और चश्मे के ताल में उसकी कहानी सुनी है।

इस चश्मे पर कई बार कैस और लैला मिले। और एक बार, तकदीर के उल्टा चलने की आदत से अनजान बने हुए, वे जंगल में घूम रहे थे।

''लैला,'' कैस ने कहा, ''अगर तुम सिर्फ़ मेरे प्यार की दुनिया में रहना मंजूर कर लो!''

''मेरे कैस की जो भी दुनिया होगी, वह मुझे मंजूर होगी,'' लैला ने कहा।

''आओ लैला, इस हसद और दुश्मनियों की दुनिया को छोड़ दें। चलो, सामने के रेगिस्तान के अनन्त फैलाव में खो जायें। वहाँ मैं तुम्हारे लिए एक कुटिया बनाऊँगा। जो चाहोगी, वही लाकर दूँगा। हमारे जैसे ही हमारे पड़ोसी होंगे। फ़ुर्सत के वक़्त तुम्हारी फ़ाख़्ताओं की तरह हम प्यार करेंगे। तुम सुबह की तरह सदा-सदा मुस्कराना, मैं आज़ाद किरणों का ताज तुम्हें पहनाऊँगा...''

''कैस, मैं तैयार हूँ। मुझे अपने साथ ले चलो, ताकि मुझे कोई और अपने साथ खींचकर न ले जाए।''

''तो फिर और इन्तज़ार कैसा? चलो, अभी चलें!''

''नहीं, कैस, कल! आज रात मैं अपनी फ़ाख़्ताओं को अलविदा कह लूँ।''

''अच्छा, जैसा तुम चाहो। कल, इसी वक़्त, इसी जगह, मैं तुम्हारा इन्तज़ार करूँगा।''

लैला ने महल में आकर सोई हुई फ़ाख़्ताओं की ओर चुम्बन फेंका। और फिर मीठी नींद में खो गयी। नींद में भी उसे कैसे हिलोरे दिये। नींद में ही, रेगिस्तान में कुटिया बन गयी। कैस उसे सामने से आता हुआ दिखायी दिया। सभी काम छोड़कर वह दरवाज़े की ओर लपकी। उसके चेहरे पर उसने एक स्वर्ग देखा! कैस ने अपने हाथों में उठायी हुई चीज़ें नीचे रखकर लैला की कमर में बाँहें डाल दीं...।

आँखें खुल गयीं। लैला ने खिड़की में से बाहर देखा, चाँद अभी ढला नहीं था। काफ़ी रात बाक़ी रहती थी। उसे फिर नींद आ गयी। ...उसने अपनी कुटिया में झाड़ू लगाया, कैस के कपड़े धोए, उसके लिए पानी गर्म किया। चूल्हे में आग नाच रही थी। उसके ताल पर कोई गीत लैला के होंठों से फूट पड़ा...। नहीं, नहीं, अभी सुबह नही हुई; और लैला फिर सो गयी। कैस अपने कुदाल और कुल्हाड़े पर से मिट्टी झाड़ रहा था। लैला एक रकावी उठाये आ रही थी, जिसमें से भाप उठ रही थी। ''कैसी ख़ुशबू है यह!'' कैस ने कहा, ''यह तुम्हारी ख़ुशबू है लैला, या तुम्हारे पकवान की?'' लैला के होंठों पर मुस्कराहट आयी और जैसे झरने लगी। कैस ने उसके नीचे अपने दिल का प्याला धर दिया। प्याले का किनारा लैला के होंठों से छूने की देर थी कि लैला का सारा शरीर काँप उठा। नींद टूट गयी। फिर कोशिश करने पर भी नींद नहीं आयी। दिन चढ़ आया था। सपने पीछे रह गये थे।

कल रात, जब वह चश्मे की ओर गयी थी, तो उसने अपने पीछे पत्तों की आवाज़ सुनी थी और एक-दो बार मुड़कर पीछे देखा भी था। 'हवा होगी', उसने मन में कहा था। पर वह हवा नहीं थी, बल्कि राजकुमार इब्बन का जासूस था। इब्बन कई बार लैला का हाथ उसके पिता से माँग चुका था। पिता कहता था, ''लैला जवान हो ले।'' पर इब्बन को शक़ हो गया था कि लैला के दिल पर किसी ने कब्ज़ा किया हुआ है।

इब्बन के जासूस ने कैस और लैला की बातें उसे आकर सुनायीं। इब्बन ने लैला के पिता को बता दिया। पिता तैश में आ गया। पर लैला उसके दिल का टुकड़ा थी। गुस्से और ईर्ष्या की आग में जलते हुए उसके दिल पर लैला ने जैसे अपने प्यार का पानी छिड़क दिया। सो लैला को वह कुछ न कह सका। सिर्फ़ यही कह सका कि दोपहर से पहले उसने लैला को वहाँ से अपने पहाड़ी मकान में भेजने का हुक्म दे दिया।

दिन-भर की प्रतीक्षा के बाद रात के आसमान पर चाँद चढ़ा। चश्मे की सफ़ेद रूह को, कैस अपने दिल का हर पहलू दिखाकर अपने चुनाव की इज़ाज़त चाह रहा था। ''बेशक़, शिकार खेलने के अलावा मैंने ओर कोई काम नहीं किया है, पर मेरा दिल कहता है कि जब लैला मेरे साथ होगी और मेरी तरफ़ देख रही होगी तो मैं नयी क़िस्मतों को जन्म दे सकता हूँ, रेगिस्तान को गुलशन बना सकता हूँ, और लैला की रूह में तारों-भरा आसमान चमका सकता हूँ।''

और उस समय लैला उससे बहुत दूर थी, पहाड़ों में घिरे हुए आसमान के तारों को देख रही थी।

कैस हर आहट पर चौंककर उधर देखता। पर कोई नहीं आ रहा था। सिर्फ़ हवा ही पत्तों से अठखेलियाँ कर रही थी।

''वह नहीं आयी! आह, एक बेमिसाल नक्शा मिट गया!'' उसके दिल से एक ठंडी आह निकली।

''अगर इतने पक्के वादे के बाद वह नहीं आयी तो फिर कभी भी नहीं आएगी...।''

सूरज की पहली किरण के साथ कैस की आशा मिट गयी। उसके मुख से चीख़ निकली, ''हाय लैला!'' तब सारा जंगल गूँज उठा। फिर ''लैला, लैला!'' कहता हुआ कैस जंगलों में चला गया।

ज़ैद अपने राजकुमार को ढूँढ़ने के लिए निकला। उसे ढूँढ़ना मुश्किल नहीं था। हर पत्ता कैस की कहानी दुहरा रहा था। कैस को ढूँढ़कर ज़ैद वापस घर ले आया। हकीमों ने कहा, ''कोई बीमारी नहीं है, बस इश्क़ अपनी शिद्दत में जुनून बन गया है।''

लोगों ने कैस को मजनू कहना शुरू कर दिया।

पर जब ज़ैद ने पता लगाकर उसे बताया कि क्यों लैला उस रात चश्मे पर नहीं आयी थी, और किस तरह उसकी याद में, पहाड़ों के पीछे अपने-आपको तबाह कर रही थी तो कैस का जुनून एकदम ठीक हो गया।

कैस अपने पिता की आँखों का तारा था। हर व्यक्ति ही उसे बहुत चाहता था। उस जैसा निश्छल और प्यार-भरा दिल एक अरसे से किसी का देखा नहीं गया था। पिता ने फ़ैसला कर लिया कि वह बेटे पर अपनी ज़िद क़ुर्बान कर देगा, और बसरे के सरदार के पास जाकर उसके लिए लैला का हाथ माँगेगा। बसरा उसके राज्य से कहीं छोटा राज्य था। उसने सोचा कि दोस्ती का हाथ बढ़ाकर वह दुश्मनी की दीवार को धक्का दे देगा और उसे वह ढेरी कर देगा।

उसकी प्रजा का ख़्याल भी यही था कि अपने पास चलकर आये दुश्मन को देखकर बसरे का सरदार सारी दुश्मनी भूल जाएगा।

पर बसरे के सरदार को लगा कि यमन के सरदार का अपमान करने का यह बहुत अच्छा मौक़ा है। रस्मी स्वागत के बाद उसकी माँग का उत्तर बसरे के सरदार ने इस प्रकार दिया :

''आपकी माँग मेरे सिर-माथे पर— पर मैंने सुना है कि कैस मजनू बन गया है। पहले उसका इलाज करा लीजिए। मेरी लैला बेशक़ जवान हो गयी है, फिर भी मैं कुछ देर इन्तज़ार कर लूँगा।''

यमन के सरदार को सुनकर बहुत दुःख हुआ। रह-रहकर उसका हाथ अपनी तलवार की मूठ पर जाना चाहता था। और अपने उस अपमान का बदला लेना चाहता था, पर बेटे का ख़्याल उसके हाथ को रोक देता था।

वह लौटकर अपने घर आया। पता लगा कि कैस को उनके वहाँ जाने की ख़बर मिल गयी थी। सो लड़ाई के ख़तरे से बचने के लिए वह दुआ माँगने मक्का चला गया था।

पिता भी उसके पीछे गया। रास्ते में उसने अपने दोस्त-राजाओं से सलाह-मशविरा किया।

उन्होंने भी बसरे के सरदार के रवैये की निन्दा की। और शाह नौफाल ने ज़िम्मा लिया कि वह बसरे जाकर उसे समझाएगा।

उसने शाह नौफाल का कहना भी नहीं माना। तब शाह नौफाल ने उसे धमकी दी। बसरे के सरदार ने उसकी धमकी मंजूर कर ली। राजकुमार इब्बन ने एक हज़ार सिपाही उसकी मदद के लिए भेजे। पर एक ही दिन में बसरे की फ़ौजें भाग खड़ी हुईं।

यमन का सरदार और शाह नौफाल उसे फिर समझाने आये।

''दो ख़ानदानों में दुश्मनी की बढ़ती हुई खाई पर लैला पुल बन सकती है। दुश्मनी की तलवार फेंककर हम दोस्ती में आपका हाथ पकड़ने के ख़्वाहिशमन्द हैं। हाँ कहिए, बसरे के अच्छे सरदार! लोग भी बच जाएँगे, और दो ख़ानदानों पर दोस्ती का नया सूरज चढ़ेगा।''

पर दुश्मनी का ज़हर बसरे के सरदार की नस-नस में समा चुका था। उसने कड़ककर कहा, ''मैं हार गया हूँ इसमें शक़ नहीं; पर यह बता दूँ कि लैला को आप जीत नहीं सकेंगे। मेरे एक इशारे पर लैला लाश बना दी जाएगी। लैला को ज़िन्दा मेरे हाथ से आप नहीं ले जा सकेंगे।''

शाह नौफाल और यमन का सरदार सोचने लगे। आख़िर उन्होंने एक दिन की मोहलत और माँगी। ''कल इसी वक़्त हम फिर आएँगे। अगर आपने अक्लमन्दी-भरा फैसला न किया तो सिर्फ़ एक ही शर्त पर लैला को अपने पास रख सकेंगे— कि आपको हमारी अतायत क़बूल करनी पड़ेगी।''

बसरे के सरदार ने इब्बन से सलाह की। इब्बन भी लैला को छोड़ना नहीं चाहता था। उसके पास तीन हज़ार सिपाही अभी और थे। उसी मदद के वादे ने बसरे के सरदर की हिम्मत बँधायी। ''बसरा न अतायत क़बूल करेगा, न लैला देगा। अगर मैं हार गया तो लैला की लाश ही आपके हाथ लगेगी।''

यह जवाब सुनकर शाह नौफाल और यमन का सरदार आग-बबूले होकर लौटने ही लगे थे कि एक सवार ने हाँफते हुए घोड़े से उतरकर ख़बर दी कि अमुक स्थान पर एक पेड़ के पास उसने कैस को मरे हुए देखा है। वह जैसे पेड़ से टक्करें मारकर मरा है।

यमन ने सरदार ने सुना तो बेहोश होकर गिर पड़ा। शाह नौफाल ने उसे सँभाला। फिर ललकारकर बसरे के सरदार से कहा:

''ओ कैस के क़ातिल! तुम्हें बदला देना होगा।''

इब्बन ने कई आदमी जंगल में भेजे हुए थे ताकि कैस को ढूँढ़कर क़त्ल कर दिया जाए। कैस की मौत की ख़बर का सुनाया जाना भी उसी की साजिश थी कि ख़बर सुनकर यमन के सरदार का दिल टूट जाए और वह लड़ न सके।

और उसी यह चाल सफल हुई। लैला को जीतने का सवाल ख़त्म हो गया, और कैस की मौत की ख़बर ने कोई आशा बाक़ी न रहने दी। यमन की फ़ौज का जोश कम हो गया।

लड़ाई हो रही थी। दोनों ओर की फ़ौजों की तलवारों के बीच में लैला का दिल ज़ख़्मी हो रहा था। कैस की फ़ौज का भी हर सिपाही उसे अपना ही प्रतीत हो रहा था, और अपने पिता की हार में उसे अपनी और अपने पिता की मौत दिखाई दे रही थी।

यमन के सरदार को बेटे की मौत का ग़म कमजोर बना रहा था। इब्बन को उसकी साजिश की सफलता हौसला दे रही थी। इब्बन की जीत होने लगी। यमन का सरदार मारा गया। शाह नौफाल ने अपनी तलवार से अपना सिर काट डाला।

बसरे के सरदार को भी गहरे ज़ख़्म लगे।

दूसरे दिन राज्यों का हुलिया ही बदल गया। सारे इलाक़े पर इब्बन की हुकूमत का ऐलान हो गया, क्योंकि बसरे का सरदार भी जीवित नहीं रहा था। अब लैला को न अपने पिता की आशा थी, न कैस की। सो उसने अपनी प्रजा के ज़ोर देने पर इब्बन के साथ शादी करनी मंजूर कर ली।

कैस अब बिल्कुल ही बेहाल हो चुका था; वह अपना मुल्क छोड़कर वहाँ से कहीं दूर चला गया। ज़ैद ने लैला के महल में नौकरी कर ली। लैला के लिए वह कैस की निशानी था। वह जानता था कि कैस मरा नहीं है। वह सिर्फ़ यह जानना चाहता था कि लैला को अपना कैस याद है या नहीं। लैला का इश्क़ जंगल की वह आग था जो एक सिरे से शुरू होकर दूसरे सिरे तक सबकुछ जलाकर राख करने पर ही बुझती है।

ज़ैद कैस का पता लगाता रहा और एक साल में ही वह उसे बदले हुए भेस में लैला के शहर में ले आया। लैला को पता लगा तो उसे ख़ुशी से ज़्यादा उदासी हुई। एक बार सीने पर हाथ मारकर उसने ख़ुद से कहा :

''ओ बदनसीब लैला, कैस तुम्हारा ज़िन्दा है, और तुम?''

कैस ने उसे सन्देश भेजा था कि रात को वह प्रेमियों के चश्मे पर आये। दिनभर वह उन दिनों की याद करती रही, जब उसके कँवारे सीने में कोई समुद्र हिलोरें लिया करता था, फ़ाख़्ताँ प्यार-कल्लोल किया करती थीं, उसके दिल का चोर उसकी एक फ़ाख़्ता चुराकर ले गया था, पर उसके दिल की बजाय अपना दिल फ़ाख़्ता के पंजे में छिपाकर लौटा गया था। ओह! चाँद की नज़र तले, प्रेमियों के चश्मे पर।

लैला बुर्का पहनकर महल में से निकली। वह तेज़ी से चश्मे की ओर जा रही थी। अपने बाग़ की हद पर पहुँचते ही जैसे उसे किसी ने रोक लिया। यह क्या? एकाएक उसका दिल धड़कने लगा।

''मैं लैला तो रही नहीं, लोगों की मलिका बन गयी हूँ...।''

दिल में पीड़ा उठी। वह एक पेड़ तले बैठ गयी। पेड़ की छाया हवा के कारण धीरे-धीरे हिल रही थी। लैला को लगा, वह उसे कुछ कह रही थी : ''लोग कहेंगे, उनकी मलका बेवफ़ा निकली। लोगों की गैरत ज़ख़्मी हो जाएगी। हर कोई कहेगा कि मलका का इखलाक अच्छा नहीं है।''

दिल की पीड़ा अब एक शून्यता बन गयी। लैला की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मुड़कर देखा— उसका महल अपनी मलिका जैसे नाराज़गी से देख रहा था।

वह लौट गयी। कैसी सारी रात प्रतीक्षा करता रहा।

लैला ने ज़ैद को कहा कि वह आशिकों के सरदार से माफ़ी माँग ले। पर कैस ने जवाब भेजा:

"तुम ठीक थी लैला। ग़लत मैं था, जिसने तुम्हें इस हद तक पर किया।"

और कैस फिर दूर, बहुत दूर, चला गया।

लैला मलका बनकर अपने फर्ज़ को निभारती रही। पर इब्वन का सिर इतने बड़े राज्य और हुकूमत के नशे ने फिरा दिया। वह बहुत विलासी बन गया। कई रोग उसे लग गये। दो-तीन सालों में ही उसका फौलादी शरीर फूल गया। अब उसमें न ईर्ष्या की आग थी, न प्यार की भावना। आख़िर वह मर गया; लैला विधवा हो गयी।

कैस को ज़ैद ने ख़बर पहुँचा दी। घनघोर बादलों में से आख़िर कोई किरण दिखायी दी। वह एक सौदागर के भेस में लैला के शहर में आया। और ज़ैद को उसने कहा :

"देखना, मेरी लैला को किसी उलझन में न डाल देना। वह शोक मना रही है। शोक के अभी साढ़े चार महीने बाक़ी हैं। उसके कानों में मेरी ख़बर तक न पहुँचे।"

लैला के शहर में छिपा हुआ कैस एक-एक क्षण गिनता हुआ चार महीने तक प्रतीक्षा करता रहा। लैला के रस्मी शोक़ का एक दिन भी वह घटाना नहीं चाहता था; उसके मन में किसी क़िस्म की जल्दी नहीं थी। रोज़ वह ज़ैद से लैला का हाल सुनता रहा। लैला अपने लोगों को किसी तरह भी निराश नहीं करना चाहती थी। वह नहीं चाहती थी कि लोग कहें; "कितनी जल्दबाज़ी की है हमारी मलका ने!"

आख़िर शोक़ का अन्तिम दिन भी बीत गया। अगले दिन सुबह के समय लोग अपनी दुकानें सजा रहे थे। महल में भी ख़ुशियाँ थीं। आज बाँदी ने लैला को काला लिबास नहीं पहनाया था। उसे दूधिया सफ़ेद लिबास पहनाया गया। दिन-भर वह अपनी खिड़की में बैठी रही। फ़ाख़्ताओं को वह कब की उड़ा चुकी थी। वह नहीं चाहती थी कि उसे शोक़ की छाया उनके नित्य नये प्यार पर पड़े।

पर बार-बार उसी नज़र उस पेड़ की ओर चली जाती थी, जिस पर वह अपने दिल की आवाज़ फ़ाख़्ताओं की कू-कू में सुना करती थी। उसे उस रात की याद आयी जब कैस के बुलाने पर वह प्रेमियों के चश्मे की ओर गयी थी और रास्ते से ही लौट आयी थी। "तब मैं आज़ाद नहीं थी, कैस," उसने मन में कहा, जैसे वह कैस को अपनी मजबूरी बता रही हो। और उसने अपने बदले हुए लिबास की ओर देखा। शोक के छ: महीने बीत चुके थे। "आह! आह!" और वह सिर से पाँवों तक काँप उठी।

उसी समय बाँदी ने एक खत लाकर उसे दिया, जो ज़ैद ने उसे दिया था। लैला ने उसे पढ़ा और फिर सीने से लगा लिया। ज़ैद ने जवाब के लिए सन्देश भेजा, पर लैला ने जवाब नहीं दिया।

तो भी कैस प्रेमियों के चश्मे पर पहुँच गया। उस चश्मे को वह अपना काबा समझता था। उसके दिल में डर था कि कहीं फर्ज़ की बेड़ी लैला के क़दमों को रोक न ले। प्रतीक्षा असह्य होती जा रही थी। पर आह! वह चौंका! यह कौन है? उसकी दुनिया! उसकी लैला! ... उसने दौड़कर लैला को अपनी बाँहों में भर लिया।

कोई स्वर्ग था उस स्पर्श में। उस स्वर्ग से लैला एक क्षण के लिए भी अलग होना नहीं चाहती थी। उसे अपनी रूह में समा लेना चाहती थी। और कैस के होंठ आँखों से अलग हुए तो लैला ने आँखें खोलकर उसकी ओर देखा।

प्यार की शिद्दत ने कैस को पक्का मजनू बना दिया। जोवह उम्र-भर नहीं पा सका था, उस एक क्षण में पा गया। लैला को वही छोड़कर हर पेड़ और पौधे में लैला को देखता, उसे आलिंगन में भरता, और 'लैला! लैला!' पुकारता हुआ जंगलों में खो गया।

लैला अपने कैस को खोकर वापस लौटी। इब्वन के शोक की एक मर्यादा थी, पर कैस के शोक की कोई मर्यादा नहीं थी।

जंगलों में पहरे लग गये। सभी जंगल पूज्य बन गये। पूरे देश में फरमान ज़ारी कर दिया गया:

"कोई पत्थर से न मारे मेरे दीवाने को।"

ज़ैद छाया की तरह कैस के साथ रहा। एक बार अच्छा मौक़ा जानकर उसने कैस को लैला के पास जाने के लिए कहा। कैस हँस पड़ा। "तुम भी मुझे मजनू ही समझते हो? मैं लैला से अलग कब हुआ हूँ? अलग न हो सकने की ताक़त अपने दिल में न देखकर ही मैंने लैला को अपने अन्दर समा लिया था। मेरी लैला..."

और "लैला! लैला!" की पुकार से जंगल गूँज उठा।

अब लैला के जीवन की डोर कमजोर पड़ने लगी। उसके दु:खों से भरे जीवन को कोई आशा थामे हुए थी। अब वह आशा जाती रही थी। उसका चेहरा पीला पड़ गया था। शरीर निढाल बन गया था। उसकी सारी शक्ति जाती रही। शरीर जैसे खंडहर बन गया। प्यार की रूह उसे छोड़ने के लिए तैयार बैठी थी।

एक दिन सुबह कैस के अन्तिम पत्र को अपने सामने रखकर लैला लेट गयी और ज़ैद को बुलाकर उसने कहा, "मेरी क़ब्र वहाँ बनाना जहाँ मैं कैस को पहली बार मिली थी। और फिर कैस को कहना कि मेरी क़ब्र पर आयें, और सामने डूबते आसमान की ओर देखें। वहाँ मैं इन्तज़ार कर रही हूँगी।"

और जिन आँखों में कैस के सिवा कोई समाया नहीं था, वे आँखें हमेशा के लिए बन्द हो गयीं।

मजनू को ज़ैद ने लैला का सन्देश दिया। मजनू फिर कैस बन गया। लैला की पुकार होंठों पर अटक गयी।

वह तेज़ नहीं चल सकता था। ज़ैद उसे सहारा देकर लैला के क़ब्र के पास धीरे-धीरे ले जा रहा था।

कैस ने लैला की क़ब्र को चूमा। और उस तक पहुँचने के लिए वह बेतहाशा दौड़ा। पर तभी क़ब्र के पत्थर से उसका पाँव टकराया और वह गिर पड़ा।

और जब ज़ैद उसके पास पहुँचा, कैस लैला के पास पहुँच चुका था।

प्रस्तुति : कुणाल सिंह
105, चन्द्रभागा, जवाहरलाल नेहरू विवि.
नई दिल्ली 110067

हीर राँझा



राँझा झनाँ दरिया के किनारे बैठा था। इस ओर आए कई महीने हो गए थे। तख़्त हज़ारे को छोड़कर आना आसान न था, अगर भाभियों ने ताना न मारा होता। मौजू चौधरी के सात बेटों में एक। भाइयों का दुलारा मगर भाभियों को खटकता। एक दिन भाभियों ने ताना मारा तो लाठी और बंसरी लेकर सियाल गाँव की ओर निकल पड़ा। सियाल ही क्यों, यह बात झनाँ नदी पार करते समय कश्ती में राँझे ने हीर को बिना पहचाने ही बता डाली थी। कश्ती हीर की थी। राँझे ने मनुहार की तो बिठा लिया। नदी की मौज़ों पर राँझे की बंसरी की धुन तैरी तो हीर ने बातें शुरू कीं। बातों-बातों में राँझा घर का किस्सा बयान कर गया।

बताने लगा कि एक रोज छोटी भाभी बहुत गुस्सा हो गईं। बोलीं— ''भाइयों का काम तुम्हें पसन्द नहीं, भाभियाँ तुम्हारी आँख के नीचे नहीं आती, देखूँगी जब तुम सियाल की हीर से शादी कर लोगे! हीर के हुस्न की चर्चा हमारे गाँव में भी है, पर सच पूछो तो भाभी की बात मेरे कलेजे में चुभ गयी और मेरे मुँह से निकल गया, 'क्या पता, भाभी, संयोग की बात का।' यह सुनकर वह और भी बिगड़ बैठी। कहने लगी, 'तो जाओ फिर, बड़े संयोगवाले आये हो! कोई और ठिकाना कर लो अपना, हम नहीं कल से तुम्हें पकाकर खिलायेंगी। हाथ हम जलायें और तुम बंसरी बजाओ दूसरों के घरों में। आज तो खा लो, पर कल से हमारे घड़े में तुम्हारे लिए पानी भी नहीं होगा, रात-भर भाभी के ये शब्द मेरे कानों में जैसे ठक-ठक बजते रहे। साथ ही अपने ख्यालों में मैं सियाल में जाकर हीर से शादी भी रचाता रहा। सुबह जब मेरी आँख खुली तो मेरे दिल में भाभी की बात चुभ रही थी— हम नहीं कल से तुम्हें पकाकर खिलायेंगी।

मैं घबराकर उठा। अपनी लाठी और बंसरी ली और घर से निकल पड़ा।''

''अब?''

''हीर के गाँव में कोई काम ढूँढूँगा और इन्तज़ार करूँगा शायद किस्मत मुझ पर मेहरबान हो ही जाये।''

''और अगर न हुई तो?'' किसी ने पूछा।

''दो बातों की तसल्ली मुझे होगी ही। एक, किसी भाभी की बात मेरे दिल को जलाएगी नहीं। दूसरी, शायद हीर कभी मेरी बंसरी सुन ले।''

पूछने वाली युवती के अन्दर एक हलचल-सी मची हुई थी। उसके रोम-रोम में प्यार की बिजली दौड़ गयी थी।

''अच्छा राँझे, मेरा वादा है, तुम्हारा भेद किसी पर नहीं खोलूँगी। और काम खोजने में मैं तुम्हारी मदद करूँगी। हीर को तुम्हारी बंसरी भी सुनवा दूँगी। उससे तुम शादी कर सकोगे या नहीं, यह तुम्हारी और उसकी किस्मत की बात है।''

राँझा अपने मन से पूछने लगा, 'क्या हीर इससे भी सुन्दर होगी?'

हीर का पिता मलक चूचक अपने बड़े घर में बैठा हुआ हीर की माँ से उदास लहज़े में बातें कर रहा था कि पशुओं की हालत बुरी है, कोई अच्छा चरवाहा मिल नहीं रहा था, भैंसें दूध कम देने लगी हैं, और भी तमाम मुसीबतें हैं।

इतने में हीर की पाज़ेबें छनकीं और वह आकर माँ की चारपाई पर बैठ गयी।

''चरवाहा मैं ढूँढ़ लायी हूँ, माँ।''

''कहाँ से? अभी-अभी हम इसी बारे में बातें कर रहे थे।''

''है बहुत अच्छा। मसल्ली नहीं, बल्कि जाट है कोई, अच्छे घर का।'' हीर बेहद खुश थी।

''जाट कहाँ से आ गया, बेटी?''

''ईश्वर ने भेजा लगता है। घर में किसी ने कुछ कह दिया तो घर छोड़कर भाग आया। कहता है, चाहे कुछ हो जाये, लौटकर घर नहीं जाऊँगा।''

माता-पिता ने देखा, राँझा शारीरिक तौर पर कुछ कोमल, पर ज़िद्द का बहुत पक्का था। उसे हवेली में रहने के लिए जगह दे दी गयी। पशुओं से उसकी जान-पहचान हीर ने ख़ुद करवायी, और उसे हौसला दिया कि वह उसे जंगल में ज्यादातर ख़ुद ही खाना पहुँचाया करेगी और गाँव के दूसरे चरवाहों से भी उसकी जान-पहचान करायेगी।

राँझा दिन-भर जंगल में रहता। कुछ दिन पशुओं को सँभालने का काम उसे मुश्किल लगा— पर उसकी बंसरी ने सब मुश्किलें दूर कर दीं। वह बंसरी बजाता तो दूसरे चरवाहे उसके गिर्द घेरा डालकर बैठ जाते। सब उससे कहते कि अपनी भैंसों की तुम चिन्ता न करो, उन्हें हम सँभालेंगे मजाल है जो कहीं से भी शिकायत आये। तुम बस हमें बंसरी बजाकर सुनाया करो।

हीर ही उसका खाना लेकर आती, जो आमतौर पर उसने ख़ुद ही बनाया होता। उस खाने में अनोखी शक्ति थी! राँझा तगड़ा जवान बन गया था। कभी वह सामने बैठी हीर को हँसकर कहता, ''अच्छा धोखा दिया तुमने मुझे! कश्ती में, बातों-बातों में मेरा सारा हाल-चाल पूछ लिया और ख़ुद अपने-आपको छिपाये रखा।''

प्यार से हीर कहती ''जवाब नहीं तुम्हारा, राँझे! लाओ, मुझे अपनी बंसरी दो।''

हीर हमेशा बंसरी माँग लेती, या कभी राँझा ख़ुद ही उसे दे देता। राँझा कहता, ''हीर, यह बंसरी मेरे होंठों से लगी रहने के कारण मेरे होंठ ही बन गयी है। ज़रा फूँक मारो तो इसमें, इसके छेदों में से तुम्हारे होंठ मुझ तक पहुँच जायेंगे।''

प्यार में डूब कर राँझा भूल गया कि वह किसी का चरवाहा है, हीर भूल गयी कि वह उसके मालिक की बेटी है।

दो साल बीत गये। अगर कोई हीर की शादी के बारे में उसके माता-पिता के पास जिक्र करता तो माँ के दिल में यह सोचकर हौल उठता कि वह पराये घर चली जाएगी। और वह कहती, ''मेरी हीर तो अभी बच्ची है।''

हीर का लँगड़ा चाचा, कैदी शुरू से ही निठल्ला था और हर किसी

की नुक़ता-चीनी करता था। किसी झक में आकर वह फकीर बन गया था। लोगों को ताबीज आदि देकर और कलाम-दुआ पढ़कर उसने अच्छा नाम पैदा कर लिया था। जो लोग उसके पास से गुजरते हुए हमेशा कोई-न-कोई नुकता-चीनी किया करते थे, वे अब उससे सलाह-मशवरा लेने आते। दूसरे की ख़ुशी कैदी को ज़हर लगती थी। कोई खुश होता, उसके चेहरे पर उदासी छा जाती। हर किसी के लिए यह एक समस्या बन गयी थी कि अपनी खुशी को उससे छिपाकर कैसे रखे। चूचक ने गाँव से बाहर उसे मकान बनवा दिया था। उस मकान के सामने ही वह जंगल था जहाँ राँझे की बंसरी गूँजा करती थी।

एक दिन हीर जब कैदी के मकान के पास से गुजरकर जंगल की ओर गयी तो कैदी लुक-छिपकर चलता हुआ उसके पीछे हो लिया।

फूलों से लदे हुए एक करीर की छाँव में राँझा बैठा प्रतीक्षा कर रहा था। हीर को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ। जब हीर ने खाना उसकी ओर बढ़ाया तो राँझे ने उसकी दोनों कलाइयाँ पकड़ लीं।

राँझा बेसब्री से बोला, ''मैं जानना चाहता हूँ कि यह स्वर्ग मेरा अपना है, या मैं किसी दूसरे के स्वर्ग को देख रहा हूँ।''

हीर ने उसके गले में बाँहें डालकर कहा, ''राँझे, खुदा के रूबरू मैं आज तुम्हारी हुई।''

''तब मैं उम्र भर भैंसें चराता रह सकता हूँ।''

राँझे की इश्क-बेल पर आज पहला फूल खिला था। वह बहुत अरसे से जानता था कि हीर उस पर मेहरबान थीं, पर सिर्फ मेहरबान होना उसकी इश्क-बेल पर बहार नहीं ला सकता था। इश्क सारा जीवन माँगता है। और हीर ने इश्क की माँग पूरी कर दी। उसने ईश्वर के सामने उसकी होने का प्रण दे दिया। राँझे ने बड़े स्वाद से चूरी खायी, जो हीर ने बड़े चाव से बनायी थी। आज उसकी प्यास बढ़ गयी। लस्सी खत्म हो गयी थी। हीर नदी से पानी लेने गयी।

तभी फकीर बना कैदी आ निकला। राँझे से उसने कुछ खाने के लिए माँगा। राँझे ने उसे चूरी दी तो वह चला गया।

हीर पानी लेकर आयी। जब फकीर को चूरी देने की बात का उसे पता लगा तो वह परेशान हुई। ''तुम दुश्मन की चाल में आ गये हो।''

''मैंने सोचा, कोई फकीर है। खाकर अच्छी दुआएँ देगा।''

''अच्छी दुआ इस फकीर ने कभी किसी को नहीं दी। अब कोई आफत आयी समझो।'' हीर उदास हो गयी। राँझे ने उसकी बाँहें फिर अपने गले में डाल लीं।

उस रात हीर को माँ बदली हुई लगी।

''हीर, तुम्हें बाप की इज्जत का भी ख्याल न आया?'' माँ एकाएक उस पर बरस पड़ी।

''आख़िर बताओगी भी कि मुझसे क्या गलती हो गयी है?'' हीर ने संयम से पूछा।

''लानत है तुम पर। राँझे को तुम चूरियाँ खिलाती हो। कोई शर्म-हया है तुम्हें!''

''माँ, तुम्हारी बेटी ने कोई गुनाह नहीं किया है, कोई बेशर्मी-भरा काम नहीं किया है। कैदी चचा को तो सारा गाँव जानता है।''

''उसकी बात मैंने नहीं मानी, पर यह देखो, वह चूरी— बेहिसाब घी और शक्करवाली। इतना घी तो मैंने कभी तुम्हारे बाप को भी डालकर नहीं दिया।'' माँ का गुस्सा बढ़ गया।

''हाँ, चूरी मैं बेशक लेकर गयी थी, पर इसमें जो इतना घी दिखायी दे रहा है, यह चचा कैदी का डाला हुआ है। दो साल हो गये हैं उसे घर से आये हुए। हमारे घर में उसने दूध की नदी बहा दी है। यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती थी कि हम हमेशा दूध-घी खायें और वह कभी भी मुँह को न लगा सके।''

माँ ने हीर को देखा। मासूम प्रेम हीर की आत्मा में बैठ चुका था। कैदी ने हीर के बाप को अपनी बातों में उलझाया। कुछ बूढ़ों ने भी उसकी हाँ-में-हाँ मिलायी और कहा कि कोई अच्छा-सा घर देखकर जल्दी ही हीर का रिश्ता कर देना चाहिए।

आख़िर रंगपुर के खेड़ों के यहाँ बात पक्की हो गयी। अब हीर के दिल में बेचैनी उठने लगी। उसने सोचा कि माँ को अपने दिल की बात बताये।

दिल पक्का कर हीर बोली, ''तुम चाहती हो कि लड़का अच्छे घर का और काफी जमीन का मालिक हो। मैं कहती हूँ कि राँझा सब बातों में पूरा है।''

''तो कैदो सच ही कहता था।''

''नहीं माँ, वह झूठ बोला था। पर अब बात है कि रिश्ते की। अगर राँझा अच्छे घर और अच्छी जायदाद का मालिक हो तो मुझे अच्छा लगने के कारण वह बुरा क्यों बन जाय?''

''पर है तो वह हमारा चरवाहा ही?''

''वह चरवाहा न बनता, अगर उसे आप लोग उसके भाइयों के साथ जा लेने देते, जबकि वे उसे लेने आये थे। वह जा नहीं रहा था, क्योंकि उसे मैं अच्छी लगती थी। उसे आप लोगों ने जाने नहीं दिया क्योंकि उसने हमारी भैंसों का दूध-घी बढ़ाकर दुगना कर दिया था।''

माँ सोचने लगी, ''यह बात सच है तुम्हारी कि हमने उसे जाने नहीं दिया था, क्योंकि उससे अच्छा चरवाहा हमें और कोई मिल नहीं सकता था।''

''तो फिर माँ, हिम्मत करो, तुम्हारी बेटी की खुशी इसी में है।''

हीर माँ के गले लगकर रोने लगी। माँ ने दिलासा दिया कि वह उसके पिता से बात करेगी।

पर उसका पिता और भाई सुनकर आग-बबूले हो उठे। वे राँझे को मार डालने की बात करने लगे। माँ ने समझाया।

आख़िर फैसला हुआ कि हीर की शादी के बाद राँझे से निबट लिया जायेगा।

खेड़ों के यहाँ से बारात आने वाली थी। मुजरों और आतिशबाजी की बातें हर गाँव में हो रही थी। पर घर में हीर और उसकी माँ रो रही थीं। कभी माँ बेटी को समझाती, कभी बेटी माँ के आगे मिन्नतें करती।

''माँ, मुझे खेड़ों के यहाँ भेजने का बखेड़ा न करो। मैं काजी से भी कह दूँगी कि खुदा के सामने मैं अपना वादा राँझे को दे चुकी हूँ।''

''होश की बात कर बेटी, अपने बाप की इज़्ज़त खराब न कर।''

''इज़्ज़त और बेटी, दोनों को ही तुम बचा सकती हो, अगर थोड़ी-सी हिम्मत करो तो।''

''तुम्हारे भाई बिल्कुल नहीं मान रहे।''

मौका निकाल हीर राँझे के पास जा पहुँची। बोली, ''राँझे, मैं औरत हूँ। तुम्हें देखते रहने का अरमान अभी भी मेरे दिल में बाकी है। सो मैं मर नहीं सकती। मैं हमेशा तुम्हारी रहूँगी।''

''पर वे तुम्हें मेरी रहने नहीं देंगे!'' राँझे ने आह भरी।

''फिर तुम्हीं बताओ, कया करूँ? चाहो, तो मुझे यहाँ से भगा ले चलो।''

''सियालवाले हमें गाँव की हद भी पार नहीं करने देंगे।''

''तो फिर।'' हीर ने उसके गले में बाँहें डालकर उसकी आँखों में झाँकते हुए कहा, ''दिल खराब न करना, तुम्हें फिर मिलने की उम्मीद से मैं डोली में बैठ रही हूँ।''

''हीर, वादा करो कि तुम मेरा दिल कभी नहीं तोड़ोगी।''

हीर ने राँझे का हाथ अपने दिल पर रख लिया। बोली, ''राँझे! यह अपनी बंसरी मुझे दे दो।''

''ले लो, अब इसे कौन बजायेगा?''

''यह तुम्हारे होंठ हैं, राँझे, मेरी सूनी ज़िन्दगी से बातें किया करेंगे।''

हीर की डोली जा रही थी। खेड़े उस पर से रुपये फेंक रहे थे। लोग दौड़-दौड़कर उन्हें उठा रहे थे। राँझा उन भैंसों को हाँकता हुआ साथ-साथ जा रहा था, जो चूचक ने दहेज के रूप में हीर को दी थी। राँझे के बिना वे चलती नहीं थी। अपने विचारों में खोया हुआ राँझा डोली और भैंसों के पीछे-पीछे चला जा रहा था। डोली के 'सालू' हवा में उड़ रहे थे। पीछे की ओर का सालू कुछ ज्यादा ही उड़ रहा था। उसमें से हीर अपने राँझे को देख रही थी। जब एक मोड़ पर उसका उदास चेहरा बहुत नज़दीक से दिखायी दिया तो वह रो उठी। स्त्रियों ने सोचा कि हीर अपने माता-पिता की याद में रो रही है।

रंगपुर में खेड़ो का बेटा, सैंदे, हीर को ब्याह लाया था। हीर की सुन्दरता की ख़बरें दूर-दूर तक फैली हुई थीं।

पर उसकी सास और ननद उसका उदास चेहरा देखकर चिन्तित होकर सोचने लगी। देखनेवालों ने पूछा, ''बहू को क्या हो गया है?'' सास ने कहा, ''रास्ते में सर्दी लग गयी है।''

सैंदे की मुराद पूरी नहीं हुई। कई दिन तक सेज खाली रही। हीर का इलाज होने लगा। खेड़ों ने उसे मायके भेजने का ख्याल ही छोड़ दिया। राँझे के बारे में कुछ बातें उनके कानों में पड़ चुकी थी। हीर की ननद, सहती को उसके इस रोग की कुछ जानकारी थी। उसकी शादी भी कुछ समय पहले हुई थी। वह बहुत हँसमुख थी, पर ससुराल में जाने पर उसकी हँसी गायब हो गयी थी। सहती मुराद नामक बालसखा पर फिदा थी।

सहती ने भाभी के दिल का भेद निकाल लिया। अपने मुराद की बातें करके उसने राँझे की बंसरी देख ली। आख़िर एक-दूसरे की मदद के वादे हो गये।

अतीत की बातें करने से हीर को बहुत सुख मिला, पर वह स्वस्थ न हो पायी। अपने अन्दर उसने राँझे की अमानत सँभालकर रखी हुई थी।

कोई कहता, हीर को किसी की बद-दुआ लग गयी है। कोई कुछ कहता, कोई कुछ। उधर राँझे की हालत भी बुरी थी। हीर थी तो हर चीज़ अच्छी लगती थी। अब हर चीज़ उदास दिखायी देने लगी। ज़िन्दगी वीरान हो गई। अपने गाँव तख्त हजारे की ओर से उसका मन उचाट हो गया था। नदी में डूबने को दिल नहीं चाहता था। ज़िन्दगी रूखी और वीरान प्रतीत होने लगी। इसी बेचैनी में उसे बालनाथ जोगी के शान्त चेहरे का ख्याल आया। घर से आते समय उसने रात जोगी के डेरे पर बिताई थी। वह मुसलमान था, तो भी जोगी ने उसकी बहुत ख़ातिर की थी।

राँझे ने सोचा, अगर वह जोगी बन जाये तो? जोगियों को गाँव-गाँव, घर-घर घूमने की आजादी होती है। क्या पता , कभी हीर के साथ भी मुलाकात हो जाये। अगर न हुई तो भी हीर के वियोग में वह सच्चा जोगी बन जायेगा।

राँझे ने सियालों के यहाँ से विदा होकर बालनाथ के चरणों में शरण ली। बालनाथ ने बहुत समझाया-बुझाया कि जोगी बनना उस-जैसे सुन्दर जवानों का काम नहीं है, कदम-कदम पर डगमगाने का खतरा रहता है। पर राँझे ने उसे विश्वास दिलाया कि वह किसी की दौलत या स्त्री की ओर आँख उठाकर नहीं देखेगा। हीर की याद उसे आयी और उसने मन में कहा, 'हीर तो परायी औरत नहीं है, वह मेरी अपनी रूह है। उसने ख़ुदा के सामने मेरी होने का वादा किया था।'

बालनाथ ने राँझे को फकीर का बाना धारण कराया। राँझे ने फकीरी की अलख जगायी। फकीरी-वेश में भी राँझा सुन्दर लग रहा था। उसकी चर्चा दूर-दूर तक होने लगी। वह बहुत अच्छा जोगी समझा जाने लगा। जिसका मन हमेशा अपने महबूब के साथ जुड़ा रहता था। उसकी आँखों मे एक विचित्र-सी रोशनी दिखायी देती थी।

बालनाथ ने उसे बाहर घूमने-फिरने की इजाजत दे दी। उसका ज़िक्र एक गाँव से दूसरे गाँव में पहुँचता रहा। आख़िर एक दिन लोगों ने उसका डेरा रंगपुर के निकट एक बाग में लगवा दिया। हीर ने भी उस अलबेले जोगी की बातें सुनीं। उसे देखने की लालसा उसके मन में बढ़ने लगी। सहती देख आयी थी। उसने आकर बताया कि वह कोई अनोखा जोगी है, और उसके दर्शन करने से दिल को शान्ति मिलती है। कुछ और लोगों ने भी बताया कि जोगी ने बहुत-से लोगों के रोग दूर कर दिये है। हीर की सास भी अपने बेटे की किस्मत देखकर उदास रहती थी, जो विवाहित होने पर भी कँवारों का-सा जीवन बिता रहा था। स्त्रियों ने उसे सलाह दी कि वह अपनी बहू का हाथ जोगी को जाकर दिखाये। सहती ने भी हामी भरी।

ननद-भाभी जोगी के डेरे पर पहुँची।



जोगी के दर्शन करते ही हीर बेचैन हो गयी। जगमगाता हुआ जिस्म राख से लथपथ था। सिर्फ़ राँझे की आँखें अजीब से नूर से भरी थीं।

जोगी ने हीर की कलाई हाथ में ले ली और उसकी नब्ज पर रखी अँगुलियों ने एक सिहरन हीर के दिल में दौड़ा दी, ''यह जोग नहीं है, हीर, यह वियोग है तुम्हारा।''

हीर ने आँखें उठाकर देखा। जोगी ने हँसकर आशीर्वाद दिया। हीर को जैसे राह मिल गई।

हीर के घर में खुशी छा गयी। आज हीर को भूख लगी थी। आज उसका चेहरा इतना पीला नहीं था। सैंदे ने कहा कि वह पीर की दरगाह पर 'सीरनी' चढ़ायेगा। हीर ने कहा, ''जल्दी ही ठीक होकर मैं तुम्हारे साथ अपना ईमान पूरा करूँगी।''

''कोई बात नहीं, हीर, तुम ठीक हो जाओ।''

हीर और सहती जोगी के डेरे पर जाती रहीं। एक दिन हीर की कुर्ती के गले में से बंसरी का सिरा जोगी को दिखायी दिया। उसकी आँखें और भी चमक उठीं। जोगी ने सहती से कहा कि वह मुराद को सन्देश भिजवाने और उससे मिलने के लिए कहे क्योंकि अगले दिन वह वहाँ से चला जाने वाला था।

अगले दिन रंगपुर में शोर मच गया कि जोगी खेड़ों का मुँह काला कर गया है। बहू-बेटी दोनों को निकालकर पता नहीं कहाँ ले गया है। खेड़े घोड़ों पर सवार होकर चारों तरफ उसकी खोज करने लगे।

राँझे ने कानों में से कुण्डल उतारकर और नहा-धोकर तहमद बाँध ली थी। फिर वह हीर के साथ नाहड़ों के इलाके में पहुँच गया था।

वहाँ का राजा इनसाफ़ करने के लिये मशहूर था। उन्हीं दिनों उसके शहर में आग लग गयी। उसने इसका कारण पूछा तो किसी के मुँह से

निकल गया कि उसकी धरती पर बहुत बड़ी बेइनसाफ़ी हुई है। खेड़े किसी की प्रेमिका को जबर्दस्ती शादी करके ले गये थे। पर अन्त में उसका प्रेमी उसे उनके हाथ से निकालकर ले गया था। खेड़े बहुत जबर्दस्त लोग थे, उन्होंने दौड़धूप करके उसे पकड़ लिया था और उसे इतना मारा था कि देखा नहीं जाता था। फिर उसकी प्रेमिका को जबर्दस्ती उठाकर ले गये थे।

यह सुनकर राजा ने खेड़ों को हीर सहित दरबार में पेश होने का हुक्म दिया। जब हीर ने राँझे को उस ज़ख़्मी हालत में देखा, तो रोने लगी और सबके सामने उसके गले से लग गयी।

खेड़ों ने गवाह पेश किये कि वे काजी से निकाह पढ़वाकर और सेहरे बाँधकर हीर को लाये थे। राजा ने राँझे से पूछा तो उसने कहा, ''सारी बात का फैसला हीर की गवाही पर ही होगा। सो पहले उसकी बात सुनी जाये।''

हीर ने कहा, ''खेड़े मुझे सेहरे बाँधकर लाये थे, पर मेरी शादी सैदे के साथ नहीं हुई। माता-पिता के सामने मैंने काजी के सामने कह दिया था कि ख़ुदा के रूबरू मैं राँझे से शादी कर चुकी हूँ। माता-पिता ने मुझे जबर्दस्ती डोली में डाला और खेड़े मुझे अपने यहाँ ले आये। अगर मेरी मर्जी निकाह की बड़ी शर्त है तो राँझे के साथ मेरा निकाह हो चुका है।''

राजा पर हीर की दिलेरी और सुन्दरता का गहरा असर हुआ और उसने हीर को राँझे के हवाले कर दिया। सलाह दी कि अपने घर पहुँचकर किसी इनसाफ़पसन्द काजी से निकाह की रसम पूरी करा लें।

राँझे ने हीर से कहा कि वे वहाँ से तख्त हज़ारे जायेंगे।

फिर राँझे ने चाहा कि वे सियाल जायें और अगर हीर के माता-पिता मान जायें तो वह अपने भाइयों की बारात लेकर आये और सेहरे बाँधकर हीर को अपने घर ले जाये।

''ठीक है, अब मेरे माता-पिता इनकार नहीं करेंगे। वे खेड़ों से नाराज हैं। क्योंकि उन्होंने मुझे मायके नहीं भेजा था। अब मेरी माँ जरूर मान जायेगी।''

वे सियाल की ओर चल दिये। जब वे गाँव के निकट पहुँचे तो उनकी प्रेम-कहानी जैसे फिर से दोहरायी जाने लगी। वही झनाँ की लहरें, वही सियाल के जंगल, वही उसकी भूरी, काली भैंसें, वही लम्बे-तगड़े चरवाहे, वही पनघटों पर पानी भर रही स्त्रियाँ।

माता-पिता ने हीर की माँग स्वीकार कर ली। राँझा तख्त हजारा जाने को तैयार हो गया। उसकी खुशी देखकर हीर बंसरी ले आयी और उसे होंठों से लगा लिया।

राँझे को गये हुए पाँच दिन हो गये थे। सहेलियों ने हीर को दुल्हन के रूप में सजा दिया। माँ के चेहरे पर भी ख़ुशी थी। पिछली बार तो उसका दिल बुझा हुआ था। आज उसने हीर की सहेलियों के साथ मिलकर उसके हाथों पर मेहँदी लगायी और कहा, ''अब मेरी बेटी, रानी लगती है।''

तख्त हज़ारे में राँझे के भाइयों ने ख़ुशी मनायी कि वे बारात लेकर सियाल जायेंगे। इश्क में रँगे हुए राँझे के चेहरे को देखकर भाभियों को अपनी देवरानी से ईर्ष्या होने लगी। पर अब देवर उन्हें बहुत प्यारा लगने लगा था।

भाइयों ने खेड़ों की बारात से भी शानदार बारात लेकर जाने का फैसला किया। वे खेड़ों से किसी तरह भी छोटे नहीं थे। दो दिन का रास्ता था। बारात घोड़ों पर सवार होकर रवाना हो गयी।

पर पाँचवे दिन हीर के यहाँ तैयारी के साथ-साथ एक और ही तरह की घुसर-पुसर होनी शुरू हुई। माँ घर के दरवाज़ों पर पत्तोंवाली टहनियाँ बाँध रही थी।

कैदो कह रहा था, ''एक ही बेटी के लिए दो बारातें अगर आयें, तो हमारा मुँह काला नहीं हो जायेगा?''

चूचक सिर झुकाये चुप सुनता रहा।

''कौन नहीं कहेगा कि चरवाहे के साथ बेटी ने ज़िन्दगी ख़राब की होगी। ऐसी ज़िद कि कचहरी में पहुँच गयी।'' कैदो जहर उगले जा रहा था।

''पर दरवाज़े पर आयी हुई बारात को कैसे रोकेंगे?'' चूचक ने कहा। ''हम ज़बान दे चुके हैं।''

कैदो ने कुछ सोचा और फिर कहा, ''है तो बहुत मुश्किल बात, पर अब हमें हीर की जान से हाथ धोने ही पड़ेंगे।''

चूचक का दिल काँप गया।

''तुम्हें दिल सख्त करना पड़ेगा।'' कैदो ने कहा। ''हीर को अगर वे तख्त हज़ारे ले गये तो हमारा मुँह दोनों दरगाहों में काला हो जायेगा।''

बाप ने पहले भी मुँह काला होने के डर से बेटी की ख़ुशी कुर्बान की थी, आज फिर डर से वह बेटी को ही कुर्बान करने के लिए तैयार हो गया। उसने मान लिया, उसके बेटों ने मान लिया कि कैदो शर्बत में ज़हर घोलकर हीर को देगा।

परसों तख्त हज़ारे से बारात पहुँचनेवाली थी। रात के समय जब सहेलियाँ गाकर चली गयीं और माँ ने बेटी की कुशलता माँगी तो चचा कैदो पीर की दरगाह से आबेहयात का प्याला लेकर आया। उसने वह प्याला हीर को दिया और उसे पीने के लिए कहा।

आधी रात के समय हीर की हालत ख़राब होने लगी। उसने माँ को आवाज़ दी, ''माँ—माँ—मैं मर गयी! वह मेरी पिटारी मुझे देना।''

माँ पिटारी लेकर आयी। हीर ने उसमें से बंसरी निकालकर होंठों से छुआयी और फिर अपने सीने पर रख ली।

''माँ मिल लो आख़िरी बार। मैं चली, वह आबेहयात नहीं, ज़हर का प्याला था। जो कैदो चाचा ने मुझे दिया।''

माँ वहीं गिर पड़ी और उसके मुँह से चीख निकली, ''मेरी बेटी!''

बारात के बाजे सुनायी देने लगे थे। कैदो, चूचक और हीर के भाई उन्हें ख़बर देने गये। सुनकर चेहरों के रंग उड़ गये। पर राँझे को उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। कैदो ने आँसू पोंछकर उसे सारा हाल सुनाया। अन्त में बताया कि किस प्रकार हीर की माँ ने उसकी बंसरी को जनाजे के साथ रखने की ज़िद्द की थी।

राँझे ने कहा, ''बारात कब्र तक जायेगी। मैं शादी करने आया हूँ शादी करके ही लौटूँगा। हीर की शादी मेरे साथ जरूर होगी।''

बारात कब्र पर पहुँची। कब्र अभी कच्ची थी। सिरहाने एक पत्थर खड़ा था।

''यह है हमारी लाडली बच्ची की कब्र।'' चूचक रोने लगा।

राँझे के भाइयों की आँखों से आँसू टपकने लगे। पर राँझा एकटक कब्र की ओर देखता रहा। जैसे कब्र की मिट्टी उसकी नज़र से ओझल हो गयी और वह हीर के सीने पर पड़ी अपनी बंसरी देखने लगा।

वह कब्र के पास लेट गया। उसने कब्र को बाँहों में भरा। फिर उठकर उसके सिरहाने पड़ा पत्थर उठाया और इतने ज़ोर से अपने सिर में मारा कि खून की कई धाराएँ फूट पड़ीं और देखते-देखते कब्र भीग गयी।

हीर का नाम लेकर राँझा इस दुनिया से चला गया। जो सुन सकते थे उन्होंने सुना कि कब्र के भीतर से हीर का विलाप फूटा और सारे माहौल पर छा गया।

प्रस्तुति : ईशान अग्निहोत्री
बी-2/8बी, केशवपुरम, लारेंस रोड
नई दिल्ली - 110035

शीरीं फरहाद



इंसान के दिल में हुस्न की महक पक्की रिहायस की तरह बसी होती है। वह कुछ समय के लिए कभी किसी बाँके जिस्म वाले इंसान को भी मस्त बना जाती है।

तुर्की के सुल्तान सलीम ऐसे बाँके ज़िस्म थे उनकी दो बेटियाँ महमन बानो और शीरीं को देखनेवाले के पाँव धरती पर से उठ जाते, बाँहें फड़क उठतीं, मुश्किलों के पहाड़ फट जाते और नामुमकिन बातें मुमकिन हो गयी लगतीं।

प्यार के पानी और हर चीज़ की बहुलता ने इन दो ख़ूबसूरत बेलों पर ऐसा यौवन चढ़ा दिया था कि वह सँभाले नहीं सँभलता था, पर ऐसे यौवन का साथ किस्मत भी नहीं देती। पहले उन दोनों बहनों की माँ मर गयी, फिर सुल्तान ने संसार को जीतने की उमंग में अपनी बेटियों का सुन्दर ढंग से पालन करने की ज़िम्मेवारी कुर्बान कर दी। जीत-पर-जीत दर्ज करता हुआ वह अन्त में लड़ाई में ही मारा गया।

महमन बानो सुलताना बन गयी। वह शीरीं से उम्र में बड़ी थी, सुन्दरता में बराबर, पर दिल की जादूगरी में उसका मुकाबला नहीं कर सकती थी। शीरीं को देखकर फकी ज़िन्दगी जीनेवाले लोग भी अपने दिलों में मिठास महसूस करने लगते। उसका शाही नाम छोड़कर लोग इसीलिए उसे शीरीं यानी मीठी कहने लगे थे।

सुलताना बनने के बाद महमन बानो की कई स्वाभाविक कमजोरियाँ साकार होकर दिखायी देने लगीं। लोगों ने कई बार दिल में कहा : "कहीं शीरीं बड़ी बहन होती!" तो भी शीरीं के साथ महमन के प्यार में कोई फ़र्क न आया। दोनों बहनों के प्यार का उदाहरण दिया जाने लगा। सुलताना होने के झमेलों से जब महमन उकता जाती और उसके चेहरे पर सुन्दरता की जगह दर्प झलकने लगता तो उसे अपना चेहरा कुरूप-सा दिखायी देने लगता, और वह अपना काम-काज छोड़कर शीरीं के गले में बाँहें डाल देती। फिर उसकी पनीली आँखों में झाँककर और उसके निर्धन दिल की धड़कन महसूस करके वह दोबारा अपनी सुन्दरता के नशे में डूब जाती।

"कितनी ख़ूबसूरत है मेरी बहन!" शीरीं पलकें उठाकर कहती।

और एक बार जब शीरीं को बुखार चढ़ा और चालीस दिन तक न उतरा और शाही हकीम और ज्योतिषी हार मान बैठे तो महमन ने सारे देश में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो भी शीरीं को चंगा कर देगा, उसे चालीस गाँव और चालीस 'लद्दे' दौलत दी जाएगी। शासन के काम से विमुख होकर महमन कंकाल बनी शीरीं के सामने बैठी बड़े वजीर की ओर से अपने ढिंढोरे के जवाब की प्रतीक्षा करती रहती।

एक नामी हकीम शाही बाग़ के निकट रहता था। दोनों घूमते शीरीं को माली के बच्चों के लिए फूल तोड़ते और महमन को माली की किसी ग़लती पर क्रोधित होते हुए उसने कई बार देखा था, और चाहा था कि शीरीं बेशक़ मलका नहीं बन सकी, पर औलाद शीरीं की ही राजगद्दी पर बैठनी चाहिए।

ढिंढोरा सुनने पर इस हक़ीम ने पहले तो अपनी पुस्तक में कुछ पढ़ा, फिर दवाइयों की कुछ पुड़ियाँ बाँधी और सिर हथेली पर टिकाकर देर तक सोचता रहा। उसे कोई बात सूझी और उसका बूढ़ा चेहरा चमक उठा। उसी समय वह महल में गया और उसने सुलताना के पास कहला भेजा कि वह शीरीं का इलाज़ करना चाहता है।

जब उसे सुलताना के पास ले जाया गया तो सुलताना ने उसके हाथों को चूमा और जल्दी-से-जल्दी उसे शीरीं के पास ले जाना चाहा। पर हकीम ने अदब से रुककर कहा :

"शीरीं की अपनी उम्र ख़त्म हो चुकी है, अब उसके लिए बहुत बड़ी क़ीमत पर नयी उम्र ख़रीदी जा सकेगी।"

"चालीस नहीं, चार सौ गाँव दूँगी," सुलताना ने कहा। उसके चेहरे पर याचना का भाव था।

"चार सौ क्या, चार हज़ार गाँव भी एक उम्र की क़ीमत चुका नहीं सकेंगे। उम्र का औलिया कोई बहुत बड़ी क़ुर्बानी माँगेगा।"

"शीरीं से बड़ी कोई चीज़ मुझे दिखायी नहीं देती। उम्र का औलिया बेशक़ सबकुछ ले ले, बस एक शीरीं न ले।"

"उस हालत में आपको अपना हुस्न क़ुर्बान करना पड़ेगा, सुलताना।"

"वह किसी तरह। जल्दी बताओ।"

हकीम को कोई जल्दी नहीं थी। उसने कहा कि वह सुलताना से

अकेले में बात करना चाहता है।

सुलताना उसे अपने कमरे में लेकर गयी तो उसने कहा :

''शीरीं की सेहत इंशा अल्लाह आज ही से सुधरने लग जाएगी, और जितने दिन बीमार रही है, उतने दिनों में बिल्कुल सेहतमन्द बन जाएगी। पर सुलताना को अपना हुस्न हमेशा के लिए नकाब के पीछे छिपाकर रखना होगा, कोई मर्द आपके चेहरे पर नज़र न डाल सके। बहुत महँगा सौदा है यह सुलताना सलामत, पर यही एक तरीका है शीरीं को बचाने का। उसकी उम्र के कुछ ही पल अब बाक़ी रह गये हैं।''

महमन ने कुछ दिनों के बाद शीरीं के स्वस्थ हो जाने की ख़ुशी में फिर जशन मनाया। इस ख़ुशी में एक महल का निर्माण भी शुरू हुआ। मुल्क के सारे कारीगर उस महल के निर्माण में जुट गये। महल का नाम 'कसरे शीरीं' (शीरीं का महल) रखा गया।

महल पूरा बन गया तब सजावट का काम फरहाद को सौंपा गया, जिसका चित्रकारी में कोई मुकाबला नहीं कर सकता था। फरहाद अपनी कला में ही माहिर नहीं था, ख़ूबसूरत भी इतना था कि दूर-दूर तक उसकी चर्चा थी। उसका नाम सुनते ही जवान लड़कियाँ नकाब उठाकर उसे देखने लगतीं। कहते हैं, वह भटकता हुआ इंसान था, जिस चीज़ को भी उसकी अँगुलियाँ छू जातीं, जिस व्यक्ति से भी वह बात करता, उसे कुछ-का-कुछ बना देता।

महमन बानो भी शीरीं को साथ लेकर महल देखने गयी। हर कमरे में वे फरहाद के साथ घूमीं। सुलताना फरहाद से कई सवाल पूछती, फरहाद आदर से जवाब देता। सुलताना का चेहरा दिखायी नहीं दे रहा था, सो ऐसे लग रहा था, जैसे उसकी आवाज़ कहीं दूर से आ रही हो।

शीरीं ने भी फरहाद से कई सवाल पूछे। जवाब देते हुए फरहाद को लगा, जैसे उसका चेहरा उसकी आँखों में समा गया था, उसके शब्द उसके अपने होंठों के कहीं बहुत पास से उठ रहे थे।

सुलताना को पहली बार वह काला नकाब अपने चेहरे पर बलता हुआ महसूस हुआ। कई बार उसके होंठ ग़ुस्से से फड़के, और उसने चाहा कि रेशम का वह काला टुकड़ा चेहरे पर से खींच डाले, और फरहाद देख ले कि उसके होंठों पर शीरीं के होंठों के मुकाबले में कम सुर्खी नहीं है और फिर वह सुलताना भी है।

पर उम्र के औलिये को वादा किया हुआ था। वादा तोड़ने पर उसकी सजा अब शीरीं को नहीं, उस तोड़ने वाली महमन को मिलेगी। उफ़ किसी शौक़ से फरहाद अपना काम ख़ूबसूरत, नंगे नक्शोंवाली शीरीं को समझा रहा था। सुलताना का वह बहुत आदर कर रहा था, पर जिस नज़र से शीरीं को देख रहा था, वह उन दो बहनों के अथाह प्यार में दरारें डाल रहा था। महमन के लिए शीरीं वह शीरीं न रही, जिसके लिए उसने अपने हुस्न पर पर्दा डलवा लिया था।

सुबह हो गयी। दोनों बहनें अपने-अपने महल में तैयार हो गयीं। एक का दिल बैठा जा रहा था, दूसरी का दिल हिलोरें खा रहा था। सुलताना दीवानखाने में जाकर बैठी, और उसने फरहाद को जल्दी आने के लिए हुक्म भेजा। शीरीं अपनी खिड़की में से नये महल को देखती रही, जिसके चप्पे-चप्पे पर फरहाद की अँगुलियों का स्पर्श था। जिस सुलताना की बहन होने का उसे गर्व था, आज पहली बार उसके बारे में उसे ख़्याल आया : ''महमन, कहीं मैं तुम्हारी बहन न होती... फरहाद...।''

फरहाद उस समय सुलताना के सामने खड़ा था। सुलताना ने बाँदी को वहाँ से जाने का हुक्म दिया और फरहाद को अपने सामने बैठने के लिए कहा। फिर उसने उसके काम की प्रशंसा की। फरहाद ने धन्यवाद किया। सुलताना ने उसकी सुन्दरता की प्रशंसा की, उसके चट्टान-जैसे शरीर की प्रशंसा की, उसके नक्शों की तराश की प्रशंसा की।

फरहाद की याद में शीरीं का चेहरा चमक उठा और फिर वह जैसे उसकी यादों में खो गया। उसकी वह हालत देखकर सुलताना को गुस्सा आया।

''फरहाद, इस नकाब की वजह से मेरे होंठ तुम्हें दिखायी नहीं देते, पर मेरे लफ़्ज तो तुम्हें सुनायी दे रहे हैं।''

फरहाद को अपनी उस हालात पर शर्म आयी, और माफ़ी माँगते हुए उसने कहा :

''यह क़िस्मत पहले कभी मुझे मिली नहीं, और मैं इसे अपनी न समझ सका— आपके दोहराने पर मुझे होश आया है, पूरे दिल के शुक्रिये से मैं सुलताना की क़दमबोसी के फ़ख़्र के लिए इलतज़ा करता हूँ।''

महमन बानो का हाथ कई बार नकाब की ओर बढ़ा, पर हर बार किसी डर ने उसे रोक दिया।

''नहीं, फरहाद, क़दमबोसी नहीं...'' उसने फरहाद को बैठने का इशारा कि, जो उसकी क़दमबोसी करने के लिए उठा था।

सुलताना के दिल में एक संघर्ष हो रहा था। उसके दिल की बात उसके होंठों तक आ गयी, उसे कहने के लिए वह शब्द ढूँढने लगी। वह यह आशा नहीं कर सकती थी कि फरहाद उसका चुनाव करेगा, पर उसे वह ख़ुद तो चुन सकती थी— बशर्ते कि वह मान जाए। पर मानेगा क्यों नहीं? वह सुलताना ही नहीं, सुन्दर भी थी। उस समय शीरीं उसे अपने जैसी सुन्दर नहीं दिखायी दे रही थी। आह, उसका नकाब। उसे वह उतार नहीं सकती थी, पर दिल पर का नकाब उतार देना तो उसके बस की बात थी।

''ओ लासानी फरहाद— जो महल तुमने सजाया है, वह तुम्हारा हो सकता है, उसे 'क़समे शीरीं' नहीं 'क़सरे महमनो-फरहाद' कहा जएगा। मैं तुम्हें अपना चेहरा नहीं दिखा सकती, पर मेरा दिल तुम देख सकते हो। सो 'हाँ' कह दो, और हमेशा के लिए मेरे बन जाओ। अपने और मेरे दोनों के दुख दूर कर दो।'' तभी उसने आगे बढ़कर फरहाद का हाथ चूम लिया। ''तुम्हारी इन उँगलियों के हर पपोटे में करामात है।''

''मैं अपनी सुलताना को समझ नहीं सका। आप दुनिया के दुख दूर करनेवाली हैं, और मेरे हुनर ने मेरी ज़िन्दगी एक इबारत बना दी है : इबारत, रंगों के मेल की, लकीरों के जादू की, हुस्न की खुराई की!'' उस समय फरहाद गर्दन झुकाये फ़र्श की ओर देख रहा था।

फरहाद ने दोनों हाथ पीठ के पीछे कर लिये और घुटनों के बल बैठकर उसने सिर झुका लिया।

जब शीरीं को पता लगा कि सुलताना ने फरहाद को बुलाया था, वह बहुत तिलमिलायी। शीरीं को खतरा महसूस हुआ। शाही महल के सब क़ायदे-क़ानून भुलाकर वह एक बाँदी के साथ 'कसरे शीरीं' की ओर चल दी। वह सीधे फरहाद के पास गयी, जो उसके शयनकक्ष में कोई चित्र बना रहा था।

''यह तस्वीर क्यों? सुलताना नाराज़ होगी।''

उस चित्र में अपनी सुन्दरता को देखकर शीरीं सहन न कर पायी।

"इस महल में और सबकुछ मैंने अपनी समझदारी से बनाया है, पर यह तस्वीर ख़ुद-ब-ख़ुद मुझसे बन गयी है। पर सुलताना के देखने से पहले मैं इसे अपने दिल में छिपा लूँगा, बशर्ते कि आप मेरे साथ नाराज़ न हों।" उस समय फरहाद फ़र्श की ओर नहीं, शीरीं की आँखों में झाँक रहा था।

शीरीं ने बाँदी की ओर देखा। बाँदी कमरे से बाहर चली गयी। शीरीं ने फरहाद के गले में बाँहें डाल दीं।

एक क्षण के लिए समय की घड़ी रुक गयी। आख़िर बाँहें खुलीं। शीरीं के ख़ुशी-भरे दिल में उदासी घुलने लगी।



दूसरे दिन महमन बानो के अंग-अंग में ईर्ष्या की आग भड़कने लगी। शहर में तरह-तरह की बातें हो रही थीं : "फरहाद शीरीं के ही लायक था... पर वे जाएँगे कहाँ..." कोई सुलताना के ग़ुस्से के ख़्याल से हाथ मलता था।

सुलताना ने अपने बड़े वजीर को बुलाकर शोक प्रकट किया कि शाही घराने को कलंक लग गया है, और चाहा कि जैसे भी शीरीं और फरहाद को जल्दी-से-जल्दी पकड़ लिया जाए।

सैंकड़ों घुड़सवार चारों ओर रवाना हो गये। लोग नाराज़ भी थे : "फरहाद को इस तरह करना नहीं चाहिए था।" पर वे यह भी देखना नहीं चाहते थे कि फरहाद-जैसा कलाकार और सुन्दर व्यक्ति इस कसूर के बदले में क़ुर्बान कर दिया जाए। सुलताना को अभी भी आशा थी कि वह फरहाद का दिल जीत लेगी।

शीरीं के लिए यह अनुभव बड़ा विचित्र था। अपनी आत्मा का साथी उसे मिल गया, पर उसका शरीर चोर बन गया। उसकी खोज होने लगी। फ़ौज हर घर की तलाशी लेने लगी।

लोगों के दिल और दरवाज़े इन दो लाजवाब आशिक़ों के लिए खुले हुए थे। कई हफ़्तों तक फ़ौज को शीरीं और फरहाद का कुछ पता नहीं लग सका। जिस गाँव में भी वे चले जाते, जैसे कोई चाँद चढ़ जाता, असफल प्रेमियों के प्रेम की बुझी हुई राख में से भी एक बार तो सेक उठने लगता। युवतियाँ बड़े चाव से शीरीं के बाल सँवारतीं, उसके हाथों पर मेहँदी लगातीं। एक युवती ने उसके साथ अपने कपड़े बदल लिये, और उसके कपड़े किसी ख़ास मौके के लिए सँभालकर रख दिये।

शीरीं को अपनी और फरहाद की दुनिया में कितना बड़ा फ़र्क़ दिखायी दिया। फरहाद की दुनिया के लोग फटेहाल जी रहे थे। अपनी दुनिया में शीरीं ने किसी का नंगा शरीर नहीं देखा था। यह कैसी नज़र थी, गाँवों की जवान लड़कियों की। कितने खाली थे उनके घर, पर कितने भरे हुए थे उनके दिल। कितना अभाव था खाने-पीने की चीज़ों का, पर कितनी बड़ी थी उनकी चाह— खाने की चाह, खिलाने की चाह, सुन्दरता और प्यार की चाह, किसी दूसरे के काम आने की चाह!

शीरीं का दिल ख़ुशी से छलक रहा था। पर शीरीं की दुनिया ने फरहाद की दुनिया पर हमला किया हुआ था— गिरफ़्तारियाँ हो रही थीं, लोगों को तंग किया जा रहा था।

फ़ौज शीरीं और फरहाद का कभी भी पता न लगा पाती, अगर कहीं वे कुछ कम सुन्दर होते। उनकी सुन्दरता तो जैसे सौ पर्दे फाड़कर बाहर झाँक रही थी।

आख़िर उस सुन्दरता पर एक फ़ौजी की नज़र पड़ ही गयी। शीरीं और फरहाद पकड़े गये।

सुलताना ने फरहाद को अपनी हाजरी में बुलाया। उस समय वहाँ वह अकेली ही थी। उसके चेहरे पर कोई सख़्त लकीर नहीं थी। उसकी आत्मा अपनी पराजय की हार में जैसे मोम बनकर पिघली हुई थी।

"फरहाद, मेरी आँखों पर कोई नकाब नहीं है। एक बार इनमें झाँककर देखो।"

"सुलताना की आँखों में झाँकने की मुझमें ताब नहीं है।"

यह सुनते ही सुलताना की आँखों का भाव बदला।

"झूठ! बिलकुल झूठ! तुम मेरी तरफ़ इसलिए नहीं देख रहे क्योंकि तुम शीरीं की आँखों में झाँक चुके हो। पर याद रखो, अगर तुमने मेरे लिए की ख़्वाहिश पूरी नही की तो मैं तुम्हें ऐसी हालत में रखूँगी कि तुम हमेशा शीरीं के लिए तरसते रहोगे, और उसकी हवा तक भी तुम्हें छू नहीं सकेगी।"

फरहाद ने माथे पर हाथ रखा और कुछ क्षण सोचने के बाद बोला :

"मुझे मंजूर है, मेरी सुलताना। आपका इकशाम मेरे सिर-माथे पर है, और मेरे दिल में शीरीं को जीतने की उम्मीद है। मेरे अन्दर से

कोई ताकत मुझे कुछ कह रही है, मेरी बात का हुँकारा भर रही है। सो इज़ाज़त दीजिए मुझे, मैं अपना तेशा ले आऊँ।''

सारे शहर में फरहाद के लिए सहानुभूति की एक लहर दौड़ गयी, पर सुलताना के इस हुक्म का लोगों ने फरहाद के लिए देश निकाला ही समझा। नहर खोदने के पहले वह शहर में नहीं आ सकता था। लोगों ने उन देवों की कहानियाँ सुनी थीं, जिन्होंने पहाड़ खोदे थे, पर उन्हें कभी देखा नहीं था। कई लड़कियाँ सुनकर रोने लगीं। कई नौजवान फरहाद के साथ जाने के लिए तैयार हो गये। पर उन्हें जाने की इजाजत नहीं मिली।

हाथ में हथौड़ा पकड़े और कन्धे पर तेशा रखे, आशिक़ों का सुलतान, फरहाद, शीरीं के महल को सलाम करके तेज़ क़दमों से उस पहाड़ की ओर चल दिया। नदी के चट्टानी किनारे पर पहुँचकर उसने उस इलाके का निरीक्षण किया, और फिर काम में लग गया। उसके तेशे और हथौड़े की ठक-ठक सारे शहर की ज़िन्दगी का एक हिस्सा बन गयी। ठक-ठक शुरू होते ही लोग भी अपने-अपने काम में लग जाते, ठक-ठक बन्द होने पर दीये जलाते। शीरीं सुबह-शाम दुआएँ करती। फरहाद की ठक-ठक उसके जीवन का गीत बन गयी। पहरेदारों पर उस महान इश्क का असर होने से न रहा। उनके दिलों में दर्द जागा, और वे शीरीं का सन्देश फरहाद को दे आये।

फरहाद को यह सन्देश मिलने के बाद आधी-आधी रात तक तेशे-हथौड़े की आवाज़ सुनायी देने लगी। पर चित्रकार की क़िस्मत पत्थर के साथ संघर्ष करने लगी थी। दस वर्ष का पहाड़ टूटता रहा, पर नहर अभी दूसरे सिरे तक नहीं पहुँच पायी थी।

शीरीं के सब्र में कोई फ़र्क़ नहीं आया, पर महमन बानो के दिल में एक ऐसा पश्चाताप था कि उसे चैन नहीं थी। उसने फरहाद को शीरीं से दूर तो ज़रूर कर दिया, पर ख़ुद भी उसकी याद में तड़पने लगी। फरहाद की-सी सुन्दरता किसी और व्यक्ति में दिखाई नहीं देती थी। सुलताना की आँखों की प्यास दिन-प्रतिदिन भड़कती जा रही थी। वह कई बार काम देखने के बहाने फरहाद के पास जाती। पर फरहाद उससे उस तरह पेश न आता, जिस तरह वह चाहती थी। वहाँ से लौटने पर सुलताना की बेचैनी और बढ़ गयी होती।

एक दिन काफ़ी सोच-विचार के बाद सुलताना ने शीरीं को बुलाकर कहा कि अगर वह फरहाद को पहाड़ तोड़ने से हटाकर वापस ले आये तो वह उसका कसूर माफ़ कर देगी, और फिर उन दोनों को शादी करने की इज़ाज़त दे देगी।

शीरीं की आँखों के आगे से अँधकार हट गया। प्रकाश दिखायी देने लगा। पहरे हटा दिये गये, दरवाज़े खुल गये, और शीरीं फरहाद के पास पहुँच गयी।

फरहाद के कपड़े फटे हुए थे। उसके चेहरे पर धूल थी और आँखों में अकेलेपन की उदासी। उसके हाथ फटे हुए थे, पाँव ज़ख़्मी थे, और बाल बिखरे हुए। और उसका तेशा और हथौड़ा लगातार पहाड़ को तोड़े जा रहे थे।

''फरहाद! फरहाद! फरहाद!''

तेशा रुक गया। आँखों में कोई चमक आयी, पर बाँहों में मिलने के लिए कोई जल्दी नहीं थी। धूल-भरी आँखों ने पूछा :

''शीरीं कैसे आयी है? मेरा काम तो अभी ख़त्म नहीं हुआ है।''

''शीरीं फरहाद को लेने आयी हैं।''

''पर जब तक फरहाद पहाड़ में से रास्ता नहीं बना लेता, तब तक वह यहाँ से जा नहीं सकेगा।''

''सुलताना ने हम दोनों की शादी की इज़ाज़त दे दी है।'' शीरीं ने ग़लत सोचा था कि यह सुनते ही फरहाद अपने हाथ में पकड़ा हुआ तेश फेंक देगा और उसके हाथों को अपने हाथों में ले लेगा।

''नहीं शीरीं, अब यह इज़ाज़त मैं सुलताना से नहीं लूँगा। यह नहर मैं सुलताना के लिए नहीं बल्कि लोगों के लिए खोद रहा हूँ। पानी की कमी सुलताना को नहीं, मेरे लोगों को है। लोगों की ख़िदमत में मुझे वही मज़ा आया है, जो तुम्हारे इश्क़ में आया था। इस नहर में पानी को बहते हुए देखने की मेरी ख़्वाहिश उतनी ही ज़ोरदार हो गयी है, जितनी तुम्हारे सीने को अपने सीने के साथ धड़कते हुए सुनने की ख़्वाहिश। और शीरीं, यह दोनों ख़्वाहिशें पूरी होंगी। शीरीं अब लोगों की बेटी बन गयी है, वह सिर्फ़ सुलतान सलीम की बेटी नहीं रही। अपनी खिदमत के बदले में मैं लोगों से शीरीं को माँग लूँगा।''

शीरीं किसी तरह भी फरहाद के पहाड़—जैसे अटल फैसले को तोड़ नहीं सकी। आख़िर निराश होकर लौट आयी।

दो साल और बीत गये। इन दो सालों में पिछले पाँच सालों से ज़्यादा काम हुआ। लोग कहते थे कि सचमुच आसमान ज़मीन से मिलनेवाला था। अगर सुलताना चाहती तो सौ नौजवान वहाँ भेजकर बाक़ी बचे हुए पहाड़ तो तुड़वा डालती।

पर सुलताना को तो अब यह चिन्ता लगी हुई थी कि नहर बनी गयी तो क्या होगा। पानी शहर में आ जाएगा तो लोग फरहाद को सिर पर उठा लेंगे, और शीरीं उसकी हो जाएगी। फिर उसके बच्चे होंगे, उन्हीं में से कोई सुलतान बनेगा। बदनसीब महमन न ख़ुद फरहाद को पा सकी, न शीरीं से उसे छीन सकी...

उसके दिल में पीड़ा उठने लगी। उसका रोग हकीमों के बस की बात नहीं था। किसी ने एक स्त्री का पता बताया जो बड़ी पवित्र समझी जाती थी और जिसने कभी मर्द का चेहरा नहीं देखा था। उसने सारी ज़िन्दगी परहेज और नमाज में बितायी थी। उसके बारे में मशहूर था कि उसने बहुत-से लोगों के रहस्य भरे रोग दूर कर दिये थे। सुलताना ने भी उसे बुलाया और अपने दिल की बेकारी का ज़िक्र किया।

''कौन कह सकता था कि फरहाद पहाड़ में से रास्ता बना लेगा, पर जब मुझे लगा कि यह बात मुमकिन होनेवाली है तो मैंने शीरीं को उसके पास भेजा। पर फरहाद बड़ा मगरूर है, वह मेरी तरफ़ देखता भी नहीं। वह अपनी ख़िदमत के इनाम में लोगों से शीरीं हासिल करने का ख़्वाब देख रहा है। तब मैं किस मुँह से लोगों के सामने हूँगी?'

उस स्त्री ने सुलताना को गहरी सहानुभूति दिखाते हुए भरोसा दिलाया:

''अपनी सुलताना को मैं फरहाद तो दिला नहीं सकती, पर शीरीं से फरहाद छीन ज़रूर सकती हूँ। इस बात का आप भरोसा रखें।''

इसके बाद वह कोई दुआ पढ़ती हुई वहाँ से चली गयी। सुलताना बिस्तर से उठकर बैठ गयी।

आज लोगों में चर्चा का सागर लहरा रहा था।

'कोहकन ने कोह तोड़ डाला।' हर कोई कह रहा था। बस एक और नया चाँद चढ़ने की देर है कि अरजन शहर के सूखे-मुरझाये हुए पेड़-पौधों को उस नदी का पानी चूमने लगेगा, जो सदियों से लोगों की ज़रूरतों से विमुख होकर अपनी ही दिश में बदलती जा रही थी। लोगों के एक बहादुर बेटे ने उसका मुँह मोड़ दिया है।

शर्त थी कि फरहाद अकेला ही पहाड़ में से नहर खोदेगा। उसके बाद शहर तक की नहर ख़ुद लोगों ने खोद ली। अरजन में कोई नयी ज़िन्दगी आ गयी थी। लोगों ने अपने घर साफ़ कर लिये, कपड़े धो लिये, और सब तैयारियाँ कर लीं।

आज फरहाद ने पहाड़ का आख़िरी हिस्सा तोड़ डाला था। नदी का पानी तेज़ी से नहर में बहने लगा। फरहाद ने तेशे को चूमा, हथौड़े को चूमा, और फिर सजदा किया।

लोग ख़बर देने के लिए शहर की ओर छोड़े।

फरहाद कपड़े झाड़-पोंछकर और सिर पर पगड़ी बाँधकर नहर के किनारे-किनारे चल दिया। लोग इतने ख़ुश थे कि उससे पहले शहर में पहुँच जाना चाहते थे। अब फरहाद अकेला ही जा रहा था। कुछ आगे जाने पर उसने देखा कि एक स्त्री शहर की ओर से उधर आ रही थी। उसके क़दमों में तेज़ी थी। वह कुछ बोल भी रही थी, जैसे कोई प्रार्थना कर रही हो। जब वह फरहाद के पास पहुँची तो उसने चीख़कर उसे गले से लगा लिया। उसका साँस उखड़ा हुआ था।

फरहाद को अपनी ख़ुशी भूल गयी। स्त्री का दुख उसका अपना दुख बन गया। उसने पूछा कि वह उसकी क्या ख़िदमत कर सकता है।

''बेटा, तुम मेरी क्या ख़िदमत करोगे? बहुत बुरा हुआ है, शादी मातम में बदल गई। मैं हमेशा के लिए यह शहर छोड़कर जा रही हूँ।''

''आख़िर क्या बात है?''

''बहुत सितम हुआ! सुलताना अपनी बहन की ख़ुशक़िस्मती सहार नहीं सकी है।'' उस समय उसके नमाजी चेहरे पर गुस्सा चमका।

''क्यों, माँ, सुलताना को क्या हो गया है? वैसे उनकी बीमारी की ख़बर मुझ तक पहुँची थी।''

''उस सितमगर औरत को क्या होना था? उसने... उसने...''

''क्या हुआ है उन्हें?''

स्त्री को रोते हुए कहा, ''शीरीं को... उसने...क़त्ल... कत्ल करा दिया है।'' और उसी समय वह बेहोश होकर फरहाद के क़दमों में गिर पड़ी।

''ओ शीरीं— मेरी शीरीं।'' फरहाद के मुँह से निकला और उसी समय वह नहर के किनारे की ओर बढ़ा। दूसरे ही क्षण उसने तेशा उठाकर अपने माथे में दे मारा। नहर का पानी ख़ून से लाल हो गया।

स्त्री जल्दी से उठी और उसने नहर के पानी में जैसे किसी चीज़ को डूबते हुए देखा। पाँच मिनट तक वह चीज़ पानी में से ऊपर नहीं आयी। ''पत्थर की तरह ही डूब गया है'', स्त्री ने सोचा। तभी वह रोती-चीख़ती हुई शहर की ओर भाग उठी : ''बचाओ। बचाओ कोई।''

बहुत-से लोग भागे हुए आये। जब उन्होंने फरहाद के बारे में ख़बर सुनी तो वे अपनी सुध-बुध भूल गये। कोई फरहाद की ओर भागा, कोई शहर की ओर।

शीरीं तक भी ख़बर पहुँच गयी कि फरहाद ख़ुशी के शिखर पर पहुँचकर चकरा गया था, पागल हो गया था, और नहर में छलाँग लगाकर डूब गया था।

शीरीं ने न कुछ पूछा, न किसी की सलाह ली। वह जैसे पागल बनकर नहर की ओर भाग उठी। रास्ते में उसे वही स्त्री दिखायी दी जो बड़ी पवित्र समझी जाती थी। शीरीं सबकुछ समझ गयी। उसने उसे गर्दन से पकड़ लिया और खींचती हुई मौक़े की जगह पर ले गयी।

महमन बानो फरहाद के बहने की ख़बर सुनकर तड़प उठी। यह सब उसने नहीं चाहा था। और जब वह मौक़े पर पहुँची तो शीरीं उस स्त्री का गला दबोचे उसे धमका रही थी :

''अब इन हाथों में से कोई तुम्हें छुड़ा नहीं सकता। पर अगर सच्ची बात बता दो तो तुम्हारे जीने-मरने में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं रहेगी। मैं तुम्हें छोड़ दूँगी।''

सुलताना ने इतना कहने का साहस कर लिया : ''शीरीं, तुम फ़िक्र न करो, मैं ख़ुद सारी बात का पता लगाती हूँ।''

''अब बहन, तुम मुझे कुछ न कहो। मैं किसी का हुक्म मानने के लिए मज़बूर नहीं हूँ। मेरे दिन ख़त्म हो गये हैं। इस सचाई का मैं इस बुढ़िया से ख़ुद पता लगाऊँगी। बोल डायन!''

शीरीं के ग़ुस्से को देखकर वह स्त्री काँप उठी।

उसने सारी कहानी कह सुनायी। शीरीं ने उसे छोड़ दिया। तभी महमन ने उसका गला दबोच लिया। ''डायन, मैंने कब तुमसे यह कहने को कहा था?''

''बहन, अपनी सफाई देने की तकलीफ न करो,'' शीरीं ने उससे कहा, ''अब मेरा ग़ुस्सा न तुम पर है, न इस पर है। सिर्फ़ यही बात साफ़ करना चाहती थी कि मेरे फरहाद का सिर नहीं चकराया आख़िरी दम तक वह लोगों का और मेरे सेहतमन्द फरहाद रहा है।''

और शीरीं ने भी किनारे पर खड़ी होकर कटार निकाली और अपनी छाती में घोंप ली। उसके मुँह से 'फरहाद' सुनायी दिया और नहर के पानी में से बुलबुले उठने लगे।

सुलताना ने अपने बाल खोलकर गले में डाल लिये और आह भरकर लोगों ने कहा :

''मैं सिर्फ़ एक बात कहना चाहूँगी कि यह जो कुछ हुआ है मेरी मर्जी से नहीं हुआ। फरहाद के साथ शीरीं की शादी को मैं गबारा नहीं कर सकती थी। इस बुढ़िया की पाकीजगी ने मुझे अपने जाल में फँसा लिया। इसने कहा था कि यह शीरीं के साथ फरहाद की शादी रोक देगी। मैंने पूछा नहीं कि कैसे। शीरीं या फरहाद में से किसी का भी मेरी दुनिया में से निकल जाना उनकी शादी के मुकाबले में मेरे लिए कहीं दुखदायी है। इस नामुराद औरत ने मेरी दुनिया वीरान कर दी है...।''

बड़े वजीर ने लोगों को याद कराया कि कैसे सुलताना ने दोनों की गिरफ़्तारी का हुक्म देते हुए ताकीद की थी कि किसी को भी कोई नुकसान न पहुँचे, किसी की भी तौहीन न हो। फिर उसने याद कराया कि शीरीं की बीमारी के दिनों में सुलताना ने उसके लिए कितनी बड़ी कुर्बानी की थी।

शीरीं न रही, फरहाद न रहा, तो महमन बानो के बिना राजगद्दी एकदम सूनी हो जाएगी— लोग सोच रहे थे।

और लोगों ने दोनों आशिक़ों की लाशें निकालीं और 'कसरे शीरीं' के शहर ले जाकर उन्हें एक क़ब्र में दफना दिया, जो क़ब्र शीरीं और फरहाद के नाम से आज तक दुनिया के आशिक़ों की ज़्यारतगाह है।

प्रस्तुति : कुणाल सिंह

सोहनी महींवाल



सौदागर इज़्ज़त अली का डेरा गुजरात शहर के पूर्व की ओर एक बाग़ में लगा हुआ है। ऊँटनियों की गर्दनों में घंटियाँ बज रही हैं, अरबी घोड़ों के ज़िस्म चमक रहे हैं, और नौकर-चाकर बड़े चाव में इधर-उधर आ-जा रहे हैं।

डेरे में बातचीत चल रही है। ''सआदत, आज की महफिल यादगारी महफिल हो! शराबे-शर्बत बलख बुखारे के, पर पिलाये जायें यहाँ के सागरों में। कितने ख़ूबसूरत सागर और कूजे और प्याले कल तुम शहर से ख़रीदकर लाये हो!''

''हाँ, इज़्ज़त, बड़े ही बाँके हैं यहाँ के सागरो-पैमाने। मिट्टी के बने हुए होने पर भी काँच को मात करते हैं। उनमें आज हम यहाँ के हुनरमन्द लोगों की सेहत के जाम पियेंगे।''

''और कल तुम मुझे भी ले चलना। इन कूजों के बनानेवाले की जियारत मैं भी कर आऊँगा।''

दूसरे दिन सुबह इज़्ज़त बेग और सआदत अली तुले कुम्हार के घर की ओर जा रहे थे। बाज़ार में लोग दूकानों से उठ-उठकर उनकी ओर देख रहे थे और रात की महफिल की तारीफ़ें कर रहे थे।

तुले कुम्हार का नाम सारे पंजाब में मशहूर था। कौन-सा ऐसा स्थान था, जहाँ उसके बनाये बर्तन और खिलौने नहीं पहुँचते थे! उसके घर के आगे, खुले आँगन में बर्तन और खिलौने बड़े करीने से सँवारकर रखे हुए थे। एक तरफ़ हवेली में भैंसें खड़ी थीं।

तुला ख़ुद अपने चाक के सामने बैठा हुआ गीली मिट्टी में से जादू-भरी सुन्दरता को जन्म दे रहा था। उसके बायें हाथ एक युवती बैठी हुई मिट्टी गूँध रही थी। उस युवती को देखकर भी लगता था जैसे तुले कुम्हार ने उसे अपने जादू के चाक पर विशेष रूप से सँवार-तराशकर तैयार किया हो। दो परदेशी व्यक्ति आँगन में तुले कुम्हार के पास आकर खड़े हुए।

तुले ने उनका स्वागत किया और फिर पास बैठी युवती से कहा, ''सोहनी बेटी; ज़रा खाट ले आओ तो इनके लिए।''

मेहमानों को समझ नहीं आ रहा थी कि वे किस तरफ़ देखें— एक तरफ़ कलाकार का जलाल, दूसरी तरफ़ परी-सी सुन्दरी का यौवन!

''यह मेरे मालिक इज़्ज़त बेग हैं,'' सआदत ने कहा।

''अस-सलाम-लैकम, मेरे सिर-माथे पर!'' तुले का चेहरा खिल उठा।

''परसों मैं यहाँ से कई कूजे और दूसरे बर्तन ले गया था। हमारे इज़्ज़त बेग को वे बहुत अच्छे लगे। सो आज वे ख़ुद कुछ और बर्तन ख़रीदने और तुमसे मुलाक़ात करने आये हैं।''

''मेरी ख़ुशक़िस्मती है। हुकुम कीजिए। सोहनी बेटी, जाकर दिखाओ इन्हें बर्तन। मैं तब तक यह फूलदान पूरा करके चाक पर से उतार लूँ।''

आगे-आगे सोहनी, पीछे-पीछे मेहमान। एक कमरे का दरवाज़ा उसने खोला। यह तुले की दुकान थी। विभिन्न प्रकार की चीज़ें वहाँ बड़े करीने से रखी हुई थीं। सोहनी उन चीज़ों को उठा-उठाकर दिखाने लगी। इज़्ज़त बेग उनमें से कुछ चीज़ें एक ओर रखवाता गया। एक चीज़ रखकर वह दूसरी लेने जाती तो इज़्ज़त बेग किसी सपने में खो जाता। ''ओह, इसके पाँव— यह ज़मीन पर चल रही है या मेरे सीने पर? हाथ बढ़ाकर चीज़ों को उठाती है या मेरे दिल को पकड़ती है?'' वह मन में कहता।

सोहनी ने एक प्याला इज़्ज़त की ओर बढ़ाया। कहने को वह मिट्टी का प्याला था, पर इज़्ज़त बेग उसे अपनी आँखों के सामने घुमाता हुआ उसके किनारों की लकीरों और उसकी गोलाई को देर तक देखता रहा। सआदत ने उसके रंग की तारीफ की।

इज़्ज़त बेग को लगा, वह प्याला खाली नहीं, बल्कि भरा हुआ था। और उसने उसे होंठों से लगा लिया। सोहनी हँस पड़ी। और उसके नाक में पड़ी 'बुलाक' उसके होंठों पर झूल उठी।

''मैं देख रहा था कि होंठों के साथ लगने पर यह कैसा महसूस होता है,'' इज़्ज़त बेग ने सोहनी की हँसी के जवाब में कहा।

''पर यह अभी नया है, इस्तेमाल करने पर कुछ अरसे के बाद होंठों को होंठों जैसा ही नर्म लगेगा,'' सोहनी ने सहज भाव से प्याले की प्रशंसा में कहा।

पर इज़्ज़त बेग को तो सचमुच उस प्याले में किसी के होंठों का स्पर्श महसूस हुआ। और उसने उसे दूसरे बर्तनों से ज़रा एक तरफ़ अलग करके रख लिया। देर तक वह उस पर अँगुलियाँ फिराता रहा, और कुछ बोल न सका।

''पर आप कौन-सी चीज़ लेंगे?'' सोहनी ने पूछा।

''अगर मैं क़ीमत चुका सकूँ तो सभी ख़रीद लूँ। अच्छा अब तो चीज़ें यहाँ लाकर रखी हैं, उनकी क़ीमत लगाओ।''

वे सब मिलाकर लगभग बीस बर्तन थे। सोहनी ने हिसाब लगाकर उनकी क़ीमत दस रुपये बतायी। सआदत ने झट दस रुपये उसे दे दिये।

''हमारा आदमी आकर यह चीज़ें ले जाएगा। अब हम उस्तादजी को सलाम कहकर रुखसत लेंगे।''

तुले ने हँसकर पूछा, ''बेटी, क़ीमत ठीक बतायी है न? मुझे बताओ, कहीं ज़्यादा पैसे न ले लिये हों। यह हमारे मेहमान हैं।''

''ज़्यादा!'' इज़्ज़त बेग ने जल्दी से कहा। ''मैं तो मिट्टी के भाव में सोना ले चला हूँ।''

दावत के तीसरे दिन डेरे को कूच कर हुक्म था। पर तुले कुम्हार की दुकान से लौटने पर इज़्ज़त बेग ने एक हफ़्ता और वहाँ रहने के लिए कह दिया। सभी लोगों में ख़ुशी की एक लहर दौड़ गयी। झनाँ का किनारा और गुजरात के लोग बुखारियों को अच्छे लगे थे।

पर वह ख़ुद शाम तक अपने तम्बू में से बाहर नहीं निकला। उसके दिमाग़ में कई क़िस्म के विचार उठ रहे थे और वह किसी फैसले पर पहुँचना चाह रहा था। अब उसे पेशावर जाने की कोई जल्दी नहीं थी। तभी किसी ने यादों से निकलकर उसके कन्धे पर हाथ रखा। वह उसका पिता था। उसने कहा, ''मेरे चाँद, क्यों भटक रहे हो। घर चलो कामकाज सँभालो।''

उसके अब्बा ने उसे अपने साथ वापस चलने का हुक्म दे दिया। वह काँप उठा और उसी समय उसकी नींद टूट गयी। उसने सुख का साँस लिया और उठकर सुराही में से प्याला भरा, जो वह सुबह ख़रीदकर लाया था।

उधर रात का खाना बना रही सोहनी ने भी अपनी अँगुलियाँ जला लीं।

''क्यों, सोहनी, आज क्या हो गया है तुम्हें?''

''तबीयत कुछ ठीक नहीं है, माँ।''

''उठो, मैं पकाती हूँ। तुम आराम कर लो। तुम्हारा अब्बा कह रहा था कि आज तुमने चार दिन की कमाई कुछ ही पलों में कर ली।''

सोहनी का दिल बेचैन था। रह-रहकर वह सौदागर उसकी आँखों के सामने आ रहा था। सौदागरों की कहानियाँ उसने माँ से सुनी हुई थीं, पर आज तो सोहनी ने ख़ुद उसे प्याला पकड़ाया था, जिसे उसने होंठों से लगा लिया था, और वह उसकी आँखों में झाँककर मुस्कराया था। सोहनी की अँगुलियों में उसके हाथों का स्पर्श अभी तक जीवित था।

कभी दिवास्वप्नों में सोहनी ने किसी ऐसे ही व्यक्ति के नयन-नक्शों की कल्पना की थी, पर आज तो वे सचमुच उसके सामने साकार हो उठे थे और फिर उसके दिल में समा गये थे। दुनिया ही बदल गयी थी। अपनी पहली दुनिया से वह दिल चुराने लगी।

अगले दिन सोहनी अपने अब्बा के लिए मिट्टी तैयार कर रही थी और उसका अब्बा सुराही की गर्दन को तराश रहा था।

''एक बार— एक बार अगर वह फिर आ जाये!'' सोहनी आँखें उठा-उठाकर आँगन के द्वार की ओर देखती। आख़िर वह अपने अब्बा को मिट्टी देनी भूल गयी।

तुले ने सुराही पूरी कर ली थी।

''बेटा सोहनी, चाक यूँ ही घूमे जा रहा है, लाओ, मिट्टी दो, इस सुराही के साथ प्याला भी बिना लूँ।''

''लो अब्बा,'' सोहनी ने कहा। उसका ध्यान दरवाज़े की तरफ़ चला गया था।

उसी समय दरवाज़े की ओर से एक व्यक्ति उनकी तरफ़ चला आ रहा था। उनके पास आकर रुका।

''जितनी चीज़ें मैं उस दिन ले गया था, उतनी ही मुझे और चाहिए, उस्तादजी। यह सब मैं अपने मुल्क में भेजूँगा।'' इज़्ज़त बेग ने बड़े आदर से सोहनी के सामने सिर झुकाते हुए कहा।

तुले का चाक घूमे जा रहा था।

''जाओ, बेटा, जो कुछ यह चाहते हैं, इन्हें दो जाकर। मैं ख़ुश हूँ कि इन्होंने मेरी कारीगरी की कद्र की है।''

उसी दिन की तरह वे आगे-पीछे जा रहे थे। पर आज उनका हर क़दम एक-दूसरे को कुछ कह रहा था। पन्द्रह क़दमों में जैसे उन्होंने एक-दूसरे के दिल का भेज जान लिया। जब सोहनी ने पहली चीज़ लाकर इज़्ज़त बेग को दी थी तो वह उसके लिए परदेसन नहीं रही थी। आज चीज़ें देते-देते समय उनकी अँगुलियाँ अनायास ही एक-दूसरे से छू जातीं और उनके दिलों के अँधेरे कोने तक उनके प्रकाश में जगमगा उठते।

तभी इज़्ज़त के हाथ लगने से एक सुराही लुढ़क गयी। वह उसे पकड़ने लगा तो उसके साथ सोहनी ने भी उसे पकड़ना चाहा। दोनों के हाथ एक-दूसरे को छू गये और फिर आपस में जुड़ गये।

सोहनी शरमा गयी। फिर आँखें झुकाकर बोली, ''मैंने अपनी सहेली के भाई को अपने डेरे पर भेजा था। उसने आकर आपके बारे में बहुत-कुछ मुझे बताया।''

इज़्ज़त बेग का दिल ख़ुशी से भर गया।

''अगर तुम किसी के जरिये मेरे बारे में पूछती रही हो तो मेरे मुँह भी मेरे दिल की बात सुन सकोगी। कहो तो बताऊँ?''

सोहनी ने आँखें उठाकर देखा। इज़्ज़त बेग पूर्ण रूप से उसकी आँख में समा गया।

''बताइए!'' सोहनी बस इतना ही कह सकी।

''मैं किसका बेटा हूँ और कहा का रहनेवाला हूँ, इस बारे में तुम्हें पता लग ही गया होगा। पर मैं तुम्हें अपने बारे में वह कुछ बताना चाहता है जो किसी और ने नहीं बताया होगा।''

मन की बात बाहर निकालकर इज़्ज़त को शान्ति मिल गयी, पर सोहनी चुप थी। रह-रहकर वह कुछ कहना चाहा रही थी, पर बात उसके होंठों तक आकर लौट जाती थी। और वह इज़्ज़त के चेहरे की ओर ही देखती रही। आख़िर इज़्ज़त ने सोहनी के हाथ पर बड़ी नर्मी से अपना हाथ रखकर कहा, ''सोहनी, हर तरह का जवाब देने के लिए तुम आजाद हो। मैंने तुम्हें अपनी मंज़िल बता दी है। तुम्हारी मंज़िल कोई और हो तो तुम बता सकती हो।''

''मेरी मंज़िल की क्या पूछते हैं। जिस दिन से आपको देखा है, मुझे लगता है, उसके पहले जैसे कभी किसी को देखा ही नहीं है।'' सोहनी की आँखें फिर झुक गयीं, होंठ बन्द हो गये, और हाथों का कम्पन छिपाने के लिए वह चीज़ें एक तरफ़ से उठाकर दूसरी तरफ़ रखने लगी। तभी इज़्ज़त ने उसका हाथ पकड़ लिया। सोहनी को लगा, उस जैसा मेहरबान चेहरा उसने कभी देखा ही नहीं था।

''अँगुलियाँ हैं या परिन्दों की कतार।'' इज़्ज़त ने कहा और उसका दूसरा हाथ भी अपने हाथ में लेकर सीने से लगा लिया। दोनों हाथों की दस अँगुलियाँ जैसे दस पक्षी थे, जो कुछ कह रहे थे, और सोहनी का दिल धड़क रहा था। प्रत्येक अँगुली के पोर को चूमकर इज़्ज़त ने नर्मी से उसके दोनों हाथ छोड़ दिये।

''पर आप परदेसी हैं, सौदागर हैं, अमीर हैं,'' सोहनी ने आह भरकर कहा।

''तो क्या हुआ? मैं मंज़िल पर पहुँच गया हूँ।''

सोहनी की आँखों में कोई डर आँसू बनता

जा रहा था। इज़्ज़त बेग ने अपनी आँखों में मुस्कराहट भरकर कहा, "हमारा इश्क़ कैसे निभेगा, यह खेल तकदीर का है, पर इश्क़ का हमेशा के लिए इकरार तुम्हारा मेरा खेल है। सो इकरार दो, अगर दे सको तो।" सोहनी ने ऊपर देखा। आँखें खुलीं, द्वार खुले, दिल धक-धक करने लगा— प्राणों का फड़फड़ाता हुआ पक्षी इज़्ज़त बेग की आँखों के झरोखे में से निकलकर सोहनी की ओर उड़ा। इज़्ज़त ने तुले को सलाम की और यह कहकर चला गया कि अपना आदमी भेजकर वह सब चीज़ें मँगा लेगा, जो कि उसने पसन्द की हैं।

सोहनी अब उस दुनिया में रहने लगी, जिसमें किसी की याद से दिल धड़कता था और अन्दर से कोई स्रोत फूटता था, और तन-मन खिल उठता था। उसे भरोसा था उसका महबूब लौट कर आएगा।

"डेरा चला गया," सोहनी की सहेली के भाई ने उससे कहा और बताया कि शहरवालों ने डेरे को बड़े आदर से विदा किया है और अभी तक लोग इज़्ज़त बेग और उसके उदार स्वभाव की बातें कर रहे हैं।

इज़्ज़त बेग को गये हुए एक हफ़्ता, बस दिन, पन्द्रह दिन बीत गये।

"उसे उसके घरवालों ने आने नहीं दिया होगा," सोहनी ने मन में कहा। और यह मुमकिन भी कैसे है कि उस जैसे शहजादे को वे आ जाने दें। सोहनी के पाँव तले जैसे ज़मीन खिसकने लगी, उसके हाथ-पाँव की शक्ति क्षीण होने लगी। एक दिन वह मिट्टी गूँध रही थी और अपने ख़्यालों में खोई हुई थी कि बार-बार उसकी आँखें आँगन के दरवाज़े की ओर उठ जाती थीं।

तभी किसी व्यक्ति ने पुकारा, "मैंने सुना है, उस्तादजी, आपको महींवाल की ज़रूरत है," उसने कहा।

"वाह, भाई वाह! तुम्हें तो जैसे अल्लाह ने भेजा है।" तुले ने कहा और सोहनी की ओर नज़र मोड़ी। "बेटा इसे अपनी भैंसें जाकर दिखा दो तो।"

"कौन-सा गाँव है तुम्हारा?" सोहनी ने सिर उठाकर उसकी ओर देखे बिना ही पूछा।

"बहुत दूर है", उसने कहा।

आवाज़ उसके कपड़ों के मुकाबले में कुछ अलग-सी लगी, तो सोहनी ने सिर उठाया।

"भैंसों को दुह लेते हो?"

"कभी हमारे यहाँ बहुत भैंसें थीं। मैं बड़े शौक़ से उन्हें दुहा करता था। बेफ़िक्र रहिए, कोई शिकायत नहीं होने दूँगा। मुझे घरवालों ने झेला नहीं, सो तकदीर आजमाने के लिए मैं घर से निकल पड़ा। तनख़्वाह का भी कोई ख़्याल नहीं है, मैं अकेला ही हूँ, बस रोटी-कपड़ा और...," वह जो कहना चाहता था, उसके लिए उसे शब्द नहीं मिल पाये।

"हाँ, रोटी-कपड़ा और— और क्या?" सोहनी ने कहा।

"और कुछ नहीं। हाँ, हो सके तो थोड़ी सी इज़्ज़त और दे देना", उसने हल्का-सा मुस्कराकर कहा।

सोहनी ने उसे सिर से लेकर पाँव तक ध्यान से देखा।

"अच्छा, मेरे साथ चलो।"

हवेली में पहुँचकर सोहनी ने एक बार फिर उसे ध्यान से देखा। तब वह प्रत्येक भैंस का अलग से ज़िक्र करते हुए उनके बारे में बताने लगी। फिर एकाएक उसने महींवाल गले में बाँहें डाल दीं और उसकी आँखें छलक पड़ीं। "ओह, मेरे सपनों के साजन, यह कैसा भेस बनाकर आये हो तुम?"

"और किसी भेस में मैं अपने फरिश्ते के नजदीक नहीं हो सकता था।" उसने सोहनी की गर्दन को सहलाते हुए कहा।

"पर यह मैं कैसे क़बूल कर लूँ कि शहजादा हमारे यहाँ महींवाल बन कर रहे?"

"मेरी भोली मलिका, तुम्हारे महींवाल पर शहजादे भी ईर्ष्या करेंगे।"

"ओह... हाय! और अब अगर कोई तुम्हें लेने आ जाए?" सोहनी में अपने स्वर्ग को आलिंगन में भरने की तड़प थी।

"वे चले गये, सोहनी," उसने दिलासा देते हुए कहा। "उनकी इज़्ज़त के कपड़े भी मैंने उन्हें दे दिये हैं। इस लिबासवाला तुम्हारा महींवाल अब उन्हें दरकार नहीं है।"

होंठों तक आयी हुई चीख़ को रोकने के लिए सोहनी ने फिर उसके गले में बाँहें डाल दीं और कहा, "अब यह महींवाल मेरा सारा संसार होगा।"

फिर अब्बा के पास जाकर सोहनी ने कहा, "काम चाहे कम किया नहीं है, पर आदमी अच्छा लगता है। जल्दी ही सब काम सीख जाएगा।"

"आदमी अच्छा चाहिए, बेटा। जाओ, अपनी माँ के पास ले जाओ। पर पहले मेरे इस कूजे को देख जाओ। कितना शानदार बना है!"

सोहनी के माता-पिता अपने महींवाल पर ख़ुश थे। वह जैसे घर का ही व्यक्ति था। हर किसी का शुभेच्छुक। कोई शोख़ी नहीं, कोई शिकायत नहीं। सोहनी सिर्फ़ एक बार सुबह दूध दुहाने के लिए जाती। शाम को उसकी माँ जाती। कभी कोई महींवाल के दिल की बात न जान सका।

सोहनी छोटी-छोटी बातों से उसे दिन-भर के लिए भर जाती, मुस्करा जाती, चाँद-सा चेहरा झलक जाती, और कभी-कभी दूध दुह रहे महींवाल के गले में पीछे से बाँहें भी डाल देती।

"देखना, सोहनी, दूध कहीं गिर न जाए बरतन में से," महींवाल कहता और बरतन को अपने घुटनों में कसकर पकड़ लेता।

"कह दूँगी पड़िया चूँघ गयी है," सोहनी कहती और अपनी हथेलियों से उसकी आँखें मूँद देती। इस सबसे बेख़बर सोहनी के माता-पिता उसकी शादी की फ़िक्र कर रहे थे।

सोहनी को हमेशा यह डर लगा रहता था कि एक दिन उसकी शादी कर दी जाएगी। और अब जबकि शादी तय हो गयी तो सोहनी ने महींवाल से कहा कि वह उसे कहीं भगाकर ले चले।

"नहीं, सोहनी," महींवाल ने समझाया, "तुम्हारे महींवाल का कोई ठौर-ठिकाना नहीं है, न ही कोई रिश्तेदार है यहाँ, सो इतनी बड़ी दौलत वह सँभाल नहीं सकेगा!"

"तुम तो बड़े इल्म जानते हो, महींवाल, किसी जादू से मुझे भैंस बना लो और अपने रेवड़ में रख लो।" सोहनी की आँखों में अनन्त बेबसी थी।

"मेरी सोहनी!" महींवाल ने उसे गले से लगा लिया। "अगर मैं रोऊँ तो मेरे आँसू झनाँ को शर्मसार कर सकते हैं, पर इस वक़्त तुम्हारे आँसुओं को बोसा देना मेरा पहला फ़र्ज है। तुम हमेशा मेरे इस सीने में रहोगी, यह शादी तुम्हें मुझसे अलग नहीं कर सकती। तुम मेरा

बुत हो, मैं तुम्हारी रूह हूँ। हम एक साथ जीने-मरने के लिए बने हैं। हम दोनों की एक ही मंज़िल है।''

दूसरे दिन सोहनी की डोली रवाना करने के लिये सगे-सम्बन्धी इकट्ठे हुए। सखियों-सहेलियों और चाचियों-ताइयों के गले लगकर सोहनी चीख़ें मारती हुई रो रही थी। उसी समय महींवाल उसकी पंचकल्याणी भैंस को नहलाकर और उसके सींगों पर तेल मलकर ले आया। तब सोहनी जिस तरह रोई, उसे सुनकर, पशु-पक्षी तक उदास हो गये।

''इसका फ़िक्र न करना, मैं इसे सँभालकर रखूँगा।'' महींवाल ने कहा।

सोहनी ने आँसू भरी आँखों से महींवाल की ओर देखा।

''रोते हुए हुस्न में भी क्या जादू है, ख़ुदाया!'' महींवाल ने होंठों में धीमे से कहा और सोहनी के लिए दुआ माँगी।

दो महीने में सोहनी की माँ भी उदास हो गयी। उस घर में सोहनी का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान था। आख़िर माँ ने सोहनी के लिए सामान तैयार किया और महींवाल को वह सामान दे सोहनी की ससुराल में भेजा।

सोहनी के ससुराल में महींवाल का बहुत आदर सत्कार हुआ। सोहनी ने भी उसकी कुशलता पूछी, और फिर एकान्त समय पाकर उसे अपना दुख कह सुनाया :

''माही मेरे, तुम्हारी सोहनी की जान पानी से निकली हुई मछली की तरह तड़प रही है। अगर चाहो तो बचा सकते हो, वरना मेरी रूह यह ज़िस्म छोड़कर कहीं परवाज न कर जाये।''

''घबराओ नहीं,'' महींवाल ने कहा। ''मेरे दिमाग़ में किसी फैसले की रोशनी चमकी है। आज नया चाँद चढ़ा है। अगला चाँद चढ़ने से पहले मेरा चाँद मेरे सीने पर चमक रहा होगा।''

सोहनी की सास ने हाथ जोड़कर महींवाल से कहा कि लौटने पर वह सोहनी की माँ से कहे कि अभी उनका चाव पूरा नहीं हुआ है बच्चों की भी अपनी भाभी को देख-देखकर तृप्ति नहीं हुई है, सो वे अभी सोहनी को भेज नहीं सकेंगे। रोजों के बाद वे ख़ुद उसे उसके मायके छोड़ आएँगे।

सोहनी के पास से लौटने के सात दिन बाद महींवाल ने सोहनी की माँ से कहा, ''सोहनी के बिना दिल नहीं लगता है। सो अगर आप कोई और महींवाल ढूँढ़ लें तो मैं छुट्टी चाहूँगा।''

''बेटा, मैं भी जीती हूँ, खाती हूँ, रहती हूँ—पेट की अँतड़ियों से बिछड़कर। धीरे-धीरे तुम्हारा दिल भी लग जाएगा। तुम कह रहे थे न कि और दो महीनों तक वे ख़ुद ही सोहनी को मिलने के लिए यहाँ छोड़ जाएँगे।''

पर महींवाल का इरादा पक्का था। जब वह नहीं ही माना तो उसकी जगह दूसरा आदमी रख लिया गया।

''कहाँ जाओगे, मेरी सोहनी के महींवाल?'' माँ ने उसे तब तक की तनख़्वाह के रुपये और साथ में कपड़े देते हुए कहा।

महींवाल रुपये नहीं ले रहा था। पर मजबूर करने पर आख़िर उसने उनमें से दस रुपये रख लिये और कहा, ''मुझे इस वक़्त ज़रूरत नहीं है, अपने पास ही रहने दीजिए। मैं एक पीर को जानता हूँ, उसके पास रहने से मेरे दिल को तसल्ली मिलेगी। सो अब जाकर उसी खिदमत में अपने दिन बिताऊँगा।''

महींवाल को गये हुए सात ही दिन बीते थे कि झनाँ दरिया के उस पार जो मजार था, उस पर किसी पहुँचे हुए पीर के बैठने की चर्चा होने लगी। सोहनी की माँ उससे मिलने गयी। सोहनी के ससुराल का घर भी उसी ओर था। सोहनी भी अपनी सास के संग वहाँ आयी। माँ-बेटी गले लगकर रोयीं।

पीर की आँखें देखते ही सोहनी के चेहरे पर एक क्षण के लिए आभा आयी। पीर ने पानी का प्याला माँगा। सास उठकर पानी लेने गयी। पीर ने सोहनी की नब्ज देखी। फिर एक काग़ज़ का ताबीज उसके हाथ पर रखकर उसकी मुट्ठी बन्द कर दी।

पानी आ गया। दुआ पढ़कर पीर ने वह पानी सोहनी को पिला दिया। ''अल्लाह मिहर करेगा।''

सोहनी घर लौटी। दोपहर के बाद उसने वह ताबीज खोला। जब उसे पढ़ा तो जैसे सातवें आसमान में पहुँच गयी। उसमें लिखा था :

नये चाँद से पहली रात को मैं इसी बाग़ में हूँगा। आधी रात के बाद सोयी हुई दुनिया को कोई होश नहीं होता। सो तुम निडर होकर आ जाना। बाग़ के बेआबाद कुएँ की तरफ़, दरिया के पास, एक बूढ़ा आम है। उसके नीचे मैं अपने चाँद का इन्तज़ार करूँगा।''

सोहनी फिर पीर को मिलने नहीं गयी। उसने सास को कह दिया कि पीर की करामात की बदौलत वह अब ठीक है। पीर हफ़्ता भर रहकर अपने डेरे पर चला गया। इस बात को काफ़ी दिन हो गये थे, और कल नया चाँद चढ़नेवाला था। सोहनी ने चौके-चूल्हे का सारा काम ख़त्म किया तो सास ने ख़ुश होकर कहा, ''अगर आज ही की तरह चौके का काम झटपट ख़त्म कर लिया करो तो कितना अच्छा हो!''

''यूँ ही देर हो जाया करती थी, माँ। आगे से मैं इसी तरह करूँगा।'' सोहनी का लहजा माँ को अच्छा लगा।

आधी रात के समय सभी सोये हुए खर्राटे ले रहे थे। सोहनी उठी और दबे पाँव घर से निकली।

वीरान कुएँ के पास जाकर वह दरिया की ओर चल दी। आगे जाने पर उसकी आँखें बूढ़े काम को ढूँढ़ ही रही थीं कि किसी ने उसे बाँहों में भर लिया। सोहनी ने अपने अंग ढीले छोड़ दिये और होंठ अपने महींवाल के सिर से लगा दिये। उसका दिल महींवाल की चट्टान-जैसी छाती के साथ लगा हुआ धड़क रहा था।

सोहनी बैठ गयी। महींवाल ने आम के पास से एक घड़ा उठाकर बीच में रख लिया।

''मेरा महींवाल इस पर तैर कर आया है?'' सोहनी ने घड़े पर हाथ फेरकर पूछा।

''तैरने के लिए मुझे इसकी मदद की ज़रूरत नहीं है। तुम्हें मिलने के लिए मेरी यह बाँहें एक नहीं, ऐसे दो दरिया भी तैरकर पार कर सकती हैं। पर एक तमन्ना थी तुम्हारे साथ बैठकर कुछ खाने की। मैं अपने हाथों मछली भूनकर लाया हूँ। घड़े का मुँह ऊपर से बाँधकर मैं इसे अपने साथ तैराता हुआ लाया हूँ।''

जब उसने घड़े में से, सफेद कपड़े में बँधी हुई मछली निकाली तो सोहनी को उसमें से बड़ी ही भीनी ख़ुशबू आयी। महींवाल ने मछली का एक टुकड़ा तोड़कर उसके मुँह में डाला।

''और, महींवाल] और,'' सोहनी ने कहा और उसकी गोद में बैठ गयी। महींवाल उसके मुँह में मछली के छोटे-छोटे टुकड़े डालता रहा। सोहनी की आँखें खुली थीं या बन्द, वह देख नहीं सकता था। पर सोहनी के दिल की धड़कन उसे सबकुछ बता रही थी।''

किसी पक्षी ने अपने बच्चे को इस प्रकार

खिलाया नहीं होगा! ''कहीं कुछ देर के लिए वक़्त खड़ा हो जाये!'' महींवाल ने कहा। तभी सोहनी अचानक उठ खड़ी हुई।

''बाक़ी की मछली अब मैं तुम्हें खिलाऊँगी,'' सोहनी ने कहा। ''किस बहिश्त से तुम यह लेकर आये हो?''

''सौ बार कुर्बान जाऊँ तुम पर, सोहनी! तुम्हारे हाथों से खाकर मैं सब-कुछ भूल जाऊँगा।''

कुछ देर के बाद सोहनी ने घड़ा उठा लिया। ''कितना ख़ूबसूरत घड़ा है!''

''इस घड़े पर थपकी देकर मैं ख़ुदा के नाम पर तुम्हारा इश्क़ गाता हूँ।''

''और यह क्या है,इसके गले के साथ?''

''यह कटार है, जो मेरे अब्बा ने घुड़सवारी में मेरी महारत देखकर मुझे इनाम के तौर पर दी थी और कहा था, 'इसे हमेशा अपने पास रखना, कभी काम आयेगी।' और मेरे अब्बा बहुत अक्लमन्द आदमी समझे जाते हैं।''

''और तुम्हारी माँ? वह बहुत ख़ूबसूरत होंगी?''

''हाँ, सोहनी, वह बहुत ही प्यारी औरत थी; पर वह भी मेरी तरह इस दुनिया से मुँह मोड़े हुए थी। मेरे अब्बा की दौलत और शानशौकत उसे अच्छी नहीं लगी। मेरी तरह ही वह भी किसी के लिए भूखी थी। मुझ पर तो तकदीर मेहरबान हो गयी, पर वह... वह...''

''हाँ?'' सोहनी ने उसे रुकते हुए देखकर पूछा।

''वह मेरी जुदाई सहरे नहीं सकी।''

''तो तुम्हें कब ख़बर मिली उसकी? क्या हुआ उसे?''

''वफात तो उसकी मेरे जाने के बाद ही हो गयी थी। अब्बा ने ख़बर भेज दी थी इस बारे में। पर सआदत ने मुझे बताया नहीं। सिर्फ़ जाते वक़्त ही बताया।''

''उफ! मेरी ज़िन्दगी उस प्यारी औरत की मौत बन गयी। मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ।''

''नहीं सोहनी, न तुम, न मैं, न मेरी माँ— हममें से कोई भी इस दुनिया का साझीदार नहीं है। हमें इसकी कँटीली बाड़ के बाहर ही वक़्त बिताना पड़ता है। कभी कोई फलदार टहनी इस बाड़ के बाहर झूल जाने पर तुम्हारे मेरे जैसे किसी आदमी की तकदीर को हिलोर दे जाती है।

सोहनी ने उसका सिर दोनों हाथों में लेकर अपने निकट किया। ''ओह, महींवाल, तो हाथ आयी टहनी के फल तोड़ लो, भर लो अपनी झोली, भर दो मेरी झोली— फिर चाहे बागबान हमें क़त्ल ही कर दे।''

महींवाल ने अपनी सारी रूह सोहनी की आँखों, होंठों, अंग-अंग में समाकर कहा, ''सोहनी, हम वह चिराग नहीं हैं जिसका तेल ख़त्म होने से पहले ही और भर दिया जाता है, या जिसे जब ज़रूरत हो, जला लिया जाता है। हम ऐसी बाती हैं जिसके दोनों सिरों को आग लगी हुई हो।''

कई मुलाकातों के बाद एक काली रात के प्रकाश में सोहनी बूढ़े आम के नीचे खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी। यह पहला मौक़ा था कि महींवाल को देर हो गयी थी। वह हमेशा सोहनी से पहले पहुँच जाया करता था। आज जब सोहनी उसके गले लगी तो हमेश की तरह उसकी टाँगे फौलादी स्तम्भ नहीं थीं। उसके क़दम डगमगा गये। उसने झट उसके गले से बाँहें हटाकर पूछा, ''मेरा महींवाल ठीक तो है? उसके क़दम डगमगा क्यों गये हैं?''

''बिल्कुल ठीक हूँ, सोहनी। एक छोटा-सा हादसा हो गया था।''

''वह क्या? कैसे?'' सोहनी ने चिन्तित होकर पूछा।

''कुछ ख़ास नहीं। आज जब मेरा हाथ किनारे लगा तो मुझे महसूस हुआ, जेसे किसी ने दो दराँतियाँ मेरी बायीं जाँघ में धँसा दी हैं। शायद कोई मगरमच्छ होगा। मुझे तुम्हारे दरबार में हाज़िर होना था, सो वह मुझे कैसे ले जा सकता था।''

सोहनी उसकी जख़्मी टाँग से चिपट गयी। महींवाल ने दिलासा दिया और उसे अपनी पगड़ी दी ताकि वह उसे फाड़कर पट्टी बाँध सके। उसने ख़ुद भी पट्टी बाँधी थी, पर वह अब ढीली पड़ चुकी थी।

सोहनी पट्टी बाँधते हुए बेहोश होने लगी कि महींवाल बोला, ''मेरी पागल सोहनी! उस दिन तुम्हें क्या बताया था मैंने? सोहनी आज मैं ज़िन्दा हूँ, तुम ज़िन्दा हो आओ मुहब्बत के फ़रिश्ते का शुक्र मनायें।''

पट्टी बँध गयी। सोहनी ने कटार को कई बार चूमा, जिस पर अभी तक ख़ून लगा हुआ था। महींवाल ने घड़े में से पोटली निकाली, पर आज सोहनी कुछ खा न सकी। बस यही बहस करती रही कि अभा और जितनी रातें अँधेरी हैं, वह दरिया तैरकर न आये, अपना घड़ा वहाँ छोड़ जाये, उसका जख़्म ठीक होने तक वह ख़ुद उसके पास आया करेगी।

महींवाल ने बहुत कहा कि वह अगली रात तक बिल्कुल ठीक हो जाएगा। पर सोहनी एक न मानी।

''तुम्हारे जैसी तैराक मैं बेशक़ नहीं हूँ, पर दरिया का आधा पाट मैं ज़रूर तैर सकती हूँ। बाक़ी आधा तुम्हारे घड़े के सहारे पार कर लूँगी।''

महींवाल हाँ कहना चाहता था, पर हर बार उसे वे दराँतियाँ याद आ जातीं।

''तुमने ख़ुद ही कहा थ कि हम दोनों सिरों से जलनेवाली शमा हैं। इस तरह आख़िर कब तक जलते रहेंगे? एक दिन तो ख़त्म होना ही है। कुछ दिन तक मैं तुम्हें बिल्कुल नहीं आने दूँगी। ख़ुद आऊँगी तुम्हारे पास।''

सोहनी ने घड़ा उठाकर एक झाड़ी में छिपा दिया। महींवाल जो मछली लाया था, वह वैसे ही पड़ी रही। आख़िर महींवाल ने जाते समय उसे दरिया की मछलियों में मिला दिया।

सोहनी कई रातों तक तैरक झनाँ के उस पार जाती रही। महींवाल के घड़े को उसने बाँहों में लेकर सीने से लगाया हुआ होता और उस पार पहुँच जाती। किनारे पर प्रतीक्षा में इधर-उधर चल-फिर रहे महींवाल को देखती तो उसकी रफ़्तार बढ़ जाती। महींवाल उसे बाँह से पकड़कर बाहर निकालता और उसके गीले कपड़ों के किनारे अपने मुँह में निचोड़कर कहना, ''यह मेरा आबेहयात है, सोहनी।''

सास सोचती कि पता नहीं सोहनी को क्या मिल गया है जो वह इतनी ख़ुश है। इसका कारण वह जान न पायी, और सोहनी की ख़ुशी को वह शक़ की नज़र से देखने लगी। उसने अपनी बेटी को ससुराल से बुला लिया। माँ-बेटी चौकन्नी होकर रहने लगीं। आख़िर बेटी ने रात के समय जागना शुरू किया। और फिर एक रात वह सोहनी के पीछे-पीछे चल दी, और उसने दरिया के किनारे एक झाड़ी में से सोहनी को घड़ा उठाते हुए देखा।

घर आकर माँ को बताया और कहा कि अगर इस बारे में सोहनी को बुरा-भला कहा गया तो सारे गाँव में बेइज्जती होगी। आख़िर एक तजवीज उसने माँ को बतायी और कहा, "अच्छा हो हम चुप हो रहें और घर के कलंक को दरिया में बहा दें।"

आधी रात हो गयी। सोहनी उठी और घर से निकली। बूढ़े आम के पास पहुँची। झाड़ी में से उसने घड़ा उठाया। हमेशा की तरह उसे चूमा। वह उतना कोमल न लगा। हाथ से उसे झाड़ा। फिर वह झनाँ के किनारे पर पहुँची। एक लहर उसके पाँवों को छू गयी। हवा तेज़ होती जा रही थी।

"हम दोनों सिरों से जलनेवाली शमा हैं!... कल आधी रात का चाँद है, फिर कई दिन तक मुलाकात नहीं हो सकेगी," सोहनी ने सोचा और आगे बढ़ी। उसके दिल में मिलने का चाव था, और बाँहों में महीवाल का घड़ा। पर यह उसकी बाँह के साथ कैसी चिकनाहट थी? उसने उसे साफ किया। पर अब यह कीचड़ कैसा था? तभी उसने महसूस किया कि घड़े का ऊपरी भाग गायब था। उसने हाथ से घड़े को टटोलकर देखा, एक जगह उसका हाथ घड़े के अन्दर चला गया। फिर देखते-देखते घड़ा उसकी बाँहों में से निकलकर नीचे चला गया।

उसी क्षण उसके सामने सारी असलियत झलक उठी। उसकी ननद आज ज़ोर-ज़ोर से खर्राटे ले रही थी, पर वे खर्राटे झूठे थे। असल में वह जाग रही थी। कल भी वह आधी रात के समय जाग रही थी। हाँ, ननद ने ही पक्के घड़े की जगह यह कच्चा घड़ा रख दिया था।

उसे महींवाल की बहादुरी का ख़्याल आया और अपनी टाँगों और बाँहों में उसने एक नई शक्ति अनुभव की। उसने पूरा ज़ोर लगाकर लहरों के साथ संघर्ष किया, पर सामने से आती हुई तेज़ हवा थी कि आँधी का रूप धारण करती जा रही थी। सोहनी की बाँहें फूल गयीं। दरिया का तीन चौथाई भाग अभी सामने था। एकाएक सोहनी के मुँह से महींवाल के लिए चीख़ निकल गयी।

"महींवाल—महींवाल! तुम्हारे कहने पर मैंने अमल नहीं किया। मैं चौकन्नी नहीं रही—' एक लहर ने ज़ोर से थपेड़ा मारा। ज़िन्दगी की शमा का एक सिरा बुझता हुआ दिखायी दिया। पर जैसे उसकी ऊँची उठती हुई लौ में महींवाल की हर चीज़ उसके सामने साकार हो उठी— नतीजों के प्रति उसकी लापरवाही, उसकी दिलेरी, और उसकी प्यार-भरी बातें।

उसकी थकी हुई बाँहें निढाल हो गयीं। वह तैरने की बजाय लहरों के साथ बहने लगी। थके हुए अंगों को कुछ आराम मिला। हिम्मत फिर चमकी। उसने बाँहें हिलायीं और तैरने लगी।

"आधा रास्ता— मैं पहुँच जाऊँगी। मेरा महींवाल— मेरी सारी थकान दूर कर देगा। मुझे देखकर कितना ख़ुश होगा! आज वह मेरे कपड़े निचोड़कर सारा पानी पी जाएगा। आज मैं चलकर नहीं जाऊँगी। कहूँगी, उस दिन की तरह मुझे गोद में उठाकर ले चले..."

लहर का एक और थपेड़ा लगा। सोहनी को अपनी बाँहें निढाल होती हुई प्रतीत हुईं। अकड़ी हुई बाँहों ने मदद करने से इनकार कर दिया। एक और लहर—एक और लहर— सोहनी फिर सँभली। उसने तैरकर पहुँचने की आशा छोड़ दी।

"मैं चली—महींवाल, मैं चली— ख़ुदा, मेरी लाश को महींवाल एक पहुँचा देना। महींवाल— महींवाल!" तूफ़ान और तेज़ हो गया। फिर एक लहर आयी। "महीं—वाल!" और फिर लहर आयी महीं—वाल। उसके बाद सोहनी की कोई आवाज़ नहीं आयी।

तूफ़ान को बढ़ते हुए देखकर महींवाल दरिया के किनारे खड़ा हो गया। और कान लगाकर सोहनी को आहट सुनने का अच्छा करने लगा।

"मैं आया— सोहनी, मैं आया।" और वह सोचने लगा, दरिया के बीच में वह ज़रूर पहुँच गयी है, वरना वह आवाज़...। वह किनारे के साथ-साथ भागने लगा। कुछ आगे जाकर रुका और मुँह पर दोनों हाथ जोड़कर उसने जोर से पुकारा, "सोहनी! हिम्मत न हारना। तैरना छोड़ दो। लहरों के संग बहती रहो। मैं आया। बस अभी पहुँचा।"

और उसने दरिया में छलाँग लगा दी। बड़ी तेज़ी से तैरने लगा। पर तूफ़ान था कि उसे बार-बार रोक रहा था। फिर भी वह संघर्ष्ष करता रहा। कभी गोता लगा जाता। आख़िर बाँहों में थकावाट महसूस होने लगी। उसने पानी में से सिर उठाकर तीन बार ज़ोर से पुकारा, "सोहनी-सोहनी-सोहनी!" तभी उसके पाँवों को कोई चीज़ छुई। उसने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ा। रस्से-जैसी कोई चीज़ थी। उसने उसे ऊपर खींचा।

उसने सोहनी को अपने घुटनों पर लेटाया। पानी उसके अन्दर ज़्यादा नहीं गया था। उसने उसकी बाँहें हिलायीं और उसे होश में लाने का यत्न करने लगा। पर ज़िन्दगी की शमा बुझ चुकी थी।

उसने सोहनी के बालों को सँवारा, उनमें माँग बनायी, और उसके अंग-अंग को लगा।

सोहनी के कपड़े उतारते समय महींवाल को भी वह तूफ़ानी रात चाँदनी बन गयी प्रतीत हुई। और उसके मन में कुछ आया। वह उठकर दरिया के किनारे चला गया। उसने अपने बाकी बचे हुए कपड़े भी उतार कर हाथ में पकड़ लिये और कहा, "इन कपड़ों में, सोहनी, बेशक़ तुम्हारे हाथों का स्पर्श है, पर अब यह हमारे बीच में आ नहीं सकते।"

उसने कपड़े दरिया में फेंक दिये और सोहनी के पास आया। उसके आँचल का एक सिरा खींचकर उसने अपने गिर्द लपेट लिया और फिर सोहनी को अपने फौलादी बाँहों में उठा लिया।

"सोहनी, तुम कहती थीं कि कोई हमारी शादी होने नहीं देगा, पर अब हमारी शादी को कौन रोक सकता है? तकदीर और बागवान दोनों मुझे टुकुर-टुकुर देख रहे हैं। दोनों को ललकारकर मैं तुम्हारे साथ शादी करने लगा हूँ।"

और सुदृढ़ क़दमों से वह लहरों की ओर चल दिया। पानी में क़दम रखा तो आगे-ही-आगे बढ़ता गया। पानी चढ़ने लगा। जब पानी कन्धों तक आ गया तो वह रुका, और उसने कहा, "बुखारे की मिट्टी के साथ गूँथकर, इश्क़ के फरिश्ते को एक लाफानी गुलदान अपने जादी के चाक पर तैयार करने के लिए पेश करता हूँ।" और दरिया के तल से उसने अपने पाँव ऊपर उठा लिये।

...और अब सोहनी और महींवाल झनाँ के शाश्वत जल में अमर प्रेम की समाधि बना रहे थे।

प्रस्तुति : ईशान अग्निहोत्री

सस्सी पुन्नू



आज सस्सी के रूप और गुण की चर्चा सुनकर भँबोर नगर के राजधोबी महमूद और उसकी पत्नी का सुख ह्रदय में नहीं समाता। दोनों को वह दिन भी याद है जब कुदरत ने उनके सूने जीवन और आँगन में किलकारियाँ भर दी थीं। वे नदी में कपड़े धो रहे थे कि एक सन्दूक तैरती हुई उनके पास आ लगी थी। उत्सुकता से महमूद ने सन्दूक खोला तो उसमें एक नवजात बच्चा। उसके गले में सोने की जंजीर... जंजीर में ताबीज। सन्दूक का बाकी हिस्सा हीरे जवाहरात से भरा। महमूद और उसकी बीवी ने बच्ची को खुदा की नेमत मान कर कुबूल किया। दिन पर दिन चाँद की तरह खिलते रूप को देखकर माता-पिता ने नाम रखा—'सस्सी'।

सस्सी के मुख पर सूर्योदय की आभा थी, कमर में लहरों की लचक, आँखों में आकाश की झलक, चाल में वायु की हिलोर, और शब्दों में तारों का ताल था। लोग देर तक उसे देखते रहते, उसके बारे में बातें करते रहते।

अपने गाँव की लड़कियों की ज़िन्दगी में सस्सी ने नया रंग भर दिया। सहेलियों को सस्सी ने नये उल्लास से भर दिया। दिन-भर वे अपने माता-पिता के साथ पहले से कहीं ज़्यादा काम करतीं, शाम के समय खेलती और नाचती।

धोबी लड़कों के कठिनाइयों-भरे बेरंग दिलों में भी सस्सी ने कई रंग भर दिये। सस्सी की आँखों में परवान चढ़ने के लिए वे कई छोटे-मोटे काम करते। वे सस्सी के बाग़ की रखवाली करते, उसके किसी-न-किसी काम आने की प्रतीक्षा करते रहते।

एक दारा नाम का लड़का था, जिसे न अपनी अक्ल पर कोई गर्व था, न अपनी शक्ल पर। वह लुक-छिपकर सस्सी के बाग़ में चला जाया करता था। एक दिन सस्सी की सहेलियों ने उसके गले में अपने दुपट्टे डाल दिये लिए और उसे इधर-उधर खींचने लगीं। सस्सी आयी तो उसे छुटकारा मिला। पर दारा यही कहता गया :

"ऐसा बदला लूँगा सस्सी कि याद रखोगी। तुम परिन्दे की तरह फुदक रही हो, अगर तुम्हें पिंजरे में न डलवा दिया तो कहना।"

भँबोर के राजा के कोई सन्तान नहीं थी। अब दूसरी शादी की बातें होने लगीं। योग्य लड़कियों की खोज शुरू हुई। दारा ने बदला लेने की खातिर राजदरबार में आकर बताया कि महमूद धोबी की बेटी, हुस्न की शहजादी है।

राजा ने हुक्म दिया कि महमूद धोबी अपनी बेटी के साथ दरबार में हाजिर हो। धोबी के दिल में डर बैठ गया। राजा अब सस्सी को उसके पास रहने नहीं देगा।

"इतनी ख़ूबसूरत, किसकी बेटी हो तुम?" राजा ने चौंककर पूछा।

"महमूद धोबी और उसकी बीवी की," सस्सी ने कहा।

"तुम, कोई शहजादी लगती हो।"

"शहजादी मैंने कभी कोई देखी नहीं है।"

"तुम धोबन ही सही, पर मैं तुम्हें रानी बनाना चाहता हूँ।"

"धोबन को आप रानी कैसे बनायेंगे?"

"शादी करके।"

राजा उठकर उसके पास चला गया। अचानक सस्सी के गले में पड़े ताबीज पर उसकी नज़र पड़ी। वह चौंका और एकाएक ठिठककर खड़ा हो गया।

"यह ताबीज तुम्हारे गले में किसने डाला है?"

"मेरी माँ ने।"

"लाओ, मैं इसे देखना चाहता हूँ।"

"नहीं महाराज, माँ का कहना है कि मैं इसे गले से कभी न उतारूँ।"

राजा ने अपनी रानी को बुलवा भेजा। वह आयी तो उसने कहा, "देखो तो, सस्सी के गले में यह ताबीज कैसा है?"

रानी ने ताबीज सस्सी के गले में ही रहने दिया और उसे उलट-पलट करा देखा। फिर उसने सस्सी के सुन्दर मुख की ओर ध्यान से देखा।

"हाय, मैं मर जाऊँ, यह ताबीज तो मैंने अपनी अभागिन बच्ची के गले में डाला था!"

राजा और रानी दोनों ने अपनी अँगुलियाँ मुँह में डाल लीं।

फिर महमूद धोबी को बुलवाया गया। उसकी टाँगें काँप रही थीं। राजा ने उसे सारी बात सच-सच बताने की धमकी दी। उसने सारी बात सच-सच कह सुनायी।

रानी सस्सी से लिपट गयी और रोने लगी, "मेरी शहजादी बेटी।"

महमूद से खड़ा नहीं हुआ जा रहा था। रानी की बाँहों में से छूटते ही सस्सी ने उसने महमूद को बाँहों में भर लिया और राजा से प्रार्थना की कि उसे बैठने की इजाज़त दे दी जाए।

धोबी के पास ही राजा और रानी भी बैठ गये। तब राजा ने अपने सीने पर हाथ मारकर अपनी कहानी सुनायी :

"अठारह साल हुए, हमारे घर यह बच्ची आने वाली थी। हमने

ज्योतिषी बुलाये। उन्होंने हमारी इस बच्ची को खानदान का कलंक बताया और कहा कि यह किसी मुसलमान से शादी करेगी और इसके इश्क़ की दुनिया-भर में चर्चा होगी। सो हमने इसे पैदा होते ही दरिया में बहा दिया। यह तावीज इसकी माँ ने इसके गले में डाला था। तब से आज तक इसी माँ के चेहरे पर कभी हँसी नहीं आयी है। तब से कोई दूसरा बच्चा भी हमारे घर नहीं आया है। हमने बहुत बड़ी ग़लती की है, सस्सी बेटी, तुम्हें हम मुँह दिखाने लायक नहीं हैं।''

महमूद क्या कहता!

अब रानी की तो सिसकी निकल गयी।

''मेरी चाँद-सी बेटी, हमारी ग़लती माफ कर दे और अपना घर सँभाल।''

सस्सी ने अपनी जननी के जुड़े हुए हाथ अपने हाथों में लेकर कहा, ''मेरा यह फैसला, रानी माँ, दरिया में बहा देने के आपके फैसले से कम मुश्किल नहीं है। मैं अपने पालक-पिता से इस बारे में सलाह करके कल आपको बताऊँगी। इस वक़्त आप यह मेहरबानी कीजिए, कि मेरे पालक पिता को किसी सवारी पर घर पहुँचा दीजिए।''

अगले दिन राजा और रानी सस्सी के फैसले की प्रतीक्षा में बैठे थे। साँझ के समय एक धोबी सस्सी का पत्र लेकर उनके पास आया। राजा ने काँपते हुए हाथों में पत्र खोला और रानी को सुनाते हुए पढ़ने लगा :

''मेरे जन्मदाता माता-पिता,

पानी में बहा दिये गये कलंक को चाँद समझकर जिन्होंने मुझे पला, उनका हक मैं उनके घर में रहते हुए भी चुका नहीं सकूँगी। और उनके घर से चले जाना... ओह!

कल आपने मुझसे माफ़ी माँगी थी, आज मैं आपसे माफ़ी माँगती हूँ। पर जब भी आप बुलाएँगें, मैं मिलने के लिए आया करूँगी।

आपकी-सस्सी।''

राजा ने रानी को समझा दिया कि सस्सी के इस फैसले को बदलने की कोशिश का कोई फ़ायदा नहीं होगा। उन्होंने अपनी तकदीर दरिया में बहा दी थी, अब सस्सी की ख़ुशी और उनका सुख इसी में है कि सस्सी को स्वतन्त्र होकर जीने दिया जाए।

सस्सी की स्वतन्त्रता बढ़ गयी थी।

सस्सी के हुस्नकी चर्चा दूर-दूर तक, देश-विदेश में होने लगी।

कच मकरान से एक बार एक सौदागर आये। कई दिन तक भम्बोर में रहे। सस्सी के हुस्न की चर्चा उन्होंने भी सुनी थी, क्योंकि उनका अपना शहजादा भी बड़ा रसीला व जवान था। राजधानी की कई सुन्दरियाँ जब उसे देखतीं तो अपने दिल थाम लेतीं।

सौदागरों के काफिले का सरदार, बेबियो, शहजादे का दोस्त था। बेबियो ने जब भम्बोर की सुन्दरी को देखा और जाना कि उसका नाम सस्सी (नया चाँद) है तो अनायास उसके मुँह से निकल गया, ''बिस्मिल्लाह, यह चाँद तो हमारे पूरन चन्द, पुन्नू के लायक है!''

जल्दी-से-जल्दी काम ख़त्म करके बेबियो कच मकरान लौटा।

बेबियो की बातें सुनकर पुन्नू ने भी काफिला तैयार किया। पुन्नू को इत्र-फुलेल से बहुत प्यार था।

काली डाची (ऊँटनी) पर सवार होकर, सुगन्धियों का सौदागर सफर करता हुआ भम्बोर शहर में आ पहुँचा।

घाट के निकट, सघन वृक्षों के झुंड के नीचे, पुन्नू के चम्बे, करने, केवड़े, कस्तूरी आदि विभिन्न प्रकार के इत्र-फुलेल की सुन्दर दुकान सजा दी। पुन्नू की अपनी सुन्दरता भी हर किसी की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित करती। हरा कोई उसकी प्रशंसा करता। पुन्नू सीने में अभी तक कँवारा दिल था।

उसके इत्र-फुलेलों से भी ज़्यादा, उसकी दुकान की रमणीय शोभा की चर्चा सारे शहर में होने लगी। किसी समय उसकी दुकान पर सुन्दरियों की भीड़ दिखायी देती।

चार दिन हो गये थे। आधे से ज़्यादा माल बिक गया था, आधे से ज़्यादा शहर उसी आँखों के आगे से गुज़र चुका था; पर वह सूरत अभी तक नज़र नहीं आयी थी, जिसे देखते ही आदमी होश भूल जाता था और उसे सारी दुनिया प्यारी लगने लगती थी।

पुन्नू का ज़िक्र सस्सी तक पहुँच चुका था और वह दिन में कई-कई बार आईने में अपना चेहरा देखती।

आख़िर सहेलियों ने उसे मना लिया। आज उनके देश की सुन्दरता का एक परदेशी के हुस्न से मुकाबला था। हर किसी ने अपनी मनमर्जी से सस्सी का सिंगार करना चहा। आज उसने अधिक सिंगार करना नहीं चाहा।

सस्सी तैयार हो गयी। जहाँ खड़ी थी, वहाँ से लपटें उठती हुई प्रतीत हो रही थीं। माँ ने उसके मखमल के बटुए में बहुत-सी मोहरें डाल दीं।

सस्सी पुन्नू की दुकान पर गयी। अब दिमाग़ गद्दी पर से उतर बैठा, दिल ने तख़्त सँभल लिया।

ताज़े गुलाब की रूह का फाहा पुन्नू ने सस्सी के हाथ पर लगाकर कहा, ''रानी, यह हमारे पहाड़ों का अनोखा चम्बा है।''

सस्सी ने पलकें उठायीं। पुन्नू की आँखों में पहली मुलाक़ात की ताज़गी उसे दिखायी दी। और वह मुस्करा दी।

''तुम्हारे पहाड़ों में चम्बा को भी गुलाब के फूल लगते हैं?'' सस्सी ने व्यंग्य से कहा।

पुन्नू ने अपनी इत्र की बोतल को ध्यान से देखा।

''मैं भूल गया, रानी, कहना मैं गुलाब ही चाहता था।''

''इतनी बड़ी भूल का हरजाना देना होगा।'' सस्सी ने देख लिया कि पुन्नू के दिल का हर द्वार उसके लिए खुला था।

''रानी हुक्म करे।'' पुन्नू सँभल रहा था।

''मेरी हर सहेली के हाथ पर अलग-अलग इत्र के फाहे लगाने पड़ेंगे।''

पुन्नू फाहे बना-बनाकर लगाये जा रहा था। उसकी नसों में उसका लहू नाच रहा था।

पुन्नू ने विभिन्न प्रकार के इत्रों की कई बोतलें उसकी पिटारी में डाल दी। सस्सी ने अपने बटुए के रेशमी धागे खींचकर उसे खोला और सोने की मोहरें निकालकर क़ीमत देनी चाही।

''कल सही। घर जाकर पहले पसन्द कर लो।'' पुन्नू उस सौदे को वहीं ख़त्म नहीं करना चाहता था।

दूसरे दिन सस्सी आयी। तीसरे दिन भी आयी। पुन्नू किसी-न-किसी बहाने क़ीमत चुकाने की बात टाल देता था।

इन तीन मुलाकातों में सस्सी की नज़र, सस्सी की चाल, सस्सी की बातचीत में एक नयी बात पैदा हो गयी थी। अब उसके पाँव धरती पर नहीं लग रहे थे। आख़िर उसने माँ के गले में बाँहें डाल दीं। और पुन्नू से विवाह की बात कह डाली।

चौथे दिन सस्सी मोहरों से बटुआ भरकर पुन्नू की दुकान पर गयी। साथ ही इत्र की वे सभी बोतलें भी ले गयी। पुन्नू के आगे उन्हीं

रखकर, जरा-सा मुँह बनाकर, उसने कहा, ''तुम क़ीमत नहीं लेते, सो मैं माल वापस करने आयी हूँ।''

''रानी, मैं सौदागर नहीं हूँ।''

सस्सी ख़ुशी में उछल पड़ी।

''हाँ, मैंने कहा था माँ से कि तुम सौदागर नहीं हो। ... अच्छा, पुन्नू एक बार मेरा हाथ पकड़नें की क़ीमत तुमने चुका दी। कल इसी वक़्त आना मेरे बाग़ में। अगर तुम हमेशा के लिए मेरे हाथ को वरण करने की क़ीमत भी चुका सके तो सौदा करने के बारे में सोच लेंगे। आओगे पुन्नू?''

और पुन्नू ने सस्सी के दोनों हाथ पकड़कर उन पर ख़ास तौरपर तैयार किये गये इत्र के दो फाहों से रेखायें खींची। अब सस्सी ने कहा ''पुन्नू, मेरा अब्बा कहता है कि वह धोबी के सिवा किसी को अपनी बेटी नहीं देगा।''

''यह तो सस्सी, बहुत मामूली-सी शर्त है। तुम्हारा पुन्नू तुम्हारे लिए क्या नहीं बन सकता?''

''पर तुम तो, पुन्नू, कोई शहजादे लगते हो।''

''कल से तुम मुझे धोबी के रूप में देखोगी।''

सस्सी ने अपने पिता से पुन्नू के बारे में छोटी-छोटी बातें शुरू कीं और फिर कहा, ''पुन्नू कहता था कि असल में वह धोबी ही है।''

''अच्छा बेटी, तो वह कपड़े धोकर मुझे इस बात का सबूत दे दे।''

उसके अगले दिन पुन्नू धोबियों का-सा लिबास पहनकर आया। उसने अपनी लम्बी जुल्फें कटवा डाली थीं।

महमूद ने मैले कपड़ों की गठरी उसके आगे रखी और सस्सी को कहा कि कपड़े धोने के लिए ज़रूरी मसाला उसे देती जाये। फिर वह अपने काम में लग गया।

पुन्नू पटड़े पर कपड़े पटकता रहा, पर उसकी आँखें सस्सी के चेहरे पर लगी रहीं। कपड़ों की ओर ख़ास ध्यान न रहने के कारण कुछ पुराने कपड़े फट गये। तहें लगाते समय सस्सी ने उन्हें देखा तो चिन्तित हो उठी। आख़िर सस्सी को एक बात सूझी।

''क्या कुछ मोहरें गँवाने के लिए तैयार हो?'' सस्सी ने कहा।

''कुछ क्या, जितनी कहो।''

सस्सी ने तरीका बताया कि हर फटे कपड़े में एक-एक मोहर रख दे। पुन्नू ने उसकी बात मान ली।

सस्सी का पिता सुन्दर तह किये हुए कपड़े लोगों के घरों में दे आया। किसी भी व्यक्ति ने कपड़े फाड़े जाने का उलहाना नहीं दिया। सभी पहले की अपेक्षा ज़्यादा ख़ुश दिखायी दिये।

पिता ने ख़ुश होकर सस्सी से कहा, ''तुम्हारा चुनाव मुझे मंजूर है। तुहारा पुन्नू बड़ा पक्का धोबी है।''

सस्सी और पुन्नू की शादी हो गयी। राजा और रानी ने सौगातें भेजीं। सभी धोबियों ने जशन मनाया। नौजवान धोबी ख़ुश थे कि सस्सी से शादी करने वाला व्यक्ति उसे उनके पास से ले नहीं जाएगा, बल्कि उनके शहर का धोबी बनकर उनकी बस्ती की रौनक बढ़ाएगा। धोबी-घाट, धोबी-बस्ती, सस्सी का बाग़ और सस्सी का घर राजधानी में सुन्दरता के यात्रा-स्थल बन गये।

पर पुन्नू के शहर, कच मकरान, में शोक छा गया। उसके माता-पिता दुःखी और लज्जित थे। यद्यपि भाइयों को पुन्नू की कोई परवाह नहीं थी, फिर भी खानदान के नाम पर जो धब्बा लग गया था, वह उन्हें बेचैन किये हुए था। लोग कहते :

''बड़ा शहजादा धोबिन से शादी करके धोबी बन गया।''

उन्होंने माँ की ओर से सन्देश देकर कई व्यक्ति भम्बोर भेजे। वे यही जवाब देकर लौटे :

''माँ, तुम्हारी याद मुझे भूली नहीं, पर पिताजी के तख़्त के लायक मैं कभी नहीं था, उसके लिए मेरे योग्य भाई ज़िन्दा रहें।''

भाइयों ने एक और तरीका सोचा, और पुन्नू को कहला भेजा : ''तुम्हारी रजा में हम राजी हैं। पर अपने सुन्दर भाई को एक बार हम देखना ज़रूर चाहते हैं।''

सस्सी फूली नहीं समा रही थी कि उसके पुन्नू के भाई आयेंगे, उसके शहजादे देवर आएँगे। अपनी देवरानियों के लिए उसने सौगातें जमा की। अपने घर को सजाया।

भम्बोर के धोबियों की भी ख़ुशी का ठिकाना नहीं था। शाही मेहमान उनकी बस्ती में आनेवाले थे और उनकी बस्ती में रहने वाले थे। बस्ती की हर झोंपड़ी सजकर जैसे दुल्हन बन गयी।

उमर और तुमर, पुन्नू के भाइयों का काफिला आया।

चार दिन तक उस बस्ती में जशन होते रहे। गीत गाये गये, तमाशे हुए, नाच हुए। उमर और तुमर ने पानी की तरह पैसा बहाया। जो आया, ख़ुश होकर लौटा। कच मकरान के इत्रों की सुगन्धियाँ सारे भम्बोर में फैल गयीं।

पाँचवे दिन, जाने से पहले, मेहमानबाजी की आख़िरी रात थी। उमर, तुमर ने तरह-तरह के शर्बतों और शराबों का प्रबन्ध किया था। हर किसी ने दिल खोलकर खराब पी और हर कोई इस तरह नाचा जैसे पहले कभी नहीं नाचा था।

लगातार चार दिन तक ख़ुशियाँ मनाते हुए लोग थक गये थे, या आज रात के शर्बतों और शराबों में कोई ऐसी चीज़ थी कि आधी रात के बाद हर कोई जैसे लेटने के लिए जगह ढूँढ़ने लगा! कुछ समय के बाद बलोचों के अलावा सभी सो चुके थे।

दिन चढ़ा तो कुछ लोगों की आँख खुली। ऐसे लगा, जैसे कोई सपना था। सस्सी ने आँखें मलकर देखा। वहाँ न उमर था, न तुमर, और— और— न ही उसका पुन्नू। उसने उठकर अन्दर-बाहर, चारों तरफ़ देखा, पुन्नू कहीं भी नहीं था।

''हाय माँ, मैं लुट गयी! वे लोग पुन्नू से मिलने नहीं, उसे धोखे से ले जाने के लिए आये थे।''

दिन-भर माँ और सहेलियों ने उस पर पहरा रखा। सस्सी के दिल में से आहें उठ रही थीं।उसने अपना सारा सिंगार उतार डाला, बाल खोलकर गले में डाल लिये, और रह-रहकर कहने लगी, ''जालिम बलोची, मेरा पुन्नू मुझे लौटा दो!''

सहेलियाँ उसे पकड़कर सँभाले हुए थक गयी थी। सस्सी भी थक-हार चुकी थी। वही समय था जब पुन्नू को उसके भाई डाली पर बैठा रहे थे। सस्सी चौंककर उठ बैठी। उसकी सहेलियाँ लेटी रहीं; उन्हें नींद आ गयी थी। पुन्नू का, गले में डालनेवाला दुपट्टा खूँटी पर टँगा दिखायी दिया। सस्सी ने उसे चूमा और चुपचाप घर से बाहर निकली। तारे झिलमिला रहे थे। दो आहें सस्सी के अन्दर से उठीं और वह भम्बोर छोड़कर चल दी।

रास्ता पूछती, ऊँटोंवालों के हुलिए बताती, वह पागलों की तरह चली जा रही थी। उसके चेहरे पर अथाह गम था और आँखों में निराशा। उसके कानों में पुन्नू की डाची की घंटियाँ बजतीं और वह उस ओर भाग उठती।

दोपहर हो गयी तो सामने रेतीली धरती दिखायी दी।

तपती हुई रेत पैरों को जला रही थी। सस्सी के पाँवों की मेहन्दी महक उठी थी। उसने सोचा कि दोपहर के समय किसी पेड़ के नीचे आराम

कर ले। एक बहते हुए नाले में उसने पानी पिया। पानी में उसके चेहरे की उजड़ी हुई सुन्दरता प्रतिबिम्बित हुई और सस्सी के दिल में से एक आह उठी :

''पुन्नी, एक बार मिल जाओ और इस उजड़ी हुई ज़िन्दगी को बसा दो।''

सस्सी ने मील-भर इधर-उधर भटकते हुए ऊँटों के पाँवों के निशान ढूँढ लिए। उनमें से एक ऊँट के पाँवों के निशान छोटे-छोटे थे और उनसे उनकी चाल बहुत सन्तुलित लगती थी।

''हाय, यह तो मेरे पुन्नू की डाची के पाँवों के निशान हैं।''

चारों पाँवों के निशानों को सस्सी ने चूमा।

''जिस रास्ते से तुम गये हो, उस रास्ते पर मैं रात-भर चलती हुई तुम तक पहुँच जाऊँगी।''

जब दिन चढ़ा तो सस्सी प्यास से बेताब थी। वह चाहती थी कि कहीं बैठ जाए, पर पानी के बिना दिल जवाब देता जा रहा था। वह चलती गयी। दूर उसे हरियाली का एक छोटा-सा बिन्दु दिखायी दिया। पास गयी तो वह मेहन्दी की एक झाड़ी थी। पानी उसके पास कहीं नहीं था। सस्सी बेसुध होकर गिर पड़ी।

जहाँ वह गिरी, उसके नीचे से मेहन्दी को पानी पहुँचता था। सस्सी के बोझ तले रेत बैठ गयी और पानी ऊपर उठ गाया। सिर को नमी पहुँची तो उसे होश आया। उसने उठकर हाथों से रेत खोदी तो वहाँ एक चश्मा बन गया। पानी पिया तो जान-में-जान आयी। फिर वह मेहन्दी की झाड़ी के पास गयी। वहाँ से एक छोटा-सा पौधा उखाड़ लायी और उसे उस चश्मे के पस लगा दिया। फिर उसकी पत्तियों पर पानी की छींटे मारे।

यह मेहन्दी का पौधा, आज भी सस्सी की याद में पूजा जाता है। आशिक इसकी पत्तियों को चूमते और मुरादें माँगते हैं। वहाँ से गुज़रने वाले प्यासे राहियों के लिए सस्सी ने उस चश्मे को जन्म दे दिया था।

सस्सी फिर चल पड़ी ऊँटों के पाँवों के निशानों के पीछे-पीछे वह चलती रही। ज्यों-ज्यों धूप तेज़ होती गयी, रेत तपने लगी। सस्सी ने पुन्नू का दुपट्टा अपने गले में डाल लिया। उसने दायें-बायें नज़र दौड़ायी। एक ओर बस्ती-सी दिखायी दी। उधर जाते हुए रास्ते में एक चरवाहा मिला।

''ज़रा ठहरना, भैया।''

चरवाहा ठिठककर खड़ा हो गया। वह एकटक सस्सी को देख रहा था। उसे लगा जैसे सस्सी आकाश से उतरकर आयी थी। ऐसे चेहरे इस धरती पर नहीं होते! उसने मन में कहा।

''दुखियारन हूँ; विरहिणी हूँ; मौत के मुँह में जा रही कुछ पलों की मेहमान हूँ।''

सस्सी ने उसे अपने वियोग की कहानी सुनायी और उसके कच मकरान का रास्ता पूछा।

चरवाहे का दिल पिघल उठा।

छाँव में बैठाकर चरवाहे ने कहा, ''बहन, अब तुम चल नहीं सकती। धूप बढ़ रही है। और फिर आगे ऊँटों के पाँव के निशान कहीं-कहीं ही मिलेंगे क्योंकि कुछ जगहों पर धरती रेतीली नहीं है। मेरे घरवाले तुम्हारी देखभाल करेंगे। मैं आज ही कच मकरान जाऊँगा और तुम्हारे पुन्नू को तुम्हारी ख़बर पहुँचाऊँगा।''

सस्सी ने चरवाहे का धन्यवाद किया और कहा, ''मेरे अच्छे भैय्या, जाकर पन्नू को कहना कि दु:खों को सतायी हुई तुम्हारी सस्सी दीवानी बनी भटक रही है।''

सस्सी तड़प रही थी। चरवाहें का सारा परिवार उसकी सेवा में लग गया। कोई उसके माथे पर ठंडे पानी की पट्टियाँ रखता, कोई उसके मुँह में पानी डालता, कोई उसकी कुशलता के लिए ईश्वर के आगे हाथ जोड़ता।

दो दिन बड़ी ही मुश्किल से बीते। कई बार ऐसे लगा जैसे सस्सी कुछ ही पलों की मेहमान थी। पर कोई कहता, ''वह सामने कोई आ रहा दिखाई दे रहा है।'' सुनकर, होंठों पर आयी सस्सी की जान रुक जाती।

''वह रही डाची— काली डाची— भागी हुई आ रही है।''

सस्सी की आँखें खुलीं। पर सामने कुछ न देखकर फिर बन्द हो गयीं।

आख़िर काली डाची झोंपड़ी के बाहर आकर रुकी। उसकी गर्दन में घंटियाँ बज रही थीं। उनकी आवाज़ सस्सी के कानों में पड़ी। डाची पर से दो सवार उतरे। उनमें से एक चरवाहा था। दूसरे ने उतरते ही चीख़कर कहा, ''कहाँ है मेरी सस्सी?''

पुन्नू को सस्सी के पास ले जाया गया।

''सस्सी! मेरी सस्सी!''

सस्सी ने आँखें खोलीं। उसके होंठ मुस्कराये। बाँहों में हरकत हुई। पुन्नू ने उसे बाँहों में भर लिया। उसी आँखों को चूमा। वे आँखों जैसे उस चुम्बन की ही प्रतीक्षा कर रही थीं। फिर न खुली। और पुन्नू की चीख़ सभी के दिलों को



चीर गयी।

''हाय! मेरी सस्सी!''

पुन्नू रात-भर सस्सी के कानों में रो-रोकर अपने भाइयों के जुल्म की कहानी कहता रहा।

दिन चढ़ा तो सस्सी के लिए क़ब्र खोदी गयी। क़ब्र को देखकर पुन्नू ने कहा, ''और चौड़ी करो। इसमें सस्सी अकेली नहीं लेटेगी।''

जनाजा क़ब्र में उतारा गया।

''नहीं, एक तरफ़ करके रखो। और अभी मिट्टी न डालो। मैं दुआ कर लूँ।''

क़ब्र के सिरहाने बैठकर पुन्नू ने आँखों पर हाथ धर लिये। इसके बाद जो हुआ वह केवल पुन्नू ने देखा। दुनियावी नज़र से उसे देखना मुमकिन भी न था। आँखें बन्द होने की देर थी कि सस्सी क़ब्र में से निकल आयी। सस्सी ने पुन्नू का हाथ चूमा और उसकी समय वह क़ब्र में दाख़िल हो गयी।

पुन्नू ने आँखों पर से हाथ उठाये और चौंककर उठा। उसने क़ब्र में झाँका जनाजा उसी तरह वहाँ पड़ा था। उसने वहाँ खड़े लोंगों के चेहरों की ओर देखा। सब लोग रो रहे थे। उसने क़ब्र की परिक्रमा की ओर उसके मुँह से ऊँची चीख़ निकली :

''ओ मेरी सस्सी!''

और उसने क़ब्र में छलाँग लगा दी।

अचानक चमत्कार हुआ। मिट्टी उठ-उठकर कब्र को ढकने लगी। सस्सी और पुन्नू एक साथ जमीन में समा गये। वे नहीं रहे, रह गई प्रेम की टीस उठा देने वाली याद।

प्रस्तुति : ईशान अग्निहोत्री

अति सूधो सनेह को मारग है

संकलन : सुरेश सलिल

मतिराम

सोय रही रति-अन्त रसीली, अनन्द बढ़ाय अनंग-तरंगनि
केसरि खौर करी तिय के तन, प्रीतम और सुवास के संगनि
जागि परी 'मतिराम' सरूप, गुमान जनावति भौंह के अंगनि
लाल सों बोलति नाहिंन बाल, सुयोंछति आँखि अँगौछति भंगनि॥

सो मनमोहन होत लटू, मुख जाके भटू विधु की छबि छाजै
खेलि कै नैननि देखै जो नेक, तो स्याम सरोज पराजय साजै
जो बिहँसै मुख सुन्दर तो, 'मतिराम' बिहान को बारिज लाजै
बोलै अली मृदुमंजुल बोल तौ, कोकिल बोलनि को मद भाजै।

प्रीतम आये प्रभात प्रिया, मुसक्याय उठी दृग सों दृग जोरें
आगे ह्वै आदर कै 'मतिराम', कहै मृदु बैन सुधा रस बोरें
ऐसे सयान सुभायन हीं सों, मिली मनभावन सो मन मोरें
मान गो जानि सुजान तवै, अँगिया की तनी न छुटी जब छोरें।

रावरे नेह को लाज तजी अरु, गेह के काम सबै बिसरायो
डारि दयो गुरु लोगन कौ डर, गाँव-चवाई में नाम धरायो
हेतु कियो हम जेतो कहा, तुम तौ 'मतिराम' सबै बिसरायो
कोउ कितेक उपाय करौ, कहुँ होत है आपनो पीउ परायो!

पाँयन आय परै तो परे रहैं, केती करै मनुहारि सहेली
मान्यो मनायो न मैं 'मतिराम', गुमान में ऐसी भई अलबेली
प्यारो गयो दुख मानि कहूँ, अब कैसे रहूँ यहि राति अकेली
आजु तौ ल्याउ मनाइ कन्हाई को, मेरो न लीजियो नाँव सहेली!

साँझहिं ते करि राखे सबै, करिबे को जु काज हेतु रजनी के
पौढ़ि रही उमगी अति ही, 'मतिराम' अनन्द अमात न ही के
सोवत जानि कै लोग सबै, अधिकाते बिलास-मनोरथ-नीके
सेज ते बाल उठी हरुये, हरुये पट खोलि दिये खिरकी के।

आलम शेख

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन, ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं
जा रसना सों करी बहु बातन, ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं
'आलम' जौन से कुंजन में करी केलि, तहाँ अब सीस धुन्यो करैं
नैनन में जो सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं।

देव

'देव' मैं सीस बसायो सनेह कै, भाल मृगम्मद-बिन्दु कै भाख्यौ
कंचुकि में चुपर्‌यो करि चोवा, लगाय लियो उर सों अभिलाख्यो
लै मखतूल गुहे गहने, रस मूरतिवन्त सिंगार कै चाख्यौ
साँवरे लाल को साँवरो रूप में, नैननि को कजरा करि राख्यौ

आपनि ओर की चाहें लिख्यो, लिखि जाति कथा उत मोहन ओर की
प्यारी, दया करि बेगि मिलौ, सहि जाति बिथा नहीं मैन-मरोर की आयु ही
बाँचि लगावति अंग, अहो किन जानि चिठी चितचोर की राधिका, राधे रही
जकि भोर लौं, ह्वै गई मूरति नन्दकिशोर की।

साँसन ही सो समीर गयो, अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि
तेज गयो गुन लै अपनो, अरु भूमि गई तनु की तनुता करि
जीव रह्यो मिलिबेई की आस, कि आस हू पास अकास रह्यो भरि
जा दिन ते मुख फेरि हँसे हरि, हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि।

मूरति जो मनमोहन की, मन-मोहिनी के मन ह्वै थिरकी-सी
'देव' गोपाल को बोल सुनें, छतियाँ सियराति सुधा छिरकी-सी
नीकें झरोखेहूँ झाँकि सकै नहिं, नैननि लाज-घटा थिरकी-सी
पूरन प्रीति हिये हिरकी, खिरकी-खिदकीनि फिरै फिरकी-सी।



आनन्द को कन्द, वृषभानुजा कौ मुखचन्द
लीला ही तैं मोहन के मानस को चोरें है
दूजो तैसो रचिबो का चाहति विरंचि नित
ससि को बनावै अजौं मन को न मोरें है
फेरत है सान आसमान पे चढ़ाय
फेरि पानिप चढ़ाहबे को बारिधि में बोरें है
राधिका के आनन को जोर न बिलोकै विधि
टूक-टूक तौरें पुनि टूक-टूक जोरें है।

घनानन्द

सोंधे की बास उसाँसहिं रोकत, चन्दन दाहक गाहक जी को
नैननि बैरी सो है री गुलाल, अबीर उड़ावत धीरज ही को
राग विराग धमार त्यों धार सी, लौटि पर्‍यो ढंग मों सब ही को
रंग रचावन जाने बिना, 'घन आनन्द' लागत फागुन फीको।

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों, क्यों फिर नेह कै तोरिये जू
निरधार अधार दै धार-मँझार, दई गहि बाँह न बोरिये जू
'घन आनन्द' आपने चातकि कौ, गुन बाँधि लै, मोह न छोरिये जू
रस प्याय कै ज्याय, बढ़ाय कै आस, बिसास मैं क्यों बिस घोरिये जू!

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयान बाँक नहीं
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौं, झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं
'घन आनन्द' प्यारे सुजान सुनौं, इत एक ते दूसरो आँक नहीं
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं!

कारी कूर कोकिला! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि-कूकि अबहीं, करेजो किन कोरि लै
पैंड़े परे पापी, ये कलापी, निसिधौस ज्यों ही,
चातक! घातक त्यौं ही, तू हू कान फोरि लै
'आनन्द के घन', प्रान-जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली, सब घेरो दल जोरि लै
जौं लौं करैं आवन, बिनोद-बरसावन वै,
तौ लौं रे डरारे, बजमारे, घन घेरि लै।

ऐ रे बीर पौन! तेरो सबै ओर गौन, बारी
तोसो और कौन-मनैं ढरकौंही बानि दै
जगत के प्रान, आछे बड़े सौ समान,
'घनआनन्द' निधान, सुखदानि दुखियानि दैं
जात उजियारे, गुन-मारे, अन्त मोहिं प्यारे,
अब है अमोही बैठे, पीड पहिचानि दै
बिरह बिथा की भूरि, आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन पायनि की, हा हा, नेकु आनि दै!

दास जी (भिखारी)

मोहन आयो इहाँ सपने, मुसकात और खात विनोद सों बीरो
बैठी हुती परजंक पै हौंहू, उठि मिलिकै कहँ कै मन धीरो
ऐसे में, 'दास', बिसासनी दासी, जगायो डुलाय केंवार जँजीरो
झूठो भयो मिलिबो ब्रजराज को, ऐ री, गयो गिरि हाथ के हीरो।

जेहि मोहिबे काज सिंगार सज्यो, तेहि देखत मोह में आय गई
न चितौनि चलाय सकी, उनहीं की, चितौनि के घाय अघाय गई
वृषभानलली की दसा यह 'दास जू' देत ठगौरी ठगाय गई
बरसाने गई दधि बेचन को, तहँ आपु ही आप बिकाय गई

बोधा

अति छीन मृनाल के तारहु ते, तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है
सुई बेह ते द्वार सकीन तहाँ, परतीति को हाँड़ो लदावनो है
'कवि बोधा' अनी घनी जेजहु ते, चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है
यह प्रेम को पन्थ कराल महा, तरवारि की घार पै धावनो है

कबहूँ मिलिबो, कबहूँ मिलिबो, यह धीरज ही मैं धरैबो करै
उर तें कढ़ि आवै गरे तें फिरै, मन की मनही मैं सिरैबो करै
'कवि बोधा' न चाउसरी कबहूँ, नित की हरवा सो हिरैबो करै
सहते ही बनै, कहते न बनै, मन ही मन पीर पिरैबो करे

ग्वाल

चाहिए जरूर इनसानियत मानुस को
नौबत बजे वै फेर भेर बजनो कहा
जात और अजात कहा, हिन्दू औ मुसलमान
जाने कियो नेह, फेर, ताते भजनो कहा
'ग्वाल कवि' जाके लिए सीस पै बुराई लई
लाजहू गँवाई, कहो फेर लजनो कहा
या तो रँग काहू के न रँगिये सुजान प्यारे
रँगे तौ रँगोई रहै, फेर तजनो कहा।

ठाकुर

कानन दूसरो नाम सुनै नहीं, एक ही रंग रँग्यो यह डोरो
धोखेहु दूसरो नाम कढ़ै, रसना मुख काढ़ि हलाहल बोरो
'ठाकुर' चित्त की वृत्ति यही, हम कैसेहूँ टेक तजै नहिं भोरो
बावरी वै अँखियाँ जरि जाहिं, जो साँवरो छाँड़ि निहारत गोरो।

रोज न आइए जो मनमोहन, तौ यहु नेक मतौ सुन लीजिए
प्रान हमारे तुम्हारे अधीन, तुम्हें दिब देखे सु कैसे कै जीजिए
'ठाकुर' लालन प्यारे सुनौ, बिनती इतनी पै अहो चित दीजिए
दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें तो भला आइबो कीजिए।

तन को तरसाइबो कौने बधौ, मन तौ मिलिगो पै मिलै जल जैसो
उनसैं अब कौन दुराव रह्यौ, जिनके उर मध्य करो सुख ऐसो
'ठाकुर' या निरधार सुनौ, तुम्हैं कौन सुभाव पर्‍यौ है अनैसो
प्रानपियारी सुनौ चित दै, हिरदैं बसि घूँघट कालिबो कैसो?

लगी अन्तर मैं, करै बाहिर को, बिन जाहिर, कोऊ न मानतु है
दुख औ सुख, हानि औ लाभ सबै, घर की कोऊ बाहर भानतु है
कवि 'ठाकुर' आपनी चातुरी सों, सबही सब भाँति बखानतु है
पर बीर, मिले-बिछुरे की बिथा, मिलिकै बिछुरै सोह जानतु है।

पद्माकर

घर ना सुहात, ना सुहात बन बाहरहूँ
बाग ना सुहात, जे खुश्याल खुशबोही सों
कहै 'पद्माकर' घनेरे धन-धाम त्यों ही
चन्द न सुहात, चाँदनी हूँ जग जोही सों
साँझ ना सुहात, ना सुहात दिन माँझ कछू,
व्यापी यह बात, सो बखानत हौं तोही सों
राति ना सुहात, ना सुहात परभात आली
लागि मन जात जब, काहू निरमोही सों

फाग के भीर अभीरन मैं, गहि गोबिन्द लै गई भीतर मोरी
भाई करी मन की 'पद्माकर', ऊपर नाय अबीर की झोरी
छीन पितम्मर कम्मर तैं सु, बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी
नैन नचाइ कह्यो मुसक्याइ, लला फिरि आइयो खेलन होरी

भाल पै लाल गुलाल, गुलाल सों गेरि गरैं गजरा अलबेलौ
यों बनि बानिक सों 'पद्माकर', आये जु खेलन फाग तौ खेलौ
पै इक या छबि देखिबे के लिए, मो बिनती कै न झोरन झेलौ
रावरे रंग-रँगी अँखियान में, ऐ बलबीर अबीर न मेलौ

ता छिन तैं रहै औरनि भूलि, सु भूलि कदम्बन की परछाँही
त्यों 'पद्माकर' संग सखान की, भूलि भुलाय कला अवगाहीं
जा छिन तैं तू बसीकर मन्त्र सी, मेलि सुकान्ह के कानन माहीं
दै गल बाँहीं जु 'नाहीं' करी, वह 'नाहिं' गुपाल कौ भूलत नाहीं।

तरसैबो करो, बतरैबो कहो, इतरैबो करो, करो जोइ चहौ।
'पद्माकर' आनन्द दीबो करो, रस लीबो करो, सुख सों उमहौ।
कछु अन्तर राखौ न राखौ चहौ, पर या बिनती इक मेरी गहौ।
अब ज्यों हिय में नित बैठि रही, त्यों दया करिकैं दिग बैठि रहौ।

ऐसी न देखी सुनी सजनी, घनी बाढ़त जात बियोग की बाधा
त्यों 'पद्माकर' मोहन को, तब तें कल है न कहूँ पल आधा
लाल गुलाल घलाघल में, दृग ठोकर दै गई रूप-अगाधा
कै गई, कै गई, चेटक सों, मन लै गई, लै गई, लै गई राधा।

एकै सँग हाले नँदलाल औ गुलाल दोऊ,
दृगन गये जु भरि आनन्द मढ़ै नहीं
धोय धोय हारी, 'पद्माकर' तिहारी सौंह
अब तौ उपाव एक चित्त मैं चढ़ै नहीं
कैसी करों, कहाँ जाऊँ, कासे कहूँ, कौन सुनै,
कोऊ तो निकासौ, ता सैं दरद बढ़ै नहीं
ए री मेरी बीर, जैसे-तैसे इन आखिन तैं
कढ़िगो अबीर, पै अहीर तो कढ़ै नहीं।

या अनुराग की फागु लखौ, जहाँ रागती राग किसोर किसोरी
त्यों 'पद्माकर' घालि घली, फिर लाल ही लाल गुलाल की झोरी
जैसी की तैसी रही पिचकी, कर काहू न केसर रंग में बोरी
गोरी के रंग मैं भीजिगो साँवरो, साँवरे के रंग में भीजिगी गोरी।

मैं तरुनी, तुम तरुन तन, चुगल चबाई गाँव।
मुरली कै न बजाइयो, कबहुँ हमारो नाँव॥

रत्नाकर

भेजे मनभावन के ऊधौ के आवन की
सुधि ब्रज-गाँवन मैं आवन जबै लगीं
कहै 'रत्नाकर', गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि-दौरि नन्द-पौरि आवन तबै लगीं
उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै,
पेखि-पेखि पाती छाती ओहनि छबै लगीं
हमकौ-लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यो है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा, कहन सबै लगीं।

सुनि-सुनि ऊधौ की अकह कहानी कान,
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिं फिरानी हैं
कहै 'रतनाकर' रिसानी, बररानी कोऊ,
कोऊ बिलखाती, बिलकानी, बिथकानी हैं
कोऊ सेद-साजी, कोऊ भरि हम-पानी रहीं
कोऊ घूमि-घूमि परी भूमि मुरझानी हैं
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी, कोऊ
कोमल करेजो थामि सहमि सुखानी हैं

कोऊ जोरि हाथ, कोऊ नाइ नम्रता सौं माथ,
भाषन की लाख लालसा सौं नहिं जात हैं
कहै 'रत्नाकर', चलत उठि ऊधौ के,
कातर ह्वै प्रेम सौं सफल महि जात हैं

सबद न पावत सो भाव उमगावत जो,
ताकि ताकि आनन ढगे से ठहि जात हैं
रंचक हमारी सुनौ, रंचक हमारी सुनौ,
रंचक हमारी सुनौ, कहि रहि जात हैं

भारतेन्दु

एक ही गाँव में बास सदा, घर पास इहौ नहिं जानती हैं
पुनि पाँचएँ, सातएँ आवत जात की, आस न चित्त में आनती हैं
हम कौन उपाय करैं इनको, 'हरिचन्द', महा हठ ठानती हैं
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना, अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं

वह संग में लागियै डोलैं सदा, बिन देखे न धीरज आनती हैं
छिनहू जौ बियोग परै, 'हरिचन्द्र' तो तौ चाल प्रलै की सुठानती हैं
बरुनी में थिरैं, न झपैं-उझपैं, पल मैं न समाइबो जानती हैं
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना, अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं

व्यापक ब्रम्ह सबै थल पूरन है, हमहूँ पहिचानती हैं
पै बिना नँदलाल बिहाल सदा, 'हरिचन्द' न ज्ञानहिं ठानती हैं
तुम ऊधो यहै कहियो उन सों, हम और कछू नहिं जानती हैं
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना, अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं

ई-14, सादतपुर (गली-5)
दिल्ली- 110 094

फोन : 011-22960144

अवध की तीन प्रेम कथाएँ :

फूलझरी रानी, चम्पा रानी, सारंगा सदावृक्ष

पुनर्लेखन : सुशील सिद्धार्थ

फूलझरी रानी

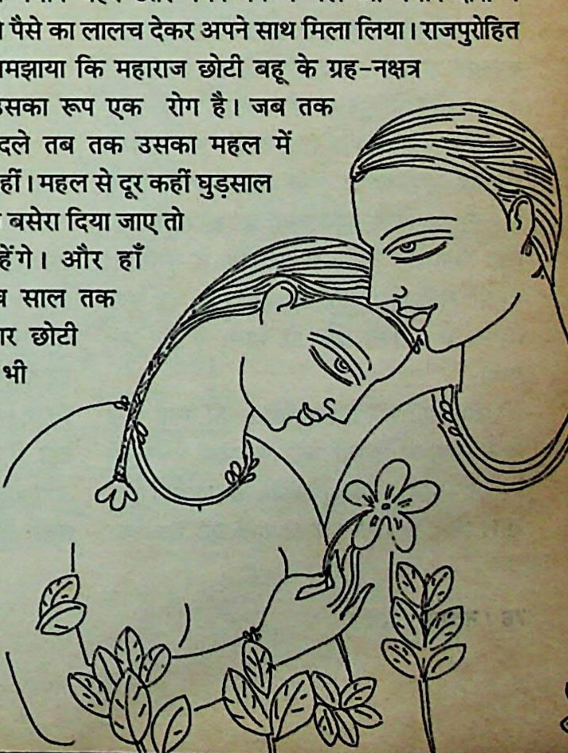


कहते हैं शब्द में अर्थ, सीप में मोती, आँख में चरित्र, बोली में जन्मक्षेत्र, फूल में खुशबू और चाल में आत्मबल छिपा रहता है। देखने को पारखी दृष्टि चाहिए। जो काया की परिक्रमा करके ही न ठहर जाए। जो काया के भीतर जगमगाती मन की माया को पहचान सके। नहीं तो क्या, दुनिया पलक झपकते खेल बदलने का नाम है। बहुत पहले की बात है। बहुत बड़ी दुनिया के एक छोटे-से हिस्से में एक छोटा-सा राज्य था। राज्य का राजा बड़ा दयावान और सरल था। राजा के तीन बेटे। दो का विवाह हो चुका था। दोनों की बहुएँ थीं तो सुन्दर-सुन्दर, मगर खुद से बढ़कर किसी को मानती नहीं थीं। इसीलिए ऊपर से सुखी, मगर भीतर से दुखी। दुनिया में बहुत से लोग सुखी दिखते हैं, होते नहीं। कुछ दिन बाद छोटे बेटे का विवाह पड़ोस की एक सुन्दर कन्या से तय हुआ। ऐसा समझो कि बिधना ने ही तय किया। छोटा बेटा शिकार खेलने गया था। जंगल में जंगली फूल की तरह खिली और सोलह साल की उमर का इन्द्रजाल लिये फुलवा से उसका आमना-सामना हुआ। बेटा तो घायल ही हो गया नैनों के तीर से। फुलवा भी प्यार की खुशबू से भर उठी। पंछी चहचहाये... झरनों ने गीत गाये... हवाओं ने रागिनी छेड़ी... और चन्द्रमा की चाँदनी की कसम खाकर दोनों एक हो गये। सुबह फुलवा ने उगते सूरज को प्रणाम किया और बेसुध पड़े छोटे राजकुमार को आँचल की हवा देकर जगाया... कि जागो कुँवर! लौटने का वक्त आया। जाना मगर ये रात भूल न जाना। कुँवर उदास मन से लौटने की तैयारी करने लगा। फुलवा का माथा चूम कर वचन दिया कि बहुत जल्द इन सुकुमार कलाइयों में हीरे जड़े कंगन खनखनाएँगे।

छोटे राजकुमार की बात सुन राजा तो मगन हो गये। खुश हुए कि चलो इसकी भी गिरस्ती बस जाएगी। राजकुमार फुलवा के रूप का बखान करते न अघाये। पूरा नगर फुलवा की तारीफ से गूँजने लगा। नगर तो गूँजा, मगर दोनों बहुओं की छाती पर जैसे धम्म-धम्म मुक्के बरसने लगे। दोनों ने बारी-बारी से छोटे राजकुमार को फुसलाया कि भोले देवर जी, हमने पलकों की छाया में रखा है। तुमने हमसे पूछा तक नहीं। हमेशा आँखों देखी बात सच नहीं होती। फुलवा तुम्हारा रूप और तुम्हारी दौलत पाने के लिए नाटक कर रही होगी। जंगली लोग क्या जानें नगर के तौर तरीके। उसका प्यार दिखावा है और रूप छलावा! हम तुम्हारी शादी किसी अप्सरा से कराएँगे। हमारा भरोसा करो और फुलवा को भूल जाओ। ...छोटा राजकुमार मुस्कराया कि मेरी हीरा-मोती जैसी भाभियो! फुलवा वह फूल है जिसमें महुए की मादकता और गुलाब की शीतलता है। बेले की चमक और चमेली का कुँवारापन है। भाभियो, मैं तो दिल हार चुका। अब मूरख हो चुका, समझाने से कोई फायदा नहीं। भाभियों ने अकेले में जाकर सिर पीट लिया।

राजा ने छोटे राजकुमार की शादी धूमधाम से की। फुलवा का डोला जंगल से राज्य तक आया बड़ी रौनक के साथ। गाते-बजाते लोग खुशी से झूम रहे थे। फुलवा डोला से उतरी। महल में आयी। औरतें घेर के बैठ गयीं। फुलवा ने घूँघट उठाया तो रूप के प्रकाश में दोनों बहुओं की आँखें चौंधिया गयीं। चेहरे उतर गये। मन में मैल आ गया। दोनों ने राजपुरोहित को पैसे का लालच देकर अपने साथ मिला लिया। राजपुरोहित ने राजा को समझाया कि महाराज छोटी बहू के ग्रह-नक्षत्र गड़बड़ हैं। उसका रूप एक रोग है। जब तक ग्रहदशा न बदले तब तक उसका महल में ठहरना ठीक नहीं। महल से दूर कहीं घुड़साल वगैरह के पास बसेरा दिया जाए तो ग्रह शान्त रहेंगे। और हाँ महाराज, पाँच साल तक छोटे राजकुमार छोटी रानी की सूरत भी न देखें।

राजा पर तो जैसे पहाड़



टूटा। छोटे राजकुमार की बात ही न पूछो। उसका रो-रोकर बुरा हाल। छोटी बहू को रनिवास से दूर घुड़साल के एकान्त में ठहरा दिया गया। देखभाल के लिए नौकर-चाकर। सारा आराम, मगर पति को सुखी बनाने का सपना टूट गया। छोटा राजकुमार तो पिता की शपथ के कारण सब मान गया। दिल न माना। एक चाँदनी रात में चुपके से जा पहुँचा घुड़साल। खिड़की से लगकर बिनती की कि ओ प्राणेश्वरी! सूरत दिखा दो वरना प्राण निकल जाएँगे। रानी ने खिड़की खोली मगर चेहरा घूँघट से ढँका। आँसू टप-टप गिर रहे। बोली कि राजपुरोहित की बात याद कर लें। मेरे रूप के कारण आपकी उँगली भी दुखी तो मैं माहुर खा लूँगी। पाँच साल की ही तो बात है। मैं भी काट लूँगी, तुम काट लो। फिर चाँद खिलेगा फिर चाँदनी में हमारा प्यार महकेगा। फुलवा तुम्हारी है, मगर मेरी आँखों की कसम, पाँच साल तक मुझे अपनी आँखों से न देखो। मन की आँखों से हम दोनों एक-दूसरे का दीदार करते रहेंगे। अब जाओ मेरे प्रियतम! छोटा राजकुमार दिल पर पत्थर रख कर बिलखता हुआ वापस चला गया। दोनों बड़ी बहुएँ ऐसी खुश जैसे स्वर्ग का राज मिल जाए!

मौसम तो बदलता ही है। दिन एक से नहीं रहते। रातों का कालापन भी फीका पड़ता है। फुलवा रानी ने अपने परिश्रम से उस इलाके को राज्य का सबसे सुन्दर हिस्सा बना दिया। इलाके के लोग खुश कि छोटी रानी हमारे लिए सौभाग्य का फूल बन कर आयी। लोग कहते, हमारी रानी के हँसने से तो फूल झरते हैं। हमारी रानी फूलझरी रानी हैं। रूप और चरित्र जब मिलते हैं तब सोने में सुहागा हो जाता है। फूलझरी रानी जैसा रूप मानो तिरलोक में नहीं। उसकी सुन्दरता से चन्द्रमा लजा जाता। शरीर मानो बिजली का फूल, खूबसूरती का झरना बहता। लोग अफसोस करते तो यही कि हे भगवान! तुम्हारी ये कैसी रीत है। जिसकी ओर पूरा राज्य ताकता है उसकी ओर से भाग्य ने मुँह फेर लिया!

समय की बात। राजपुरोहित की पत्नी जाने किस काम से अपनी बेटी के साथ उधर आ निकलीं। मन रम गया तो वक्त का ख़याल नहीं रहा। शाम हो गयी। छोटी रानी की व्यवस्था ऐसी थी ही कि पूरा इलाका जगमगाने लगा। चिरागों से हर घर रोशन हो गया। राजपुरोहित की पत्नी चकित कि कहीं गीत-संगीत, कहीं पूजा-प्रार्थना, कहीं खान-पकवान, कहीं आनन्द-मनोरंजन! छोटी रानी खुद घूम घूमकर इलाके का हालचाल लेती थी। उसने देखा कि एक चौराहे पर राजपुरोहित की पत्नी और बेटी सुध-बुध खोये खड़ी हैं। रानी समझ गयी कि ये लोग यहाँ से अपरिचित हैं, इनकी सहायता करनी चाहिए। उसने आगे बढ़कर कहा कि आप लोग हमारे मेहमान हैं, चलिए आज हमारा आतिथ्य स्वीकारिए।

राजपुरोहितानी जब घुड़साल की ओर बढ़ीं तो उनको सारी बात अपने आप पता चल गयी। रानी ने माँ-बेटी की ऐसी खातिर की कि बस! राजपुरोहितानी आशीर्वाद देते देते अघाती न थीं। रानी ने आँचल पसार कर बस इतना कहा कि माई, बस इतना आशीर्वाद दीजिए कि मेरा और मेरे पति का बिछोह दूर हो। पुरोहितानी की बेटी को रानी ने खूब प्यार किया, उपहार दिये। पुरोहितानी कुछ दिन वहीं रुक गयीं। राजपुरोहित के घर पर हाहाकार मच गया। आखिर एक दिन खुद राजपुराहित घुड़साल के इलाके में आये। उन्हें पता चला कि उनकी पत्नी और बेटी छोटे राजकुमार की रानी के यहाँ मेहमान हैं। वे उनको लेने आ पहुँचे। पुरोहितानी राजपुरोहित की कारस्तानी जानती थीं। उन्होंने अपने पति को खूब फटकारा और कहा कि जब तक छोटी रानी का वनवास दूर नहीं होता तब तक हम भी वापस नहीं जाएँगे।

पुरोहित को अक्ल आ गयी। वे सीधे छोटे राजकुमार के पास गये। सारी सच्ची बात बतायी। राजकुमार पहले आग बबूला हुआ, फिर रोने लगा। कहा, आपने कुछ रुपयों के लालच में मेरी नालायक भावजों का साथ दिया। अब आपको मैं क्या दंड दूँ! राजपुरोहित ने कहा कि आप मेरे साथ चलिए मैं महाराज से बात करूँगा। अपना अपराध कबूल करूँगा। जब महाराज को पुरोहित ने सब बताया तो उनका क्रोध चरम पर पहुँच गया। छोटे राजकुमार ने उनको शान्त किया। राजा ने कहा कि अभी सब लोग चुपचाप रहो, मैं सच्चाई धीरे-धीरे उजागर करूँगा। राजा ने राजकुमार से कहा कि अब तुम फूल बरसाने वाली हमारी छोटी बहू के पास जा सकते हो।

शाम का इन्तजार कौन करता। छोटा राजकुमार भरी दुपहर में घोड़ा दौड़ाता अपनी रानी के पास जा पहुँचा। बरसों बाद दोनों ने एक-दूसरे का चेहरा देखा। सुख-दुख की बातें हुईं। अच्छे दिन चौखट पर आकर इन्तजार करने लगे। राजा ने रनिवास में जब अपने गुप्तचर लगाये तो पता चला कि दोनों बड़ी बहुएँ कैसी कैसी जालसाजी कर रही हैं। बहुओं को जाने कैसे इस बात की भनक पड़ गयी। उन्हें लगा कि साँठ-गाँठ का भंडाफोड़ हो जाएगा। उन्होंने राजा को विष देकर मारने की कोशिश भी की। राजा अपने विश्वासपात्रों के कारण बच गये। एक दिन राजा ने दरबार में सबके सामने राजपुरोहित को बुलाकर कहा कि अब सच बताओ। पुरोहित के सच बताते ही पूरा दरबार चिल्लाने लगा कि पुरोहित और दोनों बहुओं को प्राणदंड दिया जाए। तब तक छोटा राजकुमार फूलझरी रानी को लेकर दरबार में आ गया। सब जय जयकार करने लगे। राजा ने छोटी बहू से कहा कि इन लोगों के दंड का फैसला तुम्हीं करो। दोनों बहुएँ थर-थर काँपती एक ओर खड़ी थीं, साथ में इनके पति भी। लज्जित और परेशान। छोटी बहू ने कहा कि पूज्य ससुर जी, ये लोग पाँच साल तक ऐसे इलाके में रहकर लोगों की सेवा करें जहाँ बहुत ज़रूरत है। दरबार जयकार से गूँज उठा। लोग फूलझरी रानी पर फूल बरसाने लगे।

छोटा राजकुमार अपनी रानी के साथ रहने लगा। उनका महल खुशबू से भर गया। सूर्य-चन्द्र छोटी रानी को देखने के लिए बारी-बारी से महल के चक्कर लगाते। फूलझरी रानी को लेकर राजकुमार कभी-कभी जंगल में जाता और पूरी रात वहाँ बिताता जहाँ वे पहली बार मिले थे।

चम्पा रानी



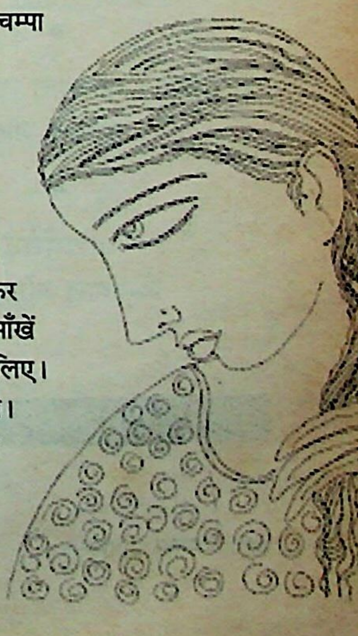
सूरतगढ़ की रानी चम्पा की खूबसूरती चारों ओर इस तरह फैली कि पूछो मत। सारे नौजवान यही चाहें कि चम्पा रानी की एक झलक देख लें। मगर रजवाड़े का मामला ठहरा। गरदन उड़ा दी जाती। बेलागढ़ के राजकुमार ने भी यही इच्छा पाल ली। दिन-रात चम्पा रानी की कल्पना में खोया रहता। भूख-प्यास कपूर की तरह उड़ गयी। राजा को बात पता चली। उन्होंने राजकुमार को समझाया, ''बेटा, आकाश कुसुम को तोड़ने की जिद न करो। माना कि चम्पा रानी सूरतगढ़ के राजा की पाँचवी रानी है, सोलह साल की है, राजा से उम्र में बहुत कम है, मगर तुम्हें कैसे मिलेगी। दो राज्यों में युद्ध हो जाएगा और हजारों बेमौत मारे जाएँगे! बेटा ऐसी जिद न करो, जिसका अन्त सर्वनाश में हो।'' राजकुमार को कुछ-कुछ होश आया। उसने एक शर्त रखते हुए कहा कि पिताजी अब मैं चम्पा रानी को भूल तो न पाऊँगा। अगर कोई मुझे उसकी तस्वीर ला दे तो मैं जीवन भर उसको ही देखकर जी लूँगा। राजा ने राज्य में डंका पिटवा दिया कि जो साहसी शूरवीर रानी चम्पा की तस्वीर लाकर देगा उसे मुँहमाँगा ईनाम मिलेगा। कई दिन तक डंका पिटता रहा। कोई आगे न आया। दो महीने बीत गये। ...एक दिन केवल नाम का युवक दरबार में हाजिर हुआ। राजा और राजकुमार के चेहरे उसकी बात सुनकर पहले खिले फिर कुछ मलीन हो गये। केवल ने ऐसा क्या कहा था? केवल ने एक बात में दो बातें कही थीं। पहली यह कि मैं अगर केवल चम्पारानी की तस्वीर ला पाया तो राजकुमार को सौंप दूँगा। दूसरी यह कि मैं खुद चम्पा रानी की खूबसूरती का दीवाना हूँ। अगर किसी तरह चम्पारानी को राजी कर अपने साथ ला पाया तो उसके साथ मेरा विवाह आपको करवाना होगा। सारे दरबार में सन्नाटा छा गया। मन मार कर राजा ने बात मान ली। पंडित ने तिलक लगाया। राजकुमार ने पूछा, जाने के लिए कोई सामान, कोई सहायक वस्तु तो नहीं चाहिए। केवल ने कहा कि लासुना घोड़ा और सोने के तार वाला जूता चाहिए। दोनों का महत्त्व केवल राजा और राजकुमार जानते थे। दे दिया। केवल ऊपरवाले का स्मरण कर निकल पड़ा। कमर में बाँध ली खर्चे के लिए अशर्फियाँ।

केवल बहादुर तो था ही, होशियार भी था। उसने सोचा महल में घुसने के लिए या सुरंग चाहिए या कमन्द या कोई भेदिया साथी हो। केवल सूरतगढ़ पहुँचा तो एक मालिन के द्वार पर उतरा। मालिन ने पूछा कि तुम तो कहीं भी रुक सकते थे, मेरे ही दरवाजे पर क्यों आये। केवल ने कहा कि तुम्हारे चेहरे में मुझे अपना साथी नजर आता है, इसलिए। मालिन खुश हो गयी। केवल वहीं रहने-खाने लगा। मालिन उसे पूरे राज्य के हालचाल देती रहती। एक दिन केवल ने बड़ी होशियारी से चम्पा रानी का प्रसंग छेड़ा। मालिन जान तो गयी कि केवल के मन में क्या है, मगर वह उसे मोहाने लगी थी। प्यार से बोली कि मेहमान! चम्पा रानी की देह पर जवानी की नदी चढ़ती चली आ रही है। ऐसा लगता है दो कबूतर उसे ले उड़ेंगे। एक साँप उसकी सेवा में रहता है। दो मछलियों का शगुन उसके चेहरे पर है। कमल के भीतर अनार के दाने रहते हैं। मुट्ठी में कमर भर लो, ऐसी है चम्पा रानी। केवल सुनता रहा गुनता रहा। अपना दिल जलाता रहा मुस्कुराता रहा। मालिन से अरदास की कि हे साथिन, किसी तरह एक झलक दिखा दो।

मालिन ने भर निगाह केवल को देखा। उसे केवल की आँखों में सच्चे प्यार की प्यास दिखाई पड़ी। मन में सोचा दिलवाले का साथ दूँगी, दौलतवाले का नहीं। मालिन ने कहा कि मैं जिस फुलवारी की देखभाल करती हूँ उसमें रात के बारह बजे चम्पा रानी अपनी सखियों के साथ गिरिजा की पूजा करने आती है। तुम चाहो तो उसकी झलक ले सकते हो। रातरानी के झुरमुट के पीछे छिपकर। केवल शाम होते ही फुलवारी में पहुँच गया। खूब घूमा। अरघान उठ रही थी। पलक पाँवड़े बिछा दिये। बारह बजने का गजर हुआ तो रातरानी के झुरमुट के पीछे जा छिपा। खुशबू इतनी मादक थी कि पल भर में पलकें झपकने लगीं। चम्पा रानी आई और पूजा कर चली गयी। सुबह केवल की आँखें खुलीं तो उसकी आँखें खुलीं कि ये क्या हो गया!

मालिन खूब हँसी ये जानकर। फिर बोली मेरे भोले साथी, रातरानी में खो गये इसलिए रानी से चूक गये। इस रात ऐसा करना कि बाएँ हाथ की छिगुनिया (कनिष्ठिका) चीर कर नीबू निचोड़ लेना।

केवल ने यही किया। फिर बारह बजे। चम्पा रानी छम छम करती आयी। पूजा की। पूजा करके घूमी तो सामने केवल खड़ा हो गया। आँखें मिलीं और टोना हो गया। चम्पा उधर और केवल इधर! सखियाँ मारे डर के भाग गयीं। कुछ देर बाद दोनों को होश आया कि कहाँ खड़े हैं और क्या समय है। केवल ने आगे बढ़कर चम्पा के हाथ पकड़ लिये। चम्पा की आँखें भर आयीं। बोली, ''मैं तो बनी हूँ तुम्हारे लिए। बिधना ने बाँध दिया बूढ़े राजा के साथ। तीन साल विवाह के हो गये। अभी तक



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

भारतीय ज्ञानपीठ

से

शीघ्र प्रकाश्य

आलोचना, अध्ययन एवं विमर्शमूलक पुस्तकें

महाभारत की संरचना
बच्चन सिंह

●

इतिहास में लड़ने के लिए
सुमन राजे

●

निर्मल वर्मा और उत्तर औपनिवेशिक विमर्श
कृष्णदत्त पालीवाल

●

साहित्य : स्वरूप और समस्याएँ
चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर

●

रामायण : मानवता का महाकाव्य
गुणवन्त शाह

●

अथर्ववेद
प्रभुदयालु अग्निहोत्री

अछूती कुँवारी हूँ। कितनी रातें आयीं, चमेली की कली नहीं चटकी। कितनी सुबहें हुईं कमल का फूल नहीं खिला। आज मन के अँधेरे कमरे में कोई झरोखा खुला है। दोनों ने परिचय और बातों का लेन-देन करते दो पहर बिता दिये।

चम्पा रानी महल को जाने लगी तो केवल उदास होकर बोला कि तुमसे मिलने महल में आना चाहूँ तो! रानी बोली कि राजा तो विजय अभियान पर निकले हैं। कभी भी आ सकते हैं। तुम होशियारी से आना। रात को आना। जो कोई पहरे पर होगा उससे कहना कि पलँग के चारों पायों के नीचे चार हीरे रखे हैं। पहरा हट जाएगा। सीधे दुमहले आ जाना।

केवल यही उपाय कर मिलने जाने लगा। मालिन मना करती तो कहता नहीं मिलूँगा तो मर जाऊँगा। जाने दो साथिन। फिर कहता कि एक बार सोने के तार का जूता बचा लेगा, एक बार लासुना घोड़ा, बाकी मेरी तकदीर। केवल को एक बार महल में घुसते किसी दूसरे पहरेदार ने देख लिया, उसने भाला फेंक कर मारा। भाला केवल की छाती में धँस गया। केवल उसी हाल में चम्पा के दुमहले पर पहुँचा। चम्पा हाय हाय करने लगी। केवल बोला कि सोने के तार का जूता घाव पर रख दो, सब ठीक हो जाएगा। चम्पा ने वही किया और चमत्कार। घाव का नामोनिशान तक न था।

कुदरत अपनी चाल चल रही थी। गरमी की रात, पूर्णिमा का चाँद खिला हुआ। केवल और चम्पा छत पर एक-दूसरे में खोये। तभी राजा महल में घुसे। चहल-पहल बढ़ गयी। एक भरोसेमन्द दासी ने आकर खबर दी। रानी ने केवल से कहा कि फुलवारी में जाकर केले के वृक्षों में छिप जाओ। जल्दी में केवल का एक जूता छत पर छूटा और दूसरा केले के पास गिरा। राजा को ऊपर पहुँच कर शक हुआ। उसे किसी ने कुछ बता भी दिया था। सोने के तार का जूता देखकर भागने वाले की दिशा का अनुमान लगा लिया। पीछा करते-करते फुलवारी तक पहुँचा। केले के पास सोने के तार का दूसरा जूता मिला। राजा ने केले के पेड़ से कहा कि जो मेरे बैरी को छिपाये उसे काट डालना बेहतर। राजा ने लपालप तलवार से केले के पेड़ काटने शुरू किये। खून बह निकला, क्योंकि केवल भी कट गया था। राजा दुमहले वापस आया। चम्पा रानी ने देखा तो बोल पड़ी कि सोने की पनही और तलवार का यह क्या हाल हो रहा है! ऐसा शिकार कहाँ खेला कि सारा शरीर रक्त से सराबोर हो गया। तब राजा ने गुस्से से थरथराते बताया कि कैसे उसने केलों को काट डाला! राजा के इतना कहते ही चम्पा रानी सब समझ गयी। वह पागलों की तरह फुलवारी में पहुँची। देखा, केवल तो केले के पत्तों के बीच निष्प्राण पड़ा है। वह विलाप करने लगी और उसने संकल्प लिया कि केवल के साथ अपने प्राण दे देगी। केवल को लेकर वह लकड़ियों के ढेर पर बैठी ही थी कि आकाश में घूमते शंकर-पार्वती की निगाह इन पर पड़ी। पार्वती ने कहा कि हे त्रिलोकीनाथ! लगता है कोई दुखियारी भारी संकट में है। शंकर बोले, पार्वती यह तो दुनिया है, यहाँ हर पल कोई सुखी है तो कोई दुखी। तुम अपनी राह चलो। पार्वती ने जिद की कि भोलेनाथ, अब देख लिया है तो मदद करनी पड़ेगी।

शंकर-पार्वती फुलवारी में प्रकट हुए और चम्पा से सारा हाल पूछा। चम्पा ने रो-रोकर सब बताया। शंकर ने एक इशारा किया और केवल उठ बैठा। तब तक राजा अपने सैनिकों के साथ आ पहुँचा। शंकर पार्वती गायब हो गये। राजा ने कहा कि रानी! तुमने मुझे कभी अपना पति स्वीकार नहीं किया। मगर केवल के साथ मैं तुम्हें रहने न दूँगा। तभी केवल का लासुना घोड़ा दौड़ता आया। केवल चम्पा को लेकर उस पर बैठा तो ये गया वो गया। लासुना उड़ने लगा। जब घोड़ा मालिन के घर पर से गुजरा तो मालिन ने खुशी से हाथ हिलाया। केवल और चम्पा ने भी उसको नमस्कार किया।

बात की बात में केवल और चम्पा बेलागढ़ आ पहुँचे। दोनों महल में घोड़े से उतरे। सारा नगर उनको देखने के लिए उमड़ पड़ा। राजकुमार ने जी भर कर चम्पा के दर्शन किये। चम्पा की एक तस्वीर बना कर अपने पास रख ली और कहा कि वायदे के मुताबिक चम्पा रानी केवल की है। राजा ने धूमधाम से दोनों का विवाह किया और आधा राज्य उनके नाम लिख दिया।

सारंगा सदावृक्ष

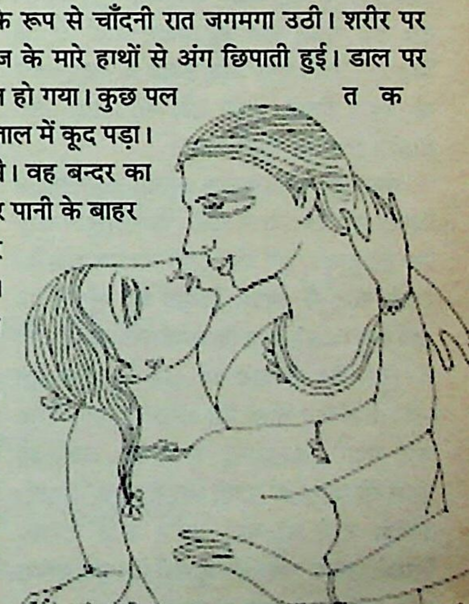


मरसंडा गाँव अपनी प्राकृतिक सुन्दरता के लिए इलाके में मशहूर था। बड़े-बड़े ज्ञानी इस गाँव में रहते। पास के वन-उपवन में जाते तपस्या करते। वन में भाँति-भाँति के पशु पक्षी विचरण करते। उन्हें देखकर मरसंडा गाँव में रहने वाले आग्नेय महाराज कहते कि ये पशु पक्षी नहीं, किसी जन्म के शापित मनुष्य हैं। और सच में वे सब ऐसे-ऐसे आचरण करते कि हैरत होती। पुरवी मैया के चबूतरे पर जब भगवती पंडित कथा कहते तब मनुष्यों के साथ पशु-पक्षी भी एकाग्र होकर सुनते! कथा सुनने वालों में एक जोड़ा बन्दर बन्दरिया का होता। वे साथ-साथ आते, कथा सुनते, भगवती पंडित से प्रसाद लेते और चुपचाप चले जाते। सब आश्चर्य करते मगर आग्नेय महाराज यही कहते कि देखना एक दिन ये मनुष्य बन ही जाएँगे!

होली आने वाली थी। मौसम अच्छा हो गया था। रात के बारह बजे मरसंडा का जंगल आराम से सो रहा था। चारों ओर गहरी शान्ति। पेड़ की एक डाल पर बन्दर बन्दरिया जग रहे थे। पास के पेड़ की डाल पर तोता-मैना। समीप में ही सुन्दर तालाब था, जिसके कमल प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब सुबह हो और वे खिलकर अपना जीवन धन्य कर सकें। वह युग ऐसा था कि पशु-पक्षी सब एक दूसरे की भाषा समझते थे। तोता बोला कि मैना, रात नहीं कट रही। कोई ऐसी बात सुना कि वक़्त भी कटे और मनोरंजन भी हो। मैना मुस्कराई कि तोता, क्या कहूँ आपबीती कि जगबीती। आपबीती में भेद खुलते हैं और जगबीती में भेद मिलते हैं। तोता होशियार था, बोला कि मैना, तुम तो जगबीती कहो। मैना ने पलभर के लिए आँखें बन्द कर लीं। फिर बोलने लगी कि तोता, यह घड़ी ऐसी है कि अगर कोई पास वाले कमलताल में कूद जाएगा तो वह मनुष्य बन जाएगा। तोता बोला सच! मैना ने कहा कि जो प्रेम करते हैं वे सवाल नहीं पूछते, भरोसा करते हैं। तोता बोला तो चलो कूद पड़े कमलताल में, बन जाएँ आदमी। मैना ने आह भरी, अरे तोता हम पंछी ही भले। अभी तू आदमियों के फेर में पड़ा नहीं। इसलिए चहक रहा है। हम अपनी जात में बहुत खुश हैं। चल, रात आधी से ज़्यादा बीत गई। आ लिपट कर सो जाएँ। घड़ी दो घड़ी का साथ है, प्रेम से जी लें। आने वाला कल जाने किस बहेलिया के हाथ में जाल तैयार कर रहा हो!

तोता-मैना की बातें बन्दर बन्दरिया ने सुनीं। वे चौंक उठे। अच्छा इतनी अच्छी घड़ी है कि जो कमलताल में कूदेगा वह मनुष्य बन जाएगा ! बन्दरिया बोली, साथी आओ कूद पड़ें, जरा इस योनि का भी आनन्द उठा लें। देखते नहीं कि सारी सृष्टि मनुष्य ही होना चाहती है। बन्दर ने अँगड़ाई ली, अरे छोड़ री सखी! हम ऐसे ही खुश हैं। एक डाल से दूसरी डाल, दूसरी से तीसरी डाल पर छलाँग मारते हैं। हमें क्या दुख है। अपने दिमाग से ये ख्याल निकाल दे। बन्दरिया बोली, मैं तो कूदना चाहती हूँ और कूदने जा रही हूँ। तुम बताओ मेरा साथ दोगे कि नहीं। तुम मुझसे प्यार करते हो इसलिए पूछ रही हूँ। मैना की बताई घड़ी बीतने ही वाली है। आओ हाथ में हाथ लेकर कमलताल में कूद पड़ें और मरसंडा में मनुष्य होकर निवास करें। बन्दर हिचकिचाने लगा। बोला, तुम भी मैना की बातों में आ गई। पानी में कूदेंगे, कोई साँप वाँप काट लेगा तो जान चली जाएगी। बन्दरिया समझ गई कि बन्दर मेरा साथ न देगा। घड़ी बीतने वाली थी। बन्दरिया चमत्कार के लिए उत्सुक थी और झम्म से कमलताल में कूद पड़ी।

...आश्चर्य! बन्दरिया की जगह एक सोलह साल की अति सुन्दर किशोरी खड़ी थी। उसके रूप से चाँदनी रात जगमगा उठी। शरीर पर वस्त्र का नाम नहीं। लाज के मारे हाथों से अंग छिपाती हुई। डाल पर बैठा बन्दर तो जैसे पागल हो गया। कुछ पल तक हतबुद्धि रहा फिर कमलताल में कूद पड़ा। मगर घड़ी बीत चुकी थी। वह बन्दर का बन्दर ही रहा। अब बन्दर पानी के बाहर निकल कर पछताये और युवती ताल में खड़ी काँपे। यही करते-करते भोर हो गई। समय की बात, उधर से आ निकला कसमंडा का राजकुमार! घोड़े पर सवार। सवारी का मजा लेता। तिवारीपुर को पार करके मरसंडा के जंगल से गुजरा तो



कमलताल की खुशबू खींच लाई। आया तो जैसे उस पर सम्मोहन हो गया। लगा इन्द्रजाल के भीतर एक अप्सरा निर्वसन खड़ी है। उसके घुटनों तक लम्बे केश उसे ढक रहे हैं। रूप की सुनहली चादर उसे छिपा रही हो जैसे। राजकुमार पास आया और अपनी पगड़ी फेंक कर कहा कि ओ कमलिनी! इससे अंग ढाँप कर बाहर आ जाओ। मैं राजकुमार हूँ। मेरे साथ चलो। कमलिनी नाम बन्दरिया से युवती बनी उस बड़भागिन को अच्छा लगा। मगर उसे तत्काल अपने बन्दर का ध्यान आया। बन्दर राजकुमार को आता देखकर कहीं छिप गया था। राजकुमार हाथ बढ़ाए रास्ता जोह रहा था। कमलिनी पगड़ी से शरीर ढाँप कर बाहर आई और राजकुमार ने उसे घोड़े पर बैठा लिया।

घोड़ा दौड़ा तो धूल उड़ी। बन्दर ने कुछ दूर तक पीछा किया फिर बेहोश होकर गिर पड़ा। उधर से आग्नेय महाराज आ निकले। वे सर्वज्ञानी थे। बन्दर को देखकर सब माजरा समझ गए। पानी का छींटा देकर होश में लाए। बन्दर रोने लगा तो समझाया कि ओ प्राणी, मिलना बिछड़ना समय के हाथ में है। गलती तुम्हारी है। तुमने अपनी साथिन पर भरोसा नहीं किया, वरना तुम भी मनुष्य होते। खैर, अब तुम किसी मदारी के साथ लग लो। उसी बहाने तुम्हारा मिलन होगा। आग्नेय महाराज रास्ता बताकर सिद्धावलि की ओर चल दिए। अब बन्दर इस प्रतीक्षा में कि कोई मदारी आए और मुझे पकड़े। तब तक गुल्ल नाम का मदारी उधर से आ निकला। उसने देखा और तमाशे के लिए बन्दर को पकड़ लिया। बन्दर गाँव-गाँव नगर-नगर तमाशा दिखाता घूमने लगा।

कसमंडा पहुँच कर राजकुमार कमलिनी से विवाह की बात करने लगा। कमलिनी ने कहा कि राजकुमार, मैंने एक साल का व्रत रखा है। उसके बाद मैं आपसे विवाह कर लूँगी। वह मान गया। उसने देखा कि कमलिनी उदास रहती है। बोला कि मैं ऐसा क्या करूँ कि तुम खुश रहो। कमलिनी बोली कि कसमंडा राज्य में जो कोई मदारी, कलावन्त, संगीतकार आएँ वह पहले मेरे महल के सामने अपनी कला दिखाएँ। आदेश जारी हो गया। लोग आते तमाशा दिखाते, इनाम पाते और दुआएँ देते हुए वापस जाते। कमलिनी ऊपर से मुस्कराती मगर दिल उदास रहता। उसकी आँखें तलाशतीं कि किसी दिन तो मेरा साथी बन्दर किसी मदारी के साथ आएगा। वह निराश हो चली थी कि एक दिन शोर मचा। देखो देखो एक ऐसा बन्दर आया है जो आदमी की बोली बोलता है। रानी खिड़की पर आ गई। बन्दर को देखते ही पहचान गई। आँखों से आँसू छलक पड़े। उधर मदारी बन्दर को तमाशा दिखाने के लिए उकसा रहा था। बन्दर ने सिर उठाया तो कमलिनी को देखकर सब समझ गया। वह नाचना भूल कर एकटक देखने लगा। तब गुस्सा होकर मदारी ने बन्दर को दो चार डंडे रसीद किए। बन्दर चोट खाकर नाचने लगा। ऊपर से कमलिनी बोली कि, ''तब तौ बन्दरा कहा नहीं मानेउ, अब काहे पीछे लुकाउ जी। हमरे कहे तब ताल न कूदेउ, हमसे किहेउ अनियाउ जी॥'' तब बन्दर ने नाचते-नाचते उत्तर दिया, ''जो है लिखा रानी अपने लिलरवा को अब सका है बिगारि जी। तुमरे करम रानी राज लिखा रहै हमरे करम डंडा चारि जी॥''

तमाशे के बाद बोलने वाले बन्दर को रानी ने जबर्दस्ती खरीद लिया। वह उसे अपनी अटारी पर रखने लगी। यही सुख था कि देह दूसरी दूसरी सही, रहते तो साथ-साथ हैं। एक दोपहर वही तोता मैना उड़ते-उड़ते अटारी पर आ बैठे। कमलिनी आराम कर रही थी। बन्दर पास बैठा था। तोता बोला, मैना कुछ बात चलाओ कि वक़्त कटे। चाहे आपबीती कहो चाहे जगबीती। मैना मुस्कराई, मरद की जात! मान लो तो आपवीती वरना जगबीती तो है ही। सुनो, इस घड़ी कोई मर जाए और उसे नींबू के पेड़ के नीचे दबा दिया जाए तो अगला जन्म मनुष्य का मिलेगा। फिर चार घड़ी बाद भी ऐसा ही होगा। यह कहकर तोता मैना फुर्र से उड़ गए। कमलिनी बोली, क्या तुम्हें मैना पर भरोसा है, क्या तुम मेरे लिए प्राण त्याग दोगे। बन्दर मुस्कराया, कमलिनी रानी, जो भी प्रेम करने वाली औरत पर भरोसा नहीं करेगा वह बन्दर ही रहेगा। और तरह दर-दर तमाशा करेगा, डंडे खाएगा। मैं तुम्हारे प्रेम के लिए अभी जान दे देता हूँ। तुम मुझे नींबू के पेड़ के नीचे दबवा देना। अगले जन्म में मैं तुमसे मिलूँगा। बात पूरी होती कि बन्दर ने प्राण त्याग दिए। रानी ने उसे नींबू के पेड़ के नीचे दबवा दिया। कमलिनी अगली घड़ी की राह देखने लगी। रात आई तो कमलिनी राजकुमार से बोली कि मेरा अन्त समय आ गया। मैं मर जाऊँ तो तुम मुझे नींबू के नीचे समाधि दे देना। मेरी मुक्ति हो जायेगी। राजकुमार रोने लगा, मगर क्या करता। कमलिनी ने प्राण त्यागे और उसे भी वहीं दबवा दिया गया, जहाँ कहा था।

कुछ माह बाद बन्दर और कमलिनी अलग-अलग गाँवों में जन्मे। बन्दर सिद्धावलि में जन्मा। उसका नाम रखा गया सदावृक्ष! कमलिनी बाड़ी में जन्मी और नाम पड़ा सारंगा। अब आग्नेय महाराज और भगवती पंडित भी सिद्धावलि में रहने लगे थे। भगवती पंडित पाठशाला चलाते थे। थोड़ा बड़े होने पर सारंगा और सदावृक्ष भगवती पंडित की पाठशाला में पढ़ने लगे। भगवती पंडित दोनों को देखते ही उनका पूर्वजन्म जान गए। एक दिन उन्होंने आग्नेय महाराज से कहा कि महाराज! सारंगा सदावृक्ष का प्रेम इतना प्रगाढ़ है कि जन्मों की सीमा तोड़ गया है। अब ये नहीं बिछड़ेंगे। आग्नेय बोले, पंडित जी अगन्त किसने देखा! देखते जाओ, अभी इनको बहुत प्रतीक्षा करनी है। प्रतीक्षा की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर ही प्रेम प्रेम बनता है। तब तक लाल ध्वजाधारी दम्पती बिहारी और सुनीला उधर से आ निकले। वे प्रेमपन्थ चलाते थे और प्रेम का उपदेश देते थे। भगवती पंडित ने उनको भी सारी बात बताई। लाल ध्वजाधारी दम्पती ने संकल्प किया कि हर तरह से सारंगा सदावृक्ष की मदद की जाएगी।

सारंगा सदावृक्ष साथ-साथ पढ़ते खेलते। वे महसूस करते कि उनमें कोई अलौकिक लगाव है। भगवती पंडित उन्हें जानबूझ कर फुलवारी से फूल लाने भेजते। वहाँ एक नींबू का पेड़ था। दोनों वहीं खेलने लगे और थक कर सो गए। उधर से पट्टे नाम का आदमी आ निकला। वह भीरा गाँव का रहने वाला था। बहुत लगाई बुझाई करने वाला। उसने सारंगा सदावृक्ष को देख लिया। पट्टे दोनों के पिता को जानता था। जाकर शिकायत कर दी। अब दोनों का आना बन्द। भगवती पंडित ने पहले सारंगा और फिर सदावृक्ष के माता-पिता को समझाया कि ये पुराने जन्म के साथी हैं। इन्हें साथ रहने दो। किसी पट्टे सट्टे के कहने से यह पाप न करो! अभी बच्चे हैं। बड़े हो जाएँ तब दोनों का विवाह

कर देना। आग्नेय महाराज और लाल ध्वजाधारी ने भी बहुत कहा, मगर कुछ न हुआ। दोनों का पढ़ना बन्द हो गया। धीरे-धीरे वे बड़े हो गए। मिलने-जुलने लगे। सिद्धावलि, बाड़ी, मरसंडा, भीरा— यानी हर जगह बात फैलने लगी। लोग बातें बनाने लगे कि अब सारंगा की शादी कैसे होगी। बातें सारंगा के पिता तक पहुँचीं तो उन्होंने सदावृक्ष के पिता के पाँव पकड़ लिए। भाई, अपने बेटे सदावृक्ष को कुछ दिन के लिए नीमसार भेज दो, ताकि मैं सारंगा की शादी कर दूँ। सदावृक्ष जब तक सिद्धावलि में रहेगा, सारंगा का विवाह नहीं होगा।

सदावृक्ष के पिता ने किसी काम का बहाना बनाकर उसे नीमसार भेज दिया। सदावृक्ष भोला था कुछ समझ न सका। इधर चटपट सारंगा की शादी तय हो गई। पता चलते ही आग्नेय महाराज नीमसार जा पहुँचे और सदावृक्ष से कहा कि वापस चलो बहुत महनामथ मचा है। मगर उनके वापस आते-आते सारंगा की डोली उठ रही थी। भगवती पंडित और लाल ध्वजाधारी दम्पती आँसू बहा रहे थे। सदावृक्ष आग्नेय महाराज का हाथ थाम कर रोने लगा। पीनस चली गई और पीछे छूट गया सूनापन।

आग्नेय महाराज ने संकल्प किया कि वे लाल ध्वजाधारी की सहायता से सारंगा सदावृक्ष को मिलाकर रहेंगे। लालध्वजा धारी ने युक्ति बताई और आग्नेय जा पहुँचे सारंगा की ससुराल भिठौली। भिठौली के बाहर बहुत सुन्दर शिवाला था। आग्नेय के साथ साधु के वेष में सदावृक्ष भी था। आग्नेय घूमते-घामते सारंगा के पति के घर जा पहुचे। बड़ी खातिर हुई। आग्नेय ने भविष्य बाँचते हुए कहा कि बहू को चाहिए सोलह सोमवार संध्या समय शिवाले में जाकर पूजा करे तब घर में और सुख होगा। सारंगा बदले वेश में भी आग्नेय को पहचान गई। आग्नेय युक्ति बताकर सिद्धावलि लौट आए। सदावृक्ष सोमवार आने पर शाम होने का इन्तज़ार करने लगा। भूख लगी तो पास की नहर पर टहलने लगा। उधर से गोलैया नामक ठग आ निकला। सदावृक्ष ने कहा कि भाई कुछ खाने को हो तो दो। गोलैया ने उसे गुड़ खाने को दिया। गुड़ में कोई नशीला पदार्थ मिला था। सदावृक्ष खाते ही अचेत हो गया। गोलैया उसका रुपया पैसा कंठमाला छीनकर भाग गया। सारंगा पूजा कर चली गई। सदावृक्ष उठा तो रो पड़ा। तब तक तोता मैना उड़ते-उड़ते आए। मैना ने कहा कि सदावृक्ष तुम भिखारी के रूप में भिठौली में घूमो। सारंगा इसी बहाने तुम्हें मिलेगी। सदावृक्ष एक दोहा गाते-गाते घूमने लगा कि— "तोता मैना भगवती हमका भये सहाय। आग्नेय परताप ते गयेन भिठौली आय॥" लोग सुनते भीख देते। घूमते-घूमते सारंगा के घर के सामने जा पहुँचा। गाने लगा, "हमको दीन्हीं भगवती ऐसी अनुपम सीख। इसी द्वार से मिलेगी जनम जनम की भीख॥" सुनते ही सारंगा की सास बाहर आई। भीख लेकर। सदावृक्ष ने फटकार लगाई कि हम बीस साल से ऊपर वाली की भिक्षा नहीं लेते। हट जाओ वरना शाप देकर भस्म कर देंगे। सास डर कर भीतर गई और सारंगा से कहा कि बहू तुम्हीं जाओ। साधू बहुत गुस्सैल है।

सारंगा नुइया में जोंधरी लेकर आई। आते ही सदावृक्ष को पहचान लिया। आँखें भर आईं। सदावृक्ष ने चुपके से कहा कि रोओ नहीं, उपाय सुनो। और सदावृक्ष ने धीरे से उपाय बताया। सारंगा भीख देकर लौट गई। आधी रात होते ही वह चुपके से बाहर निकली और भिठौली के बाहर निकल पड़ी। वहाँ सदावृक्ष खड़ा था। दोनों साथ-साथ चल पड़े। कुछ दूर चलते ही सामने भगवती पंडित और आग्नेय खड़े थे। भगवती पंडित ने कहा कि सारंगा मैं मन्त्र पढ़कर तुम्हारा चेहरा बदल देता हूँ। वरना लोग तुम दोनों को जीने नहीं देंगे। यह कहकर भगवती ने मन्त्र मारा तो सारंगा और भी अधिक सुन्दर युवती बनकर दूसरे रूप में सामने आ गई।

सारंगा सदावृक्ष आग्नेय महाराज के आश्रम में रहने लगे। कुछ दिन बाद तोता मैना ने भी वहीं बसेरा किया। लाल ध्वजाधारी दम्पती बिहारी-सुनीला सारंगा को देखकर गाना गाते :

दयाखौ कस दिया बरइ प्रेम के सिवाले में।
मन करता डूब जाँय इसी प्रेम प्याले में॥

सुशील सिद्धार्थ
बी 2/8 बी, केशवपुरम लारेंस रोड
नयी दिल्ली-35
मो.: 09868076182

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

2009 में अबतक प्रकाशित उपन्यास

- **दुक्खम सुक्खम**—ममता कालिया
- **प्रेम की भूतकथा**—विभूति नारायण राय
- **विश्वामित्र**—ब्रजेश के. वर्मन
- **छुट्टी के दिन का कोरस**—प्रियंवद
- **टूटने के बाद**—संजय कुन्दन
- **देश निकाला**—धीरेन्द्र अस्थाना
- **मेरा निर्णय**—अभिमन्यु अनत
- **नया जनम**—सन्तोख सिंह धीर
- **आखेट**—ज्ञानप्रकाश विवेक

बांग्ला से अनूदित उपन्यास

- **मोनेर मानुष**—सुनील गंगोपाध्याय
- **देवदास**—शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

गिरिराज किशोर की तीन नई कृतियाँ



गिरिराज किशोर

गाँधी को फाँसी दो *(नाटक)*

जब गाँधी अपने परिवार के साथ पहली बार डरबन पहुँचे थे तो वहाँ के गोरे लोगों ने यही नारा लगाया था, 'गाँधी को फाँसी दो'। गोरों के आक्रोश का कारण गाँधी का वह 'ग्रीन पेपर' था, जो गाँधी की ओर से भारतीय मज़दूरों पर गोरी सरकार की दमनकारी नीतियों के विरोध में लिखा गया था। दक्षिण अफ्रीका में गाँधी के जीवन पर आधारित यह नाटक इस सन्दर्भ को तो उजागर करता ही है साथ ही, यह गाँधी की 'हिन्द स्वराज' लिखे जाने की रचना-प्रक्रिया भी सामने लाता है।

दुश्मन और दुश्मन *(कहानी-संग्रह)*

कहानी को अपना पहला प्यार मानने वाले कथाकार गिरिराज किशोर की ताज़ा कहानियों का यह संग्रह उनके सरोकार का बड़ा संसार समेटे हुए है।

देखो जग बौराना *(विचारपूर्ण लेखों का संग्रह)*

गिरिराज किशोर जितने बड़े साहित्यकार हैं, एक विचारक के रूप में उनका कद कहीं कम नहीं ठहरता। इस पुस्तक के लेख वर्तमान राजनीतिक स्थितियों पर गंभीर टिप्पणी करते हैं। भाषा का संयम गिरिराज जी की खूबी है, जो इन आलेखों में देखी जा सकती है।

राजपाल

जीवनीपरक उपन्यास

सम्पूर्ण जीवन-चरित्र उपन्यास के रस-रंग में

पुस्तक	मूल्य
आवारा मसीहा/विष्णु प्रभाकर	225/-
द्रौपदी/प्रतिभा राय	160/-
देख कबीरा रोया/डॉ. भगवतीशरण मिश्र	250/-
गोविन्द गाथा (गुरु गोविन्द सिंह)/डॉ. भगवतीशरण मिश्र	275/-
काके लागू पांव (गुरु गोविन्द सिंह)/डॉ. भगवतीशरण मिश्र	350/-
पीताम्बरा (मीरा बाई)/डॉ. भगवतीशरण मिश्र	325/-
पुरुषोत्तम (श्रीकृष्ण)/डॉ. भगवतीशरण मिश्र	300/-
पवनपुत्र (वीर हनुमान)/डॉ. भगवतीशरण मिश्र	200/-
पहला सूरज (शिवाजी)/डॉ. भगवतीशरण मिश्र	150/-
साबरमती का सन्त (गांधी जी)/डॉ. भगवतीशरण मिश्र	150/-
मैं भीष्म बोल रहा हूँ/डॉ. भगवतीशरण मिश्र	250/-
विवेकानन्द/राजेन्द्र मोहन भटनागर	250/-
सरदार (सरदार पटेल)/राजेन्द्र मोहन भटनागर	300/-
दिल्ली चलो (सुभाषचन्द्र बोस)/राजेन्द्र मोहन भटनागर	300/-
नीले घोड़े का सवार (महाराणा प्रताप)/राजेन्द्र मोहन भटनागर	250/-
युगपुरुष अम्बेडकर/राजेन्द्र मोहन भटनागर	200/-
क्रान्तिकारी लोहिया/राजेन्द्र मोहन भटनागर	60/-
कुली बैरिस्टर (गांधी जी)/राजेन्द्र मोहन भटनागर	275/-
योगी अरविन्द/राजेन्द्र मोहन भटनागर	275/-
रत्ना की बात (तुलसीदास)/रांगेय राघव	100/-
लखिमा की आँखें (कवि विद्यापति)/रांगेय राघव	100/-
मेरी भव बाधा हरो (कवि बिहारी लाल)/रांगेय राघव	100/-
यशोधरा जीत गई (गौतम बुद्ध)/रांगेय राघव	100/-
देवकी का बेटा (श्रीकृष्ण)/रांगेय राघव	100/-
भारती का सपूत (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)/रांगेय राघव	100/-
लोई का ताना (कबीरदास)/रांगेय राघव	100/-
एकता के देवदूत शंकराचार्य/डॉ दशरथ ओझा	200/-

राजपाल

1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110 006, फोन: 23869812, 23865483

झारखंड : पिछवाड़े चन्दन का वृक्ष है तुम चिड़िया फँसाने के बहाने आ जाना

छैला सन्दु

पुनर्लेखन : रणेन्द्र



झारखंड की राजधानी राँची से जमशेदपुर के रास्ते में जंगलों के बीच एक जलप्रपात है दशम। यहाँ काँची नदी जब पहाड़ों से नीचे गिरती है तो अद्भुत मनमोहक अपलक-अवाक करने वाले दृश्य उत्पन्न करती है। काँची नदी जब भरी होती है तो दशम जलप्रताप से सैकड़ों मान्दर-नगाड़ों की समवेत ध्वनि जंगल और घाटी को गुंजायमान बना देती है। युगों पूर्व जब यह तैमारा घाटी घने जंगल से भरी थी तो दशम झरने का संगीत दिन में मनमोहक और रात्रि के सन्नाटे में भयावह लगता था। झरने के ठीक ऊपर से 'बान्दु' लताएँ दोनों किनारों तक फैली हुई थीं। आसपास के गाँव के दुस्साहसी मुंडा युवक इन बान्दु लताओं के सहारे इस झरने को पार किया करते थे।

इन्हीं दुस्साहसी युवकों से एक था छैला सन्दु, मुंडा समाज का मिथकीय नायक, साँवला रंग, छरहरा शरीर, आकर्षक व्यक्तित्व और गजब का बाँसुरी वादक। छैला सन्दु ने गुरु कुँवर से संगीत की शिक्षा ली थी। बाँसुरी उसका सर्वप्रिय वाद्य था। बस्ती से दूर जंगल पहाड़-पर्वत एवं अन्य गाँवों के अखाड़ाओं में रात-रात भर चलने वाले नाच में उसकी बाँसुरी गूँजती रहती। पूरे तमाड़ इलाके की युवतियाँ उसके रंग-रूप और बाँसुरी वादन पर मुग्ध थीं।

छैला सन्दु का गाँव तमाड़ राजा विक्रम सिंह की रियासत में था। तमाड़ से 16 मील दूर अड़की गाँव में राजा विक्रम सिंह के सूबेदार हकीम सिंह की हवेली थी। बुन्दी, सूबेदार साहब की सबसे छोटी और सबसे ख़ूबसूरत बेटी थी जो छैला सन्दु की मादक बाँसुरी की तान के सम्मोहन में डूब चुकी थी। उसे पूरी सृष्टि में बाँसुरी धुन और सन्दु की साँवरी-सलोनी सूरत के अलावा न कुछ सुनाई पड़ता न कुछ दिखाई पड़ता। धीरे-धीरे आग दोनों ओर लग गयी।

छैला सन्दु बान्दु लताओं के सहारे अपने वाद्ययन्त्रों और प्यारे मुर्गे के साथ दशम जलप्रताप की चिंघाड़ती धाराओं को रात में पार करता और दौड़ते अड़की पहुँच जाया करता। बुन्दी भी घर वालों और पहरेदारों से बचते-बचाते खिड़की से रस्सी के सहारे हवेली से बाहर निकलती। गाँव के बाहर सरना के पास के घने महुआ पेड़ के नीचे दोनों प्रेमी मिलते। चाँदनी, महुआ और बाँसुरी की धुन उन क्षणों में इस धरती पर ही स्वर्ग को उतार लाते। मुर्गा पेड़ की फुनगी पर बैठ चौकसी करता। ख़तरा देख तुरन्त बाँग दे देता।

फ़िर हुआ वही जो हर प्रेम कहानी में होता है। इश्क़ की फैलती ख़ुशबू ने सारे राज खोल दिये। बुन्दी की पलकों पर काबिज़ नशा, आँखों और चेहरे की अनोखी चमक, बिना बात खिलखिलाना, चाल की चंचलता-मादकता ने पहले बड़ी बहनों के कान खड़े किये फिर सूबेदार हकीम सिंह की।

उस रात सहिया मुर्गे के कारण छैला सन्दु तो बच निकला किन्तु हकीम सिंह के सैनिकों ने उसके गाँवों में तबाही बरपा दी। लड़ाकू मुंडाओं ने भी तंग आकर जब अपने तीर-धनुष उठा लिये तो इस शर्त पर समझौता हुआ कि सूबेदार हकीम सिंह खानदान के संगीत गुरु भगवान दास के साथ सन्दु को प्रतियोगिता करनी होगी।

बड़े धूमधाम से यह प्रतियोगिता आयोजित की गयी। निसर्ग का बेटा सन्दु अन्ततः विजयी हुआ। शर्तों से बँधे सूबेदार साहब ने भारी मन से बेटी बुन्दी को सन्दु के गले में वरमाला डालने की अनुमति दी। किन्तु सन्दु को यह शर्तों में बँधा प्यार स्वीकार नहीं था। अतः वह वरमाला को ठुकरा कर डबडबायी आँखों के साथ चला जाता है। आहत बुन्दी हतप्रभ अवाक रह जाती है उसे कुछ समझ में नहीं आया। उसने अपना होश-हवास खो दिया। सुबेदार को तो मानो मुँह माँगी मुराद मिल गयी। वह अपनी ख़ुशी सँभाल नहीं पा रहा था। उसने झटपट बुन्दी की शादी बुंडु रियासत के राजा ठाकुर मानसिंह के युवराज वीरभद्र से कर दी। किन्तु विवाह की दीवार बुन्दी की यादों में सन्दु को आने से नहीं रोक पायी। अब भी उसके कान उसी बाँसुरी की धुनों को तरसते थे।

परकीया प्रेम की आग की धाह थोड़ी ज़्यादा ही तेज़ होती है। सन्दु की भाभी को अब बुन्दी से उसका लगाव बर्दाश्त नहीं हो रहा था। सम्भवतः अपने साँवले-सलोने देवर के मादक धुनों से स्वयं को बँधा पाती हो सो ईर्ष्या की ज्वाला उसके ह्रदय में धधकने लगी। सो पहले सन्दु का रखवाला मुर्गा गायब हुआ। छैला सन्दु को सतर्क हो जाना चाहिए था किन्तु वह इश्क ही क्या जिसमें दिमाग से काम लिया जाए। अतः वह बिना आगे-पीछे सोचे रात में दशम जलप्रपात को बान्दु लताओं के सहारे पार करने लगा। उसे क्या पता था कि लताएँ आधा काटी हुई हैं? नतीजतन अधकटी लताएँ चाह कर भी उसका बोझ सम्भाल नहीं सकीं। घहराती धाराओं में सन्दु का शरीर बह गया।

सन्दु की मृत्यु से अनजान बुन्दी उसका इन्तज़ार करती रही। सात दिनों के बाद काँची नदी के किनारे छैला सन्दु का सड़ा-गला शरीर मिला। जिसका बड़े भव्य तरीके से वाद्य यंत्रों के साथ अन्तिम संस्कार किया गया। यह ख़बर बुंडु हवेली में बुन्दी तक पहुँची और उसने भी अपने प्राण त्याग दिये। हो सकता है कहीं सातवें आसमान में इन प्रेमियों का मिलन हुआ हो।



डी / 8, ए.टी.आई, मेयर्स रोड, राँची-834 008 (झारखण्ड)

वीरभारत तलवार

आदिवासी समाज में प्रेम



मुंडारी प्रेमगीतों में विषय-वस्तु के रूप में नारी के रूप सौन्दर्य और शृंगार-प्रसाधनों की प्रशंसा और उसके मुग्धकारी प्रभाव का वर्णन, अपने प्रेम को जीवन-भर निभाने और साथ देने की अभिलाषा का वर्णन, प्रेयसी के प्रथम दर्शन का वर्णन, मधुर अर्थपूर्ण संवादों के प्रभाव का वर्णन, विरह-वेदना का वर्णन तथा प्रेमिका के कहीं अन्यत्र विवाह तय हो जाने पर प्रेमी द्वारा अपने प्रेम की स्मृति को सुरक्षित रखने तथा प्रेमिका के भावी जीवन के प्रति शुभकामना के साथ उदात्त त्याग-भावना का वर्णन किया गया है। जो विशेषता मुंडारी प्रेमगीतों को आमतौर पर विकसित भाषाओं की प्रेम कविता से अलग करती है वह यह है कि मुंडारी प्रेमगीतों में विकसित भाषाओं के साहित्य की बहुचर्चित 'ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियाँ' कहीं नहीं मिलतीं। साथ ही, मुंडारी प्रेमगीतों में सेक्स की चीख-पुकार भी नहीं है। मुंडारी प्रेमगीत समाज के अन्दर अपने सदस्यों को प्रेम की स्वतन्त्रता देनेवाली जाति की सामाजिक मर्यादाओं को सहज स्वीकार करके चलने वाले स्वस्थ प्रेम की कविता है जिसमें व्यक्ति की आशा-आकांक्षा, सुख-दुःख और कल्पना शामिल है।

मुंडा लड़कियाँ अपने चाहनेवालों को रिझाने के लिए शृंगार-प्रसाधन करती हैं, तरह-तरह के आभूषण पहनती हैं। मुंडा प्रेमी उसके रूप-सौन्दर्य और चाल-ढाल को देखकर रीझता है और उसकी प्रशंसा में गीत गाता है। ऐसा ही एक गीत है— *तीरे सकोम बो: रे मोरे होटो: रे मन्दुली सम / एला रे दोला रे तीरे सकोम पोला सड़ि तना रे। / कदल दरू लेका रुकु-रुकु रुकुम सेनाकदा / एला रे दोला रे समड़ोम समय: तना रे। / किचिर तदम निलो सड़ि पयला तदम कुइलो सड़ि / एला रे दोला रे सेना कदम नेल कोयो: तन रे।*

इसी गीत में मुंडा प्रेमी लड़की के शृंगार और चाल-ढाल के जादू की प्रशंसा करते हुए कह रहा है कि तुम्हारे हाथों में चूड़ी, सिर पर मौर तथा गले में सुन्दर मुन्दली है। तुम चलती हो तो तुम्हारे हाथ की चूड़ियाँ बजती हैं। केले के पेड़ की तरह तुम हिलती-डुलती चलती हो। तुमने नीली साड़ी पहन रखी है और चंचल आँखों से देखती हुई चल रही हो। तुम्हें देखकर अनुभव होता है—सोने जैसा समय चला जा रहा है।

मुंडा प्रेमी अपनी प्रेमिका के वस्त्रों और उसकी भाव-भंगिमा पर हर समय मुग्ध रहता है। वह अपनी प्रेमिका की हर अदा पर बहुत ध्यान देता है। करम का नाच हो रहा है। प्रेमिका नाच रही है। नाचते हुए उसके कपड़े फहर रहे हैं, उसका फीता हवा में लहरा रहा है। प्रेमी नाच में व्यस्त अपनी प्रेमिका के उड़ते हुए कपड़ों और फहरते हुए फीते की मुग्धकारी स्मृति को एक गीत में बाँधकर सुरक्षित रख लेता है। (पृ. 148, त्रिगुणायत)।

मुंडा प्रेमिका भी अच्छी तरह जानती है कि उसका प्रेमी उसके रूप-सौन्दर्य और शृंगार पर जान देता है। अपने प्रेमी के सौन्दर्य की प्यास बुझाने के लिए वह भी फूल-मालाओं से अपने को सजाती हैं। एक गीत में प्रेमिका नाचते हुए थककर चले जा रहे अपने प्रेमी को थोड़ी देर और रोकना चाहती है, लेकिन नाच से थका प्रेमी नहीं रुकना चाहता। तब प्रेमिका उससे कहती है कि अच्छी बात है, तुम जाना चाहते हो तो जाओ, लेकिन इतना सुन लो कि जब तुम चले जाओगे तब मैं अपने बालों में अटल और दूधी का फूल लगाऊँगी। तब तुम कनखियों से मुझे देखना और मुस्कराना। (पृ. 93, त्रिगुणायत)।

प्रेमिका का रूप और सौन्दर्य प्रेमी के लिए सिर्फ वाहवाही की चीज नहीं है। यह सिर्फ नेत्रों को ही तृप्त नहीं करता। प्रेमिका का रूप-सौन्दर्य मुंडा प्रेमी की आत्मा को आनन्द और प्रकाश से भर देता है। एक गीत में मुंडा प्रेमी कहता है— *आरे-चंडू: आते-उडु: केना/मेन्दो हिजु: लेना बा लेका / जी रेया: दुकु सोबेन राड़े: जना/अमगे तइज: माइ जीरेय: लन्दा / बा लेका मइनाम् हिजुआ-कना/पूर्निमा चंडू: लेकाम मेद-मुड़ाकना / तुरे तान सिंगी लेकाम मरे साल केदा।*

अर्थात् मैं इसी चन्द्रमा के दर्शन की प्रतीक्षा कर रहा था। तुम फूल के समान आयी। तुमने मेरे हृदय की ज्वाला को शान्त कर दिया। तुमने मेरे हृदय को प्रसन्नता से भर दिया। तुम फूल के समान सुन्दर हो। तुम्हारा मुख-मंडल पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर है। तुम सूर्य के समान अपने सौन्दर्य का प्रकाश फैला रही हो।

मुंडारी लोकगीतों में प्रेम भावना की एक बड़ी विशेषता उनकी निष्कपटता और सरलता है। विकसित समाजों में भी प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे से अपनी प्रेम भावना प्रकट करते हैं—लेकिन यह प्रक्रिया बहुत जटिल होती गयी है। उसमें सहजता का अभाव है। इसके विपरीत, मुंडारी प्रेमगीतों में प्रेमभावना को बहुत ही सरल और सहज ढंग से प्रकट किया गया है। एक लोकगीत में प्रेमिका एक नवयुवक से अपनी प्रेम भावना प्रकट करते हुए सहज भाव से कहती है कि आओ, हम दोनों प्रेमी-प्रेमिका के जैसा आपस में बर्ताव करें। प्रेमिका पहले भी उस युवक से बातें कर चुकी है। युवक की बातों ने उसके मन को आकर्षित कर लिया है। वह इस आकर्षण के तथ्य को प्रकट करती है और गीत

की अन्तिम पंक्तियों में युवक से सीधे प्रस्ताव करती है— *एलारे रे गातिङ रेलं जगर कोआ /गति सोंगोतिलं जगर कोआ / एलारे सगाइं एलं लापन्दा कोआ/हिरिती पिरीतिलं लापन्दा कोआ।*

अर्थात् आओ प्रिय, हमलोग प्रिय और प्रियतम के समान बातें करें। आओ प्रिय, हमलोग प्रिय और प्रियतम की तरह हँसें-बोलें।

मुंडारी प्रेमगीतों से पता चलता है कि मुंडा प्रेमी-प्रेमिका के बीच आकर्षण के तीन मुख्य तत्त्व हैं—(i) रूप-सौन्दर्य, (ii) मधुर वार्तालाप अर्थात् बातों का जादू तथा (iii) लम्बा साहचर्य जैसे छुटपन से मित्रता आदि। रूप-सौन्दर्य तत्त्व वाले गीतों का उल्लेख कर चुका हूँ। ऊपर जो गीत उद्धृत किया उसमें प्रेमिका प्रेमी की बातों से आकर्षित हुई है। एक गीत में प्रेमी युवती की बातों के जादू के असर में आ जाता है। इसे युवती की सहेली लक्ष्य करती है। सहेली युवती से कहती है— *मोयोद काजिते/ गातिम हरतिङ जन / वारिया बंकड़ा ते/संगाम हियातिङ जन।*

अर्थात् तुम्हारा प्रिय एक ही बात से हार गया। तुम्हारे प्रियतम की दो ही बातों से हार हो गयी (और उसने अपने को समर्पित कर दिया)।

इन पंक्तियों से अनुमान लगता है कि इन होनेवाली बातों में हाजिर-जवाबी या कुशल परिहास (Wit) रहा होगा जिससे मुग्ध होकर युवक ने समर्पण कर दिया। अन्य गीतों से पता चलता है कि युवक-युवतियाँ एक-दूसरे के ऐसे संवादों से मुग्ध हो जाते हैं जो उनके मन को बाँध ले या दिल में उतर जाए। मुंडारी लोकगीतों में ऐसे मुग्धकारी संवादों को 'दवा' की तरह बताया गया है—अर्थात् उनका असर दवा के समान होता है।

लम्बे साहचर्य वाले प्रेम में गहराई होती है, प्रगाढ़ता होती है। मुंडारी लोकगीतों में प्रेम की यह प्रगाढ़ता व्यक्त हुई है। एक लोकगीत में लम्बे समय से एक साथ रहते आये प्रेमी अपने प्रेम का संकल्प इस तरह व्यक्त करते हैं— *अलङ दिसुमरेलं जोनोम जना / पुतम लेका होलं जुड़ी जना / अलङ गमय रेलं माता जना / पारय लेका होलं माता जना / पुतम लेका होलं जुड़ी जना / मोदेर गतिङरेलं सुसुन करम / पारय लेका होलं जोता जना/अलङजी सोबेन मोदे जना / मोदे रे गतिङरेलं सुसुन करम / कारे गतिङ रेलं बापा गेया / अइङ जी सोबेन मोदे जना / जिदन सुनुमलं आप सुला।*

हम दोनों ने अपने देश में जन्म पाया। हम दोनों की पंडुक के समान जोड़ी हुई। हम दोनों अपने देश में बढ़े और कबूतर की तरह एक-दूसरे के साथी बने। हमारी जोड़ी पंडुक पक्षी की तरह हुई है तो हम एकसाथ ही नाचें-गाएँगे। हम दोनों का हृदय एक हो गया है। हम कभी अलग नहीं होंगे और जीवन भर एक-दूसरे का पालन-पोषण करेंगे।

इस गीत से मुंडा प्रेमगीतों में प्रेम के व्यक्तिगत स्वरूप और एकनिष्ठता पर भी प्रकाश पड़ता है जो स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के क्षेत्र में एक महान मानवीय मूल्य है। प्रेम की एकनिष्ठता और जीवन पर्यन्त उसके निर्वाह का संकल्प—यह मूल्य जितना विकसित समाज में दिखाई देता है, उतना ही मुंडा समाज में भी है। मुंडा प्रेमी-प्रेमिका के लिए भी प्रेम उनका निजी मामला है— एक ऐसा निजी अनुभव जिसमें वे किसी तीसरे को भागीदार नहीं बना सकते। यह अनुभव उनके हृदय में मधुर कल्पनाओं को जन्म देता है, जिसकी खुशियाँ उन्हीं दोनों के लिए हैं। छोटी-छोटी चीजें उनके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं। बाहरी आदमी मुंडा देश के जंगलों में घुसकर बाहर निकलने का रास्ता भूल जाता है, लेकिन वन के मन में बसे मुंडाओं के लिए जंगल की एक-एक जगह पहचानी हुई होती है। रात के अँधेरे में भी वे जानते हैं कि जंगल में दिन में दिखाई देनेवाला अमुक वृक्ष अमुक जगह पर है और अमुक पौधा अमुक स्थान के पीछे है। मुंडा प्रेमी ने जंगल में एक जगह सिन्दूर का पौधा और काजल की लता देखी है। वह पौधा और लता किस स्थान पर है—उसने याद कर लिया है। एक लोकगीत में प्रेमी अपनी प्रेमिका से कहता है कि जंगल में अमुक स्थान पर सिन्दूर का पौधा और काजल की लता है। उसके बारे में हम लोग किसी को नहीं बतलाएँगे। जब हम दोनों की शादी होगी तब उसी पौधे का सिन्दूर और लता का काजल मैं तुम्हें लगाऊँगा। प्रेम भावना की मधुर कल्पना और गोपनीयता का यह एक अनूठा लोकगीत है।

ऐसा ही एक और गीत है जिसमें मुंडा प्रेमी अपनी प्रियतमा को दुल्हन के रूप में पाने की कीमत (गोनोङ) चुकाने के लिए अपने खेतों की राई और सरसों पर आस लगाकर बैठा है। कुछ चंचल लड़कियाँ उसके खेतों की राई और सरसों को तोड़ ले रही हैं। इस पर युवक उनसे कहता है कि राई और सरसों मत तोड़ो। सरसों हाथ की अँगूठी की कीमत है और राई पैरों की अँगूठी की कीमत है। शादी में दुल्हन को पैरों और हाथ की अँगूठी भेंट करनी है। सरसों और राई बेचकर ही वह इन अँगूठियों को खरीदेगा। खेत की लहलहाती फसल के साथ उसके अपने प्रेम के भविष्य की कल्पनाएँ जुड़ी हुई हैं जो कृषि पर आधारित समाज की संस्कृति का एक जाना-पहचाना भाव है।[4]

अपने प्रेम पात्र से मिलने की तैयारी करने और अपने प्रियतम या प्रेयसी की प्रतीक्षा करने, समाज के लोगों से नजरें चुराकर उसकी राह देखने और उसे खोजने का वर्णन भी इन प्रेमगीतों में मिलता है। नृत्य और परब त्योहार ही इन प्रेमियों के मिलन के सबसे अच्छे अवसर होते हैं। इन नृत्यों और परब-त्योहारों में मिलने की बात प्रेमी-प्रेमिका पहले से तय करके रखते हैं—कभी-कभी वह पहले से तय तो नहीं होता, लेकिन अपेक्षित जरूर होता है। एक गीत में प्रेमी से प्रेमिका पूछ रही है कि तुम्हारे गाँव में सरहुल परब किस दिन मनाया जाएगा।

प्रेमी उसे बतलाता है कि नये चाँद की पाँचवीं तिथि पर हमारे यहाँ सरहुल मनाया जाएगा। ''सरहुल परब में मुझे नये फूल और नये पत्ते दोगे या नहीं,'' प्रेमिका फिर पूछती है। प्रेमी उसे अपने गाँव आने का निमन्त्रण देता हुआ कहता है कि तुम हमारे इधर आना। मैं तुम्हारे जूड़े में फूल लगा दूँगा।[5]

ऐसा ही एक और गीत है जिसमें प्रेमी अपनी प्रेमिका से कहता है कि तुम सखुआ के फूल में अपना सन्देश भेजना, तुम शाल के नये पत्तों में अपनी बात भेजना, मैं आ जाऊँगा। यहाँ सखुआ का फूल और पत्ते आने के लिए निमन्त्रण के चिह्न हैं। जब प्रेमिका शाल के फूल और नये पत्ते प्रेमी को भिजवाएगी, तो प्रेमी के लिए इसका अर्थ होगा कि उसकी प्रेमिका ने उसे बुलाया है। प्रसंग से स्पष्ट होता है कि अवसर सरहुल परब का ही है। पूरा गीत इस प्रकार है— *सरजोम बा रे गातिङ कजि कुले मे / सुड़ा संगेन रे सागाँइङ जगर चाले मे / कजि कुले मे गातिङ*

हीरा कोयो दोइङ हिजू उगिया / बाँकड़ा चालेमे सागाँइङ लान्दा जगर दोइङ सेटेरगिया / हीरा कोयो दोइङ हिजुः उगिया / मेद मेद तेलांग ले पेल गिया / लान्दा जगर दोइङ सेटेर गिया / मोचा मोचा दोलांग जापा गार गिया।

अर्थात् सखुआ के फूल में प्रिय, तुम खबर भेजना। नये कोंपलों में हे प्रिय, अपनी बात भेजना। सन्देश भेजने से मैं तुम्हें खोजने आऊँगा। खबर भेजने से मैं तुमसे मीठी बातें करने आऊँगा। जब आऊँगा, तब एक-दूसरे को देख लेंगे और मधुर बातचीत कर लेंगे।

मधुर मिलन और प्रेम के सन्देश के लिए शाल के नये फूलों के गुच्छे और पत्तों का चुनाव मुंडा प्रेमियों की प्रेम कल्पना और सौन्दर्यबोध का प्रमाण है।

मुंडारी प्रेमगीतों का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि उनमें स्त्री-पुरुष के प्रेम में अपने प्रेमपात्र को प्राप्त करने के लिए साहस और समाज-व्यवस्था से टक्कर लेने की भावना नहीं मिलती है।

संसार की सभी जातियों में और उनके साहित्य में प्रेमी-प्रेमिका द्वारा एक-दूसरे को प्राप्त करने के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा देने और सारे संसार का खतरा मोल लेने की महान साहसपूर्ण भावनाएँ देखने को मिलती हैं जो प्रेम क्षेत्र का एक महान मानवीय मूल्य है। समाज की व्यवस्था, समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव, अमीरी-गरीबी की श्रेणियाँ, खानदानी इज्जत का फर्क तथा धर्म और जाति के भेद आमतौर पर हमेशा से प्रेमी-प्रेमिका के बीच दीवारें खड़ी करते रहे हैं। अपने प्रेमपात्र को प्राप्त करने के लिए स्त्री-पुरुषों को अपने बीच खड़ी इन दीवारों से टकराना पड़ता है, इन दीवारों को ध्वस्त करना पड़ता है। यह खतरे से भरा साहस और वीरता का काम है। जब इन दीवारों को तोड़ने की कोशिश की जाती है तब समाज की रूढ़ियों के ठेकेदार और पुरानी चली आ रही व्यवस्था के पक्षधर विरोध में उठ खड़े होते हैं। अगर प्रेम सच्चा है तो प्रेमी-प्रेमिका अपने प्रेम के लिए सारे समाज को चुनौती देने का साहस दिखाते हैं। अपने प्रेम के लिए वे अपना सब कुछ दाँव पर लगा देते हैं। वे न मृत्यु से डरते हैं, न बदनामी से और न ही स्वजनों द्वारा बहिष्कृत किये जाने से। समाज, शासन, धर्म, धन-दौलत कुछ भी उन्हें अपने प्रेम-मार्ग से विचलित नहीं कर पाता। ऐसे प्रेमी-प्रेमिकाओं को उनके जीवनकाल में समाज यातनाएँ देता है, डराता-धमकाता है, उनकी हँसी उड़ाता है, लेकिन जब वे इन सबके बावजूद अपने प्रेम में सफल हो जाते हैं या असफल भी होते हैं तो आनेवाली पीढ़ियाँ उनके प्रेम की महान गाथा को आदर और विस्मय के साथ याद करती हैं। महान प्रेमियों की सफल या असफल प्रेम- गाथाएँ इतिहास की एक अमर यादगार बन जाती हैं। उनका प्रेम अपनी भावनाओं की ईमानदारी, एकनिष्ठता और उसके लिए सही गयी यातनाओं के कारण एक महान मानवीय मूल्य बन जाता है। यूरोप के रोमियो-जूलियट, अरब के लैला-मजनू, फारस के शीरी-फरहाद, पंजाब के हीर-राँझा तथा सोहनी-महिवाल आदि संसार के ऐसे ही अमर प्रेमी थे जिनका प्रेम अपने महान साहस, ईमानदारी और एकनिष्ठता के लिए संसार के इतिहास में अमर

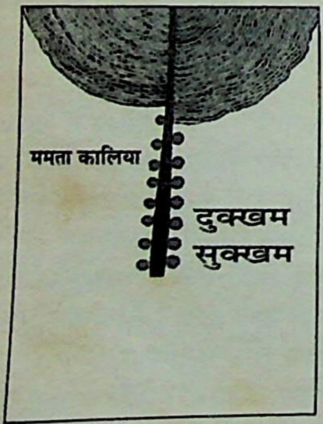
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

दुक्खम सुक्खम

(उपन्यास)

ममता कालिया

पृष्ठ : 274, : 270 रुपये



यशस्वी कथाकार ममता कालिया ने मथुरा की बीसवीं शताब्दी की पृष्ठभूमि में इस उपन्यास को रचा है। वैसे कथा के सूत्र दिल्ली, आगरा और बम्बई तक गये हैं। लेखिका ने स्वतन्त्रता के संघर्ष, गाँधी के प्रभाव, चर्खा-खादी-स्वदेशी से उभर आत्मबल, देशविभाजन की त्रासदी और आज़ादी के बाद का परिदृश्य— इन सबको कथा की आन्तरिकता में शामिल किया है। कविमोहन के माध्यम से लेखिका ने नये जीवन मूल्यों की तलाश में व्यस्त ऐसे व्यक्ति की कहानी प्रस्तुत की है जिसका संसार डिग्री कालेज, साहित्य और रेडियो स्टेशन तक फैला है। हाँ, कुहेली भट्टाचार्य की अन्तःकथा कवि की कहानी को मार्मिक आयाम देती है। कुहेली से विलग होने पर कवि ने लिखा, 'और हम अपनी बनायी जेलों से बाहर आ जाएँगे।'

लीला, भगवती, इन्दु, प्रतिभा, मनीषा और सर्वोपरि दादी का जीवन संघर्ष विलक्षण है। सुशोभन बड़ी बहन प्रतिभा के सामने औसत रूप-रंग की मनीषा किस प्रकार अपने गुणों को विकसित कर आत्मशक्ति सम्पन्न बनती है, यह पढ़ने योग्य है। ममता कालिया ने बेहद संवेदनशीलता के साथ उसके द्वन्द्वों-वयःसन्धि के अनुभवों और वैचारिकता में होने वाले परिवर्तनों को व्यक्त किया है। लेखिका का जीवनानुभव अपनी सर्वोत्तम रचनाशीलता के साथ 'दुक्खम सुक्खम' में आकार पा सका है। अमृतलाल नागर के उपन्यास 'खंजन नयन' के बाद ब्रजभाषा की मिठास, टीस और अर्थव्याप्ति का सबसे सार्थक उपयोग इस उपन्यास में हुआ है।

जीवन की विपुल आपाधापी में अस्तित्व के बहुतेरे प्रश्नों की गूँज और उनके उत्तरों की आहट 'दुक्खम सुक्खम' में सुनाई पड़ती है।

हो गया है। ये कुछ नाम तो इतिहास के पृष्ठों पर अंकित हो चुके हैं, न जाने और भी कितने स्त्री-पुरुष हैं जिनका प्रेम इन अमर नामों से कम महान नहीं होगा, लेकिन जो इतिहास को अज्ञात हैं।

इस सन्दर्भ में, जब हम मुंडा समाज के साहित्य पर गौर करते हैं, विशेषकर उसके प्रेमगीतों पर, तब हमें उनमें यह महान मानवीय मूल्य नहीं दिखलाई पड़ता। पंजाबी, हिन्दी, राजस्थानी और उर्दू में महान प्रेमियों की अमर प्रेमगाथा पर महाकाव्य लिखे गये, लेकिन मुंडारी में चार कड़ियों का एक छोटा-सा गीत भी नहीं मिलता जिसमें यह कहा गया हो कि अपने प्रेम के लिए किसी प्रेमी ने अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया और समाज को चुनौती दी। मुंडारी गीतों में प्रेम का वर्णन अवश्य है, प्रेम सम्बन्धी मानवीय भावनाएँ, आशा और निराशा का वर्णन भी है, अपने प्रेम पात्र को प्राप्त करने की इच्छा का भी वर्णन है। लेकिन, बस इतना ही, इससे आगे कुछ भी नहीं। मुंडारी प्रेमगीतों में प्रेम एक मूल्य अवश्य है, लेकिन ऐसा मूल्य नहीं, जिसके लिए सब कुछ दाँव पर लगा दिया जाए।

उदाहरण के लिए एक लोकगीत देखिए— *अमगअ: कनाजि सिसिबा, इङ अयुम लेदाया सिसिबा / अमगअ: बकड़ां हरिबा इङ अतेन लेदू। / संगिन दिसुम रे सिसिबा को गोङमेया या सिसिबा, / जिलिंग गमय रे हरिबा को चल मे। / गोङ मेरे आ को सिसिबा, तोरे मुंदम कजि ओमाइङ मे, / चल मेरे आ को हरिबा, होटो: रे कड़े मला चेदू अइङ मे।*

इस मुंडारी लोकगीत में एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से कह रहा है कि मैंने सुना है, किसी दूर देश में तुम्हारा ब्याह किया जा रहा है। तुम मुझसे दूर चली जाओगी। हे प्रिये, जब तुम जाओगी तब मुझे हाथ में अँगूठी और काँसी घास की माला यादगार के रूप में दे देना।

इस लोकगीत में मुंडा प्रेमी अपनी प्रेमिका के अन्यत्र ब्याह होने की बात को बहुत आसानी से स्वीकार कर लेता है। उसकी प्रेमिका उसी की होकर रहे—इसके लिए उसमें कोई तीव्र उत्कंठा या संकल्प नहीं दिखता। सामाजिक व्यवस्था के सामने उसका निजी प्रेम बिल्कुल तुच्छ प्रतीत होता है।

मुंडारी में ऐसे दर्जनों लोकगीत हैं जिनमें प्रेमिका का ब्याह कहीं और हो रहा है या हो गया है और प्रेमी बिल्कुल आसानी से इस घटना को स्वीकार कर लेता है। वह दुखी और उदास होने के बावजूद प्रेमपात्र को पाने के लिए घटना-प्रवाह के विरुद्ध कोई संघर्ष नहीं करता, न ही प्रेमिका ऐसा करती है।

इसका कारण क्या है?

इसका पहला कारण यह है कि मुंडाओं का सामाजिक संगठन बहुत शक्तिशाली रहा है और उसमें व्यक्ति की वैयक्तिकता (Individuality) नहीं के बराबर रही है। मुंडाओं की गण-व्यवस्था (ट्राइबल ऑर्गनाइजेशन) में समाज के हित और व्यक्ति के हित में बहुत कम विरोध है, व्यक्ति को अपने समाज के अन्दर प्रेम के मामले में पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती है, लेकिन जहाँ विरोध उभरते हैं वहाँ, एक नियम की तरह, सामाजिक व्यवस्था के आगे व्यक्ति अपनी निजी इच्छा को कोई महत्त्व नहीं देता। समाज की सामूहिकता में ही व्यक्ति का निजत्व विलीन होता रहा है।

दूसरा कारण यह है कि गण व्यवस्था अपने आप में एक पूरी दुनिया होती थी जो चारों ओर से बन्द होती थी। सारी दुनिया से अलग-थलग रहने वाले गण-समाज (ट्राइबल सोसायटी) के बाहर वे अपना कोई अस्तित्व सोच ही नहीं पाते थे और वास्तव में होता भी नहीं था। व्यक्ति समाज को ठुकराकर समाज के बाहर जाता कहाँ? इसलिए गण-समाज का सदस्य अपनी निजी इच्छा के लिए अपने समाज को चुनौती देने की बात सोच भी नहीं सकता था।

उन्नीसवीं सदी में ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने और बाहरी शक्तियों ने झारखंड प्रदेश के सभी गण-समाजों के संगठनों को तोड़ डाला। आदिवासियों ने बाहरी हमलों के खिलाफ लगातार सशस्त्र संघर्ष किया और अब भी कर रहे हैं, लेकिन वे अपने समाज के संगठन को सुरक्षित नहीं रख पाये। आज आदिवासी सिर्फ अपनी ही छोटी-सी बन्द दुनिया में नहीं रहते, वे बाहर के व्यापक समाज के भी अंग बन चुके हैं जहाँ के दस्तूर कुछ और ही हैं।

लेकिन क्या आज भी, जबकि पुराना गण-संगठन (ट्राइबल ऑर्गेनाइजेशन) टूट चुका है, मुंडारी प्रेमगीतों में वैयक्तिकता दिखलाई पड़ती है?

हमारा अध्ययन बतलाता है कि आज भी मुंडारी प्रेमगीतों में प्रेमपात्र को पाने के लिए समाज की रूढ़ियों को चुनौती देने या अपना सब कुछ दाँव पर लगा देने की भावना नहीं मिलती है। उदाहरण के लिए, मुंडारी के एक श्रेष्ठ कवि श्री दुलायचन्द्र मुंडा के हाल ही में प्रकाशित कविता-संग्रह 'बम्बरू' की एक कविता देखिए— *कुमु तेचि सुति ते/जी लिपिर-लिपिर कते / जुड़ी-जुड़ी सेन-सेन होरा रे/समा-समा चिलङ जमा-जमाना? / सेन तेब: जनाचि/होरा हपटिङ गे चि? / अम सेने ओको मुली/बैयो: होरा उली-फूली / विधि ओनोल कए मेटवे 'मुंडा' तम/ समा-समा चिलङ जमा-जमाना?*

इस गीत में मुंडा प्रेमी अपनी प्रेमिका से पूछ रहा है कि क्या हम लोग अभी तक व्यर्थ ही मिलते रहे? क्या जुदाई की घड़ी आ पहुँची? इसके बाद प्रेमी खुद ही कहता है कि खैर, तुम जिस भी रास्ते जाओ, तुम्हारे लिए मेरी शुभकामना है कि तुम्हारा रास्ता सुन्दर बने। मैं विधाता की लकीर मिटा नहीं सकता।

आधुनिक मुंडा कवि का यह गीत बतलाता है कि आज भी मुंडा समाज में प्रेमी-प्रेमिका अपने प्रिय पात्र को प्राप्त करने के लिए विधाता की लकीर या समाज की व्यवस्था से टकराने का संकल्प नहीं रखते। वह अपने प्रेमपात्र से अलग होने की स्थिति को स्वीकार करने के लिए हमेशा तैयार है। मुंडा समाज में पुराना गण-संगठन टूट चुकने के बाद भी व्यक्ति की वैयक्तिकता नहीं उभरी है। व्यवस्था और घटना-प्रवाह उसके लिए आज भी सर्वोपरि और सर्वशक्तिमान हैं।

एक ओर गैर-आदिवासी समाज में चरम व्यक्तिवाद एक भयानक समस्या बन गया है, दूसरी ओर आदिवासी समाज में व्यक्ति की गरिमा और व्यक्तित्व के विकास के लिए तथा महान मूल्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक न्यूनतम वैयक्तिकता का भी विकास नहीं हुआ है। सवाल है कि आज की बदलती हुई आधुनिक दुनिया में, आदिवासियों में वैयक्तिकता (Individuality) का पर्याप्त विकास नहीं होना, उनके भविष्य के विकास की दृष्टि से, कहाँ तक उचित और सही है?

भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली 110067

झारखंड :

पिछवाड़े चन्दन का वृक्ष है

तुम चिड़िया फँसाने के बहाने आ जाना

हिमांशु शेखर झा

सन्थाली लोक गीतों में प्रेम की अभिव्यंजना



प्रेम प्राणियों की स्वाभाविक तथा जन्मजात प्रवृत्ति है। इसकी असीम रस-राशि में प्रत्येक जीव का आत्म-यान गतिशील रहता है। सन्थाल भी इसके अपवाद नहीं। कर्मयोगियों की सम्मति है कि प्रेम की उद्भावना सौन्दर्य-बोध से होती है। दो विभिन्न तत्त्वों (जीव तत्त्व) के पारस्परिक आकर्षण से जो रचनात्मक तथा रसमयी अनुभूति उत्पन्न होती है, दर्शनकार उसे ही प्रेम की संज्ञा प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से तथाकथित सभ्य-जनों की अपेक्षा प्रकृति-पुत्र या प्रकृति-पुत्री सन्थालों के बीच प्रेम का आधिक्य होना सर्वथा स्वाभाविक है, क्योंकि वर्तमान नगरों या शहरों के कोलाहल या स्वार्थमय वातावरण की विद्रूपता या कुरूपता के विपरीत प्रकृति के त्यागमय एवं निःस्वार्थ परिवार में जीवन का महान सौन्दर्य अवस्थित है। प्रकृति की मनोरम छटा देखकर सन्थालों के हृदय में उसे बनाने वाले के प्रति कृतज्ञता की भावना उमड़ने लगती है। प्रकृति में कितना आकर्षण है, इसका वर्णन एक अज्ञात सन्थाली लोक-कवि ने निम्नांकित पंक्तियों के माध्यम से बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है—

'जो बाहा ते दिल जो साजाव आकान
ञे लोक् कान दो बोयहा जेंगेत् जेंगेत्।
जे लोक कान दो वोयहा जिविर जुड़ासी
देवोन सारहावेया सिसिर जाविच।'

अर्थात्, हे बन्धु! प्रकृति को इस रूप में फल-फूलों से सजा हुआ देखकर हृदय प्रसन्न हो उठता है। तरह-तरह के फलों से तो आँखें आश्चर्यचकित रह जाती हैं। इनका दर्शन करने से आनन्द की प्राप्ति होती है। आओ, हम इन वस्तुओं को प्रदान करने वाले प्रभु की अभ्यर्थना करें।

इस अभिव्यक्ति से यह प्रकट होता है कि सन्थालों का लोक-जीवन प्रकृति के विराट् आकर्षण और सौन्दर्य के बीच यापित होता है। यही कारण है कि उनकी वंशी का राग कभी खाली नहीं होता और न उनके लोक-गीतों की धुन में थकावट ही पैदा होती है। लोक-साहित्य ही उनकी ज्ञान-क्षुधा की परितृप्ति का साधन है और वे इस जीवनदायिनी वस्तु को कभी विनष्ट या म्लान नहीं देख सकते।

मैं यहाँ उनके कुछ लोक-गीतों को सार्थ प्रस्तुत करते हुए, उनकी प्रेमाभिव्यक्तियों को विवेचित करना चाहता हूँ। यह सत्य है कि सन्थाली लोक-गीत जीवन की किसी एक अवस्था (चाहे वह प्रेम और विरह की ही क्यों न हो) की अभिव्यंजना नहीं, प्रत्युत् सम्पूर्ण जीवन का चिरव्याप्त चित्रण है, जिसमें राग-विराग, हर्ष-विषाद, संघर्ष-सन्धि, धर्म-काम आदि प्रत्येक भावावस्था का दर्शन हो जाता है। मैं अब सीमित शब्दों में यहाँ उन्हीं लोक-गीतों की चर्चा आप से करूँगा, जिनमें प्रेम (जिसे मैं शृंगार-भावना का पर्याय मानता हूँ) की सबल और सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

प्रथमतः उस गीत की पंक्तियाँ सुनिए, जिसमें गठ-बन्धन (नारी और पुरुष का) या प्रेमपाश का आकर्षक वर्णन किया गया है। नवविवाहिता युवती प्रीति की मस्ती में झूमती हुई अपने प्रिय से कहती है—

'सासाङ् धुतीतेम धुतीएना
आले राचारेम पारोम एना।'

अर्थात्, प्रिय! तुमने पीतवर्णा धोती पहन ली है और मेरे प्रांगण के मध्य से पार हो रहे हो। मेरे आंगन में दुग्ध सदृश मनोरम पुष्प प्रस्फुटित हुआ है। पुनः वह नायिका प्यार का, गुस्सा करती हुई निषेधात्मक आदेश देती है—

'आले राचारे सुलुई-लुन्दुई तोवा बाहा।'

अर्थात्, उस फूल तक तुम अपना हाथ बढ़ा सकते हो, लेकिन सावधान, उसे तोड़ना मत!

यद्यपि इस छोटे से गीत को पढ़ जाने पर कोई विशिष्ट अनुभूति नहीं

होती, किन्तु जब-जब मैं गहराई में उतर कर इसे दुहराने लगता हूँ, तो मुझे इसमें महाकाव्य के लक्षण मालूम होते हैं। मेरी सम्मति में यह फूल स्वयं नायिका का प्रतीक है, जिसे अपने सौन्दर्य पर तो नाज़ है, लेकिन अपनी सुकुमारता या दुर्बलता का डर भी। जब वह यह कहती है कि "उस फूल तक तुम अपना हाथ बढ़ा सकते हो, लेकिन उसे तोड़ना मत", तो निश्चित ही उसका नारी-हृदय पुरुष-प्राण की कठोरता से अपनी स्वाभाविक किन्तु 'आकर्षक सुरक्षा' की कामना करता है। इस लघु-गीत की यह पंक्ति मुझे कविवर बर्डस्वर्थ की उस कविता का स्मरण दिला जाती है, जिसमें उन्होंने सौन्दर्य की सुरक्षा के हेतु इसी तरह की भावना प्रकट की है— "सौन्दर्य स्पर्श करने के लिए नहीं केवल दर्शन करने के लिए है।"

सन्थाली लोक-गीतों में कई ऐसे स्थल आये हैं, जहाँ युवा-युग्मों के प्रेम-उद्यम का बहुत ही स्वाभाविक और व्यावहारिक वर्णन मिलता है। कई प्रेम-कथाएँ ग्राम-गीतों का स्वरूप धारण कर हमें मुग्ध कर देती हैं। एक ऐसी ही प्रीति-गाथा है, जिसमें एक प्रेमिका (जिसकी शादी बल-प्रयोग से किसी अन्य पुरुष के साथ कर दी गयी है) अपने बचपन के साथी की याद में अकुलाती हुई अपनी कारुणिक प्रेमावस्था का वर्णन करती है—'*इञ रेन जुरी माय गितिच् आकान् / आतो मिलवा मा मेलो मेचो मोने तोमाञ मेन गे / आडीकोक् माञ मेन गे / आधा आन्धारे तेन आकात् तिञ*।'

अर्थात्, मेरे पति निद्रा में लीन हैं और मेरे ग्राम का प्रेमी मुझ से मिलने के लिए, घर के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहा है। मन तो कहता है कि प्रिय से मिलने के हेतु घर छोड़ दूँ, लेकिन मेरे पति तो मेरे आधे दामन को दबा कर सोये हुए हैं। मैं ऐसी दशा में कैसे घर से निकल सकती हूँ?

कालान्तर में विरहिणी प्रेमिका की अपने प्रेमी से किसी अन्य लड़की के विवाहोत्सव में भेंट हो जाती है। उस समय वह सांकेतिक गायन के द्वारा अपने प्रेमी को मन के भाव सुनाने लगती है—'*आमहों मान्दाड़िया / इञ हों नाचोनियाँ, / आड्डी जोमोक् दो आलोम रूया। / आयो मेनाया बाबा मेनाया / जुरी ञे ञे लकान खिड़की द्वार*।'

अर्थात्, तुम मान्दरवादक हो और मैं नृत्यकारिणी। अधिक सम बँधा हुआ रसपूर्ण वाद्य मत बजाओ, क्योंकि यहाँ मेरे अभिभावक उपस्थित हैं। उन लोगों की नज़र इधर है। इतना ही नहीं, वातायन-पथ से मेरे पतिदेव झाँक रहे हैं। इन सबका ध्यान रखते हुए तुम तालयुक्त मान्दर नहीं बजाओ।

काव्यवेत्ताओं के अनुसार सबसे बड़ा काव्य वह है जिसमें स्वाभाविकता का चित्रण हो। इस दृष्टि से प्रस्तुत लोक-गीत श्रेष्ठ काव्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि इसमें ऊपर वर्णित परिस्थिति में अवस्थित नायिका की मनोदशा का बिल्कुल स्वाभाविक वर्णन किया गया है। इस तरह के हजारों प्रचलित और अप्रचलित गीत सन्थाल लोक-कंठों से उद्घोषित होते रहते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उनको मुद्रण का माध्यम दे कर जन-जन के बीच प्रसारित कर दिया जाय, ताकि उनकी मर्मस्पर्शिता तथा प्रभावशक्ति की तीव्रता का अनुभव करने में लोगों को सुविधा प्राप्त हो।

यौवन सपनों का विशाल गृह है, जहाँ उनकी मात्रा में कभी ह्रास नहीं आता। युवक और युवतियों के पारस्परिक आकर्षण और उससे उद्भूत अनुराग को निम्नांकित पंक्तियों में कितनी कुशलता से व्यंजित किया गया है। एक सन्थाल कुमारी अपने शीश-सिंहासन पर घट-राज को अवस्थित कर, प्रकृति का अशेष सौन्दर्य बटोरती हुई मार्ग पर बढ़ती जा रही है। उसकी ख़ूबसूरती के चुम्बक से किसी नवजवान का हृदय-लौह आकर्षित हो जाता है और उसी क्षण उसकी वाणी की वीणा से यह संगीत फूट निकलता है—'*आले कुल्हो तालाते / कान्डा दिलीप कुड़ीम पारोमोक् कान। / वोहोक रेवेत् बाहा, लान्दाय लेका, / साड़ी आन्चार दोसी, होहोय लेका*।'

अर्थात्, मेरे ग्राम में शीश पर घट रखी हुई तुम आगे बढ़ रही हो। तुम्हारे जूड़ा में खोंसा हुआ फूल मानो हँस रहा है। अयि संगिनी! तुम्हारी साड़ी का दामन तो इस तरह हिल रहा है, जैसे संकेत से मुझे अपनी ओर बुला रहा हो।

यह तो रही युवक के दिल की हालत। अब एक युवती की मर्म-कथा सुनिए, जिसे किसी जवान के सौन्दर्य-वाण ने आहत कर डाला है। बेचारी तड़प कर कहती है—'*दिनाहो भादीलो / राँते हो भादीलो / हाय! हाय! / नोयान / पोरे रो पुत! देखी, किबारूप राम, राम। / भावीलो हाय, हाय, नोयान*।'

अर्थात्, दिनभर उसकी चिन्ता की और रात को भी वही हाल। हाय! हाय! मेरी आँखों को दूसरे के लिए इतनी फिक्र क्यों रहती है?

इन प्रेम-गीतों में मात्र यौवनोन्माद ही नहीं, बल्कि जीवन का दर्शन भी है। इसी जीवन-दर्शन से सम्बद्ध निम्नांकित लोक-गीत शृंगार भावना पर आधारित होते हुए भी कितना पवित्र सन्देश दे जाता है। प्रेमिका या पत्नी अपने पतिदेव से कहती है— '*आमाक् जिवी दो इञरे / इनाक् जिवीदो आम रे / जिवी जिवी जिवोन तोलेना रे / आगेसिमोर साछ, / ताले दारे बिन्दी गानाक्, / तोड़े सुताम तोड़ तोड़, / जिवी-जिवी जिवोन तो लोना रे*।'

अर्थात्, हम-तुम एक हैं। मेरा प्राण तुम में अवस्थित है और तुम्हारा मुझ में। हम दोनों का जीवन परस्पर बँध चुका है। हे प्रिय! देखो, ताड़-वृक्ष तथा सेमल-वृक्ष दोनों को मकड़े ने किस भाँति बाँध कर एक बना दिया है, उसी तरह प्यार ने हम लोगों को भी एक-दूसरे से बाँध दिया है।

प्रेम आदर्शहीन होकर विकास नहीं कर सकता। जहाँ प्रीति (सच्ची) है, वहाँ त्याग भी। लक्ष्य की विशालता ही प्रेम या 'लभ' को स्थायी ख्याति प्रदान करती है, अन्यथा वह 'प्रेम' मात्र आवारागर्दी या लम्पटपना रह जाएगा। सन्थाली लोक-गीतों में जहाँ-जहाँ प्रेम का वर्णन आया है, वहीं पर जीवन की स्वच्छ आभा भी दृष्टिगोचर होती है। ऊपर वर्णित लोक-गीत सन्थाल युवा-युग्मों के उस प्रेम का स्मरण दिलाता है, जहाँ कुछ करने या आगे बढ़ने की उदात्तता है, वासना की अग्नि में जल जाने की मदहोशी या होश ही नहीं!

इन लोक-गीतों में मुझे आज तक कोई भी ऐसा भाग दिखाई नहीं पड़ा जिसमें अभिव्यक्ति की कर्कशता हो। प्रत्येक गीत अपने में मधुर और स्फटिक की तरह स्वच्छ अनुभूत होता है। जीवन की स्वत्वहीनता या रसाभाव कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। वर्डस्वर्थ की एकाकी बालिका (solitary reaper) की तरह सुकुमार एक सन्थाल बाला धान की

हरी-भरी बागी में अपने प्रेमी का दर्शन करती है, किन्तु लोक-लज्जा के कारण खुल कर बातें नहीं कर सकती। किन्तु प्रेम बन्धन को स्वीकार नहीं करता और इसीलिए वह भी मुक्ति की आकांक्षा करती हुई एक सुझाव प्रस्तुत करती है— '*आम दो चेतान टेला / इञ दो लातार टोला / चेका लेका तेलाङ ञपामोक् आ? / आले बाड़ गेलातार रे, / रोकोत चान्दोन तोवा बाहा, / चेंडे लाठा मेनते ते आचुरोक में।*'

अर्थात् हम दोनों दो दूरस्थ अंचलों में रहते हैं। अत: हम लोगों का मिलन कैसे सम्भव हो सकता है? हमारे घर के पिछवाड़े लाल चन्दन का वृक्ष है, वहीं तुम चिड़िया फँसाने के बहाने आ जाना, समझे! प्रेमिका को लोक-बन्धनों के कारण अपने प्रेमी का सान्निध्य प्राप्त नहीं हो पाता है। इसीलिए दुखी होकर एक दिन वह गाने लगती है— '*दाका किदाय हिलीञ उतुकिदाञ / दाका जोजोंमिच् बानु गितिञ / पारकोम इञ आदेर केदा, / गादेल चीज आटेत् केदा, / अन्यार तेतेनिच् बानु गितिञ।*'

अर्थात्, भाभी, मैंने भात और सब्जी तो बना ली, लेकिन खाने वाला नहीं है। मैंने चारपाई भी कर ली है तथा बिछावन बिछा लिया है, लेकिन मेरी साड़ी के दामन से लिपट कर सोने वाला कोई नहीं है! विरह और वियोग का जितना स्वाभाविक तथा स्पष्ट ('स्पष्ट' से मेरा तात्पर्य 'अस्वस्थ' से नहीं है) वर्णन सन्थाली लोक-गीतों में मिलता है, उतना अन्यत्र प्राप्त नहीं।

प्रेम के साथ-साथ काल और कर्त्तव्य की चेतना भी इन आदि-मानवों की हृदय-गुहाओं में निर्धूम दीपशिखा की तरह प्रज्वलित रहती है। निम्नांकित लोक-गान से इस कथन की पुष्टि हो जाती है। प्रेमी और प्रेमिका को अपनी मस्ती में काल की प्रबलता और कर्त्तव्य की विशालता का विस्मरण नहीं होता, इसीलिए तो वे कहते हैं— '*जीवी ताहेन भारे रोड़ आञ लान्दायाज / जिवी ताहेन भोर हँसी खेलाय / जिवीए दाड़ रे मा इङ्गाञे रागा / हाय! रे, सोनेर दिही जिवी वारसा!*'

अर्थात्, जब तक प्राण है, हँस लूँ, बोल लूँ! तभी तक खेल-कूद भी लूँ! प्राण निकल जाने पर मेरी माँ रोने लगेगी। हाय रे! सोने की देह तो प्राण के भरोसे पर ही है।

इस पंक्ति में कितनी मार्मिकता है— (जिवीए दाड़ रेमा इङ्गाञे रागा) यानी 'प्राण निकल जाने पर माँ रोने लगेगी!, वास्तव में बहुत ही सुकुमार भावना है। इसीलिए तो ये सन्थाली ग्राम-गीत अमरत्व प्राप्त कर रहे हैं, जन-मन में घर बना रहे हैं। इनके इसी माधुर्य गुण से प्रसन्न होकर काका कालेलकर ने किसी समय कहा था कि यदि सन्थालों को किसी विशेष वस्तु ने बचाया है, तो इनके नृत्य एवं संगीत (लोक-गीत) में प्रकट होने वाले जीवनानन्द ने। काका साहेब के विचार से मैं ही नहीं, सन्थाली लोक-साहित्य का प्रत्येक अध्येता सहमत होगा। विशिष्टतया इनके गीतों में प्रेम या अनुराग की जो बलशालिनी अभिव्यंजना हुई है, वही इस जाति को अमर बना देगी। सन्थाली लोक-गीत मेरे प्राण-पिंड पर प्रतिष्ठित वह देव-प्रतिमा है, जिसका कमलासन (शीर्ष की बात तो दूर) छूने का साहस भी किसी अन्य आदि-कालीन ग्राम-गीत में नहीं। परमेश्वर के साथ-साथ यदि हम जनेश्वर भी इसकी उन्नति पर ध्यान दें, तो हमारा साहित्य समृद्ध हो जाए।

सरोजिनी निवास
एम-1/63, सेक्टर-बी,
अलीगंज,
लखनऊ-226024 (उ.प्र.)

शादी-ब्याह और त्योहारों पर अपने मित्रों और परिजनों को अच्छा साहित्य उपहार-स्वरूप दें।

पाठकों के लिए सुनहरा मौका
5000 रुपये देकर 'नया ज्ञानोदय' के आजीवन ग्राहक बनें तथा ज्ञानपीठ की मासिक समाचार पत्रिका 'ज्ञानपीठ समाचार' मुफ़्त प्राप्त करें।
ज्ञानपीठ के सजिल्द प्रकाशनों पर 25% छूट का लाभ उठाएँ।

नया ज्ञानोदय की सदस्यता के लिए आवेदन-पत्र

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....
पता ....
.... पिन कोड ....
फोन नं. : .... फैक्स : ....
ई-मेल : .... मोवाइल : ....

परदेशीराम वर्मा

लोरिक चन्दा और अन्य प्रेम कथाएँ



छत्तीसगढ़ लोकगाथाओं का गढ़ भी है। हस्तिनापुर में राज करने वाले कौरव-पांडवों की कथा को पद्मभूषण तीजन बाई और पंडवानी परम्परा से जुड़े गायक कुछ इस तरह छत्तीसगढ़ी रंग में रंग कर प्रस्तुत करते हैं कि सारे पात्र छत्तीसगढ़ी बन जाते हैं। श्रीराम की माता कौशल्या तो कोशल नरेश की सुपुत्री थीं ही। छत्तीसगढ़ ही दक्षिण कोशल है। इसलिए श्रीराम छत्तीसगढ़ के भांजे हैं। छत्तीसगढ़ में इसीलिए बुजुर्ग मामा भांजों का चरण स्पर्श करते हैं। चूँकि श्रीराम छत्तीसगढ़ के भांजे हैं इसलिए हर भांजा श्रीराम है। इसीलिए यहाँ भांजे इस तरह पूजित होते हैं।

उसी तरह भतृहरि की कथा का भी छत्तीसगढ़ीकरण हो गया है। हमारे भतृहरि रानी की बेवफाई के कारण संन्यासी नहीं बनते। यहाँ की कथा में भतृहरि विवाह के बाद प्रथम रात्रि में जब अपनी रानी के पास जाता है तो सोने के पलँग की पाटी टूट जाती है। पाटी टूटने पर रानी हँस देती है। राजा जब पाटी टूटने के रहस्य को जानना चाहता तब कहानी शुरू होती है। रानी के सात जन्मों की कथा प्रारम्भ होती है। रानी बताती है कि पूर्व जन्म में वह राजा की माता थी पाटी इसलिए टूटी।

स्त्री के भीतर के मातृ स्वरूप की महत्ता को बताने के लिए भतृहरि कथा का छत्तीसगढ़ी रूप इस तरह सामने आया। इसे सुरूजबाई खांडे देश-विदेश के मंचों पर सुनाकर सम्मोहन रचती है।

लोकगाथाओं का स्वरूप अंचलों में अलग-अलग होना स्वाभाविक है। छत्तीसगढ़ में प्रचलित लोकगाथाओं में सर्वाधिक प्रभावी लोकगाथा लोरिक-चन्दा है। यादव कुल में जन्मे लोरिक और गढ़पाटन के राजा की बेटी चन्दा की यह प्रेम कथा अलग-अलग जातियों के साथ जुड़कर प्रस्तुति में वैविध्य का इन्द्रधनुष रचती है।

लोरिक गढ़पाटन का एक साधारण चरवाहा है। वह वीर है और जंगल में बसे अपने गाँव में रहकर ढोर-डाँगर चराकर जीवन यापन करता है। गढ़पाटन राज्य में एक शेर नरभक्षी हो जाता है। राजा अपने सेनापति को आदेश देता है कि वह शेर को ख़त्म कर दे। सेनापति को पता लगता है कि उसके राज्य में लोरिक है जो शेर को मार सकता है। अन्ततः लोरिक शेर को मार देता है मगर श्रेय सेनापति ले लेता है। लोरिक अपने पिता के समझाने पर मान जाता है और श्रेय सेनापति को दे देता है। सेनापति के आग्रह पर लोरिक को राजा अपने दरबार में स्थान देता है। बाँसुरी वादन में निपुण धुर गँवइहा लोरिक पर राजकुमारी चन्दा मुग्ध हो जाती है। चन्दा और लोरिक छिप-छिप कर जंगल में मिलते हैं। दोनों एकदूसरे के बिना जीना नहीं चाहते। लेकिन गढ़पाटन का राजा अपनी बेटी चन्दा का ब्याह कराकुल देश के राजा के कोढ़ी पुत्र वीरबाबन से कर देता है।

चन्दा जब कोढ़ी पति को देखती है तब पछाड़ खाकर गिर जाती है। वीरबावन को ग्लानि होती है। वह जान जाता है कि चन्दा लोरिक के बगैर जी नहीं सकती। वह चन्दा को मुक्त करते हुए कहता है कि वह महल से चली जाए और लोरिक की तलाश स्वयं करे।

चन्दा महल से निकल जाती है अपने लोरिक की तलाश में। यह तलाश ही उसके शेष जीवन की असलियत बन जाती है।

कथा गायक यह नहीं बताता कि लोरिक-चन्दा में फिर मेल हुआ कि नहीं।

प्रेम की प्यास, अपने मनचाहे संसार को पाने की ललक, राज परिवार में जन्म लेने की सजा, राज्य से जुड़े सामन्तों का षड्यन्त्र और अन्ततः प्यार के अधूरेपन के अनन्त विस्तार को ही लोरिक चन्दा की कथा में हम पाते हैं। लोरिक-चन्दा की कथा को यहाँ 'चनैनी गायन' कहा जाता है। चनैनी गायन की कला में सिद्धि के लिए सतनामी कलाकारों को बेहद सम्मान प्राप्त है। चनैनी के लगभग सभी बड़े कलाकार इसी समाज से आये। एक विशेष धुन को चनैनी धुन के रूप में हम जानते हैं। उसी एक लय में पूरी कथा रात भर चलती है। मशाल जलाकर कलाकार नाचते हैं और इस कथा की रोचक प्रस्तुति होती है। मशाल नाच दल द्वारा प्रस्तुत चनैनी के माध्यम से ही लोरिक-चन्दा की कथा आज तक यहाँ तक आयी है।

जिस जाति में लोरिक का जन्म हुआ उस जाति के यदुवंशी भी इस कथा का गायन करते हैं। मगर वे बाँस गीत के रूप में इसे गाते हैं। बाँस संसार की सबसे लम्बी बाँसुरी है। लम्बे-लम्बे बाँसों को फूँक कर बजाना तगड़े राऊत्तों के बस का कौशल होता है। एक मुख्य गायक लोरिक और चन्दा की कथा का गायन करता है और दो बाँस बजाने वाले उसे सपोर्ट करते हैं। रात भर इसी तरह कहानी कही जाती है। कथा गायक नाटकीय अन्दाज़ में कहानी प्रस्तुत कर श्रोताओं को बाँधे रखता है। आजकल लोरिक-चन्दा की कहानी पर लाइट एंड साउंड की भव्य प्रस्तुतियाँ भी हो रही हैं। क्षितिज रंगशिविर द्वारा पिछले दिनों 'लोरिकायन' की प्रस्तुति हुई।

लोरिक चन्दा की एक ही कथा नहीं है। किसी कथा में लोरिक को राजा के षड्यन्त्रकारी सिपाही मार देते हैं। एक कहानी में कोढ़ी राजकुमार के पिता लोरिक को अपना बेटा बनाकर ब्याह वेदी पर बिठाता है। मगर जब बारात लौटती है तब बीच जंगल में फिर कोढ़ी को डोली पर बिठाकर लोरिक को भाग जाने का आदेश देता है।

लोरिक इससे आहत होकर संन्यासी बन जाता है। चन्दा अपने कोढ़ी पति को गाड़ी में बिठाकर धर्मस्थलों की यात्रा करती है। अन्ततः लोरिक साधु के रूप में मिलता है। चन्दा और लोरिक एक-दूसरे को देखते हैं और वहीं गिरकर ढेर हो जाते हैं।

एक और प्रचलित कथा है। जिसमें लोरिक सद्गृहस्थ रहता है। वह अपनी पत्नी के साथ गाय भैंस पालता है। उसकी घरवाली रौताइन दूध बेचने गढ़पाटन जाती है। चन्दा गढ़पाटन की राजकुमारी है। एक कुट्टनी के माध्यम से उसे लोरिक के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है कि उसने शेर को मार दिया है। जिज्ञासावश चन्दा लोरिक से मिलती है और उससे मिलकर उसी की हो जाती है। कुट्टनी के माध्यम से चन्दा लोरिक से प्रायः तभी मिलती है जब लोरिक की पत्नी दूध बेचने जाती है। एक दिन लोरिक की पत्नी चन्दा को रंगे हाथों पकड़ लेती है। उसे ख़ूब फटकारती है। दोनों में हाथापाई होती है। लोरिक किसी तरह दोनों को शान्त करता है।

अन्ततः दोनों ही लोरिक की पत्नी बनकर सुखपूर्वक रहती हैं।

यहाँ प्रचलित कथाओं में लोक मान्यताओं का सच्चा रंग ही है।

अन्य प्रदेशों के राजाओं जैसे बड़े राजा यहाँ नहीं हुए। हर जिले में छोटे छोटे राजमहल आज भी हैं। जिलों के राज परिवार के लोग अब विधान सभा, लोक सभा का चुनाव लड़ते हैं। जीतते-हारते हैं। छत्तीसगढ़ सहज, सरल लोगों का क्षेत्र है। आडम्बर और प्रदर्शन की कला यहाँ कभी परवान नहीं चढ़ी। प्रेम कथाएँ भी यहाँ आडम्बरहीन और सीधी सच्ची-सी हैं। अब तक छत्तीसगढ़ की प्रेम कथाओं पर कोई औपन्यासिक कृति नहीं सामने आयी मगर दूसरे क्षेत्रों के उत्साही कलमकारों ने ऐसा सफल प्रयास किया है। शरत सोनकर ने लगभग 500 पृष्ठों का एक उपन्यास 'लोरिक सँवरू' के नाम से प्रकाशित किया है। इसमें उन्होंने लोरिक को प्रतापगढ़ चनवा क्षेत्र का वीर बताया है।

छत्तीसगढ़ के कलाकार ढोला-मारू और बहादुर कलारिन की कथा भी गाते हैं। ये प्रेम कथाएँ हैं। आश्चर्य की बात है कि सभी प्रेमकथाओं में नायक-नायिका पिछड़ी दलित जातियों से हैं। एक कथा उड़ियान है। तालाब खोदने में माहिर उड़िया श्रमिकों की यह कथा छत्तीसगढ़ में प्रचलित है। केवल इस कथा में उड़िया श्रमिक सुन्दरी पर ब्राह्मण लड़के की आसक्ति की कहानी कही जाती है। ''*नौ लाख उड़िया, नौ लाख ओड़निन, / माटी कोड़े ल चलि जाँय, / ओती ले आवय बाम्हन छोकरा, / ओड़निन पर ललचाय।*''

और कथा इस तरह आगे बढ़ती है। श्रमिकों, दलितों, वनवासियों, पिछड़े लोगों का यह छत्तीसगढ़ सामन्ती और जातीय दंश से उस तरह संत्रस्त नहीं हुआ जिस तरह देश के दूसरे क्षेत्र हुए। इसीलिए पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने कहा कि जातीय कटुता के जैसे चित्र प्रेमचन्द की कहानियों में है उसके लिए छत्तीसगढ़ में गुंजाइश कभी नहीं रही। साहित्य इसीलिए समाज का दर्पण कहलाता है। जैसी छवि समाज की होगी उसी तरह की प्रतिच्छवि दर्पण पर दिखेगी।

छत्तीसगढ़ की परम्पराएँ, छत्तीसगढ़ी जन के मन में रचा वैराग्य, सहज जीवन इन कथाओं में चित्रित है।

प्रायः हर कथा दुखान्त है। प्रेम की छत्तीसगढ़ी कथाओं के केन्द्र में दुख है। और तो और अयोध्या के राजा की धर्मपत्नी महारानी सीता को भी जब निर्वासन मिला तो उसे छत्तीसगढ़ ने ही आसरा दिया।

तुरतुरिया नामक स्थान में आज भी वाल्मीकि का आश्रम है। यहीं लव-कुश का जन्म हुआ। अयोध्या के सम्राट का घोड़ा यहीं पकड़ा गया।

आज जब क्षेत्रीयतावाद की तंग परिभाषाएँ दी जा रही हैं तब यह ऐतिहासिक सचाई प्रश्न करती है कि छत्तीसगढ़ की बेटी कौशल्या अयोध्या के राजा की पटरानी बनीं तब बाहरी कोई कैसे हुआ। कौन बाहरी है, कौन माटीपुत्र, इसे कैसे परिभाषित किया जा सकता है। एक ही कथा रूप बदकर देश भर में प्रचालित हो जाती है। लोग भी उसी तरह कालान्तर में जहाँ जाकर बस जाते हैं उसी क्षेत्र का जयगान करते हैं।

छत्तीसगढ़ सबका है और सब छत्तीसगढ़ के हैं। भिन्न-भिन्न जाति के कलाकार अलग-अलग स्वरूप में कथा प्रस्तुत करते हैं मगर सब में सुर और शब्द शुरुआत में एक जैसे ही होते हैं... ''*चौंसठ जोगनी सुमिरौं तोर / तोर भरोसा बल गरजै तोर / तोरे ले गुरु गुमाने तोर, / तारेर छोड़ गीत गाँवव तोर, / आलबरस दाई जाँवव तोर, / लख चौरासी देवता तोर, / डूमर के दीदी परेतीन तोर, / बोइर के दीदी चुहेलिन तोर / मुँह के वो मोहनी तोर, / आँखी के सतबहिनी तोर / सुमिरँव सन्त समाज तोर, / अरे जा दिन बोले / मोर चंदैनी, मोर बरगना हो...*''

इस अनगढ़-सी तुकबन्दी से ही लोरिक चन्दा की कथा शुरू होती है। इसमें चौंसठ जोगनी, गुरु, चौरासी लाख देवता, गूलर (डूमर) पेड़ की प्रेतनी, बेर पेड़ की डायन, मोहनी, सतबहिनिया आदि का उल्लेख है। इन सबकी वन्दना के बाद ही कथा प्रारम्भ होती है। यह एकरूपता भी आश्चर्यचकित करती है। शुरुआत के बाद मंचीय वैविध्य के अनुरूप कथा का अलग-अलग विस्तार होता है।

लोरिक चन्दा की प्रेम कथा वनग्रामों में पनपी और अब केवल मंचीय कलाकारों के कौशल के कारण जीवित है।

सरल वीर पुरुष के प्रति राजकन्या के आकर्षण की इस कथा में संयोग और वियोग शृंगार की बानगी देखते ही बनती है।

एल.आई.जी.-18, आमदीनगर, हुडको,
भिलाई- 490 009, छत्तीसगढ़

भारती राणे

प्रणयसिक्त मांडू दुर्ग

बाजबहादुर और रूपमती



सूर्यास्त होते ही खंडहर जैसे सजीव हो उठते हैं। समय मानो पारदर्शी हो जाता है सदियों पूर्व यहाँ से गुज़रे हुए मुसाफिरों के श्वास, नि:श्वास और अधूरे अरमानों के गीत हवाएँ मन्द-मन्द गुनगुनाने लगती हैं। विन्ध्याचल की उपत्यकथाएँ पवनवेगी अश्वों की टाप की ध्वनि से धड़क उठती हैं। पठार की चट्टानों में, मालवा की ऊँचाइयों पर और नीमाड़ की कन्दराओं में आवाज़ गूँज उठती है : रूपमती... रूपमती... रूपमती... बाज़बहादुर... बाज़बहादुर... बाज़बहादुर... ये आवाज़ें नीमाड़ पर बवंडर की तरह मँडराती हैं और बाद में दूर-सुदूर बहती देवी नर्मदा के जल में विलीन हो जाती हैं।

विन्ध्याचल पर्वत की अन्तिम श्रृंखला के मध्य में हरित मंडप से शोभायमान मांडू दुर्ग की शस्य-श्यामला, उर्वर मिट्टी में प्रणय की भीनी-भीनी सुगन्ध सर्वत्र प्रसारित है। एशिया महाद्वीप के इस सबसे विशाल दुर्ग का इतिहास सूर्य जैसा प्रखर और स्पष्ट न होकर अनन्त तक बिखरे हुए तारों जैसा टिमटिमाता हुआ है। इतिहासकार अपनी झोली में समेट न सकें इतना विपुल, किन्तु छिन्नभिन्न इतिहास! परमार वंश के राजा कृष्णराज, महाराज हर्ष, पृथ्वीवल्लभ मालवपति मुंज, राजा भोजदेव, जयदेवसिंहजी सहित महमूद गौरी, महमूद खिलजी, बहादुरशाह, कादिरशाह, बाज़बहादुर, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और उसके पश्चात् पवार वंश के उदाजीराव से लेकर आनन्दराव चतुर्थ तक के दस जितने राजाओं का अति संक्षिप्त मात्रा में लिखा गया, कुछ लोकगाथाओं में संचित किया हुआ, कुछ-कुछ संशोधित और कभी-कभी मान्यताओं से स्वीकार किया गया इतिहास। परन्तु इस तारामंडल के बीच पूर्णचन्द-सी देदीप्यमान है, एक प्रणयकथा राजा बाज़बहादुर और रूपमती की प्रणयगाथा। संगीत के सुर में जिनके अन्तर के तार एकरूप हो चुके थे, ऐसे प्रेमियों की अमर कहानी।

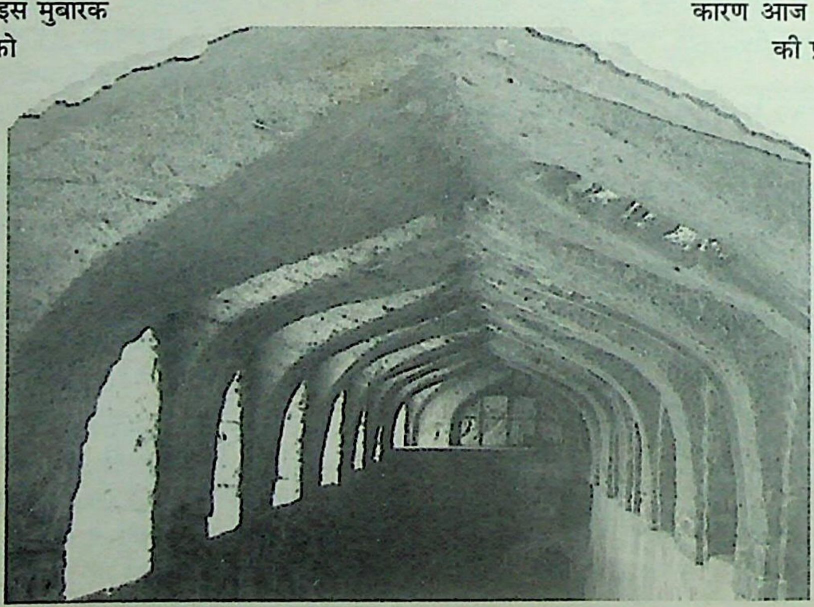
मांडू के कण कण में मेरा अन्तर्मन रूपमती को खोज रहा है। गाइड की वाणी अविरल बह रही है, 'ये देखिए, हिंडोलमहल, ऊपर जाते-जाते ये सँकरा होता जाता है। इसका आकार अँग्रेज़ी के एच जैसा है, या तो यूँ कहिए यह झूले के आकार का महल है। लाल पत्थर से निर्मित इस महल की रचना में रोमन, ग्रीक, मुगल, और राजपूत-हिन्दू स्थापत्यशैली का सम्मिश्रण है। ये है, मालवपति मुंज को बनवाया हुआ दरबार-ए-ख़ास। इस झरोखे से हाथी पर सजी पालकियों को सीधे ही उठा लिया जाता था, जिससे नाजुक राजरानियों को सीढ़ियाँ चढ़ने का कष्ट न उठाना पड़े। ये है सभागृह और ऊपर झुक रही हैं, वे हैं सन्नारियों के बैठने की अटारियाँ। और यह देखिए सिंहांकित नाहर झरोखा, जहाँ से महाराज सैनिकों से सलामियों का सम्मान पाते थे। सभागृह की छत अब गिर गयी है। रह गयी हैं सिर्फ़ दीवारें। देखिए, वहाँ पूर्व दिशा में दीवार के अन्तिम छोर पर ज़रा-सा दिख रहा है, ध्वस्त छत का शेष अवशेष...!' गाइड दिखा रहा है, इन निशानियों में या अवशेषों में मन नहीं लग रहा; मन तो विचलित है, खोजने में कि, कहाँ है हिंडोले पर झूल रही रूपमती?

महल की पृष्ठभूमि पर मुंजसागर के किनारे वृक्षों की पगडंडी से गुज़रता हुआ सूर्य अस्ताचल की ओर प्रयाण कर रहा है। मुंजसागर में थोड़ा-सा पानी, कुछेक कमलपुष्प और ज़्यादातर कीचड़ है। बायीं ओर जहाज़महल के झरोखे दिखाई दे रहे हैं। चम्पावावड़ी की गहराई में थोड़ा-सा पानी है, जो सूर्य की अन्तिम किरणों में हलका-सा झिलमिला

रहा है। महल के नीचे तहखाने में दो मंज़िलें हैं। प्रथम भूगर्भ मंज़िल के घने अन्धकार का और उससे भी निम्नस्तर पर दूसरी मंज़िल में शीर्षासनस्थ चमगादड़ों का साम्राज्य है। तालाब के पानी को रहट से खींचकर दीवारों के बीच निर्मित नलिकाओं के द्वारा जहाज़महल की प्रथम मंज़िल पर बने हुए जलकुंड में लाया जाता था। अब तो इस कुंड का जल और उससे समग्र शाही क्षेत्र में व्याप्त शीतलता दोनों ही बीते हुए समय की भाँति अदृश्य हो चुके हैं।

'देखिए, यह है प्रेक्षागृह, शाही रंगमंच, और उसके दोनों ओर वेशसज्जा के लिए निर्माण किए गए विशेष कक्ष। उस तरफ़ थोड़ी दूर जाकर टर्किश बाथ है। तुर्कशाही का शाही हमाम। वाष्प के फौव्वारे उड़ाती नलिकाएँ, उष्ण और शीतल जल के कुंड एवं हवा-प्रकाश के यथायोग्य आवागमन की ख़ूबियों से मंडित यह शाही हमाम।' इसी शाही महल में कभी रूपमती का निवास रहा होगा। सामने जलमहल की अट्टालिका से राजा बाज़बहादुर दीपक राग की तानें छेड़ते होंगे और समग्र शाही परिवेश दीपकों से दीपायमान हो उठता होगा; और फिर गूँज उठता होगा रूपमती का कर्णमंजुल स्वर। वह कभी बसन्तबहार तो कभी मेघमल्हार गाती होंगी। मेघमल्हार की गूँज से विन्ध्याचल पर बादलों की घनघोर घटाएँ उमड़ आती होंगी और जब ये बादल बरसते होंगे, तब सारे दीपक बुझ जाते होंगे। उस समय प्रणय में तन्मय प्रेमियों के स्नेह की रातरानी महक उठती होगी...

यह वह एक यथार्थ होगा, या कोरी मेरी कल्पना? गाइड तो कुछ और बातें ही बता रहा है। वह बता रहा है, सम्राट जहाँगीर की पैंतालिसवीं सालगिरह के जश्न की बात; नूरजहाँ ने पुत्रीरत्न को जन्म दिया, तब सर टॉमस रो ने की सफल इलाज की बात; उस समय सफल इलाज के बदले में बादशाह जहाँगीर ने अँग्रेज़ों को भारत में व्यापार करने की अनुमति दी और उस घटना के कारण इतिहास ने करवट बदली, यह परिवर्तन की बात। जहाँगीर के उस जन्मदिन की बात, जिस दिन समस्त विश्व का नक्शा सौगात के रूप में सम्राट जहाँगीर को अर्पण करते हुए सर टॉम्स रो ने कहा था, 'इस मुबारक मौक़े पर मैं जहाँपनाह को समस्त विश्व भेंट स्वरूप अर्पण कर रहा हूँ।' जहाँआरा गम्भीर रूप से जल गयी थी, तब सूरत से ख़ास बुलवाये गये डॉ. ग्रेब्रियल बगट ने किये हुए उपचार की बातें और उस सफल चिकित्सा के बदले में आलमपनाह जहाँगीर द्वारा अँग्रेज़ों को सूरत में व्यापारी केन्द्र की स्थापना करने की अनुमति प्रदान की, उस घटना की बातें। इतिहास के पृष्ठ फरफरा रहे हैं, और धुँधली झिलमिलाती तस्वीरें दिखाई दे रही हैं। समय हवा कुछ देर के लिए थम जाती है। सभी दृश्य ओझल हो जाते हैं। अब यहाँ पर बारबार गूँज उठने वाले युद्ध के शंखनाद नहीं हैं। अँग्रेज़ों की विदाई को भी एक अरसा हो गया है आज मैं इन खंडहरों से पूछ रही हूँ, कहाँ है, रूपमती? कहाँ है रूपमती का मंडप? गाइड शान्ति से दूर छोटी-सी पहाड़ी पर खड़े छाते के आकार के दो अश्मर झरोखे दिखाता है। 'वो रहा रूपमती का मंडप। क़रीब सात मील की दूरी पर होगा। अब तो रात ढलने लगी है, वहाँ कुछ देखना सम्भव नहीं होगा...'



नहीं! नहीं! यहाँ तक आकर रूपमती को मिले बिना कैसे जा सकते हैं? अधीर क़दमों से हम जहाज़महल की सीढ़ियाँ उतरने लगते हैं। रूपमती को मिलने के लिए हम अँधेरे की अवहेलना करके भी रेवाक्षेत्र की ओर गाड़ी दौड़ाते हैं। हलके से अँधेरे में मांडवगढ़ के आसपास के सुनसान वीरानों से गुज़रते हुए हम रूपमती की छत्री की ओर स्थिर गति से आगे बढ़ते जा रहे हैं। गाइड दिखा रहा है, 'ये है दाईमाँ का महल। उस पत्थर के पास से आवाज़ लगाओगे तो उसकी गूँज दूर महल में सुनाई देगी। देखो, इस तरह : दाईमाँ, दाईमाँ फेल या पास?' प्रतिध्वनि आती है, पास पास पास...। अब तो यह 'इको पोइंट' सिर्फ़ एक खेल बनकर रह गया है, मगर उस समय निश्चित अन्तर पर निर्मित मुढलियों की दीवारों से परावर्तित होते हुए सन्देशे यहाँ से कई मील दूर धारानगर तक पहुँचते थे!

मैं इको पोइंट पर खड़ी होकर चिल्लाती हूँ, रूपमती... रूपमती... और मेरी ही आवाज़ मेरा उपहास करती मालूम पड़ती है। मानो वह कह रही हो कि, 'इस पत्थरों की दुनिया में प्रतिध्वनित आवाज़ों से लिपटे हुए रूपमती को नहीं मिला जा सकता। उसे तो हृदय से आत्मसात करना होगा— अकेले, निःशब्द।' अन्तर अब कम होता जा रहा है। निरन्तर गुज़र रहे मांडू के स्थल दिखाई देते हुए भी जैसे दिखाई नहीं दे रहे हैं। 'ये है रेवाकुंड। नर्मदा के दर्शन किये बिना जलपान न करने की रूपमती की प्रतिज्ञा भंग न हो, इसलिये देवी नर्मदा यहाँ साक्षात प्रगट हुई थीं। इसी कारण आज भी नर्मदा-परिक्रमा रेवाकुंड की प्रदक्षिणा किये बिना पूर्ण नहीं होती।' हास्यास्पद लोककथा! बाज़बहादुर ने तो रूपमती भूखी-प्यासी न रहे इसलिये, यहाँ इस कुंड का निर्माण करके, उसके मन का समाधान किया होगा, गाइड कहानियाँ सुना रहा है, पर मैं तो इस सियाह रात जैसा मृत्यु का घूँघट ओढ़े बैठी हुई रूपमती के मुखमंडल की रेखाएँ आसमान में तराश रही हूँ और उसके घूँघट की रूपहली कँगनी जैसा दूज

का चाँद मेरी आँखों में झल रहा है।

हम ऊँचे टीले पर स्थित रूपमती के मंडप के निकट पहुँचे, तब तक उसके परिसर में पार्क की हुई आखरी टूरिस्ट कार भी विदाई ले चुकी थी। टॉर्च के हल्के-हल्के प्रकाश में गाइड के क़दमों को सँवारते हुए, दीवारों के पत्थरों को टटोलते, अटकलते-अटकलते सीढ़ियाँ चढ़ते, संकीर्ण पगथार से होते हुए हम ऊँची छत पर जा पहुँचे। तारों की मद्धिम रोशनी में छत अलौकिक लग रही थी। छत के दोनों ओर सुहावनी छतरियों की रचना की गयी थी। यह तो रूपमती का मंडप है, जहाँ नित्यरूप से प्रात:काल वह नर्मदा के दर्शन करती थी और उसके पश्चात् ही उसका दैनिक कार्यकलाप शुरू होता था। धरमपुरी के राजपूत ज़मींदार थानसिंह की लाड़ली, बुद्धिमान, सौन्दर्यवती और सुसंस्कृत पुत्री रूपमती। देवी नर्मदा को अनन्य स्नेह से चाहती, नर्मदा की उपासक रूपमती। और यह तो मुस्लिम राजा बाज़बहादुर। कैसे सराबोर हो गये होंगे उनके मन? आज भी इतिहास बाज़बहादुर को समर्थ राज्यकर्ता की अपेक्षा एक उच्च कोटि के संगीत मर्मज्ञ और समर्थ गायक के रूप में ज़्यादा उजागर करता है। उससे भी विशेष तो वह अमर है, रूपमती के प्रियतम के रूप में।

इस ऊँची अटारी के ढलानों पर विस्तीर्ण निमाड़ का प्रदेश धुँधला टिमटिमाता दिखाई दे रहा है। यहाँ से चारों ओर मीलों दूर तक देखा जा सकता है। प्राचीन काल में सैनिकों को दूर से आ रहे आक्रमण की पूर्वसूचना यहाँ खड़े-खड़े मिल जाती थी। मैं दूर-सुदूर बहती पतली रेखा जैसी नर्मदा नदी को रूपमती की आँखों से निहारती हूँ। गाइड ने दिखाया था : 'पश्चिम में गुज़रात की सरहद और कुछ ऊपर जा कर राजस्थान। उस ओर दक्षिण में महाराष्ट्र है, और दूर-सुदूर वह दीख रही है ना, धामनोद गाँव की रोशनी? बस, वहाँ से कुछ दूर नज़र करो तो नर्मदा के दर्शन होते हैं। दिन में बराबर दिखती है, चमकती हुई बारीक रेखा जैसी।' मैं सोचती हूँ, बस वहीं, उसके तट पर किसी दिन चन्देरी नरेश की वाग्दत्ता रूपमती वसन्तोत्सव मनाने आयी होगी। वहीं कहीं बाज़बहादुर से उसकी मुलाक़ात हुई होगी, और दोनों के हृदय संगीत के सुर के साथ एक-दूसरे में समा गये होंगे। रूपमती के लिए छिड़ गये संग्राम में विराट मुगलसेना का सामना करने में असमर्थ बाज़बहादुर को युद्धभूमि छोड़कर भागना पड़ा, या कालीसिन्ध के मैदान में वह मारा गया, क्या पता? परन्तु यह सच है कि बाज़बहादुर के विरह में तड़पती रूपमती ने आज़मखाँ की बुरी नज़र से बचने के लिए नववधू के सिंगार सजकर स्वयं ही अपनी जीवनज्योति बुझा दी। उसके जीवन की अन्तिम किरन के साथ ही जैसे मांडू में सदा के लिए सूर्यास्त हो गया। उस घटना के पश्चात् आत्मविहीन शरीर की तरह इन राजभवनों का तेज़ भी उत्तरोतर क्षीण होता गया।

रूपमती के मंडप की अट्टालिका पर मैं अकेली टहल रही हूँ। साथ आये और सभी छत्री के नीचे बैठकर गाइड की चटपटी बातों का आनन्द ले रहे हैं। रूपमती के पाल की झंकार मेरे मन में झुनक उठती है। एक कमलपुष्प समान कोमल और निष्कलंक सुन्दर की छवि मन में उपसने लगती है। उदीयमान सूर्य की किरणावली में आलोकित सद्य:स्नाता रूपमती, देवी नर्मदा के दर्शन करके भावुकता से अपने शैशव का स्मरण करती रूपमती, संगीत में मन के तार सायुज्यित होने के बाद राजा वाज़बहादुर के प्रेम में डूबी हुई रूपमती, अलौकिक तानें छेड़ कर सृष्टि को डोलायमान करती हुई रूपमती, राजगायिका का सम्मान प्राप्त करने के बाद झुलल-महल में निवास करने आयी रूपमती, मुगल शहंशाह अकबर के निमन्त्रण को ठुकराती रूपमती, अनादर से कोपायमान सम्राट अकबर के भेजे हुए योद्धा आज़मखाँ के साथ युद्ध करने जाते हुए प्रियतम को अन्तिम विदाई देती हुई रूपमती, बाज़बहादुर के वियोग में विलख-बिलखकर रोती, हृदय में प्रज्वलित दु:ख की ज्वाला को शान्त करने के लिए अपार क्रन्दन करती रूपमती, देवी नर्मदा के समक्ष बेतहाशा आँसू बहाकर फिर विषपान करती हुई नि:सहाय प्रेमिका रूपमती, सोलाह सिंगार करके मृत्यु को गले लगाती रूपमती, शान्त होते श्वास की नीली चादर ओढ़कर मज़ार में दफ़न होती हुई रूपमती; वियोग की ऐसी खाई, जो कभी भरी नहीं जा सकती, उसकी गहराई में गिरकर कोहरे में विलीन हो जाती वियोगिनी रूपमती; ऐसी अनेकरूपा रूपमती मेरे मन में सिसकने लगती है। सिसकियाँ भरती हुई रूपमती को मैं कोई सान्त्वना नहीं दे सकती। मैं तो सिर्फ़ दूर तक बिखरे मांडवगढ़ के खंडहरों को रिक्त नयनों से देखती रहती हूँ। सदियों पूर्व घटित घटनाओं का अब ख़ास कोई अर्थ नहीं है। अब रूपमती के मंडप पर सैनिक दिनरात पहरा नहीं देते। नीचे अश्वशाला भी अब अश्वविहीन हो गयी है। जलाशय में पानी नहीं है, बस, दूर सँकरी होती जाती नर्मदा की आँखें पुत्रीवियोग के कारण सजल प्रतीत होती हैं। दूर दिखाई दे रहा क्षत-विक्षत मांडू शहर जैसे निष्प्राण लग रहा है। एक ज़माने में पाँच लाख की आबादी से हरी-भरी यह नगरी, खंडहरों को अजगर की तरह लपेटे हुए बैठी चन्द बेडौल दुकानों में परिवर्तित हो गयी है। अब कोई युद्ध का संकेत दीवारों से प्रतिध्वनित होता हुआ मीलों का सफर तय नहीं करता। सर्वत्र भयावह सन्नाटा है, टूटते हुए कलेवर हैं और मिटता हुआ इतिहास है। यहाँ कोई स्थायी बस्ती नहीं है। यात्री आते हैं और चले जाते हैं। दीवारों पर उतरती रात को गले लगाकर खंडहर के पत्थर मानो शतकों पूर्व उन्हें इस तरह बेसहारा छोड़कर चले जाने वाले प्रियजनों की याद में फूट-फूटकर रोते रहते हैं। यहाँ किसी का निवास नहीं है, न ही कभी कोई यहाँ बसने आएगा। यहाँ कोई दिनचर्या नहीं है। शेष रह गया है। मात्र दिन-रात के आवागमन से मुक्त हो चुकी घटनाओं का इतिहास!

खंडहरों को अपने मन की व्यथा को शान्त करने के लिए रूपमती की तरह इच्छामृत्यु का सहारा नहीं मिलता। जिस त्वरा से समय जीवन को मिटा देता है, उतनी सहजता से वह खंडहरों को नहीं मिटा सकता। खंडहरों को स्वयं का एक अमिट-सा प्रतीत होता प्रलम्ब अस्तित्व है। कालचक्र के साथ घिस-घिसकर हौले-हौले ज़र रहे इन पत्थरों के अस्तित्व को जितना भी नकारा जाता है, उतना ही उनका अस्तित्व परिलक्षित होता जाता है।

स्नेहांजलि हॉस्पिटल,
लालबहादुर शास्त्री मार्ग,
बारडोली, जि. सूरत, गुजरात

आत्म कथाएं







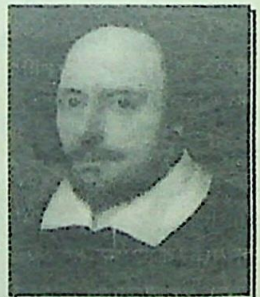
पुस्तक/लेखक		मूल्य
क्या भूलूं क्या याद करूं/हरिवंशराय 'बच्चन'	चार भागों में संपूर्ण	225/-
नीड़ का निर्माण फिर/हरिवंशराय 'बच्चन'		250/-
बसेरे से दूर/हरिवंशराय 'बच्चन'		225/-
'दशद्वार' से 'सोपान' तक/हरिवंशराय 'बच्चन'		325/-
पंखहीन/विष्णु प्रभाकर	तीन भागों में संपूर्ण	200/-
मुक्त गगन में/विष्णु प्रभाकर		200/-
और पंछी उड़ गया/विष्णु प्रभाकर		200/-
जो मैंने जिया/कमलेश्वर	तीन भागों में संपूर्ण	175/-
यादों के चिराग़/कमलेश्वर		100/-
जलती हुई नदी/कमलेश्वर		200/-
टुकड़े-टुकड़े दास्तान/अमृतलाल नागर		200/-
मोहन राकेश की डायरी/मोहन राकेश		125/-
अक्षरों के साये/अमृता प्रीतम		140/-
वनफूल/रमानाथ त्रिपाठी		275/-
जो कहा नहीं गया/डॉ. कुसुम अंसल		150/-
सत्य के प्रयोग/महात्मा गाँधी		150/-
मेरी आपबीती/बेनजीर भुट्टो		450/-
एक सैक्सवर्कर की आत्मकथा/नलिनी जमिला		95/-
परित्राणाय साधूनाम्/डॉ. रामलाल सिंह यादव (पुलिस के उच्चतम अधिकारी की आत्मकथा)		95/-

राजपाल

शेक्सपियर के नाटक

रांगेय राघव द्वारा अनुवादित

नाटक	मूल्य
ओथेलो (Othello)	50/-
जूलियस सीज़र (Julius Ceasar)	50/-
वेनिस का सौदागर (Merchant of Venice)	50/-
हैमलेट (Hamlet)	50/-
बारहवीं रात (Twelfth Night)	50/-
मैकबेथ (Macbeth)	50/-
तूफ़ान (Tempest)	50/-
भूलभुलैया (The Comedy of Errors)	50/-
निष्फल प्रेम (Love's Labour Lost)	50/-
जैसा तुम चाहो (As You Like It)	50/-
तिल का ताड़ (Much Ado About Nothing)	50/-
परिवर्तन (The Taming of the Shrew)	50/-
रोमियो जूलियट (Romeo and Juliet)	50/-
किंग लियर (King Lear) अनुवाद हरिवंशराय बच्चन	65/-



शेक्सपीयर
(1564-1616)

"शेक्सपीयर के नाटकों के बदले में पूरा ब्रिटिश साम्राज्य देने में कोई संकोच नहीं"

–ब्रिटिश प्राइम मिनिस्टर

राजपाल

1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110 006, फोन: 23869812, 23865483

शरद पगारे

औरंगज़ेब की प्रेमिका

सन् 1623 की ग्रीष्म ऋतु। आगरा का लाल किला।

...बा... अदब... बा... मुलाहिजा... होशियार... दस्त... बस्ता... नजर... ए... रूबरू ... शंह... शाह... ए... हिन्दो.. .स्तान... आला... हजरत... शहा... बुद्... दीन... मुहम्मद... साहिब... ए... किरां... ए ... आलम... हुजूर... ए ... वाला... शाहेजहाँ ... जिल्ले... इलाही... जलवा... अफ़रोज़... हो... रहे... हैं।... ऐ... होशियार!... खबर... दार...।



दीवान-ए-ख़ास में शहजादा औरंगज़ेब, वज़ीर-ए-आला सादुल्ला खान, अमीर-उल-उमरा शाइस्ता खान थे। उनके पीछे ख़ास-ख़ास अमीर, उमरा और मनसबदार कतारबद्ध अपनी-अपनी कुर्सियों पर बैठे मरमर ध्वनि में बतिया रहे थे। चोबदार की कड़क ललकार सुनते ही सामने हाथ बाँध, सिर नीचा किये खड़े हो गये। दरबार में शान्ति पसर गयी।

शाही हरम और दीवान-ए-खास को जोड़ने वाले गलियारे में नंगी तलवारें लिये ख्वाजा सरा पहरे पर मुस्तैद थे। लाल कालीन मेहराबदार गलियारे में बिछा था। गलियारे को कदम-ब-कदम पार करता सम्राट शाहजहाँ सीना ताने सगर्व चला आ रहा था। कानों में पन्ने के बुन्दे। अँगुलियों में हीरे जड़ी अँगूठियाँ, सीने पर झूलता सतलड़ा कंठहार, पेंचदार पगड़ी में जड़ा कोहिनूर हीरा। उसमें लगी कलगी से लिपटी मोतियों की तीन लड़ियाँ। सोने चाँदी के तारों से कसीदाकारी और मोतियों टँका अँगरखा। चूड़ीदार पायजामा, जवाहिरात जड़ी मखमली जूतियाँ। कमर में लटक रही तलवार तथा हाथ में कटार। बायीं ओर थी चहेती बेटी बेहद हसीन शहजादी जहाँनारा। उनकी बगल में थी असाधारण खूबसूरत रौशनआरा। दायीं ओर हर दिल अजीज, वली अहद शहजादा दारा शिकोह। दीवान-ए-खास में पहुँचते ही बादशाह मयूर सिंहासन तख्त-ए-ताऊस पर सगर्व जा बैठा। बगल की पर्दादार बालकनी में दोनों शहजादियाँ बैठीं। सम्राट के तख्त के पास रखी कुर्सी पर दाराशिकोह आसीन हुआ।

मरहबा! मरहबा!! मरहबा!!! झुक कर तीन बार कोर्निश करते हुए दरबार ने इस्तकबाल किया। शाहजहाँ ने सिर हिला स्वागत कबूला। दरबारियों के यथास्थान बैठते ही सम्राट का इशारा पाते ही वजीर सादुल्ला खान ने तीन बार कोर्निश कर कार्यवाही आरम्भ की ।

पहले काबुल और कंधहार के हालात बयान किए। कुछ पल रुक दख़न की अराजकता का ब्यौरा देना आरम्भ किया।

शहजहाँ की नज़रें, वजीर पर टिकी थीं। उसके संकोच को दूर करने के लिए हुक्म दिया, ''वजीर-ए-आला! कौन सी बात है जिसे माबदौलत के हुजूर में पेश करने से पसोपेश में पड़ गये?''

''जहाँपनाह! जान की अमान पाऊँ, तो अर्ज करूँ?''

''बैख़ौफ अपनी बात पेश करें।''

''आला हजरत ने जिस विश्वास के साथ अमीर-उल-उमरा शाइस्ता खान साहेब को दखन की सूबेदारी अता की थी, अफसोस उस पर वे खरे नहीं उतरे।''

दरबार में सन्नाटा छा गया। अपमान के दंश से शाइस्ता खान का गोरा गुलाबी चेहरा काला पड़ गया। बादशाह बेगम मुमताज महल के भाई पर सीधे वार से कई अमीर दिल ही दिल में खुश हो गये। शहजादा दाराशिकोह और शहजादी जहाँनारा प्रसन्न हो गए। मामू शाइस्ता खान शहजादा औरंगजेब का कट्टर समर्थक होने से उनका दुश्मन था। शहजादी

रौशनआरा का चेहरा उतर गया। औरंगजेब भावहीन चेहरा लिये खामोश बैठा रहा। शाहजहाँ पूरे ध्यान से सुन रहा था।

"गोलकुंडा सुलतान अब्दुला कुतुबशाह कुतुब-उल-मुल्क ने सालाना खिराज देना बन्द कर दिया।"

"हूँऊँ!" शाहजहाँ की पेशानी पर बल पड़ गए।

"आलमपनाह! इल्तिजा है कि दखन की सूबेदारी किसी दबंग और वफादार को अता की जाए। जो न केवल सूबे का नये सिरे से बन्दोबस्त करे, गिरती आमदनी में इज़ाफा करे।" सादुल्ला खान ने निडर हो दखन की नाजुक तस्वीर पेश कर दी।

शाहजहाँ ने दरबार का जायज़ा उड़ती निगाह से लिया। अमीर, उमरा, मनसबदार, सिपहसालार सभी सिर नीचा किये बैठे थे। उन्होंने वली अहद, दाराशिकोह, फिर जहाँनारा को निहारा। दोनों उन्हें ही देख रहे थे। भाई बहन ने दृष्टि विनिमय किया। दारा ने जहाँनारा को इशारा किया।

दरबारी अदब को ध्यान में रखते हुए जहाँनारा ने निवेदन किया, "जहाँपनाह इजाजत दें तो हम अपनी राय आला हुजूर की खिदमत में पेश करें?"

चहेती बेटी की आवाज़ सुनते ही शाहजहाँ के चेहरे का तनाव तिरोहित हो गया, "शहजादी बिटिया को इज़ाजत की जरूरत कब से पड़ने लगी?"

"अब्बा हुजूर! भाईजान शहजादा औरंगजेब दखन की सूबेदारी के सर्वथा योग्य हैं। दखन के सूबेदार भी रहे हैं। आला हजरत उचित समझें तो दूसरी बार भी भाईजान औरंगजेब को दखन की सूबेदारी अता करें।" धीमे-धीमे, तौल-तौल कर जहाँनारा ने राय पेश की।

एक तीर से दो शिकार किये। अपने चहेते बड़े भाई वली अहद दाराशिकोह के कट्टर दुश्मन को राजधानी आगरा से कोसों दूर भिजवाने का इन्तज़ाम किया। बेकारी में दिन काट रहे औरंगजेब को महत्त्वपूर्ण सूबेदारी दिला कर उपकृत भी कर दिया। औरंगजेब के दूर चले जाने से उसके कट्टर समर्थक शहजादी रौशनआरा और मामूजान शाइस्ताखान की तिकड़ी भी टूट जाएगी।

"मरहबा मरहबा मरहबा! वल्लाह! बिटिया ने क्या ख़ूब राय पेश की है? आपका सुझाव मावदौलत को मंजूर है। शहजादा औरंगजेब आपको कोई उज्र तो नहीं?"

औरंगजेब ने तीन बार कोर्निश कर कहा, "जहाँपनाह ने नाचीज़ को जो इज़्ज़त बख़्शी है उस जर्रानवाजी के लिए गुलाम तहेदिल से शुक्रगुज़ार है। गुलाम पूरी दयानतदारी और ईमानदारी से बादशाह सलामत का हुक्म बजाएगा।" हाथ बाँधे औरंगजेब ने शुक्रिया अदा किया।

"वज़ीर सादुल्ला खान साहेब! शहजादा औरंगजेब को मावदौलत दखन की सूबेदारी अता करते हैं। सिपहसालार मुर्शीद कुली खाँ खुरामानी को उनका दीवान नियुक्त किया जाता है। खानदेश के सूबेदार सैफ़खान और दखन के सिपहसालारों को भी शहजादा साहेब से पूरा सहयोग देने बावद फरमान ज़ारी करें। दखन के सूबेदार फौरन से पेश्तर मुगल फौज़ के साथ औरंगाबाद के लिए कूच करें।"

"जो हुक्म आलिजाह।"



अमीर-उल-उमरा सैफखान, सूबा-ए-खान देश के सूबेदार के रूप में बुरहानपुर में पदस्थ था। उसकी बेगम मलिका बानू साम्राज्ञी मुमताज महल की बहन थी। अकबर और जहाँगीर के समय से साम्राज्य का विस्तार दक्षिण में हो रहा था। शाहजहाँ ने दक्षिण में मुगल साम्राज्य के विस्तार की नीति को ज़ारी रखा। इसलिए बुरहानपुर का महत्त्व बढ़ गया था। अत: शाहजहाँ ने अपने साढ़ू सैफखान की विशेष रूप से यहाँ नियुक्ति की थी।

सैफखान ने ताप्ती पार के ज़ैनाबाद के आहूखान महल में डेरा डाल रखा था। आहूखाने से जुड़ा, परकोटे से घिरा शानदार बगीचा था। वहाँ अनेक प्रकार के फलों-फूलों के पेड़-पौधे थे। हरी घास गलीचे के समान बिछी थी।

हिरनों की बहुतायत के कारण ही वह हिरन बाग कहलाता था। सैफखान के हरम की हसीनाएँ दिल बहलाने, मनोरंजन के लिए तथा झूला झूलने बागीचे आया करती थीं। परकोटे का एक दरवाज़ा ताप्ती नदी की ओर खुलता था। इस दरवाज़े से बागीचे और बागीचे से सूबेदार के हरम में सीधे प्रवेश करने का अधिकार सिर्फ़ शाही परिवार को था।

सैफखान रंगीन मिजाज़ अय्याश था। बुरहानपुर की बोरवाड़ी हसीन तवायफ़ों, नाचने-गाने वालियों के लिए प्रसिद्ध थी। सम्राट अकबर ने इस मुहल्ले को आबाद कराया था। दिल्ली के किराना घराने की तवायफ़ें यहाँ आ बसी थीं। कुछ नाचने-गाने वालियाँ दखन से भी आयी थीं। बोरवाड़ी की मशहूर और मारुफ तवायफ़ गुलारा कुछ समय के लिए शाहजहाँ की प्रेमिका रही थी। बोरवाड़ी हुस्न की परियों का दिलकश बाज़ार था। बोरवाड़ी के दलाल खैराती से सैफखान को पता चला कि तवायफ़ हीराबाई उठान पर है। वो कमसिन, शोख़, चंचल, चुलबुली, बेहद हसीन और नाच-गाने में माहिर है। उसकी नथ भी नहीं उतरी है। उसे पाने के लिए सैफखान बेचैन हो गया। सूबेदार के हुज़ूर में हीरा बाई को मुजरा पेश करने का हुक्मनामा अख्तारी को भेजा गया। अख्तारी ख़ुशी से फूली न समायी। बोरवाड़ी की गुलारा के बाद हीरा दूसरी ख़ुशनसीब तवायफ़ थी जिसे शाही खानदान के रिश्तेदार सैफखान ने मुजरे की दावत दी थी। बोरवाड़ी की अन्य तवायफ़ें ईर्ष्या से जल उठीं। आहूखाने के दरबार कमरे में हीरा ने मुजरा पेश किया। उसके गले की

मिठास, मदहोश करने वाली चितवन और शरीर की लोच ने समाँ बाँध दिया। पूरे नाज़ो-अन्दाज़ नख़रे के साथ ग़ज़ल और नाच पेश किया। सैफखान की पारखी निगाहें फिदा हो गयीं। हर ग़ज़ल और अदा पर अशर्फियाँ लुटायीं। अख्तरी की झोली ऐसी भरी, जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। चिड़ियों की चहचहाहट और कोयल की कूक के साथ भोर में हीरा ने भैरवी में आख़री गीत पेश किया तो सैफ अशर्फियों के साथ उस पर अपना दिल भी लुटा चुका था।

बिदाई के लिए अख्तरी ने पानदान समेटा। मेहँदी रचे गोरे गुलाबी पाँवों से घुँघरुओं का तोड़ा निकालने में हीरा व्यस्त थी।

''हुज़ूर!'' सलाम करते हुए अख्तरी ने इल्तजा की, ''बाँदियों को जाने की इज़ाज़त दीजिए।''

सैफखान ने अशर्फियों से भरी थैली अख्तरी की ओर फेंकी, ''अपना इनाम तो लेती जाइए?''

अख्तरी ने ख़ुशी-ख़ुशी थैली लपक ली, ''शुक्रिया हुजूर शुक्रिया।'' पुनः सलाम किया।

हीरा खड़ी होने लगी। सैफखान ने टोका, ''आप तो तशरीफ रखिए। अख्तरी बाई साज़िन्दों को लेकर जा सकती है।''

डर के मारे अख्तरी का खिला चेहरा मुरझा गया। साजिन्दे अख्तरी हीरा को छोड़ चुपचाप खिसक लिये।

''हु... हु... जूर... हुज़ूर... ये... ये... क्या गज़ब कर रहे हैं? हमारी बेटी अभी कमसिन और नादान है। इसे भी जाने की इजाजत दीजिए?'' रुआँसी अख्तरी गिड़गिड़ायी।

सैफखान खड़े हो अख्तरी के पास पहुँचा। उसकी पीठ थपथपाते बोला, ''हीराबाई के बारे में आप निसाखातिर रहिए। हमारे हरम में हमारी बेगम के अलावा कई औरतें हैं। ये यहाँ पूरी तरह महफूज़ (सुरक्षित) रहेंगी।'' उसने ताली बजायी। बाँदी ने आकर सलाम दिया।

''सलमा! हीरा को बेगम साहिबा से मिलवाने अन्दर ले जाओ।''

हाथ पकड़ सलमा हीरा को अन्दर ले गयी। हड़बड़ाते, घबरायी अख्तरी असहाय-सी देखती रह गयी। इसकी तो कल्पना भी नहीं की थी। विरोध जताती, इसके पहले उसे ढकेलते हुए सैफखान बाहर ले आया। धमकाते हुए कहा, ''चुपचाप अकेली चली जाइए? वरना अन्ज़ाम अच्छा नहीं होगा?''

अख्तरी कब्रिस्तान से लौटे शव यात्री के समान घिसटती अपने कोठे की सीढ़ियाँ चढ़ गयी। तवायफ़ों ने भाँप लिया, हीरा को सूबेदार ने जबरन रोक लिया है। बिजली की मानिन्द ख़बर फैल गई कि सूबेदार ने अख्तरी की नवासी को रखैल बना हरम में डाल लिया है।

सैफखान ने इतनी तेज़ी दिखाई थी कि हीरा की समझ में कुछ नहीं आया। न तो कुछ बोल सकी, न विरोध कर सकी और जब समझी तो ख़ुद को हरम में पाया। मसनद पर गाव-तकिए के सहारे अधलेटी मलिका बानू आराम फरमा रही थी। हीरा को अचानक हरम में देख चौंकी, उठ बैठी।

''मुजरा खत्म हो गया?''

''जी हुज़ूर।''

''यहाँ क्या करने आयी हो?''

''हम तो घर जाना चाह रहे थे? सूबेदार ने जबरन हरम में भिजवा दिया। हमें जाने की इजाजत दिला देंगी तो शुक्रगुज़ार होंगी?'' हीरा का आत्मविश्वास लौट आया।

''ओह तो ये बात है?'' सूबेदार ने हीरा को उसकी मर्ज़ी के खिलाफ रखैल बनाना तय कर लिया है।

''उस ज़ालिम के इस कैदखाने से छुटकारा पाना बेहद मुश्किल है हीरा। एक तो तुम बेहद हसीन हो। दूसरे नाच-गाने में माहिर। देखें क्या कर सकते हैं?'' मलिका बानू बेचैन थीं। लड़की दबंग है। मुँहफट भी। सैफखान हरगिज नहीं छोड़ेगा।

किससे शिकायत की जाए? अब्बा हुजूर आसफ खान से? बहन मुमताज बेगम के ज़रिये बादशाह सलामत शाहजहाँ से? कौन सुनेगा? औरत के मामले में सभी मर्द एक जैसे हैं। एक गहरी साँस ले हार कबूली।

वक़्त बीतने के साथ हीरा ने हालात से समझौता कर लिया। जानती थी तवायफ़ की यही नियति है। सैफखान की चहेती बन बैठी। हरम में उसकी तूती बोलने लगी। उसके कहने पर सूबेदार ने अख्तरी के खर्चे का इन्तज़ाम कर दिया। हीराबाई ने बेगम मलिका बानू की इज़्ज़त और हैसियत का पूरा ध्यान रखा। अपनी दरियादिली और हाज़िर ज़वाबी से हीरा हरम की चहेती बन गयी।

चमत्कार हुआ। ऐसा हुआ कि सैफखान देखता रह गया।

भीषण गर्मी पड़ रही थी। सूरज अंगारे बरसा रहा था। तेज लू, लपट चल रही थी। न दिखाई देने वाली हवा, तपन की लपट बन साफ नज़र आने लगी थी। जमना नदी की ओर से आने वाली हवाओं की नमी धूप ने सोख ली थी।

मौसम की तपिश से बेपरवाह औरंगजेब ने सूरज को चुनौती दी। दखन की सूबेदारी का शाही फर्मान मिलते ही, एक सप्ताह से भी कम समय में पूरी तैयारी के साथ औरंगाबाद के लिए चल दिया। साथ में ईरानी शहज़ादी दिलरस बानू बेगम, काश्मीरी राजकुमारी अनुराधा माने रहमत-उल-निसा बेगम, रखैल छतरबाई, बाँदियाँ और कनीज़ें थीं। शाही फ़ौज की कमान खान-ए-जमा मुहम्मद अली, अमीर इनायत खाँ, सिपहसालार हुसैन बेग के पास थी। हिसाब-किताब के लिए दीवान मुर्शीद कुली खाँ था। ये अमीर-उमरा औरंगजेब को पीर-मुर्शद ही नहीं, ज़िन्दा पीर मानते थे। उनका विश्वास था कि इस्लाम और हिन्दोस्तान की तरक्की केवल शहजादा औरंगजेब के बादशाह बनने पर ही सम्भव है।

शाही फर्मान सैफखान को भी मिला। उसने शहजादा औरंगजेब के आगमन को विशेष महत्त्व नहीं दिया। औरंगजेब उसके सामने बच्चा था। बादशाह का साढू होने से अपनी हैसियत उनके बराबर मानता था। अपने भतीजे औरंगजेब को लेकर मलिका बानू काफी उत्साहित थीं। मगर खाविन्द से डरती थीं। सैफखान ने औरंगजेब के ठहरने का इन्तज़ाम शाही मुगल महल में कर दिया।

दीवान देवीदास ने आगे बढ़ शहजादे का स्वागत किया।

घोड़े से उतर औरंगजेब ने कहा, ''शुक्रिया।'' सूबेदार सैफखान को

गैरहाज़िर देख त्यौरियाँ चढ़ गयीं, ''क्या बात है, दीवान जी? सूबेदार साहब नज़र नहीं आ रहे?''

''शहजादा हुजूर! सूबेदार साहब ने गैरहाज़िरी की मुआफी माँगी है। ज़रूरी काम से अतराफ के गाँवों में गये हैं। अपनी देखरेख में ही उन्होंने आला हजरत के ठहरने का पुख्ता इन्तज़ाम शाही महल में किया है।''

''ठीक है। वक़्त मिलते ही खाला हुजूर और उनसे मिलने हम ही आएंगे।''

ताप्ती नदी के शहरी किनारे की सतपुड़ा की पहाड़ी पर अकबर बादशाह ने शाही परिवार के लिए चार मंज़िल महल बनवाया था। चौथी मंज़िल पर शानदार हम्माम था। उन्हीं से जुड़े कमरे थे। महल के पास छोटी-सी मस्ज़िद थी। महल से जुड़ा था ख़ूबसूरत बागीचा। जिसमें रविशें, फ़ौव्वारे और छोटी-छोटी नहरें थीं। औरंगजेब ने हरम के साथ महल में मुकाम किया।

दीवान मुर्शीद कुली खान औरंगजेब का अत्यन्त विश्वासपात्र था। शाही फ़ौज़ के खर्च ही नहीं, हरम की देखभाल और खर्च भी इसी के जिम्मे था। पास के मैदान की छोलदारियों में उसके रहने का इन्तज़ाम किया गया। उसने अपना दफ्तर भी यहीं कायम किया।

खान-ए-जमाँ अमीर मुहम्मद अली ने शहर से लगी अकबरी सराय के पास के मैदान में डेरा डाला। पास ही अकबरी हम्माम था। लाल बाग में सिपहसालार हुसैन अली ने छावनी डाली। बहादुरपुर में अमीर-उल-उमरा मनसबदार इबादत खान ने अपनी फ़ौज़ के साथ मुकाम किया। सभी के जम जाने के बाद औरंगजेब ने खाला मलिका बानू से मुलाकात करना तय किया। इसका एक कारण और था। हीरा के हुस्न-ओ-जमाल की चर्चा उड़ते-उड़ते शाही महल भी पहुँची। खूबसूरत औरतों का शौक़ीन औरंगजेब उसे देखने, मिलने को बेताब हो गया।

आगरा के समान बुरहानपुर में भी तेज गर्मी पड़ रही थी। सूरज ढलने के बाद भी गर्मी की तेज़ी बरकरार रहती थी। दिन चढ़ने के साथ पहाड़ियाँ तपने लगतीं। दोपहरी ढलने के साथ गुसलखाने से तैयार हो इत्र से रचा-बसा औरंगजेब बाहर निकला।

घोड़े पर सवार हो, मेहराबदार पुल पार कर आहूखाने के बुलन्द दरवाज़े पर पहुँचा। गर्मी की तपिश से घबरा कर हीरा हम उम्र बाँदी नसरीन के साथ हरिण बाग चली आयी थी। नसरीन बाँदी कम सहेली अधिक थी। फौव्वारे चल रहे थे। हरी घास का गलीचा और रविशें पानी से तर थीं। तपन से उकताये हरिण पेड़ों की छाँह में गीली घास पर सो रहे थे। तभी थोड़ी दूर दूब चर रहे हरिण के बच्चे पर नज़र पड़ी। दबे पाँव, शरारती मुस्कान लिये हौले-हौले उसकी ओर बढ़ी। कमर पर हाथ रख नसरीन निहारने लगी।

औरंगजेब ठिठक गया। ग़ौर से दिलकश मंज़र को निहारने लगा। दिल कह रहा था। हो न हो, ये शोख, चंचल, छैल-छबीली ही हीरा है।

गिलहरी की फुर्ती और सावधानी से लपक हिरण शावक को गोद में उठा लिया। प्यार से सहलाने लगी। तभी हिरण शावक भाग जाने के लिए छटपटाने लगा। पकड़ ढीली करते ही कूद कर भाग गया। कुछ पल प्यार से निहारती रही। गुनगुनाने लगी—

''हे री मैं तो प्रेम दीवानी, म्हारो दरद न जाने कोय''

कंठ से झरता माधुर्य औरंगजेब के दिल की गहराइयों में उतर गया।

''हुज़ूर बेगम साहिबा! अमिया?'' नसरीन ने ध्यान खींचा।

''कहाँ? किधर?''

''आपके बगल की टहनी पे।'' नसरीन की अँगुली की दिशा में साग दिखी। उछली। घाघरा उड़ा। ओढ़नी नीचे गिरी। गोरी पिंडलियों, केले के खम्भों-सी गोरी पुष्ट जंघाओं की झलक। चोली द्वारा रोके जाने में असफल पुष्ट छातियों की बिजलियाँ औरंगजेब के दिल पर गिरीं।

मादक मदहोश कर देने वाली खूबसूरती ने तड़पा दिया। दिल काबू में नहीं रह गया। बरबस हसीना के पास चला गया। प्यार पहली नज़र का था।

सहसा नसरीन को लगा, बाग़ में और कोई तो भी है। टटोलती नज़रों के दायरे में जैसे ही शहजादा आया, घबरा गयी। औरंगजेब की रुआबदार शख़्सियत ने अहसास करा दिया, ये ही दखन के सूबेदार हैं।

''हाय अल्ला! बेगम साहिबा भागिए?'' नसरीन भाग खड़ी हुई।

शहज़ादे की उपस्थिति को नज़रअन्दाज़ करते हुए हीरा बड़े इतमीनान से चबूतरे से कूदी। ओढ़नी उठा, कन्धे पर डाल, जूतियाँ पहन, साग चूसती, इठलाती, बलखाती, खरामा-खरामा हरम में गुम हो गयी।

औरंगजेब देखता रह गया। ज़िन्दगी में पहली बार किसी औरत ने उपेक्षा से उसके अस्तित्व को नकारा था। हीरा की ये अदा भा गयी।

''शहज़ादे... बेटे... यहाँ क्यूँ खड़े हैं? ...कब तशरीफ़ लाये? इत्तला क्यों नहीं भिजवायी? लेने आ जाते?''

कोई कन्धा हिला रहा था। तिरबिराई नज़रों से कुछ पल मलिका बानू को निहारता रहा।

''ऐसे क्या देख रहे हो? तबियत तो ठीक है ना?'' मलिका बानू ने पुनः कन्धा हिलाया।

''ओ... आँ... हाँ... हाँ...'' संज्ञा लौटी, ''आदब अर्ज है खाला हुज़ूर।''

''खुश आमदीद! खुश आमदीद! अल्ला कयामत तक सलामत रखे। आइए, अन्दर तशरीफ ले चलिए।'' बड़े प्यार से हाथ पकड़ अन्दर ले गई।

तख़्तपोश कर बैठते-बैठते मलिका ने पूछा, ''आगरा में सब ख़ैरियत से तो हैं? बादशाह सलामत का स्वास्थ्य कैसा है? बड़ी-छोटी बेगमें कैसी हैं?''

अपने आप में खोया औरंगजेब हाँ... हूँ किए जा रहा था। नज़रें हीरा को तलाश रही थीं।

''अरे भई! हम कुछ पूछ रहे हैं? आपका ध्यान किधर है?'' मलिका ने कन्धा हिलाया।

''जी... जी... सब ठीक है? ...सब ख़ैरियत है। आपकी दुआ ...ख़ुदा के फज़्ल से सब ...ठीक है... ठीक है।''

''वो तो ठीक है। लेकिन बहू बेगम को साथ क्यूँ नहीं लाये? सुना है उनके दुश्मनों की तबियत नासाज़ रहती है?''

''सब ठीक है। कोई चिन्ता की बात नहीं?'' गाव-तकिये पर पसर गया। आँखें मूँद लीं। उड़ती घघरी... गोरी टाँगें... चटखारे ले अमिया चूसती हीरा आ खड़ी हुई।

धीर, गम्भीर, संयमी, घुन्ने औरंगजेब की हालत ने मलिका को चौंकाया।

''हाय अल्ला! ये क्या हो गया आपको? नसरीन? भई कुछ ठंडा शरबत, पानी वग़ैरह लाइए। लगता है गर्मी चढ़ गयी। इत्ती धूप-लू में निकलने की क्या ज़रूरत थी? साँझ ढले निकलते।'' बाँदी के हाथ से पंखा ले झलने लगी।

ज़िन्दगी में पहली बार किसी हसीना को लेकर अजीब, अजानी, अकुलाहट, अधीरता और बेचैनी का अहसास हो रहा था। ज़िन्दगी में अनेक औरतें आयीं। लेकिन किसी ने पहली ही बार इतना आकुल-व्याकुल नहीं किया। बाँदी शरबत ले आयी। मलिका ने वापस जाने का इशारा किया। समझी, गरमी से थके-हारे शहजादे को झपकी लग गयी है। दबे पाँव बाहर चल दी।

औरंगजेब से सामना टालने के लिए सैफखान दौरे से सीधे शिकार हेतु असीरगढ़ के जंगल की ओर निकल गया। शहजादे के दिल बहलाने हेतु मुजरे और शानदार दावत का इन्तज़ाम कर मलिका उसके उठने का इन्तज़ार करने लगी। शमादानों ने रात के आने की इत्तला औरंगजेब को दे दी।

''शहजादे बेटे! ज़ल्दी से हाथ-मुँह धो तरोताज़ा हो जाइए। खाना तैयार हो तब तक हीरा बाई के मुजरे का आनन्द उठाइए। सच बेटे। हीरा सच्चा हीरा है।''

हीरा की तारीफ़ और मुजरे की दावत ने दिल की कली खिला दी। लेकिन चेहरे पर शिकन नहीं आने दी। गुसलखाने से तैयार होकर निकला तो महफिल सज चुकी थी। अदब से मलिका की बगल में जा बैठा। दिल हीरा के दीदार के लिए बेताब था।

छम... छ... मा... छ... म... छुम... छनन... न... न... घुँघरुओं की कर्णप्रिय झनकार कानों में रस घोलते दिल की गहराइयों में उतरने लगी। घुटनों के नीचे तक सलमा सितारों से कढ़ा अंगरखाँ, चूड़ीदार पायजामों पर बँधे चाँदी के घुँघरुओं के तोड़े। सिर पर कलगी, तुर्रे वाली तिरछी मखमली टोपी। नुकीली छातियों के तीखे उभार को रोकने में असफल मखमली वास्कट... लगा जन्नत की हूर...

'तुम बिन लागे ना जियरा हमार
सजन बिन लागे ना जियरा हमार'

विरहिणी की वेदना को नृत्य की विभिन्न मुद्राओं के जरिए जिस खूबसूरती और तन्मयता से पेश कर रही थी, गजब था। नाच, गाने और चित्रकला से कोई लगाव नहीं था। परदादा अकबर के समय से चली आ रही नृत्य, संगीत-चित्रकला की परम्परा ने इन विधाओं की समझ अवश्य दी थी।

हीरा एक के बाद दूसरी चीज़ पेश कर रही थी। बुत बना देखता रह गया। उसकी हर अदा, भाव, पेश करने की भंगिमा, कटाक्ष, भौंहों, रतनारे नयनों का इच्छानुरुप संचालन, जिस्म के हर अंग पर उसका नियन्त्रण गजब का था। नाच-गाने में हीरा की महारथ देख दंग रह गया। दूसरा नाच राजस्थानी था। घाघरी थोड़ी ऊपर उठ जाने से गोरी पिंडलियों की लालिमा, औरंगजेब के दिल पर बिजली गिरी। दिल हीरा के चरणों में लौटने लगा।

नाच खत्म होते ही हीरा ने तीन आदाब किए।

''वल्लाह! क्या बात है? क्या ख़ूब!!! आप महान् अदाकारा हैं। ये नाचीज़ इनाम कबूल करने की मेहरबानी करिए?'' गले से हीरों जड़ा कंठा और अँगूठी निकाल पेश की। इच्छा तो थी पास जाकर पीठ थपथपा मुबारकबाद दें।

कुछ पल कटीली नज़रों से निहारती रही। अँगूठी का मतलब समझ गयी। ओंठ दबा दृढ़तापूर्वक इनकार किया।

औरंगजेब का चेहरा उतर गया।

हीरा के जवाब ने मलिका बानू को ख़ुश कर दिया। फ़ौरन हालात को सम्भाला, ''हीरा! इनाम कबूलिए।''

हीरा इनाम लेने झुकी। जिस्म से झरती ख़ुशबू, झुकने से चोली से झाँकते गोरे-गुलाबी पुष्ट उरोजों की झलक ने बेचैन कर दिया।

''शुक्रिया! जहेनसीब!! शुक्रिया!!!'' आदाब कर चल दी।

मलिका ने शहज़ादे की बेचैनी को भाँप लिया, ''क्या बात है बेटे? कहीं आला हजरत बादशाह हुज़ूर... वली अहद दाराशिकोह या बहू बेगमों के साथ कोई कहा सुनी...?'' बात अधूरी छोड़ दी।

''तखलिया।'' औरंगजेब के हुक्म के साथ ही बाँदियाँ बाहर चली गयीं।

''ऐसी तो कोई बात नहीं है खाला हुज़ूर!'' कुछ पल रुक कर औरंगजेब ने बात आगे बढ़ायी, ''खाला हुज़ूर! यदि अपनी तकलीफ़ बयान कर दें तो दूर कर सकेंगी?''

''कोशिश की जा सकती है। बस में हुआ तो ज़रूर करेंगे।''

''खाला हुज़ूर... व... वो... बात... ये है... ही... हीरा।''

मलिका गम्भीर-गूँगी हो आयी। मानो लकवा मार गया।

''शायद आप खालू हुज़ूर से डर गयीं?''

''ना बेटे! उसे छोड़ कोई और बाँदी, छोकरी माँगी होती तो इनकार नहीं करते। हीरा उनकी खास चहेती है। आपको उनके सुभाव की जानकारी है। आपकी चाहत का पता चलते ही बिना सोचे समझे पहले उस भोली लड़की की जान ले लेगा। हमें भी कत्ल कर दे तो ताज्जुब नहीं।'' बात ख़त्म करते-करते मलिका का गला रुँध आया।

खाला के दर्द की सच्चाई ने दिल को छू लिया, ''आपको तक़लीफ़ में डाल हीरा को हासिल नहीं करूँगा। कोई दूसरा रास्ता अपनाँऊगा। अच्छा इज़ाज़त दीजिए। ख़ुदा हाफिज़।''

मुर्शीद कुली खान अनुभव कर रहा था, आहूखाने से लौटने के बाद से शहज़ादा हुज़ूर का दिल किसी काम में नहीं लग रहा।

''गुलाम का आदाब स्वीकारें साहिब-ए-आलम।''

औरंगजेब पलटा। मुर्शीद कुली खान कमर तक झुक कोर्निश कर रहा था। जवाब दिये बिना गहरी नज़रों से ताका। औरंगजेब की ख़ामोशी ने मुर्शीद को बेचैन कर दिया, ''औरंगाबाद कूच के सारे इन्तज़ामात मुकम्मिल है। कब निकलना है हुज़ूर-ए-आला?''

आगरा के हालात से आला हजरत अच्छी तरह से वाकिफ हैं।

''आप बजा फर्मा रहे हैं। लेकिन हम दिल के हाथों मज़बूर हैं।''

मुर्शीद कुली खान चौंका। समझ गया। सैफखान के हरम की किसी हसीना पर आका का दिल आ गया है। हीरा के हुस्नोजमाल की चर्चा

सुन भी रखी थी।

"मेरे मौला! हुक्म कीजिए सैफखान के हरम से कौन-सी छोकरी उठवानी है? यदि सूबेदार ने रोकने की कोशिश की तो उसका सर भी शहजादा हुजूर के कदमों में हाज़िर कर दिया जाएगा।" एक पल रुका, "कहीं वो हीराबाई तो नहीं?"

"आपका अन्दाज़ सही है। आपके जज्बात की कदर करते हैं।" मुर्शीद के पास पहुँच औरंगजेब ने उसका कन्धा थपथपाया, "लेकिन मामला बातचीत से सुलझ जाए तो ख़ून-खराबे की क्या ज़रूरत? आप सैफखान से बात करके देखिए? शायद मान जाए?"

"जो हुक्म हुज़ूर-ए-आला।" सलाम कर जाने को मुड़ा।

"सुनिए! हीरा की एवज में हम अपने हरम की किसी हसीना को देने को तैयार हैं।"

"बेहतर हुज़ूर।"

तलवार की मूठ पकड़े मुर्शीद कुली खान बेसब्री से सैफखान के जवाब का इन्तज़ार कर रहा था। शहज़ादे के प्रस्ताव से सैफखान की पेशानी पर बल पड़ गये। पिंज़रे के शेर की मानिन्द टहल रहा था। साँप छछूँदर-सी हालत थी। इनकार का मतलब शहज़ादे से दुश्मनी। इकरार माने खास चहेती से हाथ धोना। मुर्शीद कुली खान पूरी तैयारी से आया था। ज़रूरत पड़ने पर सैफखान को कैद कर हीरा को उठवा लेने तक की तैयारी थी।

"खान साहेब! सहिब-ए-आलम ने मुनासिब प्रस्ताव पेश किया है। सोचने-विचारने की गुंजाइश ही नहीं है। हीरा बेगम को मुफ्त में नहीं ले रहे।"

"जिसे भी चाहेंगे बदले में वही मिलेगी?" सैफ की नज़रों की कुटिलता को मुर्शीद ने भाँप लिया। झाँसा दिया, "जी हाँ।" जानता था बेगम दिलरस बानू या नवाब बेगम को माँग लेने वाला कलेजा सैफ के पास नहीं है।

"ठीक है। आप तशरीफ ले जाइए। अपनी बेगम के ज़रिये ज़वाब भिजवा देंगे।"

"बेहतर हुज़ूर।" आदाब कर चल दिया।

सैफ जानता था कि धूर्तों से पाला पड़ा है। खोजा मंसूर को मश्विरे के लिए बुलवाया। मंसूर जिस वक़्त दीवानखाने पहुँचा, गाव-तकिये के सहारे अधलेटा, सोच में डूबा सैफ हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। मंसूर ने खाँस कर ध्यान खींचा, "हुज़ूर-ए-आला।"

"आओ मंसूर! आपसे राय लेनी है।" सैफ ने सारी बात खोल कर बतायी।

"गुस्ताखी माफ हो तो गुलाम अर्ज करे?"

"बेखौफ अपनी राय पेश करो।"

"हुज़ूर! एक छोकरी के लिए शहज़ादे हुज़ूर को नाराज़ करना ठीक नहीं।"

"सही कह रहे हो। ऐसा करते हैं दिलरस बानू बेगम या नवाब बेगम में से किसी एक को माँग लेते हैं?"

"ना हुज़ूर ना।"

"फिर किससे बदलें?"



"छोटा मुँह बड़ी बात। दोनों बेगमें बच्चे जन-जन ढीली पड़ गयी हैं। बड़ी बेगम दिलरस बानू अकसर बीमार रहती हैं। बादशाह सलामत भी सख्त ऐतराज जताएंगे। शाही खानदान का मामला जो ठहरा।"

"फिर?"

"सरकार शहज़ादे के हरम में छतरबाई नाम की बेहद खूबसूरत कमसिन रखैल है। हीरा बेगम साहिबा की बराबरी तो कोई क्या खाक करेगी? लेकिन छतरबाई भी उन्नीस नहीं है?"

सैफखान की आँखें चमक उठीं, "ठीक है। तुम जा सकते हो। बेगम साहिबा के साथ छतरबाई को लेने चले जाना।"

"बेहतर हुज़ूर।" सलाम कर उल्टे पाँव चला गया।

कुछ देर सोचता हुआ हुक्का गुड़गुड़ाता रहा। ताली बजायी। बाँदी ने आकर सलाम किया।

"बेगम साहिबा को भेजो।"

"कुछ ही देर में मलिका आ खड़ी हुई।"

"आइए! तशरीफ़ रखिए।"

"देखो बेगम! औरंगजेब का दिल हीरा पर आ गया है। उसकी एवज में अपने हरम की कोई भी हसीना देने को तैयार है। आप हीरा को शाही हरम में छोड़ आएँ। बदले में उसकी रखैल छतरबाई को माँग लाएँ।"

मलिका बानू परेशान हो उठी। उससे क्यूँ दलाली करायी जा रही है? हिम्मत कर कहा, "हीरा से भी पूछ...?"

"उससे क्या पूछना? हमारी जरखरीद लौंडी है वो? अख्तरी को सैकड़ों मुहरें दी हैं। जो चाहेंगे करना पड़ेगा?"

एक ख़ंजर हीरा के दिल में उतर गया।

"ख़ुदा के वास्ते हमें इस सबसे दूर रखिए।" बड़े साहस से मलिका ने विरोध जताया।

"आप अच्छी तरह जानती हैं हमें इनकार सुनने की आदत नहीं। अगर अपनी जान प्यारी है तो जाना ही पड़ेगा।" गुस्से में खड़ा हो गया। हाथ तलवार की मूठ पर चला गया, "हुक्म उदूली की तो...?"

भयभीत मलिका देखती रह गयी।

"डोली भिजवा रहे हैं। तैयार हो जाइए।" उज्र का मौका न देते हुए फैसला सुना सैफखान चल दिया।

कुछ देर गुमसुम बैठी रही। दिलरस बानू और अन्य बेगमों को क्या

मुँह दिखाएगी? आगरा का शाही हरम क्या सोचेगा? लाचार थी। पर्दे के पास हीरा को देख ठिठकी। एक दूसरे को मार्मिक निगाहों से निहारा। हीरा की रेशमी हथेली अपने हाथ में ली। स्पर्श ने एक दूसरे को सब कुछ कह दिया। अपने कमरे में ला बगल में बैठाया।

''बेगम साहिबा! सूबेदार साहब ने हम से पूछे बिना हमारी तकदीर का फैसला कर लिया? हम कोई जानवर हैं जिसके गले में रस्सी डाल चाहे जिसे सौंप दें? तवायफ़ हैं तो क्या? उन्होंने कैसे मान लिया कि हम उनकी हर जायज़-नाजायज़ माँग मान लेंगे?'' औरत के दर्द को हीरा ने उजागर कर दिया।

उसकी पीठ प्यार से सहलाते धीमे लफ्ज़ों में समझाने लगी, ''यह हर औरत की ज़िन्दगी का सच है। आपकी और हमारी हैसियत में ख़ास अन्तर नहीं है। आप बिना शादी की रखैल हैं और हम।'' एक पल रुक गहरी साँस ली, ''और हम शादीशुदा।'' दर्द से चेहरा मुरझा गया। कुछ देर बाद बोली, ''ख़ुदा का शुक्रिया अदा करो जो इस जल्लाद के कैदख़ाने से छुटकारे का मौका दे रहा है। शहज़ादा आपकी खूबसूरती, अदाकारी और गुणों की कद्र कर रहा है। जो कुछ होने जा रहा है उसे ख़ुदा की मेहरबानी मान कबूल कीजिए। शायद तकदीर का ख़ुदा आपको शाही हरम की बेगम या हिन्दुस्तान की मलिका बनने का मौका दे रहा है।''

कुछ देर हीरा चुपचाप सोचती रही। खड़े होते हुए कहा, ''आपके तहेदिल से शुक्रगुज़ार हैं हम बेगम साहिबा। हालात को नये नज़रिये से देखने का आपने मौका दिया। शुक्रिया!!'' तीन सलाम कर कमरे में चली गयी।

औरंगजेब को जब पता चला खालू सैफखान छतरबाई के बदले हीरा को देने को तैयार हो गये हैं। खाला हुजूर उन्हें लेकर आ रही है तो ख़ुशी से झूम उठा। तुरन्त छतरबाई को भिजवा दिया।

''हीरा! छतरबाई आ गयी है। पालकी तैयार है चलिए।'' मलिका बानू ने हुक्म दिया।

हीरा के आते ही पालकी के पास पहुँची खोजा मंसूर को देख डर गयी। खोजा मंसूर कुशल शमशीरबाज़ था। खून-खराबे के डर से काँपते दिल पालकी में बैठी। पर्दे गिरा दिये। जिस वक़्त महल पहुँची, झाड़-फानूस और शमादानों की रोशनी में वह नहा रहा था। बेचैन औरंगजेब बागीचे में टहल रहा था। दरवाज़े पर पालकी रुकते देख चेहरा खिल उठा। दरवाज़े की ओर लपका। चोरों की मानिन्द मलिका उतरी। रास्ते भर श्हज़ादे से अकेले में मिलने की दुआ ख़ुदा से माँगते आयी थी।

''आदाब कबूलिए खाला हुजूर।'' औरंगजेब ने स्वागत किया।

''आह! शहज़ादे बेटे! शुक्र है पाक परवर दिगार का आप यहीं मिल गये।'' ख़ुशी से चेहरा चमकने लगा। बहू बेगमों से जान बची।

''क्या हुक्म है?''

''अल्लाह ने आपके दिल की मुराद पूरी कर दी। अपनी अमानत सम्भालिए?''

मेहँदी रचे, गोरे गुलाबी हाथ ने पर्दा हटाया। आलता लगे गोरे पग हौले से बाहर निकले। ख्वाबों की मलिका बाहर आ चाँदनी में नहाने लगी। पास पहुँच इस्तकबाल किया, ''हुस्न-ओ-जमाल की मलिका को ख़ादिम का आदाब। ग़रीबखाने पर तहेदिल से स्वागत है।'' कलाई थामी। हथेली में रेशम आ गया। बिजली जिस्म में दौड़ गयी। शानदार स्वागत ने हीरा को अभिभूत कर दिया। अवसाद, क्रोध कपूर से उड़ गये। बेशकीमती वस्तु के समान आहिस्ता से सँभाल कर हीरा को महल के शानदार शाही हम्माम वाले कमरे में ठहरा दिया। खिदमत में बाँदियाँ, कनीज़ें तैनात हो गयीं।

''इजाजत दीजिए। आराम फर्माइए। खुदा हाफिज़।'' औरंगजेब बाहर चला गया। सरवरी दरवाज़े पर तैनात हो गयी। ख़ामोश पलंग पर बैठी रही। बहते पानी की कलकल, उड़ते फौव्वारे का हल्का शोर खामोशी को भंग कर रहा था। मसहरीदार पलंग, मोगरे की कलियों की महक, झारियों में सुगन्धित शीतल जल, चाँदी की रकाबियों में सूखे मेवे, सोने का वर्क चढ़ी मिठाइयाँ, नमकीन। केले, आम और कच्ची अमिया सजे थे। साग देख पतले लाल ओठों पर मुस्कान फैल गयी। पहली मुलाकात भूले नहीं?

पौधे को एक जगह से दूसरी जगह लगाने पर जड़ें जमाने में वक़्त लगता है। औरंगजेब ने उतावलापन नहीं दिखाया। दूर रह ऐशो आराम का पूरा ध्यान रखा। हीरा की मस्ती, शोखी, चुलबुलापन और चंचलतापन अजनबी माहौल में गम्भीर चुप्पी में बदल गये थे।

''हीरा बेगम! यहाँ अच्छा न लग रहा हो तो वापस जा सकती हैं। आपकी मर्जी के खिलाफ कुछ भी नहीं होगा? कभी भी कहीं भी जाने को आजाद हैं।''

गहरी निगाह से हीरा ने शहज़ादे को निहारा। उसकी संजीदगी बात का समर्थन कर रही थी।

''हीरा बेगम! सच्ची मुहब्बत देना जानती है, लेना नहीं। ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं करती। आपसे हम सच्ची मुहब्बत करते हैं।'' लफ्ज ईमानदार थे।

लम्बे समय तक गुमसुम रहना हीरा का सुभाव नहीं था। पूछ बैठी, ''कहीं भी जा सकते हैं?''

''जी हाँ।''

''आहूखाना, बोरबाड़ी भी?''

औरंगजेब चौंका। ध्यान से हीरा को निहारा। चंचल चितवन की शैतानी मुस्कान को भाँप गया। मुस्करा कर बोला, ''हाँ वहाँ भी।'' बगल में आ बैठा। हथेली चूमते बोला, ''हमारी मुहब्बत के बन्धन को तोड़ कर जा सकेंगी?'' मीठी मोहक मुस्कान से हीरा ने इनकार किया। मकसद पूरा होते ही हरम और लाव-लश्कर के साथ बिना रुके औरंगाबाद जा पहुँचा। औरंगाबाद के शाही महल में हरम सहित डेरा डाला। शाही फ़ौज के साथ आये अमीर, उमरा, मंसबदार, सिपहसालारों को शहर के विभिन्न भागों में ठहराया।

हीरा को हिमायत बाग और तालाब बेहद पसन्द आये। महल का सबसे सुन्दर सजा कमरा हीरा को दिया गया। मुजरे के लिए अलग बड़े कमरे का इन्तज़ाम हुआ। उसे मुगल शैली में सजाया गया।

चतुर हीरा समझ गयी वापस लौटना सम्भव नहीं। ख़ुशी-ख़ुशी हालात से समझौता कर औरंगजेब को रिझाने में लग गयी। तभी मुजरे का बुलावा आया। सोलह श्रृंगार करने लगी। विचारों में खोया औरंगजेब

बेसब्री से हीरा का इन्तज़ार कर रहा था। छमछमाती हीरा आ खड़ी हुई। गर्दन झुका मादक मुस्कान बिखेरी, ''आदाब! बाँदी का आदाब कबूलिए शहज़ादा हुज़ूर।''

अपने आप में खोये औरंगजेब को कर्णप्रिय घुँघरुओं की छम छम और आदाब सुनाई नहीं दिये। ध्यान खींचने के लिए पाँव पटक पुनः घुँघरु बजाए। पास पहुँच कँधा हिलाया।

''ओह! आप आ गयीं? मुआफ करिएगा। हम आगरा के शाही महल में हमारे खिलाफ रची जा रही साज़िशों के बारे में सोच रहे थे। इसलिए आपके आने का पता न चला। मुआफी चाहते हैं।'' कलाई पकड़ हीरा को खींच लिया। जूही की बेल के समान तकरीबन गोद के पास आ गयी।

''आगरा में कौन आपके खिलाफ बादशाह सलामत को भड़काएगा? छोड़िए। क्या सुनना चाहेंगे? शास्त्रीय गीत, ग़ज़ल, गीत या मुज़रा पेश करूँ?''

''कोई अच्छी-सी ग़ज़ल पेश करिए।''

मसनद से उठ हीरा सामने गलीचे पर बैठ गयी। सितार उठा सारे तारों को मिजराब से एक साथ छोड़ा। ग़ज़ल खत्म करने के बाद मुज़रे के लिए खड़ी हुई। चुड़ीदार पायजामे पर झीना रेशमी अँगरखा, वक्ष के उभार को रोकने में असफल मखमली जेकेट और सिर पर कलगी लगी टोपी। मुग्ध औरंगजेब देखता रह गया। नाचते-नाचते हीरा ने पूछा, ''शहज़ादा हुज़ूर! हमारे पगों में कितने घुँघरू हैं?''

''सैकड़ों।''

''नाचते-नाचते सारे घुँघरुओं की आवाज़ बन्द कर देंगे। सिर्फ़ एक घुँघरू... सिर्फ़ एक मीठी आवाज़ के साथ नाचेगा।''

''वाकई ऐसा कर सकोगी?''

''ज़रूर।'' पूरे अभिनय के साथ नाचने लगी। आलता लगे गोरे गुलाबी पैरों के साथ ज़िस्म थिरकने लगा। आँखें, भौंहें, पतली कटि और गोल नितम्ब तथा उरोज सभी नाच रहे थे। हस्तक और पग संचालन गज़ब का था। धीरे-धीरे घुँघरुओं की आवाज़ सधे पग संचालन और नियन्त्रण के कारण कम होती चली गयी। आख़िर में एक को छोड़ सारे घुँघरू खामोश हो गये। मात्र एक घुँघरू मिठास के साथ नाचने में हीरा का साथ दे रहा था। कुछ देर अकेले घुँघरू को नचाती रही। औरंगजेब अधिक देर ख़ुद को रोक न सका। मसनद से उतर, दौड़कर हीरा की कमर में हाथ डाल उठा लिया।

''वल्लाह! क्या करामात है? क्या कमाल है? आप तो बेहद ऊँचे पाये की अदाकारा हैं। ख़ुदा ने आपको हूर की परी तो बनाया ही है, कला में महारत ने रूप-गुण सुन्दरी बना दिया है। हम आज! इसी वक़्त!! आपको बेगम ज़ैनाबादी का खिताब अता करते हैं।'' हीरा को उठाये-उठाये ख्वाबगाह में ले गया। दरवाज़ा बन्द कर लिया।

उस रात के बाद उनके बीच गहरी समझ कायम हो गयी। एक-दूसरे को दिलोजान से प्यार करने लगे। अठारह वर्षीया नवयौवना थी हीरा। चालीस साला औरंगजेब अधेड़ावस्था की दहलीज़ पर खड़ा था। दो बेगमों, तीन-चार रखैलों और चार बच्चों का बाप था। उसका बड़ा बेटा हीरा से चार साल बड़ा था। लेकिन मुहब्बत ने उमर के फासले खत्म कर दिये। बचपन से ओढ़ी बुजुर्गियत हवा हो गयी। स्वभाव के खिलाफ ख़ुशमिज़ाज़ रहने लगा। हीरा की मुहब्बत ने जवानी लौटा दी थी।

रात पूनम की थी। नीली आसमानी झील में चाँद तैर रहा था। नशीली चाँदनी ने आकाश से धरती तक मादकता का जाल बुन रखा था। तालाब से आ रही हवाओं में ठंडक थी। नशीली रात के महत्त्व को समझते हुए बेगम जैनाबादी के हुक्म पर महल की छत पर मुज़रे का इन्तज़ाम किया गया। हीरा का हाथ थामे औरंगजेब छत पर पहुँचा।

''वल्लाह! क्या बात है जैनाबादी? पूरे चाँद की रात को यहाँ मुजरे के इन्तज़ाम के लिए आपकी जितनी तारीफ़ की जाए कम है? इन्हीं अदाओं पर तो हम दिलो जान से फिदा हैं?''

''जर्रानवाज़ी के लिए शुक्रगुज़ार हैं।'' गलीचे के बीचोंबीच खड़ी हो हीरा ने आदाब किया, ''तशरीफ रखिए।''

''एक नायाब चीज़ पेश करने जा रहे हैं। इजाजत दीजिए?''

''आपको इजाजत की ज़रूरत कब से पड़ने लगी बेगम साहिबा? इस ग़रीब ने सारी इजाजतों के साथ ख़ुद को भी आपके कदमों में बिछा रखा है।''

''शुक्रिया!'' मीठी मुस्कान के साथ आँखें मूँद सितार पर आलाप लिया, ''आँ... आँ... हेरी मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दरद न जाने कोय, हे... री... मैं... तो... श्याम दीवानी... मेरो... दरद... न... जाने... कोय... श्याम का नाम सुनते ही औरंगजेब क्रोधित हो उठा। हीरा आरोह-अवरोह के साथ अगले बोल पेश करती, उसने टोका, ''ये क्या जैनाबादी? काफ़िरों के ख़ुदा का गीत क्यूँ पेश कर रही है?'' धर्मान्ध कट्टरता छिपी न रह सकी। हैरान निगाहों से कुछ पल ताका। गुस्से से भभकी, ''शहज़ादा हुज़ूर! शास्त्रीय संगीत की समझ भी है आपको? राम श्याम शास्त्रीय संगीत की जान है। क्या श्माम के बदले अल्ला दीवान गाऊँ? आपके परदादा अकबर बादशाह के समय से मियाँ तानसेन द्वारा भी राम कृष्ण को ले सर्वश्रेष्ठ शास्त्रीय संगीत पेश किया जा रहा है। इसकी ख़ातिर वे स्वामी हरिदास का संगीत सुनने वेष बदल मथुरा गये। संगीत की ख़ातिर दुश्मन राजाओं के चित्तौड़ जा सन्त मीरा के भजन सुने। सम्राट जहाँगीर भी संगीत के शौकीन थे। आपके अब्बा हुज़ूर शाहजहाँ— मुमताज बेगम, संस्कृत के अच्छे जानकार हैं।

संस्कृत के प्रकांड विद्वान पंडित राज जगन्नाथ आपकी अम्मी हुज़ूर के उस्ताद रहे। शाही हरम की शहज़ादी लवंगी से पंडितजी को विवाह करने की इजाजत दी। ऐसे उदार शाही खानदान के वारिस से इतनी घटिया बात की तो हमें उम्मीद नहीं थी। सितार परे सरका गुस्से में पीठ फेर बैठ गयी।

औरंगजेब सिटपिटा गया। मादक रात बरबाद नहीं करना चाहता था। हीरा के पास आ बैठा। हथेली हाथ में ले ली, ''इतनी छोटी-सी बात पर नाराज़ हो जाएगी, खादिम ने सोचा भी नहीं था?'' घुँघरू बँधे पैरों पर हाथ रख माफी माँगी।

हीरा चुप बैठी रही।

''गुलाम आप पर दिलोजान से निछावर है। लगता है आप हमसे सच्ची मुहब्बत नहीं करते? आपकी गलत बयानी पर हमारी नाराजी प्यार का सबूत है। और फिर...'' हीरा ने जानबूझ कर बात पूरी नहीं

की।

"और फिर से क्या मतलब?"

जवाब देने से हीरा को शर्म-सी महसूस हुई। शर्म से सुर्ख हो गयी, "यदि आपसे बेइन्तहा प्यार न किये होते तो अपने ज़िस्म में प्रवेश करने की इजाजत क्यूँ देते?"

औरंगजेब लाज़वाब था। मौन एकटक हीरा को निहारता रहा। फिर बोला, "हीरा... हीरा... आपका कोई सानी नहीं? मुजरे में क्या पेश कर रही हैं?"

"सबसे बढ़िया चीज़ पेश करेंगे। आपने तो हमारे प्यार का इम्तहान ले लिया। आप कितना प्यार करते हैं, इम्तहान लेना ज़रूरी है।"

"ज़रूर लीजिए। जान हाज़िर है।" नौजवान प्रेमी के समान सीने पर हाथ रख सिर झुकाया।

हीरा ने ताली बजायी। बाँदी नक्काशीदार चाँदी की तश्तरी में दो-तीन प्यालियाँ और सुराहियाँ ले हाज़िर हो गयी। अदब से रख उल्टे पाँव सलाम कर लौट गयीं।

औरंगजेब का चेहरा पीला पड़ गया, "ये क्या हीरा? आपको मालूम है शराब हमारे लिए हराम है। इम्तहान के लिए इसका सहारा क्यूँ ले रही हैं?"

जवाब में मुगल खानदान की नशाखोरी का जो कच्चा चिट्ठा हीरा ने पेश किया, उसने औरंगजेब को गूँगा कर दिया। गुमसुम बैठा रहा। हीरा ने प्याले में शराब ढाल जाम पेश किया। न पीते बन रहा था न इनकार करते।

"हीरा बेगम! हमारे शराब पीने से आप ख़ुश होंगी तो..." कुछ पल रुका, "तो तैयार हैं।" जवाब सच्ची मुहब्बत का इज़हार बन गया। प्याला आहिस्ता से उसके हाथ से लिया। चेहरे पर मुर्दनी छा गयी। अंगूरी का जाम नहीं ज़हर का प्याला ले लिया था। काँपते हाथों थरथराते ओठों तक ले गया। पीता उसके पहले ही कोमल हथेली ने कलाई पकड़ ली। प्याला छलका, कुछ बूँदों ने कपड़ों, ओठों और तराशी दाढ़ी को तर कर दिया। प्याला छीन फेंक दिया।

"बस... बस... बस... शहज़ादा हुजूर... बस कीजिए। हमारी इच्छा इस मुई शराब से आपका मुँह कड़वा करने की नहीं थी। मुहब्बत के इम्तहान में पास हो गये।" प्यार से सराबोर ख़ुशी से चमकते चेहरे से मृणाल-सी भुजाओं के आगोश में शहज़ादे को ले लिया।

घुँघरुओं की रुनझुन, प्यालों की खनखनाहट की गूँज से आगरा का शाही महल गूँजने लगा। कट्टर दुश्मन दाराशिकोह को औरंगजेब को शाहजहाँ की नज़रों से गिराने का सुनहरा मौका मिल गया।

"आला हज़रत! ख़ुद को ख़ुदा परस्त, पाँचों वक़्त नमाज़ का पाबन्द बतलाने वाला वो ढोंगी, बीजापुर-गोलकुंडा से खिराज वसूलने की बजाय रंगरेलियाँ मना रहा है। शाही हुक्म की उदूली कर शराब, शिकार और एक रक्कासा के मुजरों की महफिलों में मशगूल है। मुगल खानदान की इज्जत से खेल रहा है।"

शाहजहाँ की त्यौरियाँ चढ़ गयीं। माबदौलत इसे नज़र अन्दाज़ नहीं कर सकते? वज़ीर-ए-आला को शाही फरमान तुरन्त ज़ारी करने का हुक्म दें। जिस काम के लिए भेजा है उसे तत्काल पूरा नहीं किया तो उस नामुराद के खिलाफ कठोर कार्यवाही की जाएगी।

दारा की बाँछें खल उठीं।

घुँघरुओं-प्यालों ने शाही परिवार की राजनीति में औरंगजेब के हितों के सरपरस्त शहज़ादी रौशनआरा और मामू शाइस्ता खान को भी परेशान कर दिया। शाइस्ता खान की ओर मुखातिब हो बोली, "मामूजान! कहीं भाईजान अपने हमदर्द और वफादारों को भी अपना दुश्मन न बना लें?"

"शहज़ादी साहिबा बजा फरमा रही हैं। औरंगजेब को रास्ते पर लाने के लिए उस छोकरी को उनकी ज़िन्दगी से हटाना होगा।" शाइस्ता खान ने चिन्ता जतायी।

बिना ज़वाब दिए रौशनआरा गहरे सोच में डूब गयी। रौशनआरा के ताली बजाने पर बाँदी दौड़ी आयी।

"फ़ौरन से पेशतर अमर और दौलत को हमारे हुज़ूर में हाज़िर करो।"

"जो हुक्म हुज़ूर।" सलाम कर बाँदी उल्टे पाँव दौड़ आयी।

अमर और दौलत ने तुरन्त हाज़िर हो सलाम किया।

"अमर! फ़ौरन औरंगाबाद के लिए रवाना हो। शहज़ादा औरंगजेब के हरम में ख़िदमत करनी है। वहाँ बेगम हीराबाई ज़ैनाबादी नाम की तवायफ़ है। मौका मिलते ही उसे जहन्नुम में पहुँचाना है। असफल रहने पर तुम्हारे खिलाफ सख्त कार्यवाही होगी।" शहज़ादी का ख़ूबसूरत चेहरा बदसूरत हो गया।

अमर शहज़ादी का खास चहेता था। मन ही मन डर गया। मगर ऊपर से शान्त गम्भीर बना रहा, "जो हुक्म शहज़ादी हुज़ूर।"

"रास्ते के खर्च के लिए ये अशर्फियाँ रख लो।" रेशमी थैली उसकी ओर उछालते कहा, "औरंगाबाद में दीवान मुर्शीद कुली खान खुरासानी को हमारा आदाब कहना। वे आपकी सभी प्रकार से मदद करेंगे।"

दौलत की ओर मुखातिब हो शहज़ादी ने हुक्म दिया, "दौलत! तुम्हें भी औरंगाबाद के हरम में रह इस छोकरे पर कड़ी निगरानी रखना है। जैसे ही वह हीरा का काम तमाम करे, तुम्हें उसे उसी क्षण खत्म कर देना है। औरंगजेब को क्या ज़वाब देना होगा, सोच लेना।"

"आप निसा ख़ातिर रहें हुज़ूर। मुकम्मिल काम पोशीदा ही रहेगा।" दौलत शाही हिजड़ा थी।

रौशनआरा जैसी हसीना ने जिस ठंडे दिल-दिमाग से हीरा की हत्या की साज़िश रची थी शाइस्ता खान देखता ही रह गया।

ज़िन्दा पीर-ओ-मुर्शद, फकीर औरंगजेब के पतन से एक शख्स और परेशान था। वह था दीवान मुर्शीद कुली खान खुरासानी। शहज़ादे की कट्टर इस्लाम-परस्ती का मुरीद था। जादुगरनी हीरा ने शहज़ादे को भेड़ा बना रखा है। शहज़ादे को ख़ुदा के रास्ते पर लाने के लिए हीरा को हटाना पड़ेगा। मगर रास्ता नहीं सूझ रहा था। ऐसे वक़्त अमर, दौलत आगे-पीछे औरंगाबाद पहुँचे। मुर्शीद शहज़ादी का खासमखास था। दोनों का हरम में इन्तज़ाम कर दिया।

हीरा अनुभव कर रही थी कि कोई सतत पीछा करता रहता है। एकाध बार भाँपने की कोशिश की। अमर फुर्ती से खम्भों, पर्दों की आड़

में जा छिपता। वहम मान ध्यान देना बन्द कर दिया। अमर को तत्काल पता चल गया कि हिमायत बाग बेगम ज़ैनाबादी की ख़ास पसंदीदा जगह है। अपना अधिकांश समय यहीं बिताती है। कपड़ों में रामपुरी चाकू छिपाये अमर मौके की तलाश में था। अमर की मौत बनी दौलत भी साये-सी मँडरा रही थी।

जिस मौके की तलाश में था शीघ्र ही मिल गया। कासिद ने मुर्शीद कुली को शाही फरमान दिया। शहज़ादा हुज़ूर को तत्काल दफ्तर आने का निवेदन किया। औरंगजेब हीरा से रसीली बातों में मशगूल था। फरमान की सूचना मिलते ही उठते हुए बोला, ''हीरा बेगम आगरा से कोई हुक्मनामा आया है। इच्छा तो जाने की नहीं है, लेकिन मज़बूर हैं।''

''आपने ज़रूर जाना चाहिए। बादशाह सलामत ने जो फरमान भेजा है उसकी तामील करना आपका फर्ज़ है। आपके आने तक हम भी हिमायत बाग की सैर कर आते हैं।''

हीरा बाग में पहुँची। कुछ देर टहलने के बाद झूले पर जा बैठी। ज़मीन को पाँव से धकेल झूलने लगी। अमर सामने जा खड़ा हुआ।

''अरे अमर आप? कैसे तशरीफ लाये?''

''बेगम साहिबा हुक्म हो तो गुलाम पीछे से धक्का दे ताकि आप आसमान की ऊँचाइयों तक झूल सकें?''

''ज़रूर... ज़रूर... आपकी मदद के शुक्रगुज़ार होंगे।''

अमर झूले के पीछे चला गया। रस्सियाँ पकड़ लम्बी दूर तक ले गया। फिर दौड़ कर आगे ले जा छोड़ा। झूला हवा से बातें करने लगा। हीरा गुनगुनाने लगी। अमर झुला ज़रूर रहा था मगर हमले का मौका ढूँढ़ रहा था। अमर को हीरा के पीछे बागीचे जाते देख दौलत भी दबे पाँव पीछे लग गयी। पेड़ों, झुरमुटों का आड़ ले अन्तर दे अमर के पीछे पेड़ की आड़ में जा छिपी। झूले के पीछे आते ही अमर ने रस्सी पकड़ रोक लिया। बिजली की तेज़ी से चाकू के दो-तीन वार हीरा की पीठ पर कर दिये। अमर ने गले पर वार पर वार किये। नसें कट जाने से हीरा चीख भी न सकी। ख़ून सनी मृत देह ज़मीन पर गिर पड़ी।

जिस तेज़ी से अमर ने हीरा की हत्या की, उससे दौलत घबरा गयी। शीघ्र सम्भली। छुरे को उछाला। नीचे आते ही पकड़ कस कर ताक कर मारा। ज़हर बुझा छुरा गहरे तक अमर की पीठ में जा धँसा। हीरा की बगल में थोड़ी दूर अमर की लाश गिरी।

शाही हुक्म पढ़ने के बाद औरंगजेब ने फर्मान मुर्शीद कुली को सौंपते कहा, ''बादशाह सलामत के हुक्म की फौरन तामील होगी।'' हीरा से मिलने बाग की ओर चल दिया। हीरा, अमर की लाशें देख चीखा, ''या ख़ुदा? ये क्या हो गया? अल्ला रहम रहम।'' दौड़कर घटना स्थल पर पहुँचा। दौलत को देख उसके कंधे को ज़ोर से झकझोरते पूछा, ''दौलत! किस शैतान ने ये किया है? यदि आप हैं तो आपके ज़िस्म के टुकड़े-टुकड़े कर कुत्तों-सुअरों को खिला देंगे।'' उसने तलवार निकाल ली।

''शहज़ादा हुज़ूर! गुलाम ने कुछ नहीं किया। बेगम साहिबा को बचाने हम तो दौड़े-दौड़े आये। तब तक इस नामुराद हरामज़ादे ने न जाने क्यूँ, किसके हुक्म पर बेगम साहिबा की जान ले ली। अपने गुस्से को काबू न कर पाने के कारण इस बेगैरत को जहन्नुम भेज दिया, साहिब-ए-आलम। गुलाम की इस गुस्ताखी के लिए जो भी सज़ा देना चाहें दें। गुलाम बाखुशी मंजूर करेगी।''

दौलत की सफाई ने लाज़वाब कर दिया। चेहरे पर मुर्दनी छा गयी। तड़पते दिल से अन्दर ही घुटते हुए हीरा की लाश, दर्दीली निगाह से देखता रहा। वेदना के ताप ने आँसू सोख लिये थे। हीरा के कत्ल की ख़बर जंगली आग-सी हरम में फैल गयी। दिलरस बानू बेगम, बेगम रहमत-उन-निसाँ, बाँदियाँ, कनीज़ें दौड़ कर बागीचे पहुँचीं। लाशों को देख कुहराम मच गया। हीरा हर दिल अज़ीज बन गयी थी।

शाही रस्मो रिवाज़ के अनुसार बेगम ज़ैनाबादी की मय्यत को औरंगजेब ने कंधा दिया। उसके पसंदीदा तालाब के किनारे सुपुर्दे खाक कर दिया गया। डबडबायी आँखों, भरे गले औरंगजेब ने अपनी महबूबा की रुह की सलामती वास्ते उसकी फूलों सजी कब्र पर फातेहा पढ़ा। कई दिन शोक में डूबा रहा। गीत, संगीत, नाच-गाने से सख़्त नफरत हो गयी। दिल खोलकर रो न पाने के कारण बेचैन कर देने वाली घुटन बढ़ जाने पर उससे छुटकारा पाने शिकार की योजना बनायी। ख़ासबरदार अकिल खान को शिकार का इन्तज़ाम करने का हुक्म दिया। अकिल खान शहज़ादे की मनःस्थिति से वाकिफ़ था। आका को समझाने लगा, ''साहिब-ए-आलम की दिमाग़ी हालत ठीक नहीं है। ऐसे में शिकार के लिए जाना उचित नहीं होगा?''

''अकील खान! सिर्फ़ इसी लड़की से हमें दिली मुहब्बत थी। हम दोनों ने एक-दूसरे को अच्छी तरह से समझ लिया था। उसकी जुदाई ने विक्षिप्त कर दिया है। इसकी ज़िन्दगी का गुलाब पहले बसन्त में ही मुरझा गया।'' औरंगजेब का गला घुटने लगा। अधिक बोल नहीं पाया। अकिल के कन्धे पर हाथ रख भग्न हृदय बोला, ''घर में किया गया विलाप दिल को सुकून नहीं दे सकता। अकेले में ही कोई जी भर रो सकता है।''

नवम्बर 2009 : पुस्तक मेलों में

भारतीय ज्ञानपीठ

की भागीदारी

जयपुर पुस्तक मेला : 31 अक्तूबर से 8 नवम्बर

स्थान : अम्बेडकर सर्किल, जयपुर

भोपाल पुस्तक मेला : 31 अक्तूबर से 9 नवम्बर

स्थान : क्रिटेन मार्केट ग्राउंड, भोपाल

पटना पुस्तक मेला : 7 से 15 नवम्बर

स्थान : गाँधी मैदान, पटना

राँची पुस्तक मेला : 20 से 30 नवम्बर

स्थान : जयपाल सिंह स्टेडियम, राँची

स्थानीय लेखकों, पुस्तकालय प्रमुखों तथा पुस्तक प्रेमी बन्धुओं का *भारतीय ज्ञानपीठ* के स्टॉल पर स्वागत है।

प्रांजल धर

प्रेम का लोक पक्ष : लोकप्रिय मीडिया का विपक्ष



प्रेम के लोकपक्ष को लेकर बहुत कुछ कहा और सुना गया है और इस विषय पर गम्भीर साहित्यिक रचनाओं की भी कमी नहीं रही है। प्रेम के अनेक पक्ष होते हैं और सभी जानते हैं कि इन अनेक पक्षों में से लोकपक्ष बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि लोकपक्ष एक आम आदमी के दिन-रात के संघर्षों का जायज़ा लेते हुए जीवन्तता के साथ सामने आता है। लोकनीति, लोक परम्परा व लोक भाषा जैसे अनेक शब्द हमारी आबादी के सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्से की ओर इशारा करते हैं। पर बात जब प्रेम के लोकपक्ष की हो, तब आदान-प्रदान के अनेक रूप और संप्रेषण के अनेक माध्यम अपनी खास भूमिका लेकर हमारे सामने आते हैं। आज यह सवाल कहीं ज़्यादा प्रासंगिक है कि मीडिया ने प्रेम के लोकपक्ष को कितना प्रभावित किया है, मीडिया स्वयं प्रेम के लोकपक्ष से कितना नियंत्रित-निर्देशित हुआ है और प्रेम का लोकपक्ष, लोकप्रिय मीडिया से किस प्रकार गुँथा-बिंधा है।

मीडिया ने प्रेम की बारीक पड़ताल करके अक्सर यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रेम का अर्थ सनसनीखेज उत्तेजना भर है। सबसे तेज़ होने का दावा करने वाले ख़बरिया चैनलों ने प्रेम, हिंसा और संवेदनहीनता का ऐसा घालमेल किया है कि प्रेम का लोकपक्ष कहीं हाशिये पर चला गया है। हाँ, मुनाफ़े को परम लक्ष्य मानने वाले मीडिया ने लोकपक्ष का कम से कम उतना उपयोग ज़रूर किया है जितना लाभ की रेस में जीतने के लिए ज़रूरी है। विज्ञापन और जनसंपर्क का क्षेत्र भी प्रेम के लोकपक्ष को मुनाफ़े के लिए गहराई से रेखांकित करता है। आइडिया जैसी अनेक मोबाइल कम्पनियों ने गाँव-देहात के लहलहाते खेतों में काम कर रही एक प्रेमिका के मन को पढ़कर प्रेम के नये लोकबिम्ब गढ़े हैं। इन बिम्बों में देशज शब्दों का ठोस जीवन है, सरल और निश्छल प्रेम की ख़ूबसूरत अभिव्यक्तियाँ हैं और तकनीक के इस्तेमाल के नये सफलतावादी प्रतिमान हैं।

पर ऐसा नहीं है कि केवल आज का ही मीडिया प्रेम के लोकपक्ष की पड़ताल करता है। दिलीप कुमार की 'गंगा-यमुना' फिल्म के अनेक हरे-भरे ग्रामीण दृश्यों को भला कौन भूल सकता है? वैजयन्ती माला पर फिल्माये गए गीत 'ढूँढ़ो-ढूँढ़ो रे साजना, ढूँढ़ो रे बालमा, मोरे कान का बाला' लोक में रची-बसी एक प्रेमिका की अठखेलियों को जबान देता है। उसके पहले भी जब तकनीकें इतनी सुविकसित नहीं थीं तब प्रेमी-प्रेमिकाओं ने पशु-पक्षियों के ज़रिये आपसी सन्देशों का आदान-प्रदान किया था। कबूतर, तोता और कौआ इन सन्देशवाहक पक्षियों में प्रमुख स्थान रखते हैं। कथा को एक स्थान से दूसरे स्थान तक या एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने वाले काकभुशुण्डि का नाम इस सन्दर्भ में निस्सन्देह उल्लेखनीय है। इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि प्रचीन समय में जो तोते सन्देशवाहक का काम करते थे उनके गले में एक विशेष किस्म की पट्टी होती थी। ऐसी पट्टियों का प्रयोग इसलिए किया जाता था जिससे सन्देशवाहक तोते, अन्य साधारण तोतों से अलग पहचाने जा सकें। इनकी पहचान अलग रखने का कारण यह था कि शिकारियों द्वारा इनका शिकार निषिद्ध था। फिर भी प्रेम के दोनों पक्षों के परिवारीजनों के मध्य होने वाले अनेक लोकयुद्धों में इन सन्देशवाहक पक्षियों को अपनी जान गँवानी पड़ती थी।

मीडिया या माध्यम के इन पुराने रूपों की चर्चा में मलिक मुहम्मद जायसी का पदमावत विशेष स्थान से सुशोभित है। राजा रतनसेन जब अपनी पत्नी नागमती को घर पर छोड़कर सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मिनी (पद्मावती) की खोज में निकल पड़ते हैं और लम्बे समय तक वापस नहीं आते हैं तो नागमती अपने पति के वियोग में बेहद परेशान होती है। प्रेम और लोकपक्ष को व्यक्त करने में जायसी का बारहमासा वर्णन बहुत प्रसिद्ध है। नागमती भौंरों और कौओं से कहती है कि तुम लोग जाकर मेरे पिया से कहना कि तुम्हारे विरह में तुम्हारी पत्नी जल रही है और जलने के दौरान उसी का धुआँ हमें लगा है। इसी धुएँ की वज़ह से हम काले रंग के हो गये है। मीडिया के इस प्राचीन रूप की तत्कालीन महत्ता व अनिवार्यता द्रष्टव्य है जहाँ नागमती कहती है :

पिय सौं कहेउ सँदेसड़ा, हे भँवरा हे काग।
सो धनि बिरहे जरि मुई, तेहिक धुँआ हमिं लाग॥

पर मीडिया के इन प्राचीन रूपों— सन्देशवाहकों ने प्रमियों को शायद ही कभी निराश किया हो। अगर हीरामन तोता पद्मिनी और रतनसेन के बीच का माध्यम है तो लम्बे समय तक पिया को कोई समाचार न पाने पर नागमती का इन पक्षियों पर दृढ़ विश्वास भी ग़ौर करने लायक है। नागमती कहती है कि लगता है, उस देस में कोयलें या पपीहे नहीं पाये जाते, वरना मेरे पति ज़रूर वापस आ जाते— "ना कोकिल न पपीहरा, केहि सुनि आवहिं कन्त।"

आज के मीडिया ने प्रेम का ऐसा वस्तुकरण किया है कि साधन को साध्य से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है, कुतर्क को भावनाओं से श्रेष्ठ साबित किया है और प्रेम की लोकगम्भीरता या लोकमाधुर्य को दरकिनार करके कानफोड़ ध्वनियों को अनावश्यक महत्ता प्रदान कर दी

है। हालाँकि प्रख्यात आलोचक रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी के पदमावत में वर्णित प्रेम के लोकपक्ष को देखकर बहुत पहले ही यह कहा था— ''यह आशिक-माशूकों का निर्लज्ज प्रलाप नहीं है। यह एक गम्भीर हिन्दू गृहिणी की विरहवाणी है।'' सवाल उठता है कि क्या आज का मीडिया प्रेम के लोकपक्ष की गम्भीरता को प्रचारित-प्रसारित करने लायक रह गया है? क्या प्रिंट मीडिया की सम्पादकीय वरीयताएँ प्रेम की लकीरों को यथोचित न्याय के साथ व्यक्त कर पाती हैं? रेडियो चैनलों में विविध भारती और एफ.एम. गोल्ड जैसे एकाध गम्भीर चैनल ज़रूर मौजूद हैं जो प्रेम के लोकपक्ष को ध्यान में रखते हुए अपने 'छायागती' या 'पुरानी जीन्स' जैसे कार्यक्रमों का प्रसारण करते हैं। फिर भी कहना अनुचित नहीं होगा कि ज़्यादातर रेडियो चैनलों ने प्रेम का बड़ा भौतिकवादी और हड़बड़ीयुक्त चित्रण किया है जिसमें लोकप्रिय लोकपक्ष नदारद है।

हिन्दी सिनेमा के अनेक गीतों ने इस लोकपक्ष को अपने-अपने तरीके से व्यक्त किया है। 'इक गाँव की गोरी बाबू दिल लहरी' से लेकर 'मेरा गाँव मेरा देश' तक अनेक गीतों-फ़िल्मों ने दर्शकों में प्रेम के लोकपक्ष की धारा को सूखने नहीं दिया। 'कोहबर की शर्त' जैसे उपन्यासों को लेकर अनेक फ़िल्में बनायी गयीं। इनमें से कुछ फ़िल्मों ने तो इस लोकपक्ष को ऊपर उठाकर मुख्यपक्ष का दर्ज़ा दिलाया। 'नदिया के पार' फ़िल्म ने अपनी स्टोरीलाइन और कोरियोग्राफ़ी के अलावा लोकपक्ष के समग्र रेखांकन को समेटते हुए अनेक बेहतरीन गीत दिये। फ़िल्म में लोकपक्ष इस कामयाबी के साथ उभरा कि फ़िल्म के अनेक गीत, करीब-करीब लोकगीत बन गये। 'कौन दिसा में लेके चला रे बटोहिया' और 'जोगी जी धीरे-धीरे' जैसे गीत तो आज भी बहुत अधिक सुने और सराहे जाते हैं। जो मीडिया आज ख़ुद को लोकप्रिय कहते हुए थकता तक नहीं, सवाल उठता है कि ऐसे लोकप्रिय मीडिया के कितने ऐसे गीत हैं जिन्हें इस प्रकार का लोकगीत-स्तर प्राप्त हो सका?

पर सिनेमा ने प्रभाव की अपनी ताक़त को पहचाना है और पुनरावृत्ति का ख़तरा मोल लेते हुए अनेक बार लोककथाओं पर फ़िल्मों का निर्माण किया है जिनमें 'लोक' को आधुनिकीकृत करके दर्शकों का दायरा बढ़ाने की पूरी कोशिश की गयी है। 'नदिया के पार' की रीमेक, 'हम आपके हैं कौन' की क़ामयाबी भला और क्या कहती है? 'दीदी तेरा देवर दीवाना, हाय राम, कुड़ियों को डाले दाना' जैसे गीतों ने प्रेम के लोकपक्ष का समय के मुताबिक समायोजन करके जबरदस्त वाहवाही लूटी। इसी प्रकार यसुदास का एक प्रमुख गीत 'गोरी तेरा गाँव बड़ा प्यारा, मैं तो गया मारा, आके यहाँ रे' बहुत प्रशंसित हुआ और लोकबिम्बों की अतिशयता से युक्त इस गीत ने 'लोक' की एक बोल्ड और गतिशील ध्वन्यात्मक संकल्पना प्रस्तुत की।

प्रेम में जान देने की उतावली को मीडिया ने सावधानी से रेखांकित किया है। गाँव-देहात और अनपढ़ों के बीच फिल्माया गया वह दृश्य कितना बड़ा मील का पत्थर है जिसमें धर्मेन्द्र ऊँचाई पर चढ़कर कहते हैं— ''सुन लो गाँव वालो सुनो! ...आई एम करिंग सुसाइढ।'' 'शोले' फिल्म में लोकपक्ष की बारीकी तो देखिए, जब एक गाँव वाला, दूसरे गाँव वाले से पूछता है कि 'ये सुसाइड क्या होता है?' तो दूसरा व्यक्ति कहता है— ''अँग्रेज लोग जब मरते हैं तो उसको सुसाइड कहते हैं।'' जय, वीरू और बसन्ती के बहाने यह फ़िल्म हमें एक बड़े कैनवस पर ले जाती है, जहाँ प्रेम की लोक कहानी के अलावा दायित्वों का महानगर भी मौजूद है। भारत की परम्परा में नायक की कल्पना इसीलिए एक उदात्त व्यक्ति के रूप में की गयी है ताकि उसका यह औदात्य प्रेम के लोक और त्याग सहित अनेक पक्षों को समाहित कर सके। ऐसा प्रेम जयशंकर प्रसाद की कृति 'स्कन्दगुप्त' के नायक स्कन्दगुप्त और नायिका देवसेना में भी देखा जा सकता है। स्कन्दगुप्त जब नायिका के साथ कहीं दूर जाकर एकान्त में रहने की कल्पना करने लगता है तो नायिका देवसेना उसके औदात्य के क्षरण को देख नहीं पाती और प्रेम के त्यागमय पक्ष को प्रधानता देती है।

लोकप्रिय मीडिया की जो भी भूमिका रही हो, हमें ध्यान रखना पढ़ेगा कि जो दुनिया हमें मिली है, वह लोक और लोकसम्बन्धों के खुरदुरे और अनगढ़ हाथों से ही सँवरी है। आज जो कुछ भी हमें मिला है, वह लोक का दिया हुआ है। यह लोक ही है जिसका भौतिक परिस्थितियों में सीधा हस्तक्षेप होता है। इससे हमें सधी अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। इन सधी अनुभूतियों से जुड़े प्रेम का लोकपक्ष बेशक आज गौण हो गया हो, पर है यह बहुत महत्त्वपूर्ण। इस लोकपक्ष से मीडिया का सरोकार बहुत ज़्यादा नहीं रहा है। आज तो हमारा लोकप्रिय मीडिया इस लोकपक्ष को विपक्ष में रखकर 'मॉडर्न' होने की तमाम अवसरानुकूल कोशिशें किया करता है। भला हर फ़िल्म में नायक-नायिका का स्विट्ज़रलैंड या ऑस्ट्रेलिया में मिलना, अँग्रेजी में एक-दूसरे से बातचीत करके दर्शकों को आतंकित करना और क्या अर्थ रखता है? लोक का पक्ष जब लोकप्रिय मीडिया के लिए विपक्ष की भूमिका निभाने लगे तब ये विमर्श और अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं।

प्रेम के लोकपक्ष को मुद्रित माध्यमों में साहित्य ने कई बार वर्णित किया है। चाहे वह राही मासूम रजा के उपन्यास 'आधा गाँव' का शीर्षक हो या फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' में वर्णित डॉक्टर प्रशान्त का गाँव की एक लड़की से प्रेम-सम्बन्ध हो या फिर 'गोदान' में मालती-मेहता संवाद के ज़रिये प्रेम के बहुवर्णी पक्षों को अनावृत्त करने की प्रेमचन्द की महत्त्वपूर्ण कोशिश हो, प्रेम के अनेक सुर दिखाये-सुनाये गये हैं। प्रेमचन्द जब ग्रामीण परिवेश में रचित उपन्यास गोदान में यह कहते हैं कि 'मालती, भीतर से तितली है, बाहर से मधुमक्खी', तो वह एक आधुनिक स्त्री के मन में स्थित लोकप्रेम की थाह ले रहे होते हैं। दिनकर की 'उर्वशी' प्रेम का एक भिन्न और ऊर्जित आयाम प्रस्तुत करती है। 'तीसरी कसम उर्फ़ मारे गए गुलफ़ाम' में रेणु ने जो लिखा, 'तीसरी कसम' में प्रेम के उस लोकपक्ष को दिखाया गया। वहीदा रहमान और राजकपूर ने परदे पर प्रेम के लोकपक्ष को कुछ ऐसे उकेरा कि 'सजनवा बैरी हो गये हमार... जाइ बसे परदेस पियाजी, सौतन के भरमाए... डूब गये हम बीच भँवर में, दरद न जाने कोय, करमबा बैरी हो गए हमार...'' जैसे गीत आज तक पसन्द किये जाते हैं।

प्रेम का लोकपक्ष दीर्घजीवी होता है और मीडिया अधिकतर उन घटनाओं को प्राथमिकता देता है जिनमें तात्कालिकता या सामयिकता का पुट अधिक होता है। मीडिया लोक के इस स्वभाव को जानता है कि लोगों की स्मृति बड़ी छिछली होती है और उनके दिमाग़ में ज़्यादा दिनों

तक कोई घटना विद्यमान नहीं रह सकती। आज जब ख़बरों का एजेंडा विज्ञापनों के दबाव से तय हो रहा हो तब ये चीज़ें और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं क्योंकि विज्ञापन ज़्यादातर युगल-केन्द्रित होते हैं या युगलीकरण की ओर उन्मुख होते हैं।

ज़ाहिर है कि मीडिया-प्रबन्धक और रिपोर्टर सभी जानते हैं कि आम आदमी को क्या चाहिए। इसी 'चाहिए' को लेकर आज ख़बरों की परिभाषा यह हो गयी है कि ख़बर वह है जो लोगों द्वारा पसन्द की जाए। इसी प्रकार प्रेम की परिभाषा भी गढ़ी जा रही है कि प्रेम वह है जिसे पाकर लोग रोमांचित और उत्तेजित हो उठें, उचित-अनुचित का विवेक खो बैठें। हाल ही में आयी सतीश कौशिक की फ़िल्म में अनुपम खेर ने एक बड़ी अच्छी बात कही है कि ...नाबलिग बच्चों की पढ़ाई-लिखाई छूट जाती है, कैरियर ख़राब हो जाता है, माँ-बाप और पड़ोसी छूट जाते हैं ...फिर भी लोग कहते हैं कि 'लव विन्स'। क्या वास्तव में यह प्रेम की जीत है। स्पष्ट है कि मीडिया को पता है कि आज उसके दर्शक को नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासो पढ़ने की फ़ुर्सत नहीं है। वह सन्देशरासक भी क्यों पढ़ेगा? उसे बीसलदेव रासो के नायक विग्रहराज चतुर्थ या नायिका राजमती से कोई मतलब नहीं है, भले ही उसमें प्रेम का लोकपक्ष पूरी गरिमा के साथ व्यंजित होता हो!

मीडिया माध्यम ज़रूर है लेकिन वैसा माध्यम नहीं रहा है जैसा नल-दमयन्ती प्रसंग में हंस रहा है। यह हंस इन प्रेमियों के मध्य सन्देशवाहक है और यह लोकपक्ष इतना प्रभावशाली है कि राजा रवि वर्मा इस पर चित्र बनाने से स्वयं को रोक न सके। 'दमयन्ती' शीर्षक वाले अपने इस अद्भुत चित्र में रवि वर्मा ने हंस के मुख से दमयन्ती को सन्देश सुनवाया है। दमयन्ती खड़ी होकर तल्लीन हो गयी है और हंस से प्रेम का सन्देश सुनती जा रही है। इन्हीं पक्षियों से मनुष्यों ने ही नहीं, स्वयं राम ने क्या-क्या उम्मीदें लगायी हैं— "हे खग-मृग, हे मधुकर स्रेनी, तुम देखीं सीता मृगनयनी।" राम ने सोचा कि ज़रूर इन खगों-मृगों को पता होगा कि सीता किधर गयी हैं। यह जीवन को दिशा प्रदान करने वाले एक माध्यम की आशा का वर्णन है— माध्यम यानी मीडिया।

छत्तीसगढ़ी लोकगीत हों या अवधी, ब्रजभाषा हो या मलयालम सभी भाषाओं-बोलियों में प्रेम के लोकपक्ष को व्यक्त करने की कोशिश होती रही है। परदेस जाते प्रेमी के लिए प्रेमिका का लोकगीत 'रेलिया बैरन पिया को लिये जाये रे' बहुत कुछ कहता है। एक ग्रामीण स्त्री की नियति को व्यक्त करने के साथ-साथ इसमें प्रेमी को परदेस ले जाने वाली

ज्ञानपीठ उपन्यास वर्ष - 2009

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन के क्षेत्र में एक और कीर्तिमान बनाते हुए वर्ष 2009 को उपन्यास-वर्ष के

- **सात फेरे**—चन्द्रकिशोर जायसवाल
- **आखिरी छलाँग**—शिवमूर्ति
- **पानी बिच मीन पियासी**—मिथिलेश्वर
- **मैंने नाता तोड़ा**—सुषम बेदी
- **वेयर डू आई बिलॉन्ग?**—अर्चना पैन्यूली
- **रेखाएँ दुख की**—विष्णुचन्द्र शर्मा
- **सामने का आसमान**—मधुर कपिला
- **वर:मिहिर**—डॉ. घनश्याम पाण्डेय
- **ग्लोबल गाँव के देवता**—रणेन्द्र
- **बेनीमाधो तिवारी की पतोहू**—मधुकर सिंह
- **सुखफ़रोश**—वीरेन्द्र जैन

तथा अन्य भारतीय भाषाओं के शीर्ष उपन्यासकारों के हिन्दी में अनूदित उपन्यास

- **अन्नदाता**—बलदेव सिंह
- **सम्भाजी**—विश्वास पाटील
- **धर्मयुद्ध**—केशुभाई देसाई
- **जहाँ राधा नाची**—इन्दिरा गोस्वामी



रेलगाड़ी पर भी छींटाकशी की गयी है। यह प्रेम के लोकपक्ष की सरलता और प्रेमिका के भोलेपन का देसी वर्णन है। आज सिल्वर स्क्रीन पर इसी लोकपक्ष के विजुअल ग्रामर को समझने की कोशिश 'वेलकम टू सज्जनपुर' फ़िल्म में की गयी है। फ़िल्म में प्रेम है, प्रेम का लोकपक्ष मौजूद है और मीडिया के रूप में डाकिया और चिट्ठीलेखक श्रेयस तलपड़े भी महत्त्वपूर्ण हैं। गाँव-देहात में या प्रेम में डूबे एक प्रेमी के लिए एक चिट्ठी का एक शब्द भी कितना महत्त्वपूर्ण होता है, यह इस फ़िल्म में प्रमुखता से दिखाया गया है। पर लोकप्रिय मीडिया के कार्यों में ऐसे कार्य अपवादस्वरूप ही शुमार हुए हैं, प्रमुखता तो लोकपक्ष की बजाय भौतिकपक्ष को ही मिलती रही है।

मीडिया ने प्रेम के लोकपक्ष को जिन रूपों में पेश किया, चित्रकला भी उनमें से एक रूप है। और प्रेम का लोकपक्ष भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में चित्रित होता रहा है। ब्रिटेन और इटली के दूरदराज़ के गाँवों से लेकर आल्प्स की हरी-भरी तलहटी तक। चित्रकार ऑडोबोन को तो लोकपक्ष से सराबोर पक्षियों से इतना अधिक प्रेम था कि उन्होंने निष्ठापूर्ण प्रकृतिवाद के तहत बड़ी सतर्कता से पक्षियों के अनेक विश्वविख्यात चित्र बनाये। आज भी प्रेम और लोकपक्ष को चित्रित करती उनकी भावनाएँ न्यूयार्क और कैलीफोर्निया की आर्ट गैलरियों की शोभा बढ़ा रही हैं।

प्रेम के परिवेश और लोकजीवन की बात करें तो टॉमस ईकिन्स, जॉर्ज बिंगहैम और विन्स्लो होमर ने अमेरिका के इतिहास और लोकजीवन के तमाम पहलुओं का जमकर आलेखन किया। समय-समय पर अनेक देशी-विदेशी शिल्पकृतियों और मूर्तिकलाओं ने भी प्रेम के लोकपक्ष को रूपायित किया है। खाड़ी के देशों में ईरान भी इनमें पीछे नहीं है। वहाँ आधुनिक फारसी कविताओं में से अनेक प्रसिद्ध कविताओं ने प्रेम के लोकपक्ष का वर्णन किया है। नीमा योशेच की विश्व-प्रसिद्ध कविता 'कारे शबेपा' के केन्द्र में आख़िर लोकपक्ष से व्यंजित होता एक आम-आदमी ही तो है।

पर मीडिया के नवीन रूपों में प्रेम के लोकपक्ष को लेकर विशेष उत्साह नहीं दिखता। चौबीसों घंटे के ख़बरिया चैनल अगर सनसनीख़ेज और भड़काऊ ख़बरों की तलाश में रहते हैं तो रेडियो चैनल ख़ास-ख़ास चौराहों पर लगे हुए ट्रैफ़िक जाम का वर्णन करते नहीं अघाते हैं। हाँ, एकाध प्रयास हैं जो अपवादस्वरूप बेहतर कहे जा सकते हैं। विज्ञापन एजेंसियों और आउटसोर्सिंग के इस तेज़ रफ़्तार दौर में कुछ संस्थाएँ, मसलन पेग (पी.ई.जी.), ज़रूर बेहतरीन कामों को अन्ज़ाम दे रही हैं। विज्ञापन और प्रबन्धन सेवाओं के क्षेत्र में पेग का काम समय के साथ बेहतरीन साबित होता जा रहा है। आज कारपोरेट जगत भी प्रेम के लोकपक्ष को चित्रित करने में मीडिया, ख़ासतौर पर विजुअल्स की भूमिका को नज़रअन्दाज़ नहीं कर पा रहा है। प्रेम और लोकपक्ष के मीडिया से जुड़े विमर्श में ध्यान रखना चाहिए कि आज परिधानों से जुड़े ड्रेसिंग सेंस का महत्त्व आम-आदमी से लेकर फ़ैशन शोज़ तक में बढ़ा है।

हमारे देश की जनता ने प्रेम और लोकपक्ष— दोनों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। कहीं यह भूमिका एक उत्साहवर्द्धक की रही है, तो कहीं बाधा खड़ी करने वाली एक भीड़ की। अनेक लोकनाट्यों, नुक्कड़ नाटकों और फ़ोकलोर्स के माध्यम से ये अनेक आयाम अक़्सर व्यक्त होते रहे हैं। ग़ौरतलब है कि हाल ही में, अगस्त के अन्तिम सप्ताह में एक अन्तरराष्ट्रीय कार्यक्रम में हमारे उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी ने लोकपक्ष को लेकर कुछ बेहद महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ की हैं। उनके मुताबिक हमें सांविधानिक दायरे का ध्यान तो रखना चाहिए लेकिन आदिवासियों और उनकी कलाओं के विकास समेत सारे लोकपक्ष पर समग्रता में ध्यान देना चाहिए। लोकपक्ष की कोई भी गम्भीर चर्चा मानव-विकास के बिना अधूरी ही कही जाती है। इन्स्टीट्यूट फॉर ह्यूमन डेवेलपमेंट और हमारे योजना आयोग द्वारा आयोजित इस अन्तरराष्ट्रीय कार्यक्रम में लोकपक्ष के बारे में जो बुनियादी सवाल उठाए गये वे आज की मानवता और आज के मीडिया— दोनों के लिए दिशानिर्देशक कम्पास का काम कर सकते हैं। जैसाकि प्रख्यात विद्वान अलख नारायण शर्मा और हमारे जनजातीय मंत्री कान्तिलाल भूरिया ने कहा, ''हमारे पत्रकारों को लोक के प्रति कटिबद्ध होने की आज सबसे ज़्यादा ज़रूरत है ताकि समाज में सृजनात्मकता का तत्त्व निखरकर सामने आ सके।''

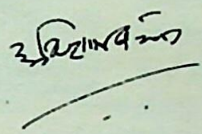
प्रेम और लोकपक्ष की अगली कड़ी इस तथ्य में निहित है कि लोक के सभी आयाम सृजनात्मक ही नहीं हैं। अनेक बार लोक में प्रचलित परम्पराएँ इतनी कठोर होती हैं कि या तो प्रेमियों को आत्महत्या करनी पड़ती है या फिर उन्हें आनन-फानन में, और कोई रास्ता न देख, पेड़ से लटका दिया जाता है। क्या होती हैं मीडिया की प्रतिक्रियाएँ ऐसी घटनाओं पर? क्या चैनलों का विजुअल ग्रामर ऐसे लोकपक्ष को न्यायपूर्वक समायोजित कर पाता है? स्ट्रिंगरों की तो बात ही दूर है, पेशेवर नियमित पत्रकार भी विरले ही हैं जिनका रुख ऐसी घटनाओं के प्रति समझदारीपूर्ण हो। ग़ौरतलब है कि मीडिया लोकपक्ष की ऐसी नकारात्मक खबरों को सूँघ कर ही पहचान लेता है क्योंकि ऐसी घटनाओं में न्यूज़ वैल्यू बहुत ज़्यादा होती है। जैसाकि विद्यानिवास मिश्र ने 'लोक' सम्बन्धी अपने अध्ययन में कहा भी है कि 'लोक' का एक ख़तरनाक और विध्वंसक पक्ष भी मौजूद होता है जिसका दबाव बहुत भयंकर होता है। इसी क्रम में 'पॉपुलिज़्म' और 'पॉपुलरिज़्म' का अन्तर भी ध्यान रखना चाहिए। मीडिया के लिए यह ज़रूरी है कि वह लोकमत, लोककल्याण और लोकलुभावनवाद में स्पष्ट अन्तर बनाये रखे। आजकल तो टी.आर.पी. (टेलीविज़न रेटिंग प्वाइंट्स) बढ़ाने के लिए मीडिया द्वारा दर्शकों से वोट भी माँगे जाते हैं। क्या ये वोट 'लोक' का सही अर्थों में प्रतिनिधित्व करते हैं? 'लोक' द्वारा प्राप्त इस प्रतिक्रिया के ज़रिये प्रेम के तापमान को मापा जाता है। राखी सावन्त का स्वयंवर इसी के चलते ख़ूब चर्चा में आया। पर सवाल यह है कि लोकपक्ष के जिस थर्मामीटर से प्रेम का तापमान नापा जाता है, क्या वह थर्मामीटर सही और त्रुटिरहित है? कहीं मीडिया द्वारा लोकपरम्परा को हास्यास्पद और घातक तरीके से तो नहीं प्रस्तुत किया जा रहा है? बेहतर तो यही होगा कि लोकप्रिय मीडिया प्रेम के लोकपक्ष को भी अपना ही पक्ष समझे, इस लोकपक्ष को अपना विपक्ष समझने की भूल तो वह लम्बे समय से कर ही रहा है।

2710, भूतल, डॉ. मुखर्जी नगर
दिल्ली - 110009
फ़ोन - 09990665881



...मैं यह नहीं कह सकता कि मुझे उनकी सभी कविताएँ पूरी तरह समझ में आ जाती हैं। पर यह ज़रूर है कि उस वातावरण में रहते रहते, उनकी कविताएँ बार बार सुनते सुनते उनकी जो धुनें हैं, उनके जो बोल हैं वह अब जब पढ़ता हूँ तो बिना किसी कष्ट के ऐसा लगता है कि यह मैं सदियों से सुनता आ रहा हूँ, और मुझे उस कविता की धुन गाने या बोलने में कोई तकलीफ़ नहीं होती। मैंने कभी बैठ कर उनकी कविताएँ रटी नहीं हैं। वे तो ऑटोमैटिक मेरे अन्दर से निकल पड़ती हैं।

अब जब इस पुस्तक के लिए अपनी पसन्दीदा कविताओं को चुनने बैठा तो बाबूजी के शब्दों में कहता हूँ कि क्या चुनूँ और क्या छोड़ूँ। फिर भी कोशिश की है कि अपनी सर्वाधिक प्रिय कविताएँ आप तक पहुँचा दूँ।

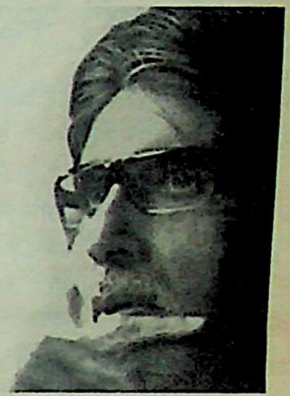


अमिताभ बच्चन

भारतीय ज्ञानपीठ से शीघ्र प्रकाश्य

चयन **अमिताभ** का **बच्चन** की कविताएँ

सम्पादन : पुष्पा भारती



ज्ञानपीठ उपन्यास वर्ष – 2009 की

एक और विशिष्ट उपलब्धि

सुप्रसिद्ध लेखक **सुरेन्द्र वर्मा** का
शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास

एक दृश्य का काव्याख्यान

'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से'

'मुझे चाँद चाहिए' जैसे महत्त्वपूर्ण और 'क्लासिक' मान लिये गये उपन्यास के यशस्वी लेखक सुरेन्द्र वर्मा ने इस शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास में रचनाशीलता को नये सिरे से परिभाषित किया है। कई बार 'हिन्दी का जातीय उपन्यास' जैसी जिज्ञासा कथा-पाठकों और कथा-आलोचकों के भीतर कौंधती रही है। सुरेन्द्र वर्मा का उपन्यास 'काटना शमी का वृक्ष...' इस जिज्ञासा का समाधान प्रस्तुत करता है। महाकाव्यात्मक मिज़ाज और भाषिक वैभव के कारण यह उपन्यास हिन्दी-उपन्यास की दुनिया को पूरी तरह बदल कर रख देगा। इतिहास, मिथक और यथार्थ का इतना सघन व सार्थक सम्मिलन पाठकों को मन्त्रमुग्ध कर देगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

भारतीय ज्ञानपीठ से सुरेन्द्र वर्मा का शीघ्र प्रकाश्य नाटक

रति का कंगन

हिन्दी के नाट्य लेखन में सुरेन्द्र वर्मा मौलिकता का पर्याय बन चुके हैं। रंगकर्म की आन्तरिक समृद्धि में उनके नाटकों की अद्वितीय भूमिका रही है। सुरेन्द्र वर्मा का नया नाटक 'रति का कंगन' मिथकीय मानसिकता और आधुनिक अन्विति का सहमेल है। सनातन समस्याओं को आसक्ति और उदासीनता के रंगों में प्रस्तुत करते हुए लेखक ने भाषा को अद्भुत रंगमंचीय ऊँचाइयों तक पहुँचाया है। मुहावरे में कहें तो नेपथ्य में और मंच पर समान सार्थकता के साथ अपनी उपस्थिति का एहसास कराने वाली कृति के रूप में 'रति का कंगन' एक कीर्तिमान निर्मित करेगी।

अर्चना रानी

नारी रूप श्रृंगार से समृद्ध भारतीय चित्रकला



भारतीय संस्कृति में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संसार में यदि नारी न होती तो सभ्यता, संस्कृति और कला ही न होती। अत: समाज में नारी माता, पत्नी, भागिनी, पुत्री, सखी, पत्नी, सेविका, परिचायिका, तपस्विनी आदि रूपों में श्रद्धा एवं पूज्य भाव से युक्त होती है। राजनैतिक दृष्टि से नारी योद्धा, कूटनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ, शासिका तथा दासी आदि रूपों में दिखाई देती है। काव्य शास्त्रीय दृष्टि से स्वकीया, परकीया, वासकसज्जा, प्रोषितपतिका आदि अनेक रूपों में देखी जाती है जिसके आधार पर उसका कला में सुन्दर चित्रण हुआ है। उसे समाज में प्रेमिका, प्रेयसी, प्रणयिनी आदि अनेक नामों से अभिहीत किया गया है। नारी अपने प्रेयसी रूप में पुरुष के अभावग्रस्त जीवन में आशा व सुख की किरण प्रदान करने वाली, उसके सुन्दर स्वप्नों की प्रतिमा उसकी कल्पना की तरल तूलिका के समान, उसके जीवन की प्रेरक होती है। प्रेरक बिन्दु होने के फलस्वरूप भारतीय कला में नारी रूप-शृंगार का सुन्दर अंकन चित्रकारों की कल्पना शक्ति एवं कुशल तूलिका संचालन का उदाहरण है।

सौन्दर्य का प्रतिरूप 'नारी' कलात्मक अभिव्यक्ति की अद्वितीय प्रेरणा-स्रोत है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय कला में नारी रूप-शृंगार का वैविध्य दिखाई देता है। इस विकास क्रम को समझने के लिये कला के प्रारम्भिक युग प्रागैतिहासिक काल की कला पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि वहाँ के गुफा चित्रों में पशु-पक्षियों के साथ-साथ मानव चित्रण भी बड़ी संख्या में हुआ है जिसमें नारी सौन्दर्य का अंकन एक विशेष स्थान रखता है। पंचमढ़ी क्षेत्र में नारी आकृतियों के चित्र चित्रित हैं जिसमें उन्हें रूप-शृंगार की दृष्टि से मुक्त केश, आदिम कटि वस्त्र अथवा पत्राच्छादन तथा गतिशील मुद्राओं से युक्त बनाया है। पंचमढ़ी के ही माड़ादेव क्षेत्र से एक अन्य रेखाचित्र प्राप्त हुआ है जिसमें पात्र-वाहिनी नारी का अंकन है। वक्ष एवं कटि के बीच पेट के ऊपर भी कोई पात्र जैसी वस्तु चित्रित प्रतीत होती है। चित्र में भार से झुकी हुई देह, शीश पर अंकित पात्र का अलंकरण तथा उठे हुए हाथ की मुद्रा आकर्षक है।

प्रागैतिहासिक काल के उपरान्त सिन्धु घाटी सभ्यता का युग आता है। वहाँ पर लाल, काली मिट्टी तथा धातु का बहुत प्रयोग हुआ जिनकी बनी सामग्री एवं बर्तनों पर पशु-पक्षी, ज्यामितिक अलंकरण एवं मानवाकृतियाँ बनीं जिनमें नारी रूप-शृंगार का सफल अंकन हुआ। वहाँ के पात्रों के ऊपरी तल में ऐसी नारी प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं जिनके सिरों पर कानों तक चौड़े टायर जैसे आभूषण बनाये गये हैं तथा माथे पर शंकु आकार के निकले हुए शृंगार-संयोजन हैं। मोहनजोदड़ो में दो तन्वंगी नर्तकियों की कांस्य प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। वस्तुत: सिन्धु घाटी की सभ्यता के अवशेषों से तत्कालीन चित्रकला में नारी चित्रण का ठीक ज्ञान नहीं होता किन्तु, तत्कालीन पात्रों एवं प्रतिमाओं को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि तत्कालीन चित्रकार भी नारी रूप-शृंगार से अछूते नहीं थे। उन्होंने भी अपनी तूलिका एवं वर्णों की सहायता से नारी रूप-शृंगार का सफल चित्रण किया।

भारतीय कला का उच्च केन्द्र 'अजन्ता की गुफाओं' की भित्तियों पर नारी-शृंगार के आदर्श रूप का चित्रण हुआ है। अजन्ता के चित्रों में नारी को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है उसमें अंकित नारी प्रतिमाएँ एवं चित्रित नारी रूप कला की अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। यहाँ की नारी सार्वभौमिक रूप-शृंगार का प्रतीक है। अजन्ता के चित्रों में जो सीमातीत सौन्दर्य व्याप्त है उसकी व्यंजना का साधन नारी का सुन्दर अंकन ही है। यहाँ की नारी ऐन्द्रिक आकर्षण का केन्द्रबिन्दु न होकर आध्यात्मिकता की परिचायिका है। वह गौरव एवं गरिमा की विभूति है। अधिकांशत: अधोभाग में नारी को साड़ी या अपारदर्शी वस्त्र में दिखाया है। ऊपर कुछ चित्रों में उसके उरोज नग्न भी हैं, परन्तु नारी में प्रकृति, शक्ति और माँ का रूप झलकता है। नारी रूप चित्रण विविधभूषणों से युक्त है। अजन्ता की अति प्राचीन कला में अंकित नारी रूप-शृंगार इतना मनमोहक एवं आकर्षक है कि आधुनिक नारी जगत अजन्ता की केश-सज्जा प्रणाली से प्रेरणा लेता है। नारी की लम्बी लहराती केश-राशि, वेणी में बँधे बाल, कन्धों पर लटकते घुँघराले केश तथा जूड़ों में बँधे बाल आदि अनेक प्रकार के केश-विन्यास को अनोखा रूप दिया गया है।

बाघ की गुफाओं में भी सुन्दर नारी का रूप-शृंगार चित्रण देखने को मिलता है। चौथी गुफा में दो स्त्रियों का एक करुणाप्लावित दशा में चित्रित दृश्य बहुत ही मुग्धकारी है। एक स्त्री झरोखे के पास शोकाकुल स्थिति में चित्रित है, जो कपड़े से मुँह ढके रो रही है, और दूसरी स्त्री पास में खड़ी उसको सान्त्वना दे रही है। इस प्रकार इस गुफा में कई चित्र हैं। गायिकाओं, नर्तकियों के अति सुन्दर चित्र इस गुफा की भित्तियों में देखने को मिलते हैं। इसी प्रकार बौद्ध काल में चित्रित बादामी, सित्तनवासल, एलोरा तथा ऐलीफैंटा गुफाओं में नारी रूप का सुन्दर चित्रण देखने को मिलता है जो इन भित्तियों की शोभा बढ़ाने का कार्य कर रही हैं तथा आज भी कला जगत को अपनी ओर आकर्षिक कर रही हैं।

बौद्ध काल के उपरान्त जैन कला में नारी चित्रों के उत्तम दृष्टान्त श्री साराभाई माणिक लाल नवाब के 'जैन कल्पद्रुम' में देखे जा सकते हैं। वस्त्राभूषणों की दृष्टि से जैन कला में धोतियों की सज्जा बहुत ही मोहक है।

स्त्रियों के लिये चोली, चुनरी, रंगीन धोती और कटिपट का प्रयोग किया गया है। वस्त्रों की डिजाइनों में विभिन्नता एवं चारुता है। स्त्रियों के मुखों पर टिकुली, कानों में कुंडल और बाँहों में बाजूबन्द हैं तथा चित्रों में मुखाकृतियों का आकार एक चश्म, डेढ़ चश्म और दो चश्म हैं। एक चश्म या डेढ़ चश्म वाले चित्रों में ठोड़ी सेव की तरह बाहर की ओर उभर आयी है और उसके नीचे की रेखा में गौरव, गर्व तथा अभिमान को प्रकट करने के उद्देश्य से झोल दे दिया गया है। भवें और नयनों का फैलाव समरूप है। एक चश्म और डेढ़ चश्म चेहरों में नासिक शुक चंचु की भाँति नुकीली और अनुपात से अधिक लम्बी हो गयी है। नेत्र उठे हुए तथा बाहर की ओर उभरे हुए हैं। उनकी लम्बाई कर्णभाग को छूती है। वस्तुत: नेत्रों और नासिक के चित्रण में जैन कलाकारों की निपुणता की तुलना नहीं है। ये जैन कृतियाँ प्रमुखतया ताड़पत्रों पर हैं। नारी चित्रों के निर्माण में जैन कलाकारों की कृतियाँ ब्रह्माणी देवनन्दा, क्षत्राणी, त्रिशला, सरस्वती, पद्मावती, ज्वालामालिनी देवियां, चौबीस यक्षिणियों, सोलह विद्यादेवियों, तीर्थंकरों की अधिष्ठात देवियों और परिचारिकाओं में उतना सौष्ठव, उतनी सम्मोहकता और सौन्दर्य नहीं है, जो अजन्ता की राजकुमारियों, प्रेमिकाओं तथा परिचारिकाओं में अनायास ही एक साथ देखने को मिलता है।

मुगल काल में स्त्रियों का चित्रण कम किया गया है, जिसका कारण पर्दा प्रथा ही है। मुगल काल के कलाकार नारी रूप-शृंगार को चित्रित किये बिना न रह सके और जब-जब भी उन्होंने नारी चित्रण किया है, वह अति सुन्दर है। नारी चित्रण जितना भी मुगल कला में दिखता है, वह भारतीय परम्परा के आधार पर ही किया गया है नारी के पहनावे में झीना आँचल, कुर्ता या चोली आस्तीनदार तथा पाजामा तथा लहँगा सामान्यत: प्रयोग किया गया है। पैरों में नोकदार देसी जूतियाँ बनाई गयी हैं। स्त्रियों के आभूषणों में मोतियों की मालाएँ, बाजूबन्द, दस्तबन्द, कड़े, झुमके तथा माथापट्टी बनायी गयी हैं। मुगल चित्रों में यथार्थता का अधिक समावेश है। इसी कारण अधिकांश हस्तमुद्राएँ तथा अंगभंगिमाएँ स्वाभाविक और यथार्थ हैं। आकृतियाँ अधिकतर खड़ी मुद्रा में बनाई गयी हैं। मुगल शैली के चित्रों में अन्त:पुर का रूप-शृंगार और विलासितापूर्ण जीवन का चित्रण, बादशाहों के आमोद-प्रमोद के लिए दासियों तथा बेगमों की भड़कीली पोशाकें एवं झीने वस्त्रों के भीतर उभरे हुए अंग-प्रत्यंगों का रूपांकन अधिकता से पाया जाता है।

राजस्थानी चित्रकला के चितेरों ने नारी रूप-शृंगार के मनोहर अंकन में अपनी कला को निखार कर रख दिया, ठीक जिस प्रकार पहाड़ी शैली के चित्रकारों द्वारा नारी रूप का सुलेखन अनुपम है। वास्तविकता तो यह है कि किशनगढ़ की चित्रशैली का मूल्यांकन नारी चित्रों की दृष्टि से है। नारी रूप-शृंगार का चित्रण जितना भी सम्भव हो सकता था, इन कलाकारों ने दर्शित किया। राधाकृष्ण की मनोरम झाँकियाँ प्रस्तुत करने में भी इन कलाकारों ने कमाल किया। स्वर्ग को भी विमुग्ध कर देने वाली इन झाँकियों में कल्पना की ऐसी पारदर्शी दृष्टि है कि पार्थिव जगत में ही बैठकर हम उसका रसपान कर लेते हैं। उनमें रंगों की योजना, वस्त्रों की सज्जा और आभूषणों की दृष्टि से परिधानों (चोलियों) के ऊपर लहराते हुए मोतियों के आजानु लटके हुए हारों के चित्रण में अनुपम सौन्दर्य भरपूर है। किशनगढ़ की शैली में स्वत: मोतियों का भव्य चित्रण उसकी निजी पहचान है, जो यद्यपि जयपुर के रासलीला विषयक चित्रों में भी देखने को मिलता है, किन्तु ऐसी सौम्यता उनमें से नहीं है।

राजपूत शैली में इस प्रकार की एक मनमोहिनी स्त्री छवि 'राधा' की है। राधा जी का यह चित्र जो 'बनीठनी' के नाम से प्रसिद्ध है। समस्त राजस्थानी शैली के उत्कृष्ट चित्रों में गिना जाता है, किशनगढ़ शैली की अनोखी देन है। इस चित्र में कविता का भावमय सौन्दर्य साकार उभर आया है। घूँघट का दाहिना छोर कुछ आगे को खींचे राधाजी की यह छवि बड़ी ही मुग्धकारी है। उसकी शुकनासिका, कमान की तरह बनी हुई भवें, पीछे की ओर ढलकता हुआ त्रिकोणकार माथा, मत्स्याकार आँखें और भावों को अभिव्यक्त करने वाली अँगुलियाँ-सभी मिलकर शृंगार रस का पूर्ण परिपाक करने में सक्षम हैं। यह चित्र एक चश्म है, नायक-नायिकाओं पर भी आधारित चित्र भी अपना एक विशेष महत्त्व रखते हैं।

राजस्थानी कला के उपरान्त पहाड़ी कला में विभिन्न कला-केन्द्रों पर रचित चित्रों को निरख स्पष्ट होता है कि विभिन्न केन्द्रों के चित्रकारों ने नारी रूप-शृंगार के निर्माण में स्थानीय विशेषताओं के आधार पर वैविध्य उत्पन्न कर दिया है। पहाड़ी चित्रों को देखते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह काँगड़ा की नारी है, यह गढ़वाल, यह कुल्लू, मंडी या जम्मू की है। पहाड़ी कलम में नारी विषयक सभी चित्र सुन्दर हैं। उनके शारीरिक गठन, हिलने-डुलने की गतिमत्ता और प्रसन्नचित्त मुखमुद्रा-सभी में स्वाभाविक आकर्षण है। नर-नारी के काम सम्बन्धी चित्रों की भी अधिकता रही है। काँगड़ा शैली के चित्रों में सर्वाधिक प्रभावशाली आकृतियाँ स्त्रियों की हैं। इस प्रकार के चित्र अधिक कोमल एवं लयात्मक हैं। आँखें धनुषाकार हैं। अँगुलियों में नजाकत तथा लय है। रंगों और तूलिका में सन्तुलन है, कहीं अनावश्यक भड़कीलापन नहीं है। शरीर पर सत्कुल को अभिव्यक्त करने वाले वस्त्र, चाँद-सी गोल मुखाकृति, बड़ी-बड़ी भावप्रवण आँखें, भरी हुई छातियाँ, लयमान अँगुलियाँ और मुख में रहस्यमय भाव छिपाये—ये सभी बातें काँगड़ा कलम के स्त्री चित्रों में सर्वत्र देखने को मिलती हैं। यद्यपि इन नारी चित्रों में परम्परा का पूर्वाग्रह अधिक है, फिर भी उन निपुण कलाकारों की अद्भुत रंग योजना अभ्यस्त तूलिका और अनुभवबद्ध उनके मनमानस ने अपने चित्रों में भाव दिये हैं, चित्रों में जिस वातावरण का समावेश किया है, उसके कारण इन चित्रों में पुरानापन प्रतीत ही नहीं होता है। बसौली शैली में नारी रूप-शृंगार का चित्रण बड़ा ही सुन्दर है। उनमें नीचे की ओर झुकी हुई लम्बी नाक, बड़ी-बड़ी आँखें, छोटी मुखाकृति, गोल कपोल और झुकी हुई ठुड्डी का प्राय: चित्रण किया गया है। बसौली शैली के नेत्रों के लिए दोहा प्रसिद्ध है— *अमिय, हलाहल, मद भरे, स्वेत, स्याम, रतनार।/जियत, मरत, झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार।*

इस तरह समूची भारतीय कला में चाहे वह अजन्ता हो, मुगल, राजस्थानी या पहाड़ी—सभी शैलियों के चित्रों में नारी रूप-शृंगार अद्वितीय है। नायिका किसी भी भाव से युक्त हो, चाहे वह शृंगार रस से युक्त हो, उदास हो, क्रोधी हो, मानवती हो—सभी भाव-चित्रों में चित्रकार ने नारी का रूप-शृंगार मनमोहक एवं आकर्षक बनाया है।

25, मुरारीपुरम, विपरीत गढ़ बस स्टैंड
मेरठ-250 002

अरविन्द मिश्र

लोक गीतों में पति पत्नी



लोक-गीतों की परिधि अत्यन्त व्यापक है। लोकगीतों में जन-कलाकारों की आत्मा बोलती है। अनादि काल से लोक-गीतों में जन-भावनाओं की अभिव्यक्ति होती आयी है। मानव-मन के आवेग-संवेगों का जैसा स्वाभाविक चित्रण लोक-गीतों में दिखाई पड़ता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। लोक-गीतों में नारी-समाज की सुकोमल भावनाओं के जितने नैसर्गिक चित्र प्राप्त होते हैं, उतने पुरुष-समाज के नहीं। नारी का कंठ सरस्वती का निवास माना जाता है, जहाँ से लोक-गीत प्रकट होकर जन-समाज को मुखरित करते हैं।

लोक-गीत पति-पत्नी के संयोग-वियोगमय परिस्थितियों के चित्रण से सुरभित हैं। लोक-गीतों में पति-पत्नी को उच्चतम स्थान प्रदान किया गया है। लोक-गीतों में पति 'राजा' है और पत्नी 'रानी'।

किसी लड़की का ब्याह हो चुका है। पर गवना नहीं गया है। मायके में दूल्हे से अकस्मात् उसकी भेंट हो गयी। फिर क्या होता है, देखिए :

फुलवा बिनन गई धेरिया लाड़िलरी,
हाथे गुलउवा मुख पान।
बीच मा मिलिगे दूल्हे दुलरुआ,
धरे बहियाँ झकझोर।

हाथ के पकड़ने पर लड़की कुछ घबराती है। क्यों न घबराये? कोई देख ले तो! लड़की अपने को छुड़ाना चाहती है। इसके लिए वह दूल्हे से प्रार्थना करती है। पर उसकी बात दूल्हा नहीं सुनता। इस पर उसे धमकी देती हुई वह कहती है कि स्वामी जी, यदि आप मेरी बाँह न छोड़ेंगे तो मैं गोहार लगाऊँगी :

छोड़ो-छोड़ो मोरे बारे की बहियाँ,
मैं हौं अलप सुकुमार।
टूटत हैं मोरी कंचन चुरियाँ,
मुरकत है मोरी बाँह।
छड़िहौं न स्वामी मोरे बारे की बहियाँ,
मरिहौं मैं नगरी गुहार।
भइया मोरे दौरें-भतिजवा मोरे दौरें,
दौरें नगरिया के लोग।

स्त्री-प्रेम पर दूल्हा सभी कुछ न्योछावर करने को प्रस्तुत है। दूल्हे को तो अपनी प्रियतमा ही चाहिए :

घोड़वा छड़े हैं-बछेड़वा छड़े हैं,
छिन ले हैं ढाल-तलवार।
घोड़वा छड़वे-बछेड़वा छड़वे,
छोड़ लेवे ढाल-तलवार।
तुम्हारी ऐसी धनिया न छड़वे,
जिन संग रचा है बिआह।

नववधू को विदा कराने वाले आये हैं। सभी वृक्ष के तले रुके हैं। दुलहिन को ले जाने के लिए बहुत से एक-एक करके पहुँचते हैं। किन्तु दुलहिन जाने की सहमति नहीं प्रकट करती। जब दूल्हे का आगमन हुआ, तो उसने उसके पास जाना स्वीकार कर लिया। पति के उत्कृष्ट प्रेम को लेकर गाया गया यह लोक-गीत आज भी पतियों को प्रेरणा देता है :

अकती खेलन कैसे जाऊँरी,
बर तरैं मेले लिबउआ।
पैले लिबउआ मोरे नउआ री आये,
नउआ के सँगै नइँ जाउँरी।
बर तरैं मेले लिबउआ।
दूजे लिबउआ मोरे बमना री आये,
बमना के सँगै नइँ जाउँरी।
बर तरैं मेले लिबउआ।
तीजे लिबउआ मोरे ससुराजी आये,
ससुरा के सँगै नइँ जाउँरी।
बर तेरे मेले लिबउआ।
चौथे लिबउआ मोरे देउराजी आये,
देउरा के सँगै नइँ जाउँरी।
बर तेरे मेले लिबउआ।

पाँचमँ लिबउआ मोरे जेठा री आये,
जेठा के सँगै नइँ जाउँरी।
बर तेरे मेले लिबउआ।
छटयें लिबउआ मोरे राजा जू आये,
राजा के सँगै भली जाउँरी।
बर तेरे मेले लिबउआ।

पति विदेश में है। उसके बिना पत्नी का सारा संसार सूना है। आकाश में उमड़ती-घुमड़ती काली घटाओं ने पत्नी के वियोग को और बढ़ा दिया है :

अरे-अरे कारी बदरिया,
तुहइँ मोरि बादरि।
बदरी, जाहि बरसहु वहि देस,
जहाँ पिय छाये।

कोठरी पुरानी हो गयी है, जिसके छिद्रों से पानी चूने लगा है। पलँग भी पुरानी हो गयी है, जिसका चौखट चटखने लगा है। इतना ही नहीं, विरहिणी पत्नी का शरीर भी जर्जर और पीला हो गया है। पत्नी अपने पति की प्रतीक्षा में है :

रावटी पुराणी भँवर जी हो गयी जी।
हो जी कोई टपकण लाग्या जूण।
इब घर आवो गोरी का सायबा जे॥
पिलंग पुराणा भँवर जी हो गया जे।
हाँ जी कोई तड़कण लाग्या साल।
इब घर आवो सुन्दरा रा सायबा जे॥
झुर-झुर मारू जी मैं पिंजर हो गयी जे।
हाँ जी कोई बिदरंग हो गयो वेस।
इब घर आज्मा अँधेरे घर रा चानणा जे।

कोई पति अपनी पत्नी को छोड़कर गंगा-स्नान के लिए जाना चाहता है। पत्नी इस विछोह को सहन करने में असमर्थ है। पति को रोकने के लिए उसने बड़ी चतुराई से काम लिया :

पनवा कतरि-कतरि भाजी बनावउ लौंगा दिहौ धौंगार।
अच्छे-अच्छे जेवना बनावो मोरी कामिनि हमहूँ जाब गंगा नहाय।
केके तू सौंपे अनधन सोनवा केके तू नौरंग बाग।
केके तू सौंपे हमे अस धनिया तू चले गंगा नहाय।
बाबा के सौंपेउँ अनधन सोनवा भइया के नौरंग बाग।
माया के सौंपेउँ तोहें अस धनिया हम चले गंगा नहाय।
घरही में कुँइयाँ खोदावो मोरे सइयाँ घर ही में गंगा नहाउ।
माता-पिता कै धोतिया पखारउ उन्हीं हैं गंगा तोहारि।

पति-प्रेम विषयक यह लोक-गीत सुप्रसिद्ध है :

पुरूब से आइ रेलिया, पछिउँ से जहजिया,
पिय के लादि लेइ गइ हो।
रेलिया होइ गइ मोर सवतिया।
पिय के लादि लेई गई हो।
रेलिया न बैरी-जहजिया न बैरी,
उहै पइसवा बैरी हो।
देसवा-देसवा भरमावइ,
उहै पइसवा बैरी हो।
भुखिया न लागे-पिउसिया न लागै,
हमके मोहिया लागइ हो।
तोहरी देखिके सुरतिया,
हमके मोहिया लागइ हो।
सेर भर गोहूँवा बरिस दिन खइबै,
पिय के जाइ न देबै हो।
रखबै अँखिया हजुरवाँ,
पिय के जाइ न देबै हो।

एक लोक-गीत में पत्नी का पतिव्रत अपनी चरम सीमा पर है :

मोरे पिछवारे लौंग का बिरवा लौंग चुअै आधी रात।
लौंग बीनि-बीनि ढेर लगावों लादत हैं बनिजार।
लादि चले बनिजार के बेटा की लादि चले पिया मोर।
हमहूँ को पलकी सजावो रे पिआरे मोरा तोरा जुरा है सनेह।
भूखेन मरिहौं-पिआसेन मरिहौ पान बिना होंठ कुम्हिलाय।
कुस की साथरी डासन पैहौ अंग छुलिय छुलि जायँ।
भूख मैं सहिहौं-पिआस मैं सहिहौं पान डारौं बिसराज।
तुम्हारे साथ पिआ जोगिनि होइहौं ना संग माई न बाप।

जीवन की धारा को पति-पत्नी के प्रेम के सम्बल द्वारा धर्माचार की नाव पर बैठकर कर्णधार पति के सहारे पार करने की कितनी उदात्त, शुभ्र और भोली अभिलाषा है :

धीरे बहु नदिया तैं धीरे बहु।
मोरा पिया उतरइँगे पार। धीरे बहु।
काहेन की तोरी नइया रे,
काहे की करुवारि।
के तोरा नइया खेवइया रे,
के धन उतरइँ पार। धीरे बहु।
धरमैं कइ मोरी नइया रे,
सत कइ लगी करुवारि।
सैयाँ मोरा नइया खेवइया रे,
हम धन उतरब पार। धीरे बहु।

पति-पत्नी जीवन-सृष्टि के अनिवार्य अंग हैं। पति-पत्नी के सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में ही मानव-जीवन के विविध आयाम विकसित हुए हैं। लोक-गीत पति-पत्नी की आन्तर-अनुभूतियों की सजीव अभिव्यक्ति हैं।

सरोजिनी निवास,
एम-1/63, सेक्टर-बी, अलीगंज,
लखनऊ (उ.प्र.) - 226 024

मालवी लोकजीवन की दो प्रेम कथाएँ

देवव्रत जोशी

फ़कीर का हुस्न



एक सूफ़ी सन्त अपने शिष्यों के साथ दुग्ध-धवल चाँदनी रात में अपने घर की छत पर ईश्वर आराधना में मग्न थे। कौतुकवश एक नवयुवक भी वहाँ आया और चुपचाप सत्संग में शामिल हो गया, उसे बड़ा आनन्द आया। इतना सुकून, इतनी शान्ति तो उसे कभी नहीं मिली थी। सन्त ने भी उसे अपना आशीर्वाद दिया और कहा कि बराबर आया करो।

कुछ दिन बाद अचानक युवक अनुपस्थित रहने लगा। कई सप्ताह, महीने गुज़र गए। एक दिन वह आया और उदास मुख, जर्जर शरीर, उखड़े मन से सत्संग में बैठ गया, सबसे पीछे।

गुरु ने देखा और सब कुछ समझ लिया। उसे पास बुलाया। ''बेटे इतने दिन क्यों नहीं आए। मैंने तो तुम्हारा काफ़ी इन्तज़ार किया... ये दुनिया बड़ी मायावी और दिलकश है। मेरी तरफ़ देखो'' सन्त ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फिराते हुए कहा, ''क्या इससे ज़्यादा ख़ूबसूरती है कहीं दुनिया में।''

युवक सन्त की भुवन मोहिनी मुस्कान के आगे नत था।

सिन्दूर की शुरुआत

नयी शादी हुई थी वीरजी भील की। धीरा उसकी पत्नी का नाम था। अत्यन्त सुन्दर और बहादुर औरत। तीर— कामठी (धनुष-बाण) लेकर वीरजी शिकार के लिए जंगल गया था, दिनभर घूमता रहा। शिकार न मिला। थककर चूर वह एक पत्थर पर सो गया।

गहरी साँस, रात घिर आयी थी। आज की खुराक नसीब न हुई। वीरजी की तन्द्रा टूटी, कन्धे पर तीर-कामठी डाल, वह भारी पगों से घर की ओर चल पड़ा।

तभी क्षेत्र के एक दुर्दान्त डाकू कालू ने उसे ललकारा— कूँण है? काँ जाई र्‍यो है? (कौन है, कहाँ जा रहा है?)

वीरजी ने मुठभेड़ टालनी चाहीं, लेकिन अपने क्षेत्र में बेरोक-टोक घूमनेवाले को दस्यु राज कैसे बर्दाश्त करता?

डाकू ने भरपूर वार किया अपने हथियार से। वीरजी धराशायी लुढ़क गया ज़मीन पर... संज्ञाहीन!

काफ़ी रात बीत गयी थी। अपने पति को खोजती धीरा उधर से गुज़री। वीरजी ज़मीन पर पड़ा था... ख़ून की धार माथे से बह रही थी, दस्यु कालू वहीं खड़ा था अट्टहास करता हुआ।

धीरा की रगों में बहादुर बाप का ख़ून था। वह शेरनी की तरह झपटी और अपने दराँते से उसने कालू के सिर पर भरपूर वार किया। डाकू कराहता हुआ ज़मीन पर पड़ा था।

पति को तब तक होश आ गया था। उसने पहले सामने खड़ी पत्नी को, फिर घायल डाकू को देखा। वीरजी उठा और अपने ख़ून से अपनी पत्नी धीरा की माँग भर दी। अंचल में इस शौर्य कथा को लेकर एक किंवदन्ती अब भी प्रचलित है। बुजुर्गों के अनुसार 'सिन्दूर की शुरुआत' उसी दिन से हुई थी।

24, वेदव्यास कालोनी नं. 2, रतलाम (मध्य प्रदेश)
फोन : 07412-239477

साथ अपने अनहोनी घट गई
सूखी नदी में नाव उलट गई

इक कबूतर ने तोप से पूछा
क्या यहाँ घोंसला बना लूँ मैं ?

ज़िन्दगी और मुफ़लिसी की गुफ़्तगू
जैसे तुतलाती हुई दो बच्चियाँ

वो जो चुप रह जाते हैं
कितना कुछ कह जाते हैं

थी यही कोशिश मेरी पगड़ी न जाय
बस इसी कोशिश में मेरा सर गया

बेच डाला हमने कल अपना ज़मीर
ज़िन्दगी का आख़िरी ज़ेवर गया

घर से निकले थे हौसला करके
लौट आए ख़ुदा ख़ुदा करके

ज़िन्दगी तो कभी नहीं आई
मौत आई ज़रा ज़रा करके

पशेमाँ था गवाही देके मैं तो
वो क़ातिल होके शर्मिन्दा नहीं था

पयादों ने ही दीं कुर्बानियाँ सब
शहीदों मे कोई राजा नहीं था

हिरन सोने का चाहेगी जो सीता
बिछुड़ जाएँगे उससे राम, तय है

बाद में मैने बुलन्दी को छुआ
अपनी नज़रों से गिरा था पहले

मैने तो बाद में तोड़ा था उसे
आईना मुझपे हँसा था पहले

वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.

'उड़ान'

के बाद

राजेश रेड्डी की

ग़ज़लों की

नई किताब



आसमान से आगे

मेरे दिल के किसी कोने में इक मासूम सा बच्चा
बड़ों की देखकर दुनिया बड़ा होने से डरता है

अजब ये ज़िंन्दगी की क़ैद है, दुनिया का हर इन्साँ
रिहाई माँगता है और रिहा होने से डरता है

ये सारे शह्‌र में दहशत सी क्यूँ है
यक़ीनन कल कोई त्यौहार होगा

दिल भी इक बच्चे की मानिन्द अड़ा है ज़िद पर
या तो सब कुछ ही इसे चाहिये या कुछ भी नहीं

न जाने कितनी सारी बेड़ियों को
पहन लेते हैं हम गहना समझकर

आँसुओं वाली हर इक बात को छोटा करके
मुस्कुरा लेते हैं हालात को छोटा करके

सर तलक तो बाद में आई मेरे दुश्मन की तेग़
उससे पहले अनगिनत हमले ख़यालों पर हुए

प्राचीन भारत की एक लम्बी प्रेम कथा

रांगेय राघव

नल दमयन्ती



चिकने श्वेत पंखों वाले वे सुन्दर हंस उन सुन्दरियों के बीच किल्लोल करते हुए इधर-उधर भागने लगे। दमयन्ती उनके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उनको पकड़ने की चेष्टा करती लेकिन वे उसके कोमल हाथों से फिसल जाते। जिस भी हंस के वह हाथ लगाती वही सुन्दर स्वर से कहता, ''हे सुन्दरी! निषध देश में नल नाम के एक राजा हैं। उनका रूप अश्विनीकुमारों के समान है। इस पृथ्वीमंडल पर उनके समान सुन्दर कोई दूसरा पुरुष नहीं है।

''हे सुन्दर मुख और विशाल नेत्रों वाली राजकुमारी! यदि तुम पति रूप में उस अद्वितीय पुरुष को पा सको तो तुम्हारा जीवन सार्थक हो जाए।

''हे सुन्दरी! मनुष्य तो क्या देवताओं और गन्धर्वों में भी ऐसे अपूर्व रूप वाला व्यक्ति हमने कहीं नहीं देखा। सुन्दर स्त्री को सुन्दर पति प्राप्त करने की साध रहती है। उसी साध को तुम नल के साथ विवाह करके पूरी करो। बस अब उस दिव्य पुरुष की प्रशंसा हम कहाँ तक करें।''

दमयन्ती ने हंस के कहने पर जैसे ही उस सुन्दर पुरुष की कल्पना अपने हृदय में की वह उस पर मुग्ध हो गयी। उसके नेत्रों में एक अपूर्व ज्योति बिखर गयी और मुख पर प्रेमोल्लास सहसा नाच उठा। उसने अपनी सखियों की तरफ देखा और उनके होठों पर व्यंग्यपूर्ण मुस्कान देख कर संकोच से नेत्र झुका लिये।

हंस अभी तक भी किल्लोल करते हुए अपने श्वेत पंखों को हिलाते हुए सुन्दरियों के बीच में फिर रहे थे। उनको दूत के रूप में सम्बोधित करके दमयन्ती ने कहा, ''हे उन्मुक्त होकर विचरण करने वाले सुन्दर पक्षियो! जिस प्रकार तुम किसी का सन्देश लेकर मेरे पास आये हो उसी तरह मेरा भी सारा वृत्तान्त जाकर उनसे कह देना।''

दमयन्ती के ये शब्द सुनकर हंस अपने पंख फैलाकर आकाश की ओर उड़ गये और निषध देश जाकर उन्होंने सारा वृत्तान्त राजा नल से कह दिया। नल और भी हर्षित होकर बड़े प्यार से उन हंसों के कोमल पंखों को सहलाने लगा और उन्हें मोती चुगाने लगा। दमयन्ती के बारे में बनाये हुए स्वप्न उसे कुछ साकार होते दिखाई देने लगे। एक बार मिलन की घड़ी की कल्पना करके नल इस तरह अपने आपको भूल गया कि मोती उसके हाथ में ही रह गये और हंस मुँह फाड़े उनके लिए खड़े रह गये।

इसी तरह दमयन्ती भी सोते-जागते अनेक भव्य स्वप्नचित्र अपने मस्तिष्क में बना कर प्रेमोल्लास में अपने को भूली रहती और यह सोचा करती कि वह कैसे राजा नल को अपने पति के रूप में पा सकती है। मार्ग की कठिनता की कल्पना में उसका चित्त उदास हो जाता और इसी कारण विरह में उसकी देह क्षीण होने लगी। संकोच के कारण वह अपने पिता राजा भीम से कुछ भी नहीं कह पाती थी। भीम अपनी पुत्री की आँखों में एक गहन चिन्ता देखकर व्याकुल हो उठता और अत्यन्त स्नेह से पूछता पर दमयन्ती का स्वर अन्दर ही अटक जाता और वह अपने मन की व्यथा पिता से नहीं कह पाती।

राजा को अपनी प्रिय पुत्री के स्वास्थ्य की अत्यन्त चिन्ता होने लगी। कभी-कभी तो दमयन्ती कामदेव की पीड़ा से पीड़ित होने के कारण पागल-सी दिखाई देने लगती।

उसकी यह दशा देखकर एक दिन दुखी होकर राजा अपनी रानी से कहने लगे, ''हे प्रिय! तुम जानती हो कि पुत्र-पुत्रियों का सुख देखे बिना हमारा कितना जीवन दु:ख की अग्नि में जलता रहा है और जब ब्रह्मर्षि दमन के वरदान से कन्या दमयन्ती तथा दम, दान्त और दमन पुत्रों का सुख भी भगवान ने हमें दिया तो अब इस कन्या का दु:ख मुझे और भी अधिक व्याकुल कर रहा है। कुछ समझ में नहीं आता, कौन-सा उपाय करूँ जिससे मेरी प्रिय पुत्री का चित्त प्रसन्न हो।''

रानी ने कहा, ''हे नाथ! दमयन्ती के चित्त के दु:ख के विषय में उसी के संग रहने वाली सहेलियाँ अधिक अच्छी तरह से बता सकती हैं। आप उन्हीं को बुलाकर पूछिए। अवश्य आपको उसका कारण मालूम हो जाएगा और फिर दु:ख-निवारण का उपाय करना तो आपको क्या कठिन है?''

राजा की समझ में रानी की बात बैठ गयी। दमयन्ती की सखियों को बुलाकर बड़े आश्वासन के साथ अपनी कन्या के विषय में पूछा।

उनमें से एक सखी हल्की-सी मुस्कराहट अपने होठों पर बिखेर कर बोली, ''हे महाराज! हम किस तरह आपको बताएँ?''

इस पर राजा ने और भी आश्वासन देकर उससे कहा, ''किसी तरह का संकोच या भय अपने चित्त में न रखो सखियो! मुझे सच-सच सारी बात बता दो। इसके लिए मैं अमूल्य पुरस्कार तुम्हें दूँगा।''

राजा का आश्वासन-भरा स्वर सुनकर वह सखी बोली, ''हे विदर्भराज! कुछ दिन पूर्व की बात है, कुछ हंस उड़कर राजकुमारी के महल में आ गये और वहाँ अनेक तरह से किल्लोल करने लगे। हमने उन्हें पकड़ने का प्रयत्न किया लेकिन रह-रहकर उनके चिकने पंखों पर से हमारे हाथ फिसल जाते। वे हंस मनुष्य की भाषा बोलते हुए दमयन्ती से राजा नल के सौन्दर्य की प्रशंसा करने लगे, 'देवता, गन्धर्व, मनुष्यादि सभी में अद्वितीय रूप वाला वह नल ही हे राजकुमारी! तुम्हारे योग्य वर है।' इस तरह कहकर राजकुमारी के मन को रिझाने लगे। जब वे कह चुके तो उस सुन्दर पुरुष के प्रति राजकुमारी के हृदय में सहसा अनुराग जाग उठा और अपनी आँखों में एक उन्माद-सा लिये हंस को सम्बोधित करके राजकुमारी बोली, ''हे हंस! जैसे किसी के दूत बनकर तुम मेरे पास आये हो उसी प्रकार मेरे दूत बनकर मेरा सारा वृत्तान्त उनसे कह देना। यह कहकर संकोच में भरी हुई राजकुमारी चुप हो गयी। और वे हंस आकाश की ओर उड़ गए।

''हे महाराज! हमें तो यही मालूम है। हो सकता है उसी सुन्दर नल राजा की विरह-वेदना उन्हें सता रही हो।

''हे देव! हम निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकती लेकिन हाँ, एकान्त में हमने राजकुमारी को किसी की कल्पना में निःश्वास छोड़ते हुए अवश्य देखा है और इसी कारण हो सकता है कि सोते-बैठते, खाते-पीते उनका जी नहीं लगता।''

सखी की बात सुनकर राजा की बहुत बड़ी चिन्ता दूर हो गयी। उन्होंने सारा हाल रानी को जाकर सुना दिया और स्वयं दमयन्ती के स्वयंवर की तैयारी में लग गया। देश-विदेशों के राजाओं को निमन्त्रण भेज दिए गये।

दमयन्ती के स्वयंवर की बात सुनकर पृथ्वी के सभी राजा अपने-अपने भाग्य की परीक्षा करने आये। राजा नल को भी स्वयंवर का निमन्त्रण मिला और वह भी अपने हृदय में कितनी ही आशाएँ लेकर विदर्भ को चल पड़ा।

विदर्भराज सभी अतिथियों का यथोचित स्वागत कर रहे थे।

इसी समय नारद और पर्वत दोनों महाप्राज्ञ तपस्वी देवऋषि विचरण करते हुए इन्द्रलोक पहुँचे। इन्द्र ने दोनों तपस्वियों का उचित सत्कार करने के पश्चात् पूछा, ''हे भगवान! आप देवलोक, मृत्युलोक और पाताललोक तीनों लोकों में विचरण करते हो, मुझे यह बताइए कि जो धर्मात्मा राजा प्राणों का मोह छोड़कर संग्राम से विमुख न हो सामने वाणों से बिंधकर वीरगति को प्राप्त होते हैं वे आकर इस देवलोक में सदा सुख और ऐश्वर्य भोगते हैं। वे सभी शूरवीर बहुत समय से यहाँ नहीं आये, क्या आप बता सकते हैं कि वे मृत्युलोक में किस प्रलोभन से रुके हुए हैं?''

इन्द्र की बात सुनकर देवर्षि नारद ने कहा, ''हे देवराज! विदर्भराज की कन्या दमयन्ती रूप और लावण्य में अद्वितीय है। अप्सरा भी उसके सौन्दर्य की तुलना में कुछ नहीं हैं। उसी का स्वयंवर होने जा रहा है और उसको प्राप्त करने की कामना में पृथ्वी भर के सभी राजा विदर्भ गये हुए हैं।''

इसी बातचीत के बीच अग्नि, यम, वरुण आदि देवता भी वहाँ आ पहुँचे और जब उन्होंने भी विदर्भराज की कन्या के रूप-लावण्य की यह प्रशंसा सुनी तो उन्होंने भी स्वयंवर में जाने का विचार किया। इन्द्र के मन में भी उसी कन्या को प्राप्त करने की इच्छा जाग उठी। इस तरह चारों देवता अपने-अपने गणों और वाहनों को लेकर स्वयंवर के लिए चल पड़े। वायु से भी अधिक तीव्र गति से उनके वाहन आकाश-मार्ग से विदर्भ की ओर भागने लगे। इसी बीच नीचे पृथ्वी पर कामदेव के समान सुन्दर राजा नल को स्वयंवर के लिए जाता हुआ देवताओं ने देखा। उसके इस अलौकिक रूप को देखकर देवता चकित रह गये और एक बार तो दमयन्ती को पाने की उनके हृदय की आशा मिट-सी गयी।

उन्होंने अपने विमानों को रोका और अन्तरिक्ष से उतर कर वे पृथ्वी पर आ गये। वहाँ उन्होंने राजा नल को रोककर कहा, ''हे निषधराज! तुम न्याय और धर्म में अटल विश्वास रखने वाले सत्यव्रत राजा हो। हे राजन्! क्या तुम दूत बनकर हमारा कार्य सिद्ध करने में हमारी सहायता नहीं कर सकते?''

नल ने देवताओं के सामने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और फिर अति विनीत स्वर में कहा, ''हे दिव्य रूपधारी पुरुषो! आप कौन हैं? ऐसा कौन-सा कार्य है जिसको मैं दूत बनकर सिद्ध कर सकता हूँ! कृपया मुझे सब कुछ स्पष्ट रूप से बताइए।''

इस पर इन्द्र ने कहा, ''हे राजन्! हम देवता हैं और दमयन्ती के अद्वितीय रूप की बात सुनकर ही पृथ्वी पर आये हैं। अब हम उसी राजकन्या को प्राप्त करने की इच्छा से स्वयंवर में भाग लेने विदर्भ जा रहे हैं। मैं इन्द्र हूँ। ये यम हैं। वे अग्नि और वरुण हैं। तुम्हें हमारा दूत बनकर दमयन्ती से यही कहना है कि 'हे सुन्दरी! तेरे रूप की कल्पना पर ही मोहित होकर चारों देवता देवलोक से इस मृतलोक में तुझे प्राप्त करने की इच्छा से आये हैं। इनमें से जिसे भी तू चाहे अपना पति स्वीकार कर ले। इसके बदले सदा स्वर्ग का सुख और ऐश्वर्य तुझे मिलेगा'।''

इन्द्र की बात से नल के हृदय को एक साथ धक्का लगा। एक बार तो वह सहम गया और कुछ भी नहीं बोल पाया लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को सँभालते हुए बोला, ''हे देवताओ! क्या आप नहीं जानते कि उस सुन्दरी को प्राप्त करने के लिए कितनी अवधि से मैं सुखद कल्पनाएँ अपने हृदय में करता रहा हूँ। अनेक भव्य-स्वप्नों में खोकर ही मैं समय के भार को दूर कर पाया हूँ और अब जब उन स्वप्नों के साकार होने का समय आया है तब आप ऐसा एक दुष्कर कार्य मुझे सौंप रहे हैं जिससे मैं जीवन-भर उसी विरहाग्नि में जलता रहूँ, यह कहाँ तक उचित है। जिस दमयन्ती को मैं स्वयं स्वयंवर में प्राप्त करने की इच्छा से जा रहा हूँ उसी से दूसरे पुरुष का वरण करने की बात करने की बात मैं कैसे कह सकता हूँ। आप मुझे इस कार्य के लिए क्षमा करें।''

इस पर इन्द्र ने कहा, ''हे निषधराज! हम

यही जानते थे कि राजा नल अत्यन्त सत्यव्रती राजा हैं लेकिन वचन देकर जो आप उसको पूरा नहीं कर रहे हैं उससे आपका दूसरा ही चित्र हमारी आँखों के सामने आ रहा है। क्या इस छोटी-सी बात पर आपके जीवन का इतना बड़ा व्रत टूट जाएगा?''

नल यह सुनकर विचलित हो उठा। उसने घबराकर कहा, ''नहीं, राजा नल कभी भी अपने व्रत को नहीं तोड़ सकता लेकिन देवताओ! यह बताओ, मैं आपका सन्देशा कहने के लिए दमयन्ती के प्रासाद तक पहुँचूँगा कैसे?''

इस पर इन्द्र ने कहा, ''हे नल! आप मेरे प्रभाव से बिना किसी आपत्ति से दमयन्ती के पास पहुँच जाएँगे।''

राजा नल देवताओं का सन्देश लेकर चल पड़ा। विदर्भ देश पहुँच कर उसने इन्द्र का अपने मन में स्मरण किया और बिना किसी बाधा के दमयन्ती के प्रासाद में पहुँच गया। दमयन्ती अपनी सखियों के बीच बैठी हुई इस तरह शोभायमान थी जैसे कमल के लाल और पीले रंग वाले फूलों के बीच एक नील कमल पूर्ण विकसित होकर प्रभात बेला में अपनी मुस्कान बिखेर रहा हो। उस सुन्दरी की इस सुन्दरता को देखकर नल का हृदय कामोद्दीप्त हो उठा। कुछ क्षणों के लिए तो उसे अपनी कुछ भी सुध नहीं रही लेकिन देवताओं को दिए गये वचन को निभाना भी कर्त्तव्य रूप से आवश्यक था। इसीलिए उसने अपने हृदय की खिलती भावनाओं को छिपा लिया और साहस करके वह उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ दमयन्ती और उसकी अन्य सखियाँ बैठी थीं। सखियाँ एक साथ घबराकर उठ खड़ी हुईं और राजा नल का अद्भुत सौन्दर्य-गौरव देखकर दमयन्ती का हृदय भी व्याकुल हो उठा। वह संकोचवश होकर उसकी तरफ़ नहीं देख पायी। सखियाँ अपने मन में तरह-तरह की कल्पनाएँ करने लगीं। कोई सोचती कि यह कोई देवता है, कोई उसे गन्धर्व और कोई यक्ष समझती लेकिन उससे पूछने का साहस किसी को नहीं होता। कुछ ही क्षणों में अपने हृदय में साहस भर कर दमयन्ती ने नल की तरफ़ देखकर पूछा, ''हे देवताओं के समान सुन्दर रूप वाले पुरुष! आप कौन हैं? यहाँ किस प्रयोजन से आप आये हैं? सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि मेरे प्रासाद के इतने कठिन पहरे को पार करके आप यहाँ तक कैसे आ गये हैं। अवश्य आप कोई दिव्य शक्ति रखने वाले देवता हैं। मुझे अपना परिचय दीजिए। आपका रूप देखकर मेरा हृदय आपके अधीन हो गया है।''

दमयन्ती की बात सुनकर नल ने कहा, ''हे सुन्दरी! मैं कोई देवता नहीं हूँ। मैं तो निषध देश का राजा नल हूँ। देवताओं ने मुझे दूत बनाकर तुम्हारे पास भेजा है।

''हे सुन्दरी! इन्द्र, वरुण, यम और अग्नि तुम्हें प्राप्त करने की इच्छा से स्वयंवर में आ रहे हैं। तुम जिसे भी अपना पति बनाना चाहो, उसी के गले में अपनी जयमाला डाल देना। तुम्हें स्वर्ग का अपार सुख और ऐश्वर्य मिलेगा। मैं तुम्हारे प्रासाद तक इन्द्र के प्रभाव से ही आ पाया हूँ। किसी ने भी मुझे आते हुए नहीं देखा है। अब मैं जाता हूँ। मैंने देवताओं को जो वचन दिया था, वह पूरा कर दिया है, अब हे राजकुमारी! तुम्हारी जो इच्छा हो वह कार्य करना।''

यह कहकर नल जाने के लिए उद्यत हुआ, लेकिन दमयन्ती ने उसे रोककर कहा, ''हे महाराज! आप यह क्या कह रहे हैं? मैं तो आपको ही देवताओं से श्रेष्ठ समझती हूँ और पहले ही मैं अपना हृदय आपको अर्पित कर चुकी हूँ। अब किसी अन्य को वर रूप में स्वीकार करना कहाँ तक उचित है?

''हे नाथ! आप ही मेरे सर्वस्व हैं। जब हंस ने आपके सौन्दर्य की प्रशंसा मुझसे आकर की थी उसी समय से मैं निरन्तर आपके विरह में जल रही हूँ। अब आप इस तरह उपेक्षा की सी बातें करके क्यों मेरे हृदय को दुखाते हैं। क्या आप मेरे जीवन के सारे स्वप्नों को नष्ट कर डालना चाहते हैं? तो सुन लीजिए नाथ! यदि पति रूप में मैं आपको नहीं पा सकी तो या तो अग्नि में जलकर या जल में डूबकर या विष खाकर अपने प्राण त्याग दूँगी लेकिन अन्य पुरुष या देवता को कभी भी अपना पति नहीं बनाऊँगी।''

दमयन्ती की यह बात सुनकर नल का हृदय एक बार तो गर्व से फूल उठा लेकिन फिर देवताओं का विचार आते ही उसको एक गहन चिन्ता ने घेर लिया। उसने कहा, ''हे सुन्दरी! तुम पृथ्वी के स्वामी देवताओं के सामने एक साधारण-से पुरुष की कल्पना में अपने हृदय को क्यों व्यर्थ सन्तोष दे रही हो? मैं तो उन देवताओं के पैरों की रज के समान भी नहीं हूँ और फिर तुम जानती हो कि देवताओं को अप्रसन्न करके कोई भी प्राणी इस पृथ्वी पर सुख से नहीं रह सकता। इन्द्र, यम, वरुण, अग्नि आदि देवताओं की प्रलयंकारी शक्ति है। वे चाहें तो इस पृथ्वी को एक क्षण में नष्ट कर दें। इसलिए उन्हें अप्रसन्न करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। इसलिए मेरी बात मानकर उनमें से किसी को अपना पति बना लो जिससे तुम भी अपार सुख और ऐश्वर्य से रहोगी और पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों का भी किसी तरह से अनिष्ट नहीं होगा। भला सोचो तो, शची जिस इन्द्र की पत्नी है उसकी पत्नी होने से अधिक गौरव की बात और क्या हो सकती है? और फिर यम, अग्नि और वरुण भी इसी तरह अत्यधिक प्रतापी हैं।

''हे चारुहासिनी! तुम्हारे हित के लिए ही मैं यह कहता हूँ। मेरा विचार छोड़कर उनमें से किसी एक के गले में जयमाला डाल देना।''

नल की यह बात सुनकर दमयन्ती रोने लग गयी। उसका हृदय फटने लगा और अपने व्याकुल स्वर से उसने कहा, ''हे राजा नल! मैं देवताओं से क्षमा प्रार्थना कर लूँगी। किसी भी उपाय से उनके क्रोध को शान्त कर लूँगी, लेकिन आपके सिवा और किसी के गले में जयमाला नहीं डाल सकती।''

यह कहकर और भी व्यथित होकर दमयन्ती रोने लगी।

नल का हृदय उनकी व्यथा देखकर द्रवित हो गया। उसने दमयन्ती को धैर्य बँधाते हुए कहा, ''हे कल्याण! तुम्हारा सन्ताप मुझसे सहा नहीं जाता। मेरा हृदय अन्दर ही अन्दर रो रहा है, लेकिन तुम्हीं बताओ मैं किस तरह तुम्हारी इच्छा पूरी कर सकता हूँ। देवताओं ने दूत बनाकर मुझे यहाँ भेजा है, अब यदि उनके स्वार्थ का विचार छोड़कर अपनी स्वार्थसाधना में रत हो जाऊँगा तो मेरा दूत-धर्म नष्ट हो जाएगा और अगले जन्म में इस पाप का फल मुझे भोगना पड़ेगा। इसलिए, अब तुम्हीं बताओ, वह कौन-सा उपाय है जिससे मैं तुम्हारे हृदय का सन्ताप दूर का सकता हूँ।''

यह सुनकर दमयन्ती के हृदय में आशा जाग

उठी। उसने अपनी आँसू-भरी हुई आँखों से ही एक बार नल की तरफ़ अत्यन्त प्रेम से देखा और फिर गद्‌गद स्वर से कहा, ''हे नरश्रेष्ठ! आपकी दुविधा का निवारण करने का उपाय मैंने सोच लिया है। आप इन्द्र आदि देवताओं के साथ स्वयंवर में भाग लेने आइए और उस समय मैं उन देवताओं के आगे ही आपके गले में जयमाला डाल दूँगी। इससे आपको किसी तरह का दोष भी नहीं लगेगा और मेरे मन की साध भी पूर्ण हो जाएगी।''

राजा नल यह सुनकर वापस देवताओं के पास आ गये। इन्द्र ने उत्सुक होकर पूछा, ''राजन! क्या तुमने उस परम सुन्दरी दमयन्ती से हमारा सन्देश कह दिया? हे श्रेष्ठ पुरुष! बताओ उस कमलनयनी ने क्या निश्चय किया है?''

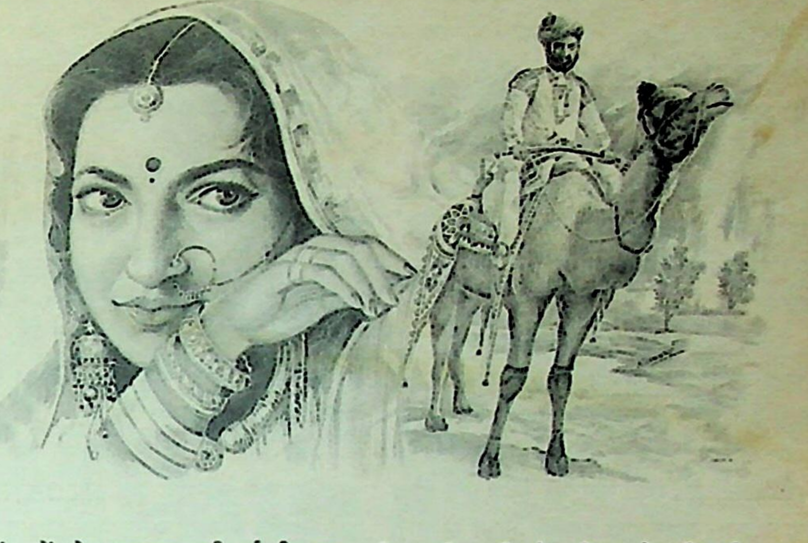
नल ने कहा, ''हे पृथ्वी के स्वामी देवताओ! मैं आपके प्रताप से दमयन्ती के प्रासाद तक पहुँच गया था और आपका सन्देश भी मैंने उससे कह दिया है लेकिन यह सुनकर उस सुन्दरी का चेहरा एक साथ कुम्हला-सा गया। जिस प्रसन्नता और विस्मय के साथ उस राजकुमारी ने मेरा स्वागत किया था, वह उसके मुख पर फिर नहीं रह गया।

''हे देवताओ! सदा सत्य पर आरूढ़ रहना ही मेरे जीवन का दृढ़ व्रत है, इसलिए मैं कभी भी असत्य नहीं बोलूँगा। उस राजकुमारी ने अपने खिन्न स्वर में मुझसे कहा, 'हे राजन्! मैंने तो पहले ही अपने हृदय में आपकी पति रूप में कल्पना कर ली है, इसलिए मैं स्वयंवर में आपके ही गले में जयमाला डालूँगी।' देवता भी सामने होंगे तो इसमें आपको किसी तरह का दोष नहीं लगेगा। इस तरह दमयन्ती अपने विचार पर दृढ़ है। अब जो भी उचित समझें वही आप करें। मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन कर दिया है।''

नल का यह उत्तर सुनकर एक क्षण के लिए तो देवता हतप्रभ-से हो गये लेकिन दूसरे ही क्षण इन्द्र ने अपनी कुटिल दृष्टि से नल की ओर देखते हुए कहा, ''ठीक है राजन! स्वयंवर में चलिए। वहाँ जो होना होगा वह हो जाएगा।''

वे सब स्वयंवर की ओर चल दिये।

पवित्र भोगवती नगरी अनेक देशों से आये हुए राजाओं से भर गयी। स्वयंवर की तैयारियों से नगर में चारों ओर धूमधाम मची हुई थी। हर तरह की सजावट से एक जगमगाहट-सी पैदा हो रही थी। राजा धड़कते हृदय से स्वयंवर के समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। सभी का हृदय दमयन्ती के लिए तीव्र लालसा से भरा हुआ था। चारों देवता भी राजाओं के वेश में भोगवती आ पहुँचे और उनके साथ नल भी आ गया।



निश्चित समय पर सभी विशाल मंडप में एकत्रित हुए। उन राजपुरुषों के मुख आकाश के नक्षत्रों के समान सुन्दर दीख पड़ते थे और उनके उन्नत भाल और उठे हुए चौड़े स्कन्ध उनके अपूर्व बल और पौरुष का परिचय दे रहे थे। सभी की आँखें उस द्वार की ओर लगी हुई थीं जिधर से दमयन्ती आने वाली थी।

इतने में ही हरिण के-से विशाल नेत्रों वाली दमयन्ती रंगभूमि में आयी और उसने चलती दृष्टि से पहले सबको देखा। उस समय राजाओं के हृदय सिहर उठे। एक तरह की घबराहट अन्दर घुटने लगी। भविष्य का अनिश्चित स्वप्न वर्तमान पर अत्यन्त बोझिल होकर झूलने लगा। दमन्यती के उस अतुलनीय रूप को देखकर राजाओं के नेत्र विस्मय से फटे जा रहे थे। अन्दर ही अन्दर हृदय बार-बार उस रूप की प्रशंसा करता, लेकिन फिर एक घबराहट मच उठती। अनेक तरह की कल्पनाएँ उठतीं और अन्त को झकझोर डालतीं।

दमयन्ती ने आगे बढ़कर देखा कि सभा में नल के समान रूप वाले पाँच राजा बैठे हैं। उनमें से नल को पहचान लेना असम्भव-सा ही था। जिसकी ओर भी वह देखती वही राजा नल की-सी आश्वासन-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता। दमयन्ती इससे घबरा गयी। देवताओं द्वारा रचित माया की कल्पना मस्तिष्क में आते ही उसका हृदय भयभीत हो उठा। वह प्रत्येक तरह के लक्षणों का स्मरण करके देवताओं को पहचानना चाहती थी लेकिन नहीं पहचान सकी। अपने आपको पूरी तरह असह्य देखकर वह देवताओं की शरण में जाकर कहने लगी, ''हे स्वर्गभूमि में विचरण करने वाले देवताओ! मेरे सत्य की रक्षा कीजिए! मैं अपने हृदय में राजा नल को ही अपना पति मान चुकी हूँ, अतः उन्हें ही पति बनाना अब मेरे लिए धर्मसंगत है। आप अपनी माया को उठा लीजिए। कहीं ऐसा न हो कि मैं किसी पराये पुरुष के गले में जयमाला डालकर पाप-भागिनी हो जाऊँ।

''हे देवताओ! आपने ही तो विधाता के रूप में मेरा नल से संयोग होना लिखा, फिर अपने ही लेख को आप कैसे मिटा देना चाहते हैं। मैं विनती करती हूँ कि आप अपना वास्तविक रूप धारण करके मेरे सामने बैठिए। मैं अपने प्रियतम नल को पहचानकर यह जयमाल उनके गले में डाल दूँ।''

देवता दमयन्ती की करुण पुकार सुनकर द्रवित हो गये। उन्होंने मायावी रूप छोड़कर अपना-अपना रूप धारण कर लिया

दूसरे ही क्षण दमयन्ती ने देखा कि राजा नल अपना गौरव लिए सामने बैठा है। दमयन्ती ने उत्सुकता से अपने नेत्र झुकाकर उनकी तरफ़

देखा और फिर लज्जा से कुछ सिमट-सी गयी। अपना सिर झुकाये और आँचल पकड़े वह नल के सामने आकर खड़ी हो गयी। अन्य राजाओं के हृदय में उसी क्षण हाहाकार मच उठा। सारे भव्य सपने मानो उसी क्षण टूट कर गिर पड़े। आशाएँ सिसक कर रो पड़ीं। सभी की आँखें अत्यन्त व्यग्र होकर उधर अटक गयीं। उसी क्षण दमयन्ती ने जयमाल राजा नल के गले में डाल दी।

देवता और महर्षि इस कार्य की बार-बार प्रशंसा करने लगे। लेकिन प्रतिद्वन्द्वी राजाओं के हृदय जल उठे। क्रोध उनके चेहरों पर तमतमा आया लेकिन नियम के अनुसार वे कर कुछ भी नहीं सकते थे। राजा नल का हृदय एक साथ खिल उठा। उसने एक अद्‌भुत गौरव से सभी राजाओं की ओर देखा और फिर खड़े होकर दमयन्ती को सम्बोधित करके कहा :

"हे सुन्दरी! तुमने देवताओं के आगे मुझे अपना पति स्वीकार किया है। मैं जीवन-भर आज से तुम्हारी आज्ञा के अनुकूल चलने वाला और तुमसे अनन्य प्रेम रखने वाला तुम्हारा पति हूँ। मैं वचन देता हूँ कि तुम अन्तिम श्वासों तक मेरी अर्द्धांगिनी बनकर रहोगी।"

दमयन्ती के नेत्रों में एक नवीन उल्लास जाग उठा। नल ने दमयन्ती का हाथ अपने हाथ में थाम लिया और फिर वे दोनों देवताओं की प्रार्थना करने लगे। देवताओं ने प्रसन्न होकर उन्हें अन्तिम वरदान दिये।

इन्द्र ने कहा, "हे नल! तुम मेरे वरदान के प्रभाव से मुझे प्रत्यक्ष देखोगे और अन्त को परम गति पाओगे।"

अग्नि ने कहा, "हे राजन्! तुम जहाँ भी मुझे स्मरण करोगे वहीं मैं प्रकट हो जाऊँगा और तुम्हारी मनोकामना को पूर्ण करूँगा।"

यम ने कहा, "हे निषधराज! तुम जो भोजन बनाओगे यह अत्यन्त स्वादिष्ट होगा और इसके साथ धर्म पर तुम्हारी निष्ठा सदा प्रबल रहेगी।"

वरुण ने कहा, "हे नल! तुम्हारे स्मरण करने से ही मैं उस स्थान पर आ जाऊँगा जहाँ भी तुम मुझे बुलाना चाहोगे।"

इसके बाद देवताओं ने नल और दमयन्ती के गले में दिव्य मालाएँ पहनायीं और वे अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर आकाश की ओर उड़ गये।

स्वयंवर समाप्त हो गया। सभी राजा निराश होकर अपने-अपने देश को लौट गये। राजा भीम ने नल के साथ अपनी कन्या का विधिपूर्वक विवाह करके उन्हें बहुत-सा धन देकर विदा कर दिया।

नल और दमयन्ती निषध देश आ गये और वहाँ सुख से जीवन बिताने लगे। सूर्य के समान प्रतापी राजा नल राजधर्म के अनुसार अपनी प्रजा का पालन करने लगा। समय-समय पर बहुत-सी दक्षिणा देकर अश्वमेध और अनेक महायज्ञ करने लगा। इस प्रकार जीवन अत्यन्त रमणीयता के साथ बीतने लगा।

कुछ दिनों के बाद दमयन्ती के गर्भ से इन्द्रसेन नाम का एक पुत्र और इन्द्रसेना नाम की अत्यन्त रूपवती कन्या पैदा हुई। राजा और रानी को चारों ओर सुख ही सुख दीखने लगा, उन्हें क्या पता था कि सुखी जीवन के पीछे क्रूर भाग्य सदा एक कुचक्र रचता रहता है।

स्वयंवर समाप्त हो जाने के पश्चात् जब देवता वापस अपने लोक को जा रहे थे तो मार्ग में उन्हें कलियुग मिला। उसके साथ द्वापर भी था। कलियुग ने मुस्कराते हुए इन्द्र से पूछा, "हे देवराज! आप किधर जा रहे हैं?" इस पर इन्द्र ने भी उत्सुक होकर कलियुग से पूछा, "तुम द्वापर के साथ किधर जा रहे हो, कलियुग?"

कलियुग ने कहा, "हे इन्द्र! विदर्भराज भीम के यहाँ दमयन्ती का स्वयंवर होने वाला है। मैं उसी सुन्दरी को प्राप्त करने के लिए जा रहा हूँ।"

कलियुग की यह बात सुनकर इन्द्र बहुत जोर से हँसा और कहने लगा, "क्यों व्यर्थ कष्ट उठाते हो कलियुग! चलो लौट चलो। दमयन्ती का स्वयंवर तो हो चुका। हम सभी वहीं से आ रहे हैं। उस सुन्दरी ने राजा नल को अपना पति स्वीकार किया है।"

इन्द्र के मुँह से यह बात सुनकर कलियुग को बड़ा क्रोध आया। उसने अपनी कठोर आवाज़ में कहा, "हे देवताओ! क्या दमयन्ती ने देवताओं को छोड़कर एक साधारण मनुष्य को अपना पति बना लिया? ठीक है। इसका दंड उसे मिलना ही चाहिए।"

इन्द्र ने कहा, "क्रुद्ध मत हो कलियुग! इसमें दमयन्ती का कोई भी दोष नहीं है। हमारी अनुमति से ही उसने नल के गले में जयमाल डाली है। नल अत्यन्त रूपवान और गौरवशाली व्यक्ति है। धर्म और न्याय के अनुसार ही उसके सब आचरण हैं। अब तुम्हीं बताओ उस पर कौन स्त्री आसक्त नहीं होगी? ऐसे पवित्र हृदय, संयमी और वेद-वेदांग के ज्ञाता के साथ किसी भी तरह का दुर्व्यवहार करना उचित नहीं है।

"हे कलियुग! जो कोई ऐसे धर्मपरायण पुरुष को शाप दे सकता है वह निस्सन्देह अपनी आत्मा के प्रति अन्याय करता है। ऐसा व्यक्ति आत्मघात का दोषी होता है और उसको नरक में स्थान मिलता है।"

यह कहकर देवता आकाश-मार्ग से देवलोक की ओर चले गये। कलियुग द्वापर से बोला, "हे द्वापर! दमयन्ती और नल का यह व्यवहार देखकर मेरा हृदय क्रोध से जल रहा है। मैं उसके वेग को किसी तरह रोक नहीं सकता। इसलिए चाहे जिस तरह भी हो मैं नल के शरीर में प्रवेश करके उसे राज्य से च्युत कर दूँगा और उसके जीवन को एक अभिशाप बनाकर छोड़ूँगा। तुम्हें पाँसों में प्रवेश करके मेरी सहायता करनी होगी।"

इस प्रकार विचार करके कलियुग द्वापर के साथ राजा नल के यहाँ पहुँचा और छिपकर वहाँ रहने लगा। वह राजा को पथभ्रष्ट करने का अवसर देखता लेकिन उसे कभी ऐसा अवसर नहीं मिलता।

ग्यारह वर्ष बीत गये। एक दिन नल लघुशंका निवारण करने के पश्चात् केवल अपने हाथ ही धोकर सन्ध्योपासन करने लग गये! कलियुग को उचित अवसर मिल गया और वह राजा के शरीर में प्रविष्ट हो गया।

फिर पूरे विश्वास में भरा हुआ कलियुग नल के भाई पुष्कर के पास गया और उसे नल के साथ पाँसे खेलने के लिए तरह-तरह के प्रलोभन दिखाने लगा। वह कहने लगा, "हे पुष्कर! चलो, तुम मेरे प्रभाव से नल पर अवश्य विजय प्राप्त करोगे और उसके सारे ऐश्वर्य और सम्पत्ति को पाकर निषध देश पर निष्कंटक होकर राज्य करोगे।"

पुष्कर कलियुग की बातों में आ गया और वह अपने भाई नल के पास गया। इधर द्वापर भी पाँसों का रूप धारण करके पुष्कर के पास आ गया। पुष्कर ने अपने हाथ में पाँसे लेकर बार-बार अपने भाई को खेलने के लिए चुनौती

दी। नल कभी भी अपने अक्षुण्ण गौरव के कारण किसी चुनौती से पीछे रहने वाला नहीं था। उसने पुष्कर की चुनौती स्वीकार कर ली।

दोनों शर्त लगाकर दमयन्ती के सामने खेलने लगे। अपार धन इधर से उधर उन पाँसों के इशारे पर बहने लगा। नल ने हीरे, जवाहरात और रत्नों की वर्षा-सी कर दी। पुष्कर कलियुग के प्रभाव से सबको जीत गया। फिर वाहन, प्रासाद तथा राज्य की अन्य वस्तुएँ दाँव पर रखी गयीं। उन्हें भी पुष्कर ने जीत लिया। नल आवेश में आकर जो सामने दिखता उसे दाँव पर लगाये चला जा रहा था और अपना कर्त्तव्य भूल कर उस खेल में अन्धा हो रहा था। उसके साथियों ने बहुत चाहा कि उसे उन पाँसों के जाल से मुक्त करें लेकिन वह किसी की ओर मुड़कर भी नहीं देखता था।

फिर सभी प्रजाजन मन्त्री के साथ और तरह-तरह से प्रार्थना करने लगे; लेकिन नल तो जुए के नशे में डूबा हुआ था। वह पाँसों के सिवा न तो किसी को देख रहा था और न ही उनकी आवाज़ के सिवा किसी और की उसे आवाज़ सुनाई देती थी।

सारथि यह देखकर रानी दमयन्ती के पास गया और कहने लगा, ''हे महारानी! राजा नल को जुए के कारण किसी प्रकार के कर्त्तव्य का ध्यान नहीं आ रहा है। प्रजाजन द्वार पर खड़े होकर अनेक तरह से विनती कर रहे हैं लेकिन राजा न तो उनकी ओर देखते हैं और न उनकी बात सुनते हैं। आप जाइए देवी! महाराज के लिए यह संकट का समय है। कहीं कोई अशुभ न हो जाए। आप जाइए और उनका चित्त किसी भी तरह इस जुए से हटाइए।''

दमयन्ती व्याकुल हो उठी। वह घबराती हुई राजा नल के पास पहुँची। पाँसे फेंके जा रहे थे। हार के कारण नल के होंठ सूख गये थे और उसके मुख की कान्ति भी निराशा के झोंके से कुछ मिट-सी रही थी। एकटक उसका ध्यान पाँसों की तरफ़ था और मन भाग्य के चलते चक्र में अटका हुआ था। उसे यह भी मालूम नहीं हुआ कि दमयन्ती आकर उसके पास खड़ी हो गयी है।

इससे दमयन्ती को और दु:ख हुआ। उसने दुखी स्वर से कहा, ''हे प्राणनाथ! आप यह क्या अनर्थ कर रहे हैं? देखिए प्रजाजन आपसे कुछ कहने के लिए लालायित हैं। राजा होने के नाते आपका कर्त्तव्य है कि आप उनकी बातें सुनें। धर्म और न्याय का मन में विचार करके अपना चित्त इन पाँसों से हटा लीजिए नाथ!''

नल ने अपनी प्रिया के शब्दों की ओर भी तनिक ध्यान नहीं दिया। कलियुग का पूर्ण प्रभाव उसके ऊपर चढ़ा हुआ था। दमयन्ती बार-बार करुण विलाप करती हुई नल को समझाने का प्रयत्न करती लेकिन इसका प्रयत्न निष्फल हो जाता। जब दमयन्ती ने यह देख लिया कि राजा का ध्यान जुए से कहीं अन्यत्र विचलित नहीं हो सकता, तो उसने निराशा-भरे स्वर से प्रजाजनों की ओर देखकर कहा, ''हे प्रजाजनो! आप लोग अपने-अपने घर जाइए।''

प्रजाजन किसी भयंकर अनर्थ की आशंका अपने हृदय में लेकर अपने-अपने घर चले गये।

बहुत देर तक नल और पुष्कर खेलते रहे। नल बराबर हारता चला जा रहा था। उसने कितनी ही अमूल्य से अमूल्य वस्तु दाँव पर लगायी और सब को हार गया। दमयन्ती नल की यह दशा देखकर प्रति क्षण अधिक से अधिक व्याकुल हो रही थी लेकिन नल को जुए से हटाना उसके वश की बात नहीं थी। एक-एक पल अँधेरा बढ़ता ही जाता और सर्वनाश की घड़ी निकट आती थी। दमयन्ती उस अनिश्चित भविष्य की कल्पना मात्र से भयभीत हो उठी। उसने घबराकर अपनी दासी बृहत्सेना से कहा, ''हे बृहत्सेना! तू अत्यन्त मधुरभाषिणी है और महाराज तुझ पर अपना अनुराग रखते हैं। तू महाराज की इस दशा के सम्बन्ध में जाकर मन्त्रियों को सूचना दे दे और उन्हें शीघ्रातिशीघ्र यहाँ ले आ। यह भी उन्हें बतला देना कि कितना धन रहा है और कितना चला गया।''

बृहत्सेना भागी हुई मन्त्रियों के पास गयी और उन्हें ले आयी। मन्त्री अन्य प्रतिष्ठित श्रेष्ठ पुरुषों के साथ राजद्वार पर आये और दमयन्ती ने उनके सम्बन्ध में राजा को सूचना दे दी लेकिन नल पाँसों में दत्तचित्त होकर लगा रहा। दमयन्ती की बात सुनने के लिए भी उसने एक पल का अवकाश नहीं दिया। रानी का हृदय इससे टूट गया और मन्त्रियों के आगे लज्जा से उसका सिर झुक गया। वह आवेश के साथ अपने भवन को चली गयी।

थोड़ी देर बाद ही एक दासी ने आकर दमयन्ती से कहा, ''हे महारानी! विरुद्ध पाँसे पड़ने के कारण राजा अपना सर्वस्व हार चुके हैं।''

दमयन्ती एक साथ चौंक कर उठ बैठी और बढ़ते हुए अन्धकार की कल्पना करके रो पड़ी। उसने पागल की तरह पुकारकर बृहत्सेना से कहा, ''बृहत्सेना! सर्वनाश हुआ चाहता है। तू जाकर शीघ्र सारथि को बुलाकर ला।''

बृहत्सेना सारथि को बुला लायी। दमयन्ती ने सारथि से अत्यन्त विनम्र शब्दों में कहा, ''हे सारथि! तुम सदा से स्वामिभक्त रहे हो और स्वामी के हित में ही तुम्हारा रक्त और पसीना गिरा है अब महाराज अत्यन्त संकट में हैं। नाश की बेला निकट आ पहुँची है। पुष्कर ने उन्हें जुए में फँसा रखा है। जैसा वह चाहता है उसी प्रकार पाँसे पड़ते हैं। पता नहीं इसका क्या कारण है।

''हे सारथि! प्रजाजन, मन्त्री यहाँ तक कि मैं भी, उन्हें इस विनाश के पथ से नहीं हटा पाये हैं। क्या बताऊँ, दैव ही हमारे प्रतिकूल मालूम होता है। मैं इस संकट के समय तुम्हारी शरण में हूँ। मेरी बात रखना तुम्हारा धर्म है सारथि! तुम अभी रथ में पुत्र और मेरी पुत्री को बिठाकर उनके ननिहाल में छोड़ आओ। मैं तुम्हारी अत्यन्त अनुग्रहीत रहूँगी। पता नहीं हमारे भाग्य में क्या बदा है? मेरा हृदय कितनी ही अँधेरी कल्पनाओं से घुट रहा है। जाओ सारथि, शीघ्र यहाँ से चले जाओ। अपने रथ और घोड़ों को वहीं छोड़ देना और तुम्हारी इच्छा हो तो वहीं रह जाना या कहीं अन्यत्र चले जाना।''

वार्ष्णेय दमयन्ती की आज्ञा मानकर जाने की तैयारी करने लगा। उसने इसके बारे में मन्त्रियों से कह दिया। मन्त्रियों ने भी उससे जाने के लिए आग्रह किया। वह राजकुमार इन्द्रसेन और राजकुमारी इन्द्रसेना को लेकर विदर्भ नगर पहुँचा। वहाँ उन्हें विदर्भराज को सौंपकर वह पैदल ही वहाँ से चल दिया। अयोध्या में पहुँचकर उसने राजा ऋतुपर्ण के यहाँ से सेवावृत्ति स्वीकार कर ली और हर तरह के कष्ट झेलता हुआ वह वहाँ रहने लगा।

इधर पुष्कर ने जुए में नल का सर्वस्व जीत लिया और फिर कटु व्यंग करते हुए बोला,

"बस नल! क्या अब दाँव पर लगाने के लिए कुछ नहीं है जो इतने निराश हो बैठे हो। अरे अभी तो तुम्हारी आधी सम्पत्ति शेष रह गयी है, लगा दो उसे भी दाँव पर।"

नल ने लज्जा से सिर नीचा करके कहा, "पुष्कर! मेरा सारा राजपाट तो तूने ले लिया। अब कहाँ है मेरे पास सम्पत्ति जिसे दाँव पर लगा दूँ?"

दीन स्वर में नल कह गया। उसी समय ललचायी आँखों से पुष्कर ने दमयन्ती की ओर देखा और मुस्कराते हुए कहा, "अभी दमयन्ती तो शेष है नल! क्या यह तुम्हारी सम्पत्ति नहीं?"

यह सुनकर नल के हृदय में आग जल उठी। उसकी आँखों में एक झंझावात-सा जाग उठा और उसने पुकारकर कहा, "पुष्कर! तूने मेरा सर्वस्व जीत लिया है लेकिन मेरी स्त्री का अपमान करने की बात मन में मत लाना, नहीं तो नल का सोया पौरुष जाग उठेगा। ले नीच! छल से जीते हुए इन आभूषणों को ले ले।"

यह कहकर उसने अपने शरीर के आभूषण उतारकर पुष्कर की ओर फेंक दिये और अपना सारा राज्य हारकर एक वस्त्र शरीर पर पहने भिखारी की तरह वह राजमहल से बाहर निकल पड़ा। साथ में दमयन्ती भी केवल एक धोती पहने दुख से व्याकुल होकर चली।

प्रजाजन अपने प्रिय राजा और रानी की यह दशा देखकर हाहाकार करने लगे। पुष्कर अब निषधराज हो गया था। उसी दिन उसने चारों तरफ़ घोषणा करवा दी कि कोई भी राज्य से च्युत नल को किसी प्रकार की सहायता न देगा और यदि सहायता देता पकड़ा जाएगा तो उसका सिर काट दिया जाएगा।

पुष्कर की यह कठोर आज्ञा सुनकर प्रजाजनों के हृदय भयभीत हो उठे। जीवन मनुष्य को सबसे अधिक प्रिय होता है, इसीलिए मृत्यु के भय से किसी का भी यह साहस नहीं होता था कि अपने प्रिय राजा नल की सहायता करता। नल केवल जल पीकर तीन दिन तक दमयन्ती के साथ नगर के बाहर पड़ा रहा लेकिन कोई भोजन तक को उससे पूछने नहीं आया। जब भूख ने उन दोनों को बुरी तरह व्याकुल कर दिया तो वे वन-वन कन्दमूल-फल खाते हुए इधर-उधर भटकने लगे। नल आगे-आगे चलता और दमयन्ती बिना किसी तरह की खिन्नता अपने चेहरे पर लिये पीछे-पीछे चलती। जब निर्जन वन का सूनापन उनके हृदय को काटने लगता और वह घुटन असह्य हो उठती तो नल हर तरह से दमयन्ती को समझाता और इस तरह बातें करते करते वे अपना समय बिता लेते।

एक दिन प्यास के कारण दोनों व्याकुल हो उठे। पास कहीं पानी नहीं था। चलते-चलते वे एक सरोवर के निकट पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि सोने के पंखों वाले कितने ही पक्षी इधर-उधर उड़ रहे हैं। नल उनकी शोभा देखकर मुग्ध हो गया और दूसरे ही क्षण उसके मन में विचार जागा कि अगर इन पक्षियों को मैं पकड़ लूं तो सम्भव है सौभाग्य फिर उसके जीवन को धनधान्य से परिपूर्ण कर दे।

पहले तो दोनों ने सरोवर का शीतल जल पिया, फिर उन पक्षियों को पकड़ने के प्रलोभन में नल ने अपनी धोती उतारकर उन सुनहरे पंखों वाले पक्षियों के ऊपर फेंकी। वे पक्षी उस धोती को लेकर आकाश की ओर उड़ गये और अपनी पतली आवाज़ में कहने लगे :

"रे मूढ़ नल! क्या हमारे होते हुए तुम अपना शरीर एक वस्त्र से भी ढक सकते हो? कभी नहीं। तुझे नंगा देखकर ही हमारी आत्मा तृप्त हो सकती है। तू नहीं जानता, हम पक्षी के रूप में वे ही पाँसे हैं जो तेरे सर्वस्व को खा गये हैं और अब तेरी इस धोती को भी तुझसे छीनकर ले जा रहे हैं।"

नल यह सुनकर अवाक्-सा खड़ा रह गया। उसको अपने किए हुए कार्य पर बार-बार रह-रहकर पश्चाताप होने लगा। जब दमयन्ती के सूखे होंठों की तरफ़ उसकी दृष्टि पड़ती तो वेदना और भी असह्य होकर उसके अन्तर उमड़ने लगती।

दमयन्ती कुछ दूर पर थकी हुई एक वृक्ष के नीचे बैठी थी। अपने पति को नंगा आता देखकर उसने लज्जा से अपना सिर नीचे झुका लिया और अत्यन्त व्यथित स्वर में वह बोली, "हे प्राणनाथ! प्रकृति का यह कैसा अन्याय है?"

नल ने सारी बात कह सुनाई। उन पक्षियों का स्वर बार-बार उसके कानों में गूँजता और अपने दुर्भाग्य पर उसका हृदय रो उठता। उसने अधीर होकर कहा, "हे प्रिये! जिनके प्रभाव से मेरी मति फिर गयी और मैं अपना सारा राजपाट उस जुए में हार गया और ऐसा दीन और तिरस्कृत हो गया कि नगरवासियों ने मेरे सम्मान की रक्षा नहीं की वे ही पाँसे आज मुझे नंगा करके चले गए हैं।

"हे प्रिये! मेरे पूर्वजन्म के किन्हीं पापों के कारण ही भाग्य ने मुझे यह दंड दे दिया। फिर मुझे क्या अधिकार है कि अपने साथ तुम्हें भी इस अभिशाप को सहने के लिए बाध्य करूँ। नहीं दमयन्ती! मेरी आँखों से तुम्हारी दुर्दशा देखी नहीं जाती। इससे मेरा हृदय रो उठता है। देखो प्रिये! ये बहुत से मार्ग दक्षिण दिशा को गये हैं। ये मार्ग अवन्ती नगर और ऋक्षदान पर्वत को लाँघ गए हैं। यह महापर्वत विन्ध्याचल है। इधर पयोष्णी नाम की नदी बहती है जो समुद्र में जाकर मिल गयी है। ये महर्षियों के आश्रम दीख पड़ते हैं। यही मार्ग विदर्भ नगर पहुँच जाएगा। यह मार्ग कौशल की ओर गया है और इस मार्ग की दक्षिण सीमा में स्थित देश को दक्षिणापथ कहते हैं।"

नल यह कहकर कुछ देर को चुप हो गया। दमयन्ती मार्गों का यह विवरण सुनकर किसी अज्ञात भय से काँप उठी। पति से बिछुड़ने की कल्पना से उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये। वह रोती-रोती बोली, "हे नाथ! बस आगे कुछ न कहिए। आपके मन के भाव की कल्पना करते ही मेरा हृदय फटा जा रहा है।

"हे प्राणनाथ! आपका वैभव और ऐश्वर्य देखकर मैं अब आपकी यह दुर्दशा देख रही हूँ। मेरा हृदय एक असीम पीड़ा से प्रतिक्षण घुटता रहता है, लेकिन मैं कहती नहीं क्यों कि भाग्य के विधान की स्वीकृति में ही मनुष्य का सच्चा सन्तोष है। अब आप ही बताइए कि अपने सर्वस्व को इस तरह वन-वन भटकता छोड़कर किस तरह मैं अपने पग इन मार्गों पर बढ़ा दूँ?

"हे नाथ! आप जब भूख और प्यास से अत्यन्त व्याकुल होकर उदास से किसी वृक्ष की जड़ों पर सिर रखकर सो रहेंगे उस समय कौन आपके व्यथित हृदय को धैर्य बँधाएगा?

"हे स्वामी! मैं आपकी दासी हूँ और धर्म के अनुसार आपके सुख और दु:ख में मेरा आधा भाग है, अब आप क्यों मुझे अपने से दूर करने का विचार मस्तिष्क में ला रहे हैं।"

दमयन्ती करुण स्वर में कहती चली जा

रही थी और नल का हृदय सिसक रहा था। उसने एक बार तो निराश दृष्टि से निर्जन वन की ओर देखा और फिर धैर्य बँधाते हुए दमयन्ती से कहा :

"हे प्रिये! तुम्हारा यह व्यथित स्वर मुझसे सुना नहीं जाता। तुम ठीक कहती हो प्रिये! एक पतिव्रता स्त्री अवश्य पुरुष का सारा सुख और गौरव है। मैं तुम्हें अपने से अलग कैसे कर सकता हूँ। तुम यह व्यर्थ शंका क्यों कर रही हो?

"हे दमयन्ती! जिस दिन मुझसे यह संसार छूट जाएगा उस दिन भी प्रिये तुम्हारी आत्मा मेरी आत्मा से अलग नहीं हो सकती। फिर तुम इस तरह की कल्पना करके क्यों दुखी हो रही हो?"

दमयन्ती के हृदय को सन्तोष मिला। लेकिन दूसरे ही क्षण उसने पूछा, "हे स्वामी! अगर आप मुझे अलग नहीं करना चाहते हैं तो फिर इन विभिन्न मार्गों को क्यों दिखा रहे हैं? मेरी समझ में इसका कारण नहीं आ रहा है। हे नाथ! आपके ऊपर कलि का पूरा प्रभाव है, इसलिए आपको मुझे छोड़ जाना किसी तरह असम्भव नहीं है। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। अगर आपका विचार है कि मैं अपने माँ-बाप के पास चली जाऊँ तो चलिए, हम दोनों ही वहाँ चलें। विदर्भराज आपका स्वागत करेंगे और वहाँ आप सुख और शान्ति से रह सकेंगे।"

नल ने अधीर होकर कहा, "नहीं, प्रिये! यह मैं कभी नहीं कर सकता। अपने श्रेष्ठ श्वसुर के यहाँ पूरे वैभव के साथ मैं जाता रहा हूँ, अब क्या एक दीन भिखारी की तरह उनकी नगरी में प्रवेश करूँ। कुछ तो मेरी इस अवस्था पर हँसेंगे प्रिये और सुहृदों के हृदय पर मेरी इस अवस्था से आघात पहुँचेगा। विदर्भराज भी इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति को देखकर व्याकुल हो उठेंगे। मैं कभी भी विदर्भ जाने का साहस नहीं कर सकता।"

अपने पति को इस तरह अधीर देखकर दमयन्ती ने उनको धैर्य बँधाया और कितनी शास्त्रों की बातों से उनके चित्त को दुखदायी समस्या से हटा दिया। फिर जीवन का वही क्रम और भी दृढ़ स्वीकृति से प्रारम्भ हुआ। भूख और प्यास से संघर्ष करते हुए दोनों प्राणी निर्जन वनों में भटकते फिरे। कहीं कोई व्यक्ति दिखाई नहीं देता जो उनकी अवस्था पर करुणा दिखाए।

रात हो गयी। दमयन्ती थककर एक पेड़ के नीचे बैठ गयी और जड़ के सहारे कुछ लेट-सी गयी। दोनों काफी थक चुके थे। नल भी पास में दूसरी जड़ का सिरहाना लेकर लेट गया। बातों ही बातों में दोनों की आँखें झँप गयीं और निर्जन वन में रात साँय-साँय करती हुई अपना नृत्य करने लगी। कभी वन के भयानक पशु उस साँय-साँय में अपनी आवाज़ मिलाकर उसे और भी भयानक बना देते, कभी विशाल वृक्ष ऊपर से नीचे तक काली चादर ओढ़कर दैत्यों की तरह हिलने लगते, लेकिन दोनों असहाय प्राणी इस समय शान्ति से निद्रा देवी की गोद में सो गये थे। किसी तरह का भय या चिन्ता उनको इस समय दुखी नहीं कर रही थी। दुख से तपते हुए समय के ये ही शान्तिप्रद क्षण थे।

आधी से अधिक रात बीत गयी। एकाएक नल की आँखें खुल गयीं। उसने सुना बहुत दूर कहीं गीदड़ों के पुकारने का स्वर हवा पर बजता हुआ-सा आ रहा था। उसने एक क्षण को पास सोती हुई दमयन्ती की ओर देखा और फिर दूसरे ही क्षण रात का भयानक कालापन उसकी आँखों में समा गया। वह सोचने लगा कि इस तरह कब तक बेचारी इस अबला को अपने क्रूर भाग्य के पाश में बाँधे फिरता रहूँगा। इसका क्या दोष जो वह मेरे पीछे इतनी कठिनाइयाँ उठाती हुई अपने जीवन को एक अभिशाप समझकर रहे। उसी समय उसका हृदय पुकार उठा, "नहीं नल! यह अन्याय है। तूने पाप किया है। तेरे ही कारण राज्य चला गया। सारा वैभव लुट गया। तू तो जीवन-भर इस सुकुमारी की मनोकामनाएँ पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करके इसे लाया था तो फिर क्या यही तेरा व्रत है? क्या यही है तेरा पौरुष जिसके बल पर विदर्भराज के स्वयंवर-मंडप पर तूने प्रतिज्ञा की थी?"

नल की श्वास घुटने लगी। उसे लगा कि यह भयानक काली रात उसे खा जाएगी। एक बार तो जी ने चाहा कि वह आत्महत्या कर ले लेकिन फिर हाथ काँपकर रह गये। दूसरे ही क्षण विचार आया कि दमयन्ती को यहीं सोती छोड़ चलूँ और अकेला ही अपने दुर्भाग्य का फल भोगता हुआ वन-वन भटकता फिरूँ। दमयन्ती उठकर मुझे नहीं पाएगी तो दुखी होकर अवश्य अपने पिता के घर चली जाएगी। इस तरह इस बेचारी अबला के साथ आगे तो किसी तरह का अन्याय न होगा।

यह विचार नल के मस्तिष्क में समाता ही चला गया और इस विचार से प्रेरित होकर उठ खड़ा हुआ। फिर विचार आया कि निर्जन वन है, कोई भी इसकी रक्षा के लिए यहाँ नहीं है, फिर अगर किसी तरह की आपत्ति आयी तो यह अबला अपने सम्मान की रक्षा कैसे कर पाएगी। लेकिन इस शंका के साथ ही अपनी पत्नी में अटल विश्वास उसके अन्तर में जाग पड़ा। उसने उस निर्जन वन की ओर देखकर धीमे से कहा, "हे वनदेवता! अपनी पत्नी को मैं तुम्हें समर्पित करके जाता हूँ। यह पतिव्रता स्त्री जैसी तेजस्विनी है उससे मुझे पूरा विश्वास है कि इसके सतीत्व को कोई भी नष्ट करने का साहस नहीं कर सकेगा।"

यह कहकर नल जाने के लिए पूरी तरह उद्यत हो गया लेकिन अपना नंगा शरीर देखकर लज्जा के कारण उसके पैर आगे नहीं बढ़ सके। उसने दमयन्ती की तरफ़ देखा और उसकी धोती में से आधी फाड़कर अपना नंगा शरीर ढकने का निश्चय कर लिया; लेकिन प्रश्न यह था कि वह दमयन्ती को जगाकर आधी धोती कैसे माँगता। तब क्या वह दुर्भाग्यग्रस्त स्त्री उसे इस तरह बिछुड़ने देती?

नल के सामने एक नयी समस्या आ खड़ी हुई। वह इधर-उधर अँधेरे में कोई पैनी चीज़ ढूँढ़ता फिरने लगा। जहाँ भी हाथ डालता सूखी घास हाथ में आती। वह पूरी तरह निराश हो गया तो उसी समय एक टूटी तलवार पृथ्वी पर पड़ी हुई उसके हाथ में आ गयी। आशा से उसका हृदय खिल उठा। वह पूरी तत्परता के साथ दमयन्ती के पास गया और धीरे से उसकी आधी धोती काट ली। उसे पहनकर फिर उसने दमयन्ती की तरफ़ देखा और फिर मुँह मोड़कर द्रुतगति से चल दिया। वन में सोते हुए वृक्षों ने कुछ दूर तक उसकी सिसकियाँ सुनीं। दमयन्ती अचेत पड़ी रह गयी और क्रूर भाग्य ने उसके जीवनसाथी को उससे अलग कर दिया। वह एक दृढ़ प्रेरणा में बँधा हुआ चला गया, लेकिन फिर उसका विश्वास डगमगाया और प्रिया की याद उसके अन्तर को व्याकुल करने लगी। वह रुक गया और फिर दमयन्ती के पास लौटने लगा लेकिन फिर न जाने क्या सोचकर वह मुड़

गया और वन-देवता को अपनी प्रिया को सौंपकर चल दिया।

भोर हुई। दमयन्ती ने आँखें खोलीं तो अपने पास पति को नहीं पाया। वह हृदय में एक साथ व्याकुल होकर इधर-उधर पुकारने लगी, लेकिन उस निर्जन वन में कोई भी उसकी करुण पुकार का उत्तर नहीं देता था। कभी वह एक तरफ़ जाकर पुकारती, ''हा नाथ! हा स्वामी!! आप मुझे छोड़कर कहाँ चले गये?'' फिर दूसरी तरफ़ जाकर भी इसी तरह पुकारती लेकिन वन की स्तब्धता उसकी करुण पुकार पर एक उपहास-सी बनकर उसके हृदय को काटने लगती। वह घबरायी हुई चारों तरफ़ भागी लेकिन नल का कहीं पता नहीं लगा। वह तो दूर जा चुका था। जब दमयन्ती इस तरह भागती और पुकारती पूरी तरह थक गयी, तो वह एक वृक्ष के सहारे खड़ी होकर फूट-फूटकर रोने लगी। वह कह रही थी, ''हे नाथ! आप मुझे इस भयानक वन में अकेली क्यों छोड़ गये हैं? इसकी यह कठोर स्तब्धता मेरे अन्तर को व्याकुल कर रही है। अब मैं आपके बिना यहाँ कैसे रह सकूँगी।

''हे स्वामी! स्त्री का सबसे बड़ा आधार तो उसका पति ही होता है, फिर जब वही बिछुड़ जाए तो उसके लिए जीवन में बच ही क्या रहता है? फिर यह सोच-सोचकर मेरा हृदय रो रहा है कि आपने मेरा इस तरह चुपके से तिरस्कार किया। हे स्वामी! ऐसा मेरा क्या अपराध था। मैंने तो गंगा के निर्मल जल की तरह पवित्र रहकर सदा तन मन से आपकी सेवा की थी। सदा आपको ही अपना आराध्य समझा था, फिर वह कौन-सा कारण है जिससे आप मुझे छोड़ गये हैं?

''हे प्राणनाथ! लोकपालों के सामने जो आपने प्रतिज्ञा की थी इस समय वह आपका सत्यव्रत कहाँ है?

''हे नाथ! मनुष्य के लिए अकाल मृत्यु पाप तुल्य कही गयी है, इसलिए मेरे ये श्वास अब तक चल रहे हैं नहीं तो आपके बिना मैं एक पल भी जीवित नहीं रहती। आ जाइए नाथ! शीघ्र मेरे पास आ जाइए। मुझे बहुत डर लग रहा है।

''हे नाथ! आकर मुझे धीरज दीजिए। देखिए मैंने आपको अभी-अभी देखा है। फिर आप दीख पड़ रहे हैं। इन वृक्षों के पीछे छिपकर आप मेरी करुण पुकार का उत्तर क्यों नहीं देते? आप बड़े निष्ठुर हैं नाथ! फिर सबसे बड़ा सन्ताप तो मुझे यह है कि आप मेरे बिना अकेले किस तरह रहेंगे? भूख-प्यास से व्याकुल होकर और थक कर आप किसी वृक्ष के नीचे लेटे होंगे तो कौन अपनी बातों से आपके हृदय के भार को हलका करेगा। कौन आपके हृदय के दुःख का भार अपने ऊपर उठाकर हलका करने का प्रयत्न करेगा।

''आ जाइए! प्राणनाथ! अब और मुझे मत रुलाइए।''

इस तरह विलाप करती हुई दमयन्ती नल के लिए व्याकुल हो रही थी। कभी अपने पति के इस व्यवहार पर उसे कुछ खीझ-सी उठती और वह क्रोधवश होकर इधर-उधर भागने लगती। कभी गिर पड़ती, फिर उठकर गला फाड़कर रोने लगती और कभी अपने हाथों से अपना सिर पीटते हुए कहती, ''हे नाथ! जिस पापी के कारण आप ऐसा दारुण क्लेश भोग रहे हैं उसे इससे भी बढ़कर क्लेश भोगना पड़ेगा।''

इस तरह विलाप करती हुई दमयन्ती उस वन में भटकने लगी। अपने पति के विछोह के दुःख के आगे भूख और प्यास का दुःख तो मानो रहा ही नहीं। दिन में वह कुररी की तरह आँसू बहाती और पगली की तरह रोती-रोती वन में घूमा करती, और रात को किसी वृक्ष के नीचे सो रहती लेकिन उस दुखिया को नींद भी कहाँ थी?

एक दिन वह थकी हुई एक वृक्ष के नीचे बैठी थी और अपने पति के सम्बन्ध में कितने ही विचार आकर उसके मस्तिष्क को कोंच रहे थे। वह उन विचारों में पूरी तरह डूबी हुई थी, इतने में ही एक अजगर ने पास आकर अपना मुँह खोला। उसकी फुफकार सुनकर दमयन्ती एक साथ चौंक पड़ी लेकिन मृत्यु के भय ने उसको व्याकुल नहीं किया। उसने पहले तो दुखी स्वर में कहा, ''आ सर्प, मुझ अभागिन को डस जा और भूख मिटा ले।'' लेकिन फिर दूसरे ही क्षण नल की याद आते ही वह घबराकर उठ बैठी और कहने लगी, ''हे प्राणनाथ! देखो यह भयानक सर्प तुम्हारी प्रिया को डसने की इच्छा कर रहा है। आप इससे मेरी रक्षा करने के लिए क्यों नहीं आते हैं नाथ! यह मुझे डस जाएगा तब कौन आपके जीवन की अर्द्धांगिनी बनकर आपको प्रसन्न किया करेगी? बचाइए नाथ! सदा के इस बिछोह से मुझे बचाइए।''

अजगर मुँह फाड़े हुए आगे बढ़ता ही आता था। दमयन्ती भयभीत होकर पीछे हटती तो वह दूने आक्रोश के साथ फुफकारी मारता। दमयन्ती घबरा गयी। मृत्यु का भय उसके अन्तर में नाच उठा और वह असहाय होकर उस शान्त वन में पुकार उठी। उसकी इस करुण पुकार को सुनकर एक शिकारी जो शिकार के लिए उसी वन में फिर रहा था, भागा चला आया और उसने अपनी तलवार से उस विकराल सर्प के दो टुकड़े कर डाले। अजगर का मुँह फटा हुआ ही रह गया और वह तड़फड़ाकर ज़मीन पर लेट गया। दमयन्ती बार-बार काँपती आवाज़ से उस शिकारी को इसके लिए धन्यवाद देने लगी। सर्प को पूरी तरह मार चुकने के बाद शिकारी ने विनम्र स्वर में दमयन्ती से पूछा, ''हे सुन्दरी! तुम किसकी स्त्री हो और यहाँ निर्जन वन में इस दीन अवस्था में क्यों भटक रही हो? मुझे इसका कारण बताओ।''

शिकारी की बात सुनकर दमयन्ती ने अपने जीवन का सारा वृत्तान्त उससे कह दिया। दमयन्ती अभी भी भय से काँप रही थी। उसकी सुन्दर देह आधी धोती के छोर में लिपटी हुई थी। शिकारी ने पहले तो उसकी दीनावस्था पर अपनी करुणा दिखाई लेकिन जब उसकी दृष्टि दमयन्ती के उभरे हुए स्तन, उठे हुए मांसल नितम्बों, पूर्ण चन्द्र के समान मुख और हरिण के से विशाल नेत्रों पर पड़ी तो वह उस रूप पर मोहित हो गया। करुणा के स्थान पर उसके अन्तर में काम जाग उठा। अब वह स्नेह भरे हुए स्वर में दमयन्ती को धैर्य बँधाने लगा। इसके साथ वह कितनी ही प्रेमभरी बातें उससे करने लगा। दमयन्ती उस दुष्ट शिकारी के हृदय के कलुषित भाव को पहचान गयी। जो भी बातें शिकारी करता वह उनका कोई भी उत्तर नहीं देती बल्कि उसके कलुषित विचार पर उसकी आँखें क्रोध से जलने लगीं। शिकारी ने हाथ आगे बढ़ाया। वह दमयन्ती की देह से लिपट कर उसके सतीत्व को नष्ट करना चाहता था। लेकिन जलती आग के समान तेजवाली दमयन्ती के मुख को देखकर उसके हाथ सहसा ठिठक गये लेकिन फिर सँभलकर वह बढ़ा। दमयन्ती

ने आकाश की ओर देखा और फिर अपनी लाल आँखों से शिकारी की तरफ़ देखकर कहा, ''यदि मैंने नल के सिवा किसी अन्य पुरुष को कभी प्रेम की दृष्टि से नहीं देखा हो तो यह दुष्ट शिकारी अभी मर जाए।''

उस पतिव्रता स्त्री के शब्द वज्रनाद की तरह गूँजे और फिर उस शिकारी को खा गये। वह निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

अब दमयन्ती फिर वन-वन भटकने लगी। चारों तरफ़ साँय-साँय होती और कभी उसके बीच वन पशुओं की कई तरह की भयानक बोली सुनाई देती। कितने ही तरह के हिंस्र पशु एक-दूसरे को मारते हुए वहाँ फिरते। कभी तो सिंह घाटियों में से गरजता जिससे पर्वतों तक का कलेजा हिल जाता, और कहीं बाघ, भैंसे, भालू, चीते, हाथी विकराल नाद करते हुए फिरते रहते। दमयन्ती का हृदय भय से काँपता रहता लेकिन अपने पति की याद आते ही उसमें एक नवीन साहस जाग उठता। वह बढ़ती चली जाती। कहीं किल्लोल करते हुए मृग उसे दिखाई पड़ते और सहसा उसका हृदय उनकी उन्मुक्त क्रीड़ा को देखकर रो उठता, लेकिन फिर उन निरीह जीवों के लिए भी वन के सशक्त पशुओं के भय की बात उसके मस्तिष्क में आती तो रोती हुई वह कह उठती, ''कौन है इस संसार में जो सुखी हो? भय और चिन्ता सबके जीवन को डसे जा रही है।''

इस तरह दुखी होती हुई और फिर स्वयं ही सन्तोष करती हुई फिरती रहती। पक्षी पेड़ों की डालों पर बैठकर अपना राग छेड़ते रहते और उनका सुख दमयन्ती के हृदय में टीस-सी जगाता रहता। बीहड़ वन में अनेक तरह के वृक्ष अपनी विशाल काया लिये खड़े थे। जब रात होती और अँधेरे की काली चादर उनके ऊपर चढ़ती तो वे प्रेत जैसे मालूम होते और दमयन्ती को भयभीत किया करते।

वह राजकुमारी जो कभी भी नंगे पैरों पृथ्वी पर नहीं चली जब काँटों और पत्थरों के ऊपर व्याकुल भागी-भागी फिर रही थी। प्यास लगती तो किसी नदी का पानी अपने दोनों हाथों में लेकर पी लेती और भूख लगती तो पेड़ों के फल तोड़कर खा लेती, और अगर वह भी नहीं मिलते तो पत्तियाँ चबाकर अपने पेट की आग को शान्त कर लेती।

प्रात:काल से ही अपने पति की खोज में निकलती और मध्यरात्रि तक फिरती रहती लेकिन नल कहीं नहीं दिखाई देता था। एक दिन थककर दमयन्ती एक वृक्ष की छाया में बैठी हुई थी। मध्याह्न का सूर्य तेज़ी से चमक रहा था। उसी समय उसने देखा कि एक हरिण और हरिणी का जोड़ा उन्मुक्त विचरण करता हुआ उधर से निकला। उन्होंने पहले तो सामने सरोवर में पानी पिया और फिर वे दोनों एक दूसरे वृक्ष की छाया में बैठ गये। उनको इस तरह सुखी देखकर दमयन्ती का हृदय रो उठा। वह पुकारने लगी, ''हा नाथ! देखिए पशु भी कितने सुख से जीवन बिता रहे हैं लेकिन मैं आपके बिना निरन्तर दुख से घुल रही हूँ। इस भयानक वन में मुझे अकेली छोड़कर आप कहाँ चले गये हैं? नाथ! आप तो सदा ही सत्य पर अटल रहे हैं। कितने ही अश्वमेध यज्ञादि आपने किये हैं लेकिन सत्य के सामने कपट या छल को कभी भी आपने प्रश्रय नहीं दिया, फिर इस तरह धोखे से मुझे अकेली छोड़कर क्यों चले गये? प्राणनाथ! आपने तो वचन दिया था कि मुझे मृत्युपर्यन्त कभी भी अकेली नहीं छोड़ेंगे फिर कैसे अपनी बात को झूठ कर आप चले गये नाथ!

''हे नाथ! क्या आपको विवाह के समय की गयी प्रतिज्ञा याद नहीं थी या मैं इसे अपने भाग्य का ही दोष समझूँ।''

दमयन्ती इस तरह विलाप कर ही रही थी कि दूर कहीं से सिंह का भीषण गर्जन सुनाई दिया। उसे सुनकर हरिण और हरिणी तो मृत्यु के भय से लम्बी छलाँगें मारते भाग गये लेकिन दमयन्ती वहीं भय से काँपती हुई खड़ी हो गयी। भूखा सिंह अपना मुँह फाड़े आया और दमयन्ती की तरफ़ दौड़ा। दमयन्ती और भी भयभीत होकर पुकार उठी, ''हाय प्राणनाथ! वह देखो अपना मुँह फाड़े हुए यह सिंह मुझे खाने के लिए भागा चला आ रहा है। क्या आप इससे भी मेरी रक्षा करने नहीं आएँगे।''

''नाथ! आप तो कहते थे कि 'हे दमयन्ती! तू मुझे मेरे प्राणों से भी प्यारी है। तू ही मेरे जीवन का आधार है,' फिर इस समय इस असह्य दीन अबला की रक्षा करने क्यों नहीं आते? देखिए नाथ! वह मुझे खा जाएगा और आप जीवन-भर मेरे विरह से दुखी होते रहेंगे।''

सिंह बिल्कुल सामने आ गया तब तो दमयन्ती और कोई उपाय न देखकर उस भूखे सिंह को ही सम्बोधित करके बोली, ''हे मृगराज! तुम इस वन के राजा हो। मैं विदर्भराज भीम की पुत्री हूँ और निषध देश के राजा नल मेरे स्वामी हैं। मेरा नाम दमयन्ती है। मेरे पति मुझे यहाँ अकेली छोड़कर चले गये हैं। उन्हीं की याद में मैं दुखी होकर इधर-उधर भटक रही हूँ। हे वनराज! अगर तुमने मेरे परम तेजस्वी पति को कहीं देखा हो तो मुझे बताओ मैं वहीं जाकर उन्हें खोजूँ। तभी मेरे हृदय पर पड़ा हुआ अनन्त दु:ख का भार दूर हो सकता है।''

''हे वनराज! मैं आपकी शरण हूँ। आप मेरी सहायता कीजिए।''

सिंह अपना मुँह बन्द कर चुपचाप दूसरी तरफ़ चला गया। तब दमयन्ती फिर रोती हुई कहने लगी, ''हाय दैव! यह कैसा अनर्थ है। क्या इस अभागिन का इस संसार में कोई भी नहीं है। सिंह ने भी मेरी करुण पुकार पर ध्यान नहीं दिया। अब मैं क्या करूँ। कहाँ जाकर अपने पति को खोजूँ।''

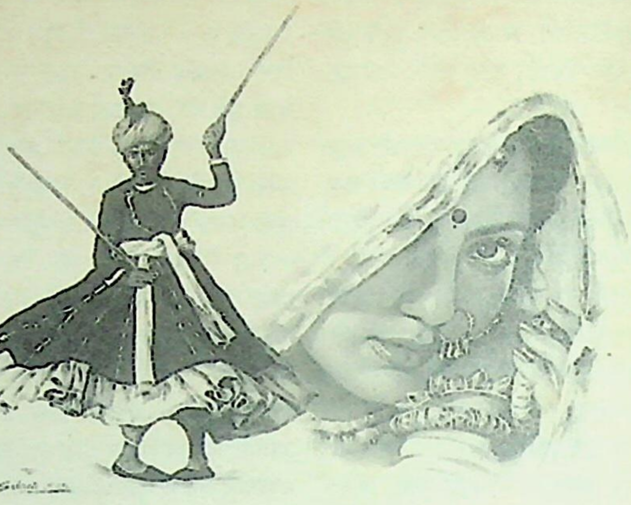
वह सोचने लगी की शायद ऊँचे शिखर वाले ये पर्वत उसके पति का पता बता दें क्योंकि एक बार तो अवश्य उसके पति इधर से निकले होंगे। कभी वह पक्षियों से पूछने का विचार करती और कभी नदी और सरोवर से। ढाक, अशोक, मौलसिरी, पुन्नाग, कनेर, धव और प्लक्ष और कितने ही प्रकार के वृक्ष वन की विशाल भूमि पर छाये हुए थे। उनके ऊपर भी उठी हुई पर्वतों की चोटियाँ दिखाई देतीं। दमयन्ती भागी हुई एक पर्वत के पास गयी और उसे सम्बोधन करके कहने लगी, ''हे पर्वतराज! विदर्भराज की अभागिन कन्या आपको नमस्कार करती है। दुखिया दमयन्ती आपकी शरणागत है। मेरे पति मुझसे बिछुड़ गये हैं, उन्हीं को खोजती हुई मैं जगह-जगह भटक रही हूँ। हे महात्मा! क्या आपने उन वेद-वेदांग के ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ, महातेजस्वी राजा नल को कहीं देखा है?''

''हे देव! अगर आपके पास से होकर वे निकले हों तो मुझे बताइए कि वे किस दिशा में गये हैं।''

पर्वत दमयन्ती का करुण स्वर सुनकर भी अपनी कठोरता लिए स्तब्ध खड़ा रहा। बार-

बार दमयन्ती पूर्ण विश्वास के साथ प्रार्थना करती लेकिन पर्वत उस दुखिया की पुकार पर मानो ध्यान ही नहीं देता था। फिर वह अपना माथा पीटती हुई निस्सहाय-सी पुकारने लगी :

"हे प्राणनाथ! आप सत्यवादी दृढ़व्रत होकर भी मुझे दर्शन क्यों नहीं देते। आइए नाथ! और एक बार अपने मधुर स्वर से अपनी प्रिया को पुकारिए। कहाँ छिप रहे हैं प्राणनाथ! इतना कहने पर भी क्या इस अबला को धैर्य बँधाने के लिए नहीं आएँगे?"



कहीं से कोई उत्तर न पाकर वह फिर निराश-सी अपना सिर लटकाये आगे बढ़ गयी और तीन दिन और तीन रात तक निरन्तर नल को खोजती हुई चलती रही। तीन दिन के पश्चात् उसे सामने ही एक भव्य आश्रम दिखाई दिया। आश्रम लताओं और वृक्षों के कारण अत्यन्त आकर्षक लगता था और वहाँ कुछ तपस्वी बैठे भगवान का ध्यान कर रहे थे। दमयन्ती आश्रम की तरफ़ खिंची चली गयी। तपस्वी ध्यानमग्न थे। उसने उनको प्रणाम किया। स्त्री का स्वर सुनकर तपस्वियों का ध्यान टूट गया। उन्होंने दमयन्ती का उचित सत्कार करके पूछा, "हे देवी! आप कौन हैं और इस तरह व्यथित-सी इस वन में किस कारण से भटक रही हैं? बताओ, हम आपकी क्या सहायता कर सकते हैं?"

तपस्वियों का सान्त्वनापूर्ण स्वर सुनकर दमयन्ती ने कहा, "हे तपस्वियो! मैं एक अभागिन हूँ और अपने पूर्वजन्म में किये पापों का फल भोगती हुई ही इस वन में भटक रही हूँ।"

यह कहती-कहती दमयन्ती गला फाड़कर रो उठी और फिर उसके अवरुद्ध कंठ से एक भी शब्द नहीं निकला। तपस्वियों ने उसे हर तरह से धैर्य बँधाया और उससे सारी बातें बताने के लिए आग्रह किया। दमयन्ती के उस अद्वितीय रूप पर आश्चर्य करते हुए तपस्वी बोले :

"हे देवी! धैर्य रखो। तुम इस वन की, इस पर्वत की और हमारी अधिष्ठात्री देवी हो। रोओ नहीं। हमें अपने जीवन की पूरी कथा सुनाओ।"

दमयन्ती सिसकते हुए स्वर से बोली, "हे तपस्वियो! मैं पर्वत, नदी या वन किसी की अधिष्ठात्री नहीं हूँ। मैं कोई दैवी शक्ति नहीं हूँ बल्कि मुझ अभागिन को तो आप मानवी ही समझिए। मैं विदर्भराज की कन्या हूँ और निषधराज नल मेरे पति हैं। विवाह के पश्चात् हम पूरे सुख के साथ जीवन बिताते थे और जीवन में दुःख की कभी कल्पना तक नहीं करते थे, लेकिन क्रूर भाग्य के कुचक्रों को कौन ऐसा प्राणी है जो पहले से जानता हो, हमारे जीवन के विरुद्ध भी कलियुग ने अपना भीषण षड्यन्त्र रचना प्रारम्भ कर दिया। वेद-वेदांग के ज्ञाता राजा नल की बुद्धि कलुषित होने लगी और वह अपने भाई पुष्कर के कपट-जाल में आ गये। उसने राजा को प्रलोभन से जुआ खेलने को उभारा और वे उस चुनौती को स्वीकार करके उससे जुआ खेलने लग गये। उसका परिणाम महाविनाश हुआ। नल अपना सारा राज्य जुए में हार गये और निर्वासित की तरह मुझे साथ लेकर वन-वन भटकते फिरे। अब वे मुझे छोड़कर जाने कहाँ चले गये हैं। हे तपस्वियो! मेरी रक्षा करो। मेरे पति से किसी तरह से मिला दो। मैं जीवनभर आपको आराध्य समझकर आपकी पूजा करूँगी। अगर मेरे पति मुझे नहीं मिले तो कहीं इसी वन में अपने प्राण त्याग दूँगी।"

दमयन्ती की यह बात सुनकर तपस्वियों के हृदय में करुणा उमड़ पड़ी। वे कहने लगे, "हे देवी! धैर्य रखो। भगवान अवश्य तुम्हारा कल्याण करेंगे। तुम शीघ्र ही सुखी हो जाओगी। हम अपने तप के प्रभाव से दिव्य दृष्टि रखते हैं। उसी से तुम्हारा भविष्य देखते हुए कहते हैं कि शीघ्र ही तुम्हारे स्वामी निषधराज नल! पाप-सन्ताप से मुक्ति पाकर फिर पहले की तरह सुख और ऐश्वर्य भोगेंगे। फिर न्याय और धर्म के अनुकूल प्रजा पर शासन करेंगे और भाई-बन्धु सब की समृद्धि में सहायक होंगे।"

इस तरह कहकर दूसरे ही क्षण वे तपस्वी और उनका आश्रम पता नहीं कहाँ चला गया। दमयन्ती अवाक्-सी खड़ी रह गयी। फिर उसके सामने वही निर्जन वन अपना विकराल रूप लिये खड़ा हो गया। इस आश्चर्यचकित कर देने वाली किसी घटना के पीछे किसी दिव्य शक्ति की कल्पना करके उसके हृदय को कुछ शान्ति मिली। वह वहीं कुछ सोचती हुई बैठ गयी। लेकिन फिर भी विरह की घड़ियाँ किसी तरह कटती नहीं थीं। वह अधीर होकर फिर उठी और सामने खड़े अशोक के वृक्ष के सामने खड़ी होकर कहने लगी, "हे अशोक! तेरा यह पवित्र रूप प्राणी मात्र का शोक दूर करने के लिए है। मेरा भी शोक दूर कर दे। क्या तूने मेरे प्राणनाथ निषधराज नल को भूख-प्यास से व्याकुल और आतप्त वायु के झोंकों से विचलित होकर इधर जाते देखा है? क्या तेरी इन कोमल पत्तियों की छाया में क्षण भर ठहर कर उन्होंने विश्राम नहीं किया? हे अशोक! मुझे बता दो, मेरे पति किस दिशा में गये हैं?"

अशोक कुछ नहीं बोला और दमयन्ती आँसू

बहाती हुई आगे चली गयी। चलते-चलते वह एक भयानक स्थान में पहुँची। वहाँ अनेक प्रकार के वृक्ष, नद, नदी, पर्वत, मृग, पक्षी और कन्दरा उसने देखे और वह देखती हुई विशाल नदी के किनारे पहुँची। उस नदी के दोनों ओर बेंत और झाऊ के वन खड़े थे। क्रौंच, कुरर, सारस, चक्रवाक अनेक तरह के पक्षी अपना-अपना राग छेड़ते हुए वहीं उड़ रहे थे। नदी में कछुए, मगर तथा कितनी ही मछलियाँ इधर-उधर फिर रहीं थीं।

उस नदी को एक बंजारों का दल पार कर रहा था। दमयन्ती उसकी निर्जनता से पूरी तरह घबरा चुकी थी, इसलिए उन बंजारों के टोली में मिल गयी आधी धोती पहने हुए और अपने पति के विरह में व्याकुल वह बिल्कुल पगली-सी दिखाई देती थी। उसे देखकर उन बंजारों में एक कौतूहल जाग उठा। सभी उत्सुक नज़रों से अपरिचित स्त्री की ओर देखने लगे। उत्सुकता के कुछ क्षणों के पश्चात् कोई बोला, "यह अवश्य कोई पतिता है।" दूसरा उसकी तरफ़ अपने नेत्र चलाकर हँसी-मज़ाक करने लगा, लेकिन बंजारों में जो सज्जन थे उन्होंने इस उच्छृंखलता को रोककर विनम्र होकर दमयन्ती से पूछा, "हे देवी! आप कौन हैं? किसकी स्त्री हैं? इस वन में इस तरह अकेली क्यों भटक रही हैं?

"हे कल्याणी! आपका दुःख देखकर हमारा हृदय भी दुखी हो रहा है। आप अपने बारे में सारा हाल हमें बताइए। क्या आप किसी यक्ष या राक्षस की पुत्री हैं? या इस पर्वत, नदी और इस दिशा की अधिष्ठात्री देवी हैं?

"हे देवी! आप दैवी या मानवी जो कोई भी हों, हमें अपना परिचय देकर सन्तुष्ट करिए।"

दमयन्ती बोली, "हे सज्जनो! मैं विदर्भराज भीम की पुत्री हूँ और निषधराज नल मेरे पति हैं। उन्हीं को खोजती हुई मैं इस तरह भटक रही हूँ।"

बंजारों के और आग्रह पर दमयन्ती ने अपनी पूरी कथा उन्हें कह सुनायी। यह सब सुनकर शुचि नाम के व्यक्ति ने कहा, "हे देवी! मैं इस दल का मुखिया हूँ। हम लोग चारों तरफ़ भ्रमण करते ही रहते हैं लेकिन नल नाम का कोई पुरुष तो हमारी दृष्टि में नहीं आया। सत्य, हमने तो किसी भी पुरुष को इस निर्जन वन में कहीं देखा नहीं।"

यह सुनकर दमयन्ती बहुत दुखी हुई। कहीं से भी कुछ पता नहीं लगता था। खोजते-खोजते उसकी सुन्दर देह काली पड़ती जा रही थी और भूख, प्यास और धूप सहते मुँह सूख गया था। बंजारों ने बहुत-सी बातें करके दमयन्ती को धैर्य बँधाया लेकिन विरह का एक-एक पल साँप की तरह उसे डस रहा था।

उसने शुचि से पूछा, "हे भद्र! आप लोग कहाँ जा रहे हैं?"

शुचि ने कहा, "देवी! हम व्यापार करने के लिए चेदि देश के राजा सुबाहु के राज्य में जा रहे हैं।"

दमयन्ती शुचि की आज्ञा से उसी दल के साथ चल दी। वे सभी लोग कुछ दिन चलते-चलते पद्मसौगन्धिक नाम के सरोवर के पास पहुँचे। वह स्थान अत्यन्त रमणीक था। सभी ने वहाँ विश्राम किया।

रात हो गयी। धने अन्धकार की पर्त वन के ऊपर झूलने लगी। बंजारे दिन भर के थके हुए थे। सभी निश्चिन्त होकर सो गये। अपने हाथियों को उन्होंने पेड़ों के मोटे तनों से बाँध दिया। आधी रात के समय जंगली हाथियों का एक टोल पहाड़ी नदी में पानी पीने के लिए उधर आया। वहाँ पालतू हाथियों को बँधा देखकर वे जंगली हाथी उन पर टूट पड़े। उनके वेग से भागने के कारण कोलाहल मच गया। पालतू हाथी अपनी जंजीरों से जूझ रहे थे। बंजारे वहीं पेड़ों के नीचे सोये हुए थे। जंगली हाथियों की रगड़ से बड़े-बड़े पेड़ टूट कर गिरने लगे जिससे कितने ही आदमी तो कराह कर सदा के लिए वहीं सोते रह गये। कुछ हाथियों के पैरों के नीचे आकर मर गये। आधी रात को इस तरह वन में हाहाकर मच उठा। बहुत से मारे गये और जो बचे थे वह मृत्यु के भय से पुकारते हुए इधर-उधर भागने लगे लेकिन कहीं कोई बचाव नहीं दिखता था। जो पेड़ों पर चढ़कर अपनी जान बचाना चाहते थे वे भी पेड़ों के गिरने से उनके नीचे दबकर मर गये।

चारों ओर मृत्यु का नंगा नृत्य होने लगा और मरते हुए व्यक्तियों के आर्तनाद से पूरा वन भर गया। दमयन्ती दूर हट कर काँपती हुई यह देख रही थी। पहले कभी भी ऐसा भयानक विनाश उसने नहीं देखा था। इसलिए इसे देखकर उसका हृदय रो उठा। वह उन बंजारों की करुण आवाज़ सुन रही थी। जो बच गये थे वे कह रहे थे, "इस अनर्थ का कारण क्या हो सकता है? अवश्य मणिभद्र और यक्षराज कुबेर की पूजा न करने से ही यह विपत्ति हमारे ऊपर आयी है। यात्रा के प्रारम्भ में तो सभी नक्षत्र हमारे अनुकूल थे फिर यह महान संकट कैसा?"

उनमें से कुछ बोले, "नहीं भाइयो! हमारे विनाश का कारण देवता नहीं हैं। यह सब विकृत आकार वाली, पगली स्त्री की ही माया मालूम होती है। अब इसमें सन्देह नहीं है भाइयो कि वह मानवी स्त्री के रूप में कोई मायाविनी राक्षसी या कोई यक्षिणी या पिशाचिनी है। कहाँ है वह स्त्री? भाइयो! जहाँ भी वह तुम्हें दिखे उसे पत्थरों से मारकर गिरा दो, तभी हमारे ऊपर चढ़ी हुई उसकी माया का अन्त हो सकता है।"

दमयन्ती छिपकर यह सुन रही थी। उसकी देह काँप उठी। वह चुपके से पाछे हट कर भाग चली और बार-बार अपने भाग्य को कोसने लगी। काफ़ी दूर जाकर अनेक तरह से वह विलाप करने लगी और सबके विनाश का कारण अपने आपको समझकर बार-बार अपने माथे को कूटने लगी।

रात निकल गयी! हाथियों का उत्पात समाप्त हो गया तो बचे हुए बंजारे अपने स्वर्गीय साथियों के लिए आँसू बहाते चल दिये। दमयन्ती भी कोई दूसरा उपाय न देखकर दूर से उन्हें देखकर उनके पीछे चल दी।

सन्ध्या को वह चेदि देश के राजा सुबाहु के राज्य में पहुँची। इधर-उधर मारी-मारी भटकने के कारण उसकी सूरत कुछ पगलियों जैसी हो गयी थी। बाल सूखे होकर इधर-उधर बिखर रहे थे। शरीर पर फटी हुई आधी धोती थी। हृदय में किसी प्रकार की शान्ति न होने के कारण वह व्याकुल-सी नगर के भीतर फिरने लगी। नगरवासी बड़े कौतूहल से दमयन्ती को देखने लगे। बच्चों ने तो सचमुच उसे पगली समझ लिया और वे उसके पीछे शोर मचाते हुए चलने लगे। दमयन्ती अपनी अवस्था पर और भी दुखी होती हुई राजमहल के नीचे से निकली। उसकी आँखों में आँसू थे और बच्चों के कोलाहल की तरफ़ उसका तनिक भी ध्यान नहीं था।

उस समय राजमहल की छत पर राजमाता टहल रही थीं। इस दीन स्त्री की यह अवस्था

देखकर उनका हृदय करुणा से आप्लावित हो उठा। उन्होंने तत्पर होकर अपनी धाय से कहा, "देखो धाय! उस दीन स्त्री की तरफ़ देखती हो। उसके इस मुरझाये मुख पर भी कैसा तेज़ है। साक्षात लक्ष्मी लगती है। बेचारी किसी महान् विपत्ति में पड़ी इस तरह पागलों जैसी फिर रही है। तुम शीघ्र जाकर उसे मेरे पास ले आओ। मेरा हृदय उसकी इस अवस्था पर अत्यन्त दुखी हो रहा है।"

धाय तुरन्त ही राजमहल से उतर कर दमयन्ती के पास पहुँची और कहने लगी, "हे कल्याणी! इस दीनावस्था में भी आप लक्ष्मी के समान सुन्दर और तेजस्विनी लगती हैं, इस तरह दुखी होकर आप किस कारण से फिर रही हैं?"

"हे शुभ्रे! आप कौन हैं? इस तरह शान्त रहकर आप किसकी चिन्ता में डूबी हुई हैं? मुझे बताइए देवी!"

दमयन्ती ने धीमे स्वर में कहा, "मैं एक अभागिन स्त्री हूँ जो अपने पति के वियोग में इस तरह अनाथ होकर फिर रही हूँ। बहिन! देखती हो यह नगरवासी मुझे पागल समझकर मेरा उपहास कर रहे हैं। मैं एक कुलीन और पतिव्रता स्त्री हूँ और किसी प्रकार पागल नहीं हूँ। क्रूर भाग्य के थपेड़े सहती-सहती ऐसी हो गयी हूँ। क्या है मेरा जीवन पति के बिना। दिन-रात उनकी याद में रोती हूँ। उनको चारों तरफ़ खोजती हुई भटकती रहती हूँ। बहिन! इस दुख में रात मेरे लिए रात नहीं है और दिन दिन नहीं है। एक दैवी वरदान के रूप में अपने पिता के यहाँ पैदा हुई थी, क्या पता था यही जीवन अभिशाप बन जाएगा?"

धाय दमयन्ती की बातों से अधीर हो उठी। स्त्री का हृदय स्त्री के हृदय को अच्छी तरह पहचानता है और फिर स्त्री-जीवन की परवशता! धाय का जीवन ही दूसरे जीवन को सँवारने का है, फिर क्यों नहीं उसका हृदय दमयन्ती के इस करुण विलाप पर रो उठता। उसने पूछा, "देवी! आपके पति कौन हैं और कैसे आपसे बिछुड़ गये हैं। मुझे सब बताइए। मेरी उत्सुकता बढ़ रही है।"

दमयन्ती ने सारी कथा प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कह सुनाई और फिर आतुर होकर पूछने लगी, "क्यों बहिन! क्या आपने कहीं मेरे प्रियतम को देखा है? मुझे बता दो बहिन! मैं जीवन-भर आपकी कृतज्ञ रहूँगी।"

धाय ने उदास स्वर से कहा, "नहीं बहिन! मैंने तो उन्हें नहीं देखा लेकिन धैर्य रखो देवी! चलो मेरे साथ, राजमाता आपको बुला रही हैं। वे अवश्य आपके पति की खोज करवाएँगी।"

और भी कितने ही इस तरह के आश्वासन देकर धाय दमयन्ती को राजमाता के पास ले गयी। राजमाता ने जब उसकी सारी करुण कथा सुनी तो उनकी आँखों में भी आँसू छलक आये। उन्होंने बड़े स्नेह में भरकर दमयन्ती से कहा, "हे भद्रे! मुझे तुमसे अत्यधिक सहानुभूति है। दैव की गति बड़ी विचित्र है बेटी! जिसने तुम जैसी लक्ष्मी को भी इस तरह अनाथ की तरह वन-वन भटकाया। अब तुम्हें कहीं भी भटकने की आवश्यकता नहीं है। यहीं हमारे पास रहो। मैं अपने सेवकों को चारों दिशाओं में भेजकर अवश्य तुम्हारे पति का पता लगवा दूँगी। तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो। भगवान ने चाहा तो सब अच्छा ही होगा।"

दमयन्ती राजमाता की इस तरह सहानुभूतिपूर्ण बातें सुनकर रो पड़ी और राजमाता ने उसे अपने सीने में लगाकर पुचकारते हुए चुप किया। वह उसे हर तरह धैर्य बँधाती। जब दमयन्ती की सिसकियाँ थम गयीं, तो उसने धीमे स्वर में कहा, "हे माता! मेरी माता से बिछुड़ने के बाद आप ही मुझे मेरी माता के तुल्य मिली हैं। मुझ अभागिन से आप जो स्नेह और सहनुभूति दिखा रही हैं उसके लिए आप धन्य हैं। लेकिन हे देवी! मैं यहाँ उसी सूरत में रह सकती हूँ जब मैं अपने नियमों का यहाँ पर ठीक तरह से पालन कर पाऊँगी।"

राजमाता ने उत्सुक होकर पूछा, "क्या नियम हैं बेटी?"

दमयन्ती ने कहा, "मैं किसी का जूठा नहीं खाऊँगी। किसी के पैर नहीं धोऊँगी। किसी अन्य पुरुष से बातें नहीं करूँगी और अगर कोई मेरे साथ दुर्व्यवहार करेगा तो आप इसका उसे दंड देंगी, यहाँ तक कि मेरे सम्मान को नष्ट करने की इच्छा रखने वाले पुरुष को आप मृत्युदंड तक भी देंगी। इसके अलावा जो सेवक मेरे स्वामी का पता लगाने जाएँ उनसे सारा वृत्तान्त मैं स्वयं पूछूँगी।"

"हे माता! अगर इन नियमों का ठीक तरह से मैं आपके संरक्षण में यहाँ पालन कर सकती हूँ तो आप मुझे ठहरने के लिए विवश कीजिए नहीं तो मेरा घर तो अब निर्जन वन में है। अब तक जैसे भटकती रही हूँ वैसे ही फिर भटक लूँगी।"

दमयन्ती की बात सुनकर राजमाता मुस्कराकर बोली, "बेटी! अपने नियमों का तू अच्छी तरह यहाँ पालन कर सकेगी। सारी चिन्ता अपने मन से निकाल। यहाँ इसी तरह रह जैसे अपने घर रहती थी। हमको किसी तरह दूसरा मत समझ। दुख मनुष्य पर आते हैं, लेकिन मनुष्य ही मनुष्य के दुख का निवारण करता है।"

यह कहकर राजमाता ने पुकारा, "सुनन्दा! सुनन्दा!"

राजकुमारी सुनन्दा भागकर अपनी माता के पास आ खड़ी हुई। दमयन्ती को देखकर उसे कुछ आश्चर्य होने लगा। वह पूछने ही वाली थी कि राजमाता ने कहा, "सुनन्दा! देखो, तुम्हारी सहेली आयी है। इसका नाम दमयन्ती है। इसका चित्त दुखी है, इसलिए अपने साथ रखकर इसके चित्त को बहलाने का प्रयत्न करो और तुम दोनों मिलकर बहिनों की तरह खेलो, समझे।"

सुनन्दा ने प्रसन्न होकर दमयन्ती का हाथ पकड़ लिया। दमयन्ती ने देखा कि सुनन्दा की आँखों में कितना अनुराग था, कितना सौहार्द था। एक बार तो मनुष्य के इस रूप पर वह विश्वास नहीं कर पायी पर तुरन्त ही उसके मुँह से निकल पड़ा, 'मेरी बहिन सुनन्दा!' और उसी क्षण वे दोनों एक दूसरे के गले मिलीं। सुनन्दा दमयन्ती को खींचकर अपने कमरे की तरफ़ ले गयी और वहाँ उसने उससे सारी बातें पूछीं। दमयन्ती ने अपनी दुखभरी कहानी कह सुनायी। उसे सुनकर तो सुनन्दा उससे और भी अधिक प्रेम करने लग गयी।

इस तरह वन-वन भटकने के बाद दमयन्ती चेदि देश के राजा सुबाहु के यहाँ रहने लगी। यहाँ भूख-प्यास और भटकन की वेदना नहीं थी, लेकिन पति की याद दिन-दिन उसको दुखी रखती। सेवक अभी किसी प्रकार की शुभ सूचना लेकर नहीं लौटे थे।

नल दमयन्ती को छोड़कर एक वन में घुसा कुछ ही दूर चलने पर उसने देखा कि प्रचं

अग्नि से वन जल रहा है। आग की लपटें उसकी तरफ़ भी बढ़ी चली आ रही हैं। वह एक साथ भयभीत हो उठा। वह पीछे मुड़ना ही चाहता था कि उसी समय जलते वन के भीतर से किसी की करुण पुकार सुनाई दी, ''हे पुण्यश्लोक नल! मुझे बचाइए! दौड़िए, मेरी रक्षा कीजिए।''

नल के पैर वहीं रुक गये। यह करुण पुकार सुनकर उसका पौरुष जाग उठा। दावाग्नि से भी अधिक प्रचंड आग हृदय में अथाह साहस जगाती हुई उठी और वह दौड़कर उस जलते हुए वन में घुस गया। वहाँ उसने देखा कि एक विशाल अजगर कुंडली बनाये पड़ा था और मृत्यु के भय से पुकार रहा था। नल उसे देखकर ठहर गये। आग की लपटों ने चारों ओर से नल को घेर लिया था लेकिन उसकी तनिक भी चिन्ता न करते हुए नल बोला, ''कौन हो तुम? करुण विलाप क्या तुम ही कर रहे थे?''

इस पर उस नाग ने कहा, ''हे निषधराज नल! मेरा नाम कर्कोटक नाग है। नाग वंश में मेरा जन्म हुआ है। एक बार मैंने झूठ बोलकर नारदजी के साथ छल किया था, उसी कारण देवर्षि मुझे यह शाप देकर चले गये थे कि 'हे कर्कोटक! आज से तू जड़-जीवों की तरह अचेत होकर यहीं पड़ा रहेगा। जब राजा नल भटकते हुए यहाँ आएँगे तब वे तुझे इस स्थान से हटाएँगे और तभी तेरा शाप से छुटकारा होगा।''

''हे निषधराज! उसी शाप के कारण मैं यहाँ पड़ा हूँ। देखिए चारों ओर से आग की लपटें बढ़ी आ रही हैं। आप मुझे किसी तरह बचाइए। मैं तो यहाँ एक पग भी नहीं चल सकता।

''हे राजन्! इससे आपका बड़ा उपकार होगा। मैं आपके हित की बात बताऊँगा।''

नल ने कहा, ''हे कर्कोटक, तुम्हारी इस विशाल देह को मैं किस तरह हटाऊँ?''

यह सुनकर कर्कोटक ने अपना शरीर छोटा कर लिया। वह अँगूठे के बराबर, लम्बा, चौड़ा और हल्का हो गया। नल उसे उठाकर ले चला और जहाँ आग नहीं थी वहाँ उसे रखने लगा। उसी समय कर्कोटक ने कहा, ''हे राजन्! आप अभी मुझे पृथ्वी पर मत रखिए बल्कि मुझे लेकर गिनते हुए दस पग और आगे बढ़िए।''

नल उसकी बात मानकर नौ पग बढ़ा और साथ में गिनती बोलता गया। दसवें पग पर उसने कहा, ''कर्कोटक! दश ''(संस्कृत में 'दश' शब्द का अर्थ है काट। राजा की आज्ञा पाकर ही कर्कोटक ने उन्हें काटा।) उसी समय कर्कोटक ने नल को डस लिया और उसी क्षण नल का रूप बदल गया। नल इससे बड़े आश्चर्य में पड़ गया। उसे कर्कोटक पर बड़ा क्रोध आया, लेकिन कर्कोटक ने राजा को शान्त करते हुए अति विनम्र स्वर में कहा, ''हे महाराज! आप क्रुद्ध न हों और न किसी प्रकार की चिन्ता ही करें। आपका अब रूप बदल गया है, इस कारण कोई भी आपको नहीं पहचान पाएगा। यही मेरे डसने का तात्पर्य है। इसके अलावा मैं आपके शरीर में प्रविष्ट पापी कलियुग को भी उसके पाप का दंड देना चाहता था। अब वह सदा मेरे विष से पीड़ित रहेगा। अब वह पापी शान्ति से बैठकर आपके जीवन के विरुद्ध षड्यन्त्र नहीं रच सकेगा।''

''हे राजन्! अब आप मेरी ही तरह हो गये हैं, इसलिए वन में हिंस्र पशु और शत्रु आपको किसी तरह का कष्ट नहीं पहुँचा सकते। फिर आपके ऊपर किसी का शाप भी नहीं लगेगा। आप सदा युद्ध में विजयी होंगे। विष के बारे में आप किसी तरह चिन्तित न हों। इसका आपके ऊपर कोई विषैला प्रभाव नहीं होगा।

''अब मैं आपको जो सलाह देता हूँ उसको ध्यानपूर्वक सुनिए। आप अपनी इसी अवस्था में अयोध्यापुरी चले जाइए और वहाँ के राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथि का कार्य करिए। राजा से प्रार्थना करिए। वे अवश्य आपको यह कार्य दे देंगे। उनके पास जाकर अपना नाम बाहुक बताना। ऋतुपर्ण पाँसे खेलने में अत्यन्त प्रवीण हैं। वे तुमसे अश्व-संचालन की विद्या सीख कर पाँसों का अद्भुत कौशल सिखा देंगे। पाँसों का कौशल प्राप्त करने से आपका कल्याण होगा। राज्य, स्त्री, पुत्र-पुत्री, धन, ऐश्वर्य सभी आपको पुनः प्राप्त हो जाएगा और आप निकट भविष्य में ही सुख से अपना जीवन बिता सकेंगे।''

कर्कोटक की बात सुनकर नल एक चिन्ता में डूब गया। कर्कोटक ने नल को इस तरह चिन्तित देखकर कहा, ''हे राजन्! किसी प्रकार की चिन्ता करके अपने चित्त को क्लेश मत पहुँचाओ। जाइए आपकी विजय अवश्य होगी। पापी कलियुग अब अधिक दिनों तक आपका अनर्थ नहीं कर सकेगा। अगर आपको अपने पूर्व रूप की चिन्ता है तो लो मैं आपको ये दो वस्त्र देता हूँ। जब भी आप अपना पूर्व रूप प्राप्त करना चाहें इन वस्त्रों को पहन लें। उसी क्षण आप अपना पूर्व रूप प्राप्त कर लेंगे।''

यह कहकर कर्कोटक नाग वहाँ से अन्तर्धान हो गया।

नल चलता हुआ अयोध्या पहुँचा और वहाँ जाकर महाराज ऋतुपर्ण के सामने गया। ऋतुपर्ण ने आने का मन्तव्य पूछा। नल ने कहा, ''हे अयोध्यापति! मेरा नाम बाहुक है और मैं अश्वसंचालन की विद्या में अति प्रवीण हूँ। इसके साथ समय-समय पर आपको राज्य-सम्बन्धी विषयों में सम्मति भी दे सकता हूँ। अगर धनाभाव के कारण किसी तरह की आपत्ति आ जाए तो मैं आपको उसे निवारण करने का उपाय बता सकता हूँ। फिर तरह-तरह के पकवान आदि बनाने की कला भी मैं जानता हूँ। इनके अलावा और भी कितनी ही कलाओं के विषय में कुछ-कुछ ज्ञान रखता हूँ।

''हे महाराज! अगर आप मुझे अपने यहाँ आश्रय दे सकें तो आपकी मेरे ऊपर अति कृपा होगी।''

नल की यह बातें सुनकर ऋतुपर्ण ने कहा, ''हे बाहुक! अवश्य, हम तुम्हें अपने यहाँ आश्रय देंगे। मुझे अश्वसंचालन की ओर बहुत रुचि है और मैं सदा यही चाहता हूँ किसी तरह मेरे रथ के घोड़े वायु की-सी तीव्रगति चलने लग जाएँ। हे सारथि! तुम यहाँ रहकर इसके लिए भरसक प्रयत्न करो। मैं तुमको अश्वशाला का सर्वोच्च अधिकारी बनाता हूँ और इसके लिए वेतन रूप से दस हज़ार स्वर्ण-मुद्राएँ प्रति मास दिया करूँगा। वार्ष्णेय और जीवन दो व्यक्ति तुम्हारे अधीन रहकर हर तरह से तुम्हारी सहायता करेंगे। जाओ अपने कार्य पर आरूढ़ हो जाओ।''

ऋतुपर्ण के आदर-भरे हुए शब्द सुनकर नल अत्यधिक प्रसन्न हुआ। उसने अश्वशाला में जाकर कार्य प्रारम्भ कर दिया। दिनभर वह कार्य में व्यस्त रहता लेकिन रात्रि होते ही प्रिया के विरह में अधीर होकर विलाप करने लग जाता। वार्ष्णेय और जीवन सुनते कि बाहुक लम्बी-लम्बी श्वास भरते हुए कहता :

''हा प्रिये! तुम कैसी दारुण व्यथा सहकर अपने दिन काट रही होगी। मेरे विरह में एक-एक पल पर्वत का भार लेकर तुम्हारे ऊपर से

निकलता होगा।

"हा प्रिये! कैसा निष्ठुर होता है पुरुष जो इस तरह अपनी प्रिया को छोड़कर चला जाता है। न जाने भूख-प्यास सहती हुई तुम इस समय कहाँ होगी।"

जीवन प्रत्येक रात्रि को बाहुक के मुँह से यही करुण विलाप सुना करता। वह इसका कारण समझ नहीं पाता। एक रात को उसने साहस करके पूछा, "हे बाहुक! नित्य रात्रि को तुम्हारा करुण विलाप सुनता हूँ। कुछ कारण समझ में नहीं आता। हे भद्र! वह कौन-सी स्त्री है। जिसकी याद में तुम इस तरह रोते रहते हो? मुझे बताओ। तुम्हारा यह करुण विलाप मुझसे सहा नहीं जाता।"

नल ने कहा, "जीवन! एक अभागे पुरुष की करुण कथा सुनकर क्या करोगे, लेकिन तुम्हारा आग्रह देखकर मैं कहता हूँ। एक मूढ़ मनुष्य था। उसकी एक अत्यन्त सुशील और गुणवती स्त्री थी। किसी कारणवश वह अभागा अपनी प्रिया को छोड़कर चला गया और अब उसी के विरह में व्याकुल विलाप किया करता है। रात निकल जाती है। संसार के सभी प्राणी सुख की नींद सोते रहते हैं लेकिन वह अभागा अपनी व्यथा के कारण नहीं सो पाता। वह अभागा इसी दुख में भटकता हुआ एक स्थान पर नीच वृत्ति करके अपना पेट भरने लगा है और अपनी उस पतिव्रता स्त्री की याद उसको रात-दिन खाये जाती है।

"हाय! वह बेचारी अबला न जाने इस निर्जन वन में किस तरह नंगे पैरों भटकती होगी। वह तो कभी पृथ्वी पर पैदल नहीं चलती थी। अब मार्ग के काँटे और पत्थर उसके कोमल पदों को चीरते होंगे।

"हाय! क्रूर भाग्य! जिसने भूख-प्यास अपने जीवन में देखी नहीं वही सुन्दरी दिन-दिन और रात-रात भूखी रहकर अपने प्रियतम को खोजती फिरती होगी। वन के हिंस्र पशु उसको डराते होंगे, अनेक तरह की आँधी-तूफान उसकी कोमल देह को झकझोरते होंगे। हाय! पता नहीं इस अनन्त दुख के कारण उसकी देह नष्ट तो नहीं हो गयी।

"हे जीवन! विधाता के सिवा कौन जानता है कि वह दुखिया इस संसार में जीवित भी है या नहीं।"

जीवन नल का यह करुण विलाप सुनकर अत्यन्त दुखी हो गया और उसने आगे कुछ न पूछकर बाहुक नामधारी नल को हर तरह से धैर्य बँधाया।

इस तरह अयोध्यापति ऋतुपर्ण के यहाँ गुप्तरूप में नल अपना जीवन बिताने लगा।

उधर जब विदर्भराज भीम को अपनी पुत्री और दामाद के बारे में सारा हाल मालूम हुआ तो वे अत्यन्त अधीर हो गए। उन्होंने ब्राह्मणों को एकत्रित करके कहा, "हे पूजनीय ब्राह्मणो! मेरी पुत्री दमयन्ती और उसके पति नल न जाने कहाँ वन में भटक रहे हैं। तुम जाकर उनका पता लगाओ। जो भी कोई नल और दमयन्ती को खोजकर यहाँ ला सकेगा उसको मैं एक सहस्र गायें और एक समृद्ध ग्राम पुरस्कार रूप में दूँगा और वे न आ सके और कोई उनका पता ही न लगा पाया तो उसको भी एक सहस्र गायें दूँगा।"

राजा की बात सुनकर ब्राह्मण नल और दमयन्ती की खोज में निकल पड़े। इन ब्राह्मणों में सुदेव नाम का एक ब्राह्मण था। वह अनेक देशों में नल और दमयन्ती को खोजता हुआ अन्त में चेदि देश की राजधानी में पहुँचा। किसी तरह उसको पता लग गया कि कोई दुखी स्त्री राजभवन में रहती है। उत्सुक होकर सुदेव राजभवन में पहुँचा और वहाँ उसने दमयन्ती को सुनन्दा के साथ खेलते हुए पाया। राजकुमारी को देखकर सुदेव का चेहरा खिल उठा। दमयन्ती विरह-पीड़ा के कारण बहुत दुर्बल हो गयी थी। उसका मुख मुरझा गया था लेकिन उस रूप में भी सुदेव ने आकर और चिह्नों से दमयन्ती को पहचान लिया।

ब्राह्मण थोड़ी देर के लिए अवश्य प्रसन्न हुआ लेकिन फिर दमयन्ती की दयनीय अवस्था देखकर उसका जी फटने लगा। वह अति दुखी होता हुआ मन में कहने लगा, "हाय विधाता! तेरा भी कैसा अन्याय है। स्वर्ण के समान कान्ति वाली, पूर्ण चन्द्र के से मुख वाली, पीन स्तनों वाली अत्यधिक रूपवती यह राजकुमारी इस समय अपने पति के वियोग में ऐसी मालूम होती है जैसे राहु से ग्रसित चन्द्रमा से युक्त पूर्णिमा की रात्रि हो। कमलदल के से विशाल नेत्रों वाली यह राजकन्या आज ऐसी मालूम देती है जैसे कोई सूखी हुई नदी हो या हाथी की सूँड़ से नष्ट हुई कमलिनी हो।

"हाय विधाता! कैसे यह राजकन्या अब तक जीती रही। इसका दुःख देखकर तो मेरा जी फटा जा रहा है। राजा नल कैसा निष्ठुर है जो ऐसी पत्नी को छोड़कर चला गया। कैसा अन्याय है! अब कैसे यह राजकन्या अपने पूर्व सुख को प्राप्त करेगी!"

इस तरह सोचते हुए सुदेव दुखी हो रहे थे। सुनन्दा बैठी हुई दमयन्ती से बातें कर रही थी। सुदेव साहस करके दमयन्ती के पास पहुँचा और कहने लगा, "हे विदर्भराज की प्रिय कन्या! क्या तुम मुझे नहीं पहचान सकतीं? मैं तुम्हारे भाई का सखा सुदेव हूँ। तुम्हारे पिता महाराज भीम तुम्हारे लिए अत्यन्त व्यथित हैं। उन्होंने बहुत-से ब्राह्मणों को तुम्हारा पता लगाने के लिए भेजा है।

"हे देवी! उन सब में मैं सबसे अधिक सौभाग्यशाली हूँ जो तुम्हारे पास आ सका। अब चलो, अपने पिता के घर चलकर सभी के चित्त को शान्त करो। वे तुम्हारे बिना अति व्याकुल हो रहे हैं।"

सुदेव को देखकर और उसकी बात सुनकर दमयन्ती चौंकी। उसने बड़े ध्यान से ब्राह्मण को देखा और पहचान लिया। उस समय उसके हृदय में अपार हर्ष समा गया। उसने अपने घर का सारा कुशल समाचार सुदेव से पूछा। सुदेव जैसे ही कहता जाता था, वैसे ही दमयन्ती की आँखों से आँसू बहते जाते थे। अपने माता-पिता की याद करके वह सुदेव से लिपटकर जोर से रो पड़ी। बचपन की स्मृतियाँ एक बार फिर उसके सामने आ गयीं। सुदेव दमयन्ती को धैर्य बँधाने लगा। अपनी सहेली दमयन्ती को रोती देखकर सुनन्दा दुखी होकर राजमाता के पास गयी और कहने लगी—

"माताजी! अभी-अभी एक ब्राह्मण आया है और वह सैरन्ध्री से बातें कर रहा है। उसकी बातों को सुनकर वह रो रही है। पता नहीं वह ब्राह्मण कौन है। मुझे तो इसका कारण समझ में नहीं आता है। आप कृपया इसका पता लगाइए।"

सुनन्दा की बात सुनकर राजमाता उत्सुकता के साथ बाहर आयीं। सुदेव को देखकर वे बोलीं, "हे ब्राह्मण! आप कहाँ से आये हैं? और आपसे मिलकर यह कन्या क्यों रो रही है? इसका कारण

बताइए। और भी जो आप सैरन्ध्री के बारे में जानते हों हमें बताइए।''

सुदेव ने राजमाता से सारी कथा कह सुनायी। ब्राह्मण कहने लगा, ''हे देवी! यह कन्या जीवन में अपार सुख और ऐश्वर्य भोगेगी। इस बात का सूचक चिह्न इसके मस्तक पर है। भौहों के बीच में स्थित इस चिह्न को देखकर ही मैंने पहचान लिया है कि यह कन्या विदर्भराज की पुत्री दमयन्ती है।''

राजमाता ने भी उस चिह्न को देखा तो वे सुख और दुख की मिश्रित भावनाओं के से आवेश में आकर दमयन्ती से लिपट गयीं और कहने लगीं, ''हे पुत्री! तुमने अपना गुप्त भेद अभी तक हमसे छुपा रखा था। अब मुझे पता लगा है कि तुम तो मेरी बहिन की पुत्री हो। तुम्हारी माता और मैं दोनों ही दशार्ण देश के स्वामी राजा सुदामा की कन्या हैं। मेरा विवाह तो महाराज वीरबाहु के साथ हुआ और तुम्हारी माँ का महाराज भीम के साथ। जिस समय तुम्हारा जन्म तुम्हारे ननिहाल में हुआ था, मैं दशार्ण नगर में ही थी।''

राजमाता अपार स्नेह दिखाकर कहने लगीं, ''बेटी दमयन्ती! मेरे घर को तुम अपने पिता के समान समझो और यहीं रहो।''

दमयन्ती राजमाता से लिपट कर बोली, ''माता! आपने मेरी दीनावस्था में जैसा मेरा स्वागत किया, उसके लिए मैं आपकी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। किसी प्रकार का कष्ट मैंने आपके यहाँ नहीं पाया, लेकिन अब ब्राह्मण की बात सुनकर मुझे अपने माता-पिता की याद आ रही है। पता नहीं मेरे दुख के कारण उनका हृदय भी कितना दुख रहा होगा। अब आप मुझे आज्ञा दीजिए, जिससे विदर्भ नगर पहुँचकर मैं उनको धैर्य बँधा सकूँ।''

राजमाता ने दमयन्ती की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसे उचित सम्मान के साथ विदा कर दिया।

अपनी पुत्री को आयी देख राजा भीम को अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्होंने सुदेव को एक सहस्र गायें, बहुत-सा धन और एक ग्राम पुरस्कारस्वरूप दिया। माता-पिता ने दमयन्ती से सारी कथा सुनी। दमयन्ती ने रोते हुए अपनी माँ से लिपट कर कहा, ''माँ! किसी तरह राजा नल का पता लगवाइए। उनके बिना मैं किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकती। उनके बिना मेरी जीवन-यात्रा बड़ी कठिन है माँ! मेरी प्रार्थना मानकर आप शीघ्र उनका पता लगवाने का प्रयत्न कीजिए।''

अपनी पुत्री की आँखों में आँसू देख माँ का हृदय रो उठा। उन्होंने दमयन्ती के सिर पर हाथ रखकर कहा, ''धैर्य रख बेटी! मैं अभी उनको खोज लाने की व्यवस्था करती हूँ।''

रानी ने जाकर राजा भीम से सारी बात कह दी। राजा ने नल का पता लगाने के लिए ब्राह्मणों को भेजा। ब्राह्मण जाने से पहले दमयन्ती के पास आकर बोले, ''हे राजकन्या! तुम्हारे पिता ने हमें महाराज नल का पता लगाने भेजा है। अब बताओ, अगर उनसे हमारी भेंट हो जाए तो हम क्या कहें?''

दमयन्ती ने कहा, ''हे ब्राह्मणो! अगर तुम्हें राजा मिलें, तो अपना स्वर कठोर करके कहना, ''हे पाखंडी अपनी पतिव्रता स्त्री को इस तरह वन में सोती छोड़कर भाग जाना क्या तुम्हारे लिए उचित था, और फिर उससे बिना कहे ही उसकी आधी धोती फाड़कर तुम यहाँ क्यों भाग आये हो? क्या तुम्हारा यह कार्य तुम्हारी प्रतिज्ञा के अनुकूल है? तुम्हारी प्रिया कहलाने वाली यह अभागिन स्त्री दिन-रात तुम्हारी याद में रोया करती है। क्या चलते समय तुम्हें उस अबला की तनिक भी चिन्ता न रही कि उस निर्जन वन की कठोर भूख-प्यास वह कैसे सह पाएगी।

''इस तरह अनेक बातें कहकर हे ब्राह्मणो! तुम नल के हृदय में मेरे प्रति करुणा का संचार करना। अगर तुम्हारी इन बातों से भी उनका अनुराग मेरे प्रति न जागे, तो यह भी कह देना कि, हे मूढ़! तू जिस स्त्री का हाथ पकड़कर उसके पिता के घर से यह कह कर लाया था कि इसकी जीवन-भर रक्षा करूँगा, उसका इस प्रकार तिरस्कार करना क्या धर्म के अनुकूल कार्य है? हे नल! तुम सत्यप्रतिज्ञ, धार्मिक और अत्यधिक दयावान कहलाते हो। फिर अपनी पत्नी को ठुकरा कर ऐसे कठोर सत्य के विरुद्ध कार्य तुमने क्यों किया? अब तो कम से कम उस दुखिया के आँसू पोंछने के लिए चलो, नहीं तो वह तुम्हारे बिना किसी दिन रो-रोकर प्राण त्याग देगी।

''हे ब्राह्मणो! तुम्हारे इस प्रकार कहने से राजा नल अवश्य मेरे ऊपर दया करेंगे और वे तुम्हारे साथ आ जाएँगे। अगर वे किसी कारणवश न आ सकें, तो जो भी उत्तर इन बातों का वे दें, उस सबको मुझसे आकर कहना। लेकिन हे ब्राह्मणो! इसके बारे में किसी अन्य व्यक्ति को कुछ भी ज्ञात नहीं होना चाहिए। भगवान अवश्य तुम्हारी यात्रा सफल करेंगे।''

दमयन्ती ने ब्राह्मणों को विदा कर दिया। वे लोग राजा नल की खोज में सैकड़ों नद, नदी, गाँव, नगर, व्रज और आश्रमों पर होकर निकले, लेकिन नल का कहीं पता नहीं लगा। ब्राह्मण निराश हो गये। वे भिन्न-भिन्न दिशाओं में बिखर गये।

खोजते-खोजते बहुत दिन बीत गये, तब पर्णाद नाम का एक ब्राह्मण अयोध्या नगरी पहुँचा। वहाँ महाराज ऋतुपर्ण से मिलकर उसने नगर में नल के बारे में घोषणा करवायी कि जिसे भी राजा नल के विषय में कुछ पता हो वह आकर राजसभा में सूचना दे। पर्णाद कुछ दिन तक वहीं रुका रहा। किसी भी तरह की सूचना नहीं आयी। जब पर्णाद निराश होकर चलने लगा, तो महाराज ऋतुपर्ण का सारथि बाहुक उसके पास आया। उसकी आँखों में आँसू थे और लम्बी-लम्बी श्वासें भरते हुए वह इस तरह बोल रहा था। मानो किसी भीषण व्यथा से उसका हृदय फटा जा रहा था। उसने पहले तो पर्णाद को अपना परिचय दिया और कहने लगा, ''हे ब्राह्मण! मुझे दमयन्ती नाम की राजकन्या की अवस्था पर बड़ा दुःख हो रहा है। सत्य है, जिस स्त्री का पति उससे बिछुड़ जाए, वह तो अपने जीवन में अत्यन्त दुखी होती है।

''हे ब्राह्मण! क्या आप मुझे बता सकते हैं कि चलते समय दमयन्ती ने राजा नल से क्या कहने को कहा था। मुझे उस दुखी स्त्री से सहानुभूति है, इसीलिए यह पूछ रहा हूँ।''

पर्णाद ने वे बातें बाहुक से कह दीं, जो दमयन्ती ने नल से कहने के लिए कहीं थीं। उन्हें सुनकर बाहुक कहने लगा, ''हे ब्राह्मण! कुलीन नारियाँ घोर विपत्ति में पड़कर भी अपने सम्मान की रक्षा करती हैं। अगर इस कारण उन्हें अपने जीवन से हाथ भी धोना पड़ता है तो भी उन्हें स्वर्ग मिलता है। पतिव्रता स्त्री का सबसे बड़ा गुण यही होता है कि पति से बिछुड़ जाने पर भी वह अपने पति में अटूट श्रद्धा रखती है और कभी भी उस पर क्रोध करके कुमार्ग में पैर तक रखने की कल्पना नहीं करती। इसीलिए

में कहता हूँ कि दमयन्ती को निषधराज नल पर इस तरह रोष नहीं दिखाना चाहिए।

"हे ब्राह्मण! सौभाग्य और दुर्भाग्य की स्थिति में पति ही स्त्री का एकमात्र आधार है। उसकी कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। राजा नल दमयन्ती की आधी धोती इसीलिए काटकर ले गये थे, क्योंकि पाँसे रूपी पक्षी उनका वस्त्र उड़ाकर ले गये थे और वे पूरी तरह नग्न थे। उस अवस्था में वे कैसे जाते।

"हे ब्राह्मण! किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। राजा नल जीवित हैं और वे भी अपनी प्रिया के वियोग में रात-दिन दारुण व्यथा में घुलते रहते हैं। उन पर दमयन्ती को किसी तरह का रोष नहीं दिखाना चाहिए। न जाने कैसी भूख-प्यास सहते हुए वे अपने दिन काट रहे हैं, फिर उनके प्रति तो दमयन्ती को सहानुभूति ही दिखानी चाहिए। मैं तो यही कह सकता हूँ।"

बाहुक की बातें सुनकर पर्णाद चौंका। उसने बाहुक से नल का पता पूछा, लेकिन बाहुक ने भोले स्वर में कहा, "ब्राह्मण देवता! मुझे तो राजा नल का पता नहीं मालूम। यह सब बातें तो मैंने तुम्हारी बात के ऊपर ही कही हैं।"

पर्णाद ने कितना ही प्रयत्न किया, लेकिन वह बाहुक से कुछ भी पता नहीं पा सका। अन्त में निराश होकर पर्णाद अयोध्या से चला गया और विदर्भ नगर पहुँच कर उसने सारा वृत्तान्त दमयन्ती से कहा। यह सुनकर तो दमयन्ती का हृदय धड़कने लगा। उसको ऐसा लगा, मानो पर्णाद से ये सारी बातें स्वयं नल ने ही कही थीं।

उसने जाकर अपनी माता से सारी बात कह दी और फिर पर्णाद को बुलाकर वे तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगीं। दमयन्ती को पूर्ण विश्वास हो गया था कि महाराज ऋतुपर्ण के यहाँ सारथी के वेश में नल ही रह रहे हैं और किसी प्रकार से उन्हें लाना चाहिए। दमयन्ती ने पर्णाद को पुरस्कृत करने के बाद सुदेव को बुलाया और उससे अयोध्या जाने के लिए आग्रह किया। चलते समय कहा, "हे ब्राह्मण! आपने जो मेरा उपकार किया है, उसके लिए हृदय से आपकी आभारी हूँ। अब आप अयोध्या जाकर किसी तरह मेरे पति को यहाँ ले आइए। उसके लिए मैंने एक उपाय सोचा है। आप जाकर अयोध्यापति को यह समाचार देना कि विदर्भराज भीम की कन्या दमयन्ती अपना दूसरा स्वयंवर करने वाली है। कल ही स्वयंवर का दिन है और दूर-दूर से राजपुत्र उस कन्या को प्राप्त करने की लालसा से आ रहे हैं। उन्हें भी अवश्य जाना चाहिए। तुम्हारे इस तरह निमन्त्रित करने पर मुझे पूरा विश्वास है, महाराज ऋतुपर्ण अवश्य यहाँ आएँगे और उनके साथ बाहुक नाम का सारथी भी आएगा।"

"अगर महाराज ऋतुपर्ण इस स्वयंवर का अभिप्राय पूछें, तो कहना कि दमयन्ती को अब यह विश्वास नहीं रहा है कि राजा नल जीवित हैं।"

सुदेव दमयन्ती की आज्ञा मानकर अयोध्या चला गया। उसने जाकर महाराज ऋतुपर्ण को स्वयंवर के लिए निमन्त्रित कर दिया। ऋतुपर्ण यह निमन्त्रण पाकर हृदय में अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उसी समय बाहुक को बुलाकर कहा, "हे सारथि! विदर्भराज भीम ने एक ब्राह्मण को भेजा है। वह कहता है कि राजा नल की परिणीता उनकी कन्या दमयन्ती का फिर दूसरी बार स्वयंवर होने वाला है। कल ही उसका दिन निश्चित हुआ है। सुना है देश-विदेश के कितने ही राजपुत्र दमयन्ती को प्राप्त करने की लालसा से आ रहे हैं। चलो, मैं भी आज ही विदर्भराज के यहाँ जाना चाहता हूँ। तुम रथ तैयार कर लो। उसमें वायु के समान तीव्रगामी अश्वों को लाना जो आज ही सन्ध्याकाल तक विदर्भ नगर पहुँचा सकें।"

महाराज ऋतुपर्ण के मुँह से यह समाचार सुनकर तो बाहुक के हृदय को भीषण आघात लगा। उसका चेहरा एक साथ उतर गया। पहले तो अपनी प्रिया के इस आचरण पर विश्वास नहीं हुआ, फिर वह सोचने लगा कि यह सब क्या है? कभी वह सोचता कि हो सकता है उसका पता लगाने के लिए यह चाल दमयन्ती ने निकाली हो। कभी सोचता कि दमयन्ती को यह विश्वास हो गया कि नल जीवित नहीं; लेकिन फिर भी विश्वास नहीं होता था। कभी स्त्रियों के चंचल स्वभाव का ध्यान आते ही उसका हृदय रोष से भर उठता। तरह-तरह के विचार उठकर उसके अन्दर कोलाहल-सा मचा रहे थे। वह कुछ समझ नहीं पा रहा था कि इस स्वयंवर का क्या अभिप्राय था।

सोचते-सोचते अन्त में उसको यही लगा कि यह दमयन्ती की चाल है, जिससे वह अपने पति का पता लगाना चाहती है। भला जिसकी दो सन्तानें हों वह दूसरे विवाह का विचार अपने मन में कैसे ला सकती है।

बाहुक अपने विचारों में खोया-सा खड़ा रहा। महाराज ऋतुपर्ण ने पूछा, "किस चिन्ता में डूब गए बाहुक?"

बाहुक ने चौंककर कहा, "कोई चिन्ता नहीं महाराज! सोच रहा था कौन-से अश्व सबसे अधिक तीव्रगामी होंगे, जो आपको आज ही विदर्भनगर पहुँचा दें।"

ऋतुपर्ण उत्सुकता-भरे स्वर से कहने लगे, "हाँ बाहुक! देखो किसी तरह का विलम्ब नहीं होना चाहिए।"

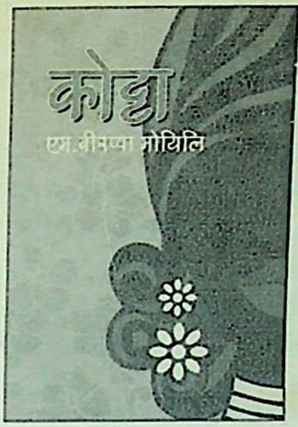
बाहुक ने सिन्धु देश के कुशल और पवन की तरह शीघ्रगामी अश्वों को रथ के लिए तैयार कर लिया। उन अश्वों पर दस-आवर्त्त थे। उनकी नाक मोटी थी और थूथन चौड़ा था। जब वे अश्व रथ में जुड़कर महाराज ऋतुपर्ण के सामने आये तो महाराज ने बड़ी ही शंका भरी हुई दृष्टि से उनकी तरफ़ देखकर कहा, "हे बाहुक! इन अश्वों पर मुझे विश्वास नहीं होता कि ये आज ही हमें विदर्भनगर में पहुँचा देंगे।"

इस पर बाहुक ने पूरे विश्वास के साथ कहा, "हे स्वामी! इन घोड़ों के माथे पर एक सिर पर दो अगल-बगल के पुट्ठों पर चार, छाती पर दो, पीछे एक, इस प्रकार दस आवर्त्त हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि पवन से भी अधिक तीव्रगति से चलकर ये अश्व आपको आज सन्ध्या तक अवश्य विदर्भनगर पहुँचा देंगे।

ऋतुपर्ण ने बाहुक की बात पर विश्वास करके उन अश्वों को जोड़ने की आज्ञा दे दी। बाहुक उन्हीं अश्वों को जोड़कर महाराज को लेकर चला। वार्ष्णेय सारथी भी रथ के एक किनारे बैठ गया।

अश्व तीव्रगति से रथ को खींचने लगे। वे इस तरह भागे जा रहे थे, मानो पृथ्वी को न छूकर आकाश मार्ग से ही वे रथ को उड़ाकर कुछ ही क्षणों में विदर्भनगरी पहुँचा देंगे। महाराज ऋतुपर्ण उनकी इस गति पर बड़ा आश्चर्य कर रहे थे। वे और वार्ष्णेय आँखें फाड़कर देख रहे थे कि बाहुक अत्यधिक कौशल के साथ रथ का संचालन कर रहा था। कभी-

भारतीय ज्ञानपीठ पुनर्नवा शृंखला



कोट्टा (उपन्यास)

एम. वीरप्पा मोयिलि

(उपन्यास)

पृष्ठ : 272, मूल्य : 250 रु.

प्रसिद्ध राजनेता तथा कन्नड़ के यशस्वी कवि-कथाकार एम. वीरप्पा मोयिलि का अद्वितीय उपन्यास है 'कोट्टा'। मोयिलि का यह तीसरा उपन्यास है। इससे पहले दक्षिण कनारा ज़िले के समुद्र-तट पर बसनेवाले मछुआरों के जीवन पर आधारित उनका एक अन्य उपन्यास 'सागरदीप' भी बहुत चर्चित हुआ।

'कोट्टा' में दक्षिण कनारा के सुदूरवर्ती जंगलों में बसनेवाली कोरग जनजाति के रहन-सहन, उनकी संस्कृति और रीतिरिवाजों के साथ-साथ उनके शोषित और अभावग्रस्त जीवन का मार्मिक चित्रण है। साथ ही कथाकार ने इसमें जहाँ कोरगों के शक्ति-सामर्थ्य, उनकी भावनात्मक सरलता और लोकसम्पदा के हृदयग्राही चित्र उकेरे हैं, वहीं सत्ता-लोलुप एवं कुटिल नेताओं तथा स्थानीय अधिकारियों द्वारा किये जा रहे उनके शारीरिक एवं आर्थिक शोषण को पूरी प्रामाणिकता के साथ उजागर किया है।

एक जनसेवक के नाते कथाकार ने उनके बीच जाकर उनके सुख-दुख को जाना-समझा और फिर उसे उपन्यास के कथा-शिल्प में ढाला है। यही कारण है कि उपन्यास के प्रायः सभी पात्र काल्पनिक न होकर जीवन्त हैं।

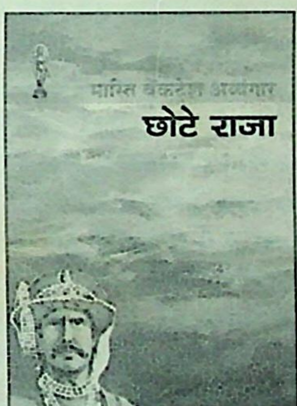
सन्देह नहीं कि 'कोट्टा' उपन्यास के माध्यम से कन्नड़ कथाकार मोयिलि की रचनात्मक ऊर्जा और कथानक की रसात्मक अभिव्यक्ति से हिन्दी का प्रबुद्ध पाठक एक विशिष्ट एवं प्रीतिकर साक्षात्कार कर सकेगा।

छोटे राजा

(उपन्यास)

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार

पृष्ठ : 356, मूल्य : 280 रुपये



ज्ञानपीठ पुरस्कार (1983) से सम्मानित कन्नड़ कथाकार मास्ति वेंकटेश अय्यंगार के सर्वाधिक उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास 'चिक्क वीरराजेन्द्र' का हिन्दी रूपान्तर है—'छोटे राजा'। मैसूर के निकट एक छोटे-से भू-प्रदेश कोडग राज्य के अन्तिम शासक की कहानी है यह। सुशील एवं बुद्धिमती रानी तथा दो योग्य मन्त्रियों के रहते हुए भी अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण उसे अपने विनाश से कोई नहीं रोक पाया; यहाँ तक कि अँग्रेजों से पराजित होकर उसे निर्वासन का तिरस्कार भी सहना पड़ा।

'छोटे राजा' एक शासक के विनाश की कथा ही नहीं है, एक समाज की निरीहता की भी कहानी है। कन्नड़ के ऐतिहासिक उपन्यासों में किसी समाज का और उसके विभिन्न अंगों का ऐसा सजीव चित्रण अन्यत्र कम ही मिलता है। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में मास्ति जी का मूल उद्देश्य समाज के उत्थान-पतन का अध्ययन करना रहा है। उनके अनुसार, व्यक्ति के पतन का मुख्य कारण उस व्यक्ति में ही निहित होता है। हाँ, नियति के अदृश्य हाथ की प्रबल भूमिका भी वहाँ सक्रिय रहती है।

कभी तो बाहुक का कौशल देखकर उन्हें इन्द्र के सारथी मातलि का-सा भ्रम होता था। बाहुक में मातलि के से सभी श्रेष्ठ गुण दीख पड़ते थे। कभी उन्हें भ्रम होता था कि ये मनुष्य शरीर धारण करके आये हुए शालिहोत्र हैं जो पूरी तरह अश्वों के स्वभाव को पहचानते हैं और फिर कभी यह विश्वास होता कि सम्भव है यह सारथी के वेश में महाराज नल हों।

इस तरह बाहुक के कौशल पर बार-बार महाराज ऋतुपर्ण आश्चर्य कर रहे थे। रथ इतनी तीव्रगति से जा रहा था कि बीच में महाराज ऋतुपर्ण के शरीर से उनका दुपट्टा खिसक गया। दूसरे ही क्षण उन्होंने बाहुक से कहा, ''बाहुक! रथ रोको। हमारे शरीर से खिसककर दुपट्टा नीचे गिर गया है।''

इस पर बाहुक ने मुस्कराते हुए कहा, ''हे स्वामी! आपका दुपट्टा तो चार कोस पीछे रह गया। अब कैसे लाया जा सकता है।''

रथ झंझा की गति से चला जा रहा था। रास्ते में एक बहेड़े का पेड़ देखकर महाराज ऋतुपर्ण ने कहा, ''हे बाहुक! क्या तुम बहेड़े के इस वृक्ष को देख रहे हो? इसमें जितने पत्ते और फल हैं उन्हें मैं ठीक-ठीक गिनकर बता सकता हूँ। इस विद्या में मुझे विशेषता प्राप्त है। अगर तुम्हें विश्वास न हो तो सुनो इस बहेड़े की दो बड़ी शाखाओं में पाँच करोड़ पत्ते हैं और इनमें तथा डालियों में दो हज़ार पिचानबे फल हैं। एक सौ एक पत्ते और एक सौ एक फल पृथ्वी पर गिरे पड़े हैं।

बाहुक को ऋतुपर्ण की बात पर विश्वास न हुआ। कभी कल्पना नहीं की जा सकती कि वायु के समान तीव्रगति से चलते हुए रथ में बैठा हुआ व्यक्ति इतनी अधिक गणना कर सकता है। बाहुक ने घोड़ों की रास खींच ली। रथ रुक गया। उसने हाथ जोड़कर महाराज ऋतुपर्ण से कहा, ''हे महाराज! अगर मैं स्वयं गणना करके यह जानना चाहूँ कि आपकी गणना ठीक है या ग़लत तो आपको आपत्ति तो नहीं होगी?''

ऋतुपर्ण ने पूरे विश्वास के साथ बाहुक की पीठ पर हाथ रखकर कहा, ''अवश्य, बाहुक! इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है। जाओ और पत्तियों और फलों की गणना कर लो। लेकिन शीघ्रता करो, कहीं ऐसा न हो कि हम विदर्भनगर न पहुँच पाएँ।''

बाहुक ने आश्वासन भरी दृष्टि से ऋतुपर्ण की ओर देखते हुए कहा, ''नहीं महाराज! इससे हमारे कार्य में तनिक भी विलम्ब न होगा। आज सायंकाल तक आप विदर्भराज के यहाँ अवश्य पहुँच जाएँगे।''

ऋतुपर्ण ने बाहुक की बात मान ली। बाहुक ने तुरन्त ही जाकर उस वृक्ष की डालियों को काट डाला और बड़ी शीघ्रता के साथ पत्तों और फलों को गिनने लगा। जब सबको गिन चुका तो उसने आश्चर्य से आँख फाड़कर महाराज ऋतुपर्ण की ओर देखा। गणना वही थी जो महाराज ऋतुपर्ण ने बतायी थी। ऋतुपर्ण बाहुक की तरह मुस्करा दिए। उन्होंने कहा, ''बाहुक! अब शीघ्र चलो। मुझे विदर्भनगर पहुँचने की बड़ी चिन्ता है।''

बाहुक उसी क्षण रथ पर बैठ गया; लेकिन वह रथ को आगे बढ़ा नहीं सका। गहरे आश्चर्य में डूबा रहा। आश्चर्य के कुछ क्षणों के पश्चात् ही बाहुक से विनम्र स्वर में कहा, ''हे महाराज! अब मुझे आपकी गणना करने की अलौकिक शक्ति पर तनिक भी सन्देह नहीं है। आपके पास यह अद्वितीय गुण है। हे स्वामी! मेरा हृदय यह जानने के लिए अत्यधिक उत्सुक हो रहा है कि ऐसी कौन-सी विद्या है, जिसके प्रभाव से आप इतने शीघ्र इतने विशाल वृक्ष की पत्ती और फल गिन गये। कृपया मुझे उसके सम्बन्ध में बताइए।''

ऋतुपर्ण ने मुस्कराते हुए बाहुक से कहा, ''हे सारथि! गणना करने की विद्या और पाँसों की विद्या मैंने विशेष लगन के साथ सीखी है। इसमें मेरे समान पंडित मुझे कोई नहीं दीखता। उन्हीं के कारण मैं इस वृक्ष के पत्तों और फलों की एक निमिषमात्र में गणना कर पाया।''

बाहुक ने कहा, ''हे नरश्रेष्ठ! क्या ये विद्याएँ आप मुझे सिखा सकते हैं? इनके बदले में मैं आपको अश्वसंचालन की विद्या दूँगा।''

महाराज ऋतुपर्ण अश्वसंचालन की विद्या सीखने के लिए बहुत दिन से लालायित थे। उचित अवसर देखकर उन्होंने बाहुक से कहा :

''हे बाहुक! मुझे तुम्हारी बात स्वीकार है। लो मैं अपनी दोनों विद्याएँ अभी तुम्हें दिए देता हूँ और अश्वसंचालन की विद्या राजधानी में लौटने के पश्चात् तुमसे सीख लूँगा।''

ऋतुपर्ण रथ में बैठे ही बाहुक को दोनों विद्या सिखाने लगे। कुछ ही क्षणों में बाहुक दोनों विद्याएँ जान गया। जब वह पाँसों की विद्या में कुशलता प्राप्त कर चुका, उसी समय पापी कलियुग कर्कोटक के तीक्ष्ण विष को मुँह से उगलता हुआ अक्ष तत्त्व के ज्ञाता बाहुक नामधारी नल के शरीर से बाहर निकल आया। अब वह दमयन्ती के शाप से छूट गया था। वह हाथ जोड़कर नल के सामने खड़ा हो गया। नल को उस पर क्रोध आया, क्योंकि वही तो सारी आपत्ति की जड़ था। उस पापी का दुखित रूप उसे असह्य हो उठा। उसने आवेश में आकर कहा, ''रे पापी, नीच कलियुग! तू सज्जनों को इस संसार में अनेक कष्ट देता है। मैं तुझे शाप देता हूँ।''

नल के इतना कहते ही कलियुग त्राहिमाम् करता हुआ नल के पैरों में गिर पड़ा और कहने लगा, ''हे वेद-वेदांग के ज्ञाता राजा नल! जब आपकी प्रिय रानी दमयन्ती आपके विरह में वन में अकेली भटकती हुई विलाप कर रही थी, उस समय उन्होंने मुझे शाप दिया था। तभी से मैं कर्कोटक के विष से पीड़ित होकर आपके शरीर में रहता था। अब उस शाप से मेरी मुक्ति हो गयी है, इसलिए हे दयालु! अब और शाप देकर मेरा जीवन नष्ट मत करिए। मैं आपकी शरण हूँ।

''हे स्वामी! शरणागत पर तो सज्जन सदा दया ही दिखाते हैं। आप मुझ पर दया कीजिए। दिग्दिगन्त में आपका यश फैलेगा।''

नल का आवेश कुछ कम हो गया। उसी समय भय से काँपता हुआ कलियुग बहेड़े के वृक्ष में घुस गया। उसी क्षण वह वृक्ष छोटा हो गया।

काफ़ी देर हो गयी थी। महाराज ऋतुपर्ण ने बाहुक की पीठ पर हाथ रखकर कहा, ''क्यों बाहुक! क्या इस तरह यहाँ समय बिताने से हम सायंकाल तक विदर्भनगर पहुँच सकते हैं?''

बाहुक ने उसी क्षण घोड़ों की रास ढीली छोड़ दी। घोड़े तीर की तरह वायु को फाड़ते हुए बढ़ने लगे। उनके जाते ही कलियुग भी उस वृक्ष से निकलकर अपने स्थान को चला गया।

सन्ध्या हो आयी। उसी समय महाराज ऋतुपर्ण के रथ ने विदर्भनगर में प्रवेश किया। महाराज भीम ने समाचार पाते ही स्वागत के लिए मन्त्री और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भेजा। रथ राजमार्ग पर बढ़ा चला आ रहा था।

मार्ग से टकराकर उसके पहियों की आवाज़ इस तरह चारों ओर गूँज रही थी, मानो दो मेघ आपस में टकराकर भीषण गर्जन कर रहे हों। उस भीषण गर्जन को सुनकर दमयन्ती के महल पर बैठे हुए मयूर कूकने लगे और वर्षा की आशा में हर्षविह्वल होकर नाचने लगे। हाथीशाला में बँधे हाथियों के चिंघाड़ने की आवाज़ सुनाई देने लगी। यह सब सुनकर दमयन्ती का हृदय सहसा कह उठा, ''रे अभागिन! आज तेरे प्राणनाथ आये हैं और तू अभी यहाँ बैठी है।'' उसका हृदय अपने पति की याद में व्याकुल होने लगा लेकिन साथ ही पता नहीं क्यों अपार हर्ष की लहरें अन्दर ही अन्दर उमड़ी आती थीं। उसके मन की स्थिति आज विचित्र थी। वह कुछ निश्चित नहीं कर पा रही थी कि इस परिस्थिति में वह क्या करे। कभी हृदय कोरी कल्पना की बात सोचकर निराश हो उठता। बहुत देर तक वह व्याकुल-सी अपने महल में एक स्थान से दूसरे स्थान तक फिरती रही। अन्त में दुखी होकर कहने लगी, ''हे ईश्वर! अब विरह की पीड़ा असह्य है। अगर अब भी पति का मिलन नहीं हुआ, तो मैं इन प्राणों को त्याग दूँगी।''

यह कहती हुई वह रोने लगी। रथ के पहियों की आवाज़ अब ठीक उसके महल के नीचे गूँजने लगी। एक अज्ञात प्रेरणा उसको ऊपर छत पर खींच ले गयी। महल की छत पर खड़ी होकर उसने देखा कि वार्ष्णेय और बाहुक नाम के सारथियों के साथ महाराज ऋतुपर्ण मध्यम कक्ष तक पहुँच गये थे। रथ रुका और महाराज ऋतुपर्ण उतरे। उसी समय महाराज भी उचित सत्कार के साथ उन्हें राजभवन ले गये।

विदर्भ नगर में स्वयंवर की कोई तैयारी न देखकर उन्हें आश्चर्य होने लगा। वे मन ही मन सोचने लगे कि इस निमन्त्रण का क्या तात्पर्य हो सकता है, लेकिन उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया। इसी बीच विदर्भराज ने ऋतुपर्ण से आने का कारण पूछा। ऋतुपर्ण इस प्रश्न पर तो और भी आश्चर्य करने लगे, लेकिन वे स्वयंवर के विषय में कुछ भी नहीं बोले। एक अजीब समस्या सामने आ गयी थी। जब राजा भीम ने कुछ अधिक उत्सुक होकर ऋतुपर्ण की ओर देखना प्रारम्भ किया, तो ऋतुपर्ण बोले, ''कोई विशेष कारण तो नहीं महाराज! बस आपसे मिलने को जी चाहा, चला आया। बहुत दिन हो गये हैं, कभी मिलने का अवसर ही नहीं आया। राज्यकार्य में अवकाश पाना बड़ा कठिन हो जाता है। अबकी बार सोचा, चलूँ आपसे मिलना हो जाएगा और इस तरह जी भी बहल जाएगा।''

महाराज भीम ऋतुपर्ण के इस उत्तर पर पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हुए। उनके मन में सन्देह जाग उठा। वे सोचने लगे कि इस साधारण कार्य के लिए महाराज ऋतुपर्ण चार सौ कोस की दूरी पार करके यहाँ तक क्यों आएँगे, लेकिन सन्देह होते हुए भी भीम आगे कुछ नहीं बोले। उन्होंने अति विनीत स्वर में सिर्फ़ यही कहा, ''महाराज, इस लम्बी यात्रा के कारण आप काफ़ी थक गये होंगे। चलिए विश्राम-भवन में विश्राम कर लीजिए।''

ऋतुपर्ण विदर्भराज के साथ विश्राम-भवन में चले गये। बाहुक और वार्ष्णेय रथशाला में चले गये।

दमयन्ती फिर एक गहन चिन्ता में पड़ गयी। जिस आशा से वह उत्सुक होकर। महल की छत पर आयी थी, वह मानो पूरी तरह टूट गयी। उसने चारों ओर आँखें फाड़कर देखा, लेकिन राजा नल कहीं दिखाई नहीं दिये। एक क्षण को वह आश्चर्य करने लगी कि नल के सिवा कौन इस कुशलता से रथ हाँक सकता है; लेकिन वार्ष्णेय की याद आते ही उसका यह आश्चर्य भी दब गया। फिर महाराज ऋतुपर्ण भी तो उसी कुशलता से रथ चला सकते होंगे, यह सोचकर उसका हृदय फिर उसी विरह-वेदना से घुटने लगा। लेकिन बाहुक को बार-बार देखने से एक अस्पष्ट संशय उसके मन में जागता था। उसने अपनी दासी को बुलाकर कहा, ''हे केशिनी! देखो रथशाला में महाराज ऋतुपर्ण का एक सारथी है। उसकी छोटी-छोटी बाहु हैं और शरीर विकृत है। तुम उसके पास जाकर उसका परिचय ज्ञात करो। मुझे लगता है कि शायद दूसरे रूप में यही मेरे पति नल हों। बातचीत करते समय तुम वही बातें उससे कहना जो मैंने पर्णाद से कही थीं। उस पर जो भी वह कहे उसे ठीक-ठीक मुझे आकर बताना।''

दासी आज्ञा मानकर चल दी। रथशाला में पहुँचकर उसने बाहुक से पूछा, ''श्रीमान्! आप लोग किस समय अयोध्या से चले थे? और फिर कितने समय पश्चात् यहाँ आकर पहुँचे? क्या आप बता सकते हैं कि यहाँ किस प्रयोजन से आये हैं? मेरी स्वामिनी दमयन्ती यह सब जानना चाहती हैं, कृपया बता दीजिए।''

दासी की बात सुनकर बाहुक ने कहा, ''हे देवी! इसमें भी पूछने की क्या बात है। महाराज ऋतुपर्ण को राजकुमारी दमयन्ती के दूसरे स्वयंवर का निमन्त्रण मिला था, उसी स्वयंवर में भाग लेने के लिए वे यहाँ 400 कोस चलने वाले घोड़ों के रथ में बैठकर आये हैं, मैं उन्हीं का सारथी हूँ।''

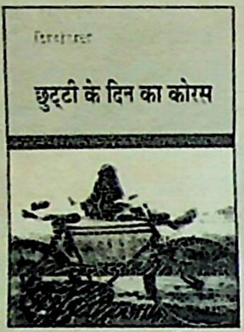
दासी इतने परिचय से सन्तुष्ट नहीं हुई। वह फिर पूछने लगी, ''हे श्रीमान्! आप अपना पूरा परिचय दीजिए। आप कौन हैं? किसके सेवक हैं? किसलिए आपको यह सारथी का कार्य दिया गया है और आपके साथ ये कौन हैं? इनका भी परिचय दीजिए।''

इस पर बाहुक बोला, ''हे देवी! मेरा यह सारथी वार्ष्णेय नाम से जाना जाता है। यह निषधराज नल का सारथी है। जब निषधराज जुए में हारकर अपना राज्य छोड़कर वन को चले गये थे, उसी समय यह वार्ष्णेय भी चला आया था और तभी से अयोध्यापति महाराज ऋतुपर्ण के यहाँ सारथी का कार्य कर रहा है। मैं भी महाराज ऋतुपर्ण का सारथी हूँ। अश्वसंचालन की विद्या में मुझे कुशलता प्राप्त है, इसी कारण महाराज ने मुझे यह कार्य सौंपा है। इसके अलावा मैं तरह-तरह के पकवान बनाने की विद्या भी जानता हूँ और समय पड़ने पर महाराज के लिए भोजन भी बनाता हूँ।''

दासी केशिनी ने फिर कहा, ''हे बाहुक! क्या आप जानते हैं कि महाराज नल कहाँ चले गये हैं? अगर आप नहीं जानते, तो क्या वार्ष्णेय इसके विषय में जानते हैं?''

बाहुक ने कहा, ''हे सुभ्रू! निषधराज नल के जाने के पहले ही वार्ष्णेय उनके पुत्र और कन्या को लेकर विदर्भनगर को चला गया था। वहाँ उन्हें अपने नाना और नानी के पास पहुँचाकर यह अयोध्या चला गया और महाराज ऋतुपर्ण के यहाँ सारथी हो गया। वार्ष्णेय महाराज नल के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बता सकता। हाँ, सुना था कि महाराज नल ने राज्य से भ्रष्ट होकर कपट वेश धारण कर लिया था। इसके पश्चात् उन्होंने क्या किया और अब वे कहाँ हैं इस विषय में हे देवी! हम कुछ भी नहीं बता सकते।''

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन



छुट्टी के दिन का कोरस

(उपन्यास)

प्रियंवद

पृष्ठ: 286, मूल्य: 250 रु.

'छुट्टी के दिन का कोरस' कथाकार और इतिहासवेत्ता प्रियंवद का तीसरा उपन्यास है। हिन्दी कथा साहित्य में प्रियंवद अपने विशिष्ट सरोकारों और अनूठे शिल्प के लिए सुपरिचित हैं। 'छुट्टी के दिन का कोरस' विवान (विन्सेंट डगलस) के विचित्र जीवन का महाकाव्यात्मक आख्यान है। यह गाथा 1947 की ऐतिहासिक तारीख़ के दोनों ओर फैली है। विवान स्मृतियों का सहचर है। अजीब-सी दिनचर्या में छुट्टी का दिन 'मायावी वास्तविकताओं और स्मृतियों में बसे निष्कवच यथार्थ का दिन होता था।' इंग्लैंड के पुराने ज़मींदार ख़ानदान का वारिस विन्सेंट डगलस भारत में जिस अप्रत्याशित जीवन से साक्षात्कार करता है, उसका अत्यन्त रोचक वर्णन प्रियंवद ने किया है। एक भिन्न अर्थ में यह उपन्यास सम्बन्धों, आसक्तियों, निर्वेदजन्य स्थितियों और जीवन के अगाध का कोरस भी है। ग़ालिब फिर फिर उपन्यास में आते हैं और नयी व्यंजना पैदा करते हैं। दुःस्वप्नों से उबरकर 'आसमान के कोने से सुबह की पहली किरन' के उतरने तक रचना की ऊर्जा का विस्तार है। हिन्दी के औपन्यासिक परिदृश्य में इसकी रचनात्मक आभा अलग से देखी जा सकती है।

केशिनी ने फिर उत्सुक होकर पूछा, "हे श्रीमान्! याद होगा, अयोध्यापुरी में एक ब्राह्मण आपके पास गया था और उसने रानी दमयन्ती द्वारा कहे हुए ये शब्द आपसे के थे कि, "हे पाखंडी! अपनी पतिव्रता स्त्री को इस तरह वन में सोती छोड़कर भाग जाना क्या तुम्हारे लिए उचित था और फिर उससे बिना कहे ही उसकी आधी धोती फाड़कर तुम क्यों भाग आये हो? क्या तुम्हारा यह कार्य तुम्हारी प्रतिज्ञा के अनुकूल है? तुम्हारी प्रिया कहलाने वाली वह अभागिन स्त्री दिन-रात तुम्हारी याद में रोया करती है। क्या चलते समय तुम्हें उस अबला की तनिक भी चिन्ता न रही कि उस निर्जन वन की कठोर भूख-प्यास वह कैसे सह पाएगी।"

"हे श्रीमान! आपने ये बातें सुनकर उस ब्राह्मण को जो उत्तर दिया था उसे कृपया फिर कहिए। मेरी स्वामिनी दमयन्ती उसे फिर सुनने के लिए उत्सुक हैं।"

बाहुक के सामने पूरा करुण चित्र उपस्थित हो गया। उसे ऐसा लगा कि मानो उसकी प्रिया आँसू बहाती हुई उस क्षण उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। बाहुक का हृदय बीती बातों को याद करके व्याकुल हो उठा। दमयन्ती की याद एक साथ बलवती होकर उसके हृदय में उठने लगी, लेकिन अपनी परिस्थिति के विषय में वह स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कह सकता था। जी में आता था कि अपने सच्चे रूप की घोषणा करके दमयन्ती से मिल ले, लेकिन फिर विचार अन्दर ही अन्दर घुट कर रह जाता।

दासी ने फिर पूछा। बाहुक ने फिर सारी बात दोहरा दी जो उसने पर्णाद से कही थी। कहते-कहते बाहुक का गला रुँध गया। वेदना के भार को वह अधिक देर तक नहीं सँभाल सका और अपनी प्रिया की याद में उसकी आँखों से टप-टप करके आँसू गिरने लगे।

केशिनी यह देखकर भागी हुई दमयन्ती के पास गयी और उसने जाकर सारा हाल कह दिया।

यह सुनकर तो दमयन्ती को पूरा विश्वास हो गया कि बाहुक नाम का सारथी महाराज नल के सिवाय कोई अन्य व्यक्ति नहीं है। यह विश्वास करके तो अपने प्रियतम से मिलने के लिए उसका हृदय और भी अधीर हो गया। उसने केशिनी से कहा, "हे दासी! तुम फिर बाहुक के पास जाओ और उनके चरित्र का पूरा पता लगाकर आओ। मन लगाकर उसके सब कामों और चेष्टाओं को देखना। यदि बाहुक अग्नि और पानी माँगें, तो उसे मत देना। यदि अधिक आग्रह करे भी तो एकाध बार बहुत देर करने के बाद देना। इस व्यवहार की जो भी प्रतिक्रिया तुम देखो, वह आकर मुझसे कहो। इसके अलावा उसकी सारी लौकिक तथा अलौकिक क्रियाओं के ऊपर अपनी पूरी दृष्टि रखना।"

"हे केशिनी! यदि सफलतापूर्वक तू यह कार्य कर लायी, तो अमूल्य पुरस्कार मैं इसके बदले में तुझे दूँगी।"

केशिनी फिर बाहुक के पास गयी और उसकी सारी चेष्टाओं को देखकर दमयन्ती के पास लौट आयी। दमयन्ती अपने हृदय में तीव्र उत्सुकता लिये दासी की प्रतीक्षा कर रही थी। केशिनी को देखते ही उसने बाहुक के विषय में पूछा। केशिनी ने कहा, "हे स्वामिनी! बाहुक तो अलौकिक शक्तियों से युक्त एक अद्वितीय पुरुष है, मुझे तो उसे देखकर आश्चर्य होने लगा। सच कहती हूँ महारानी! अग्नि और जल आदि पदार्थ बाहुक की आज्ञा मानते हैं। छोटे से छोटे द्वार में प्रवेश करते समय बाहुक तनिक भी नहीं झुकता। पता नहीं कैसे द्वार स्वयं ही घट-बढ़ जाता है। महाराज भीम ने महाराज ऋतुपर्ण के लिए भेजी गयी भोजन की सामग्री में बहुत-सा कच्चा माँस भेजा था। उस माँस को धोने के लिए पानी की आवश्यकता थी।

"हे देवी! मैं तो यह देखकर अवाक् खड़ी रह गयी कि बाहुक के संकेतमात्र से ही पास रखे कितने ही घड़े पानी से भर गये। उससे बाहुक ने माँस धो लिया और उसे चूल्हे पर चढ़ा दिया। अब आग जलाने की सबसे बड़ी समस्या आगे थी। कहीं आसपास आग नहीं थी। बाहुक ने कुछ तिनके हाथ में लेकर सूर्य की तरफ़ कर दिये और फिर सूर्य भवागन का स्मरण करके स्तोत्र पड़ा। उसी समय तिनके में आग लग गयी।

"हे देवी! यह चमत्कार मैं अपनी आँखों में देखकर आ रही हूँ। इनके अलावा कितनी ही विचित्र बातें मैंने देखी हैं। बाहुक बिना किसी आपत्ति के आग को पकड़ लेता है और उसका हाथ तनिक भी नहीं जलता। उसकी इच्छा के अनुकूल कभी भी पानी उनके पास होकर बहने लगता है। आश्चर्य न करिए देवी! मैंने देखा कि

बाहुक ने खिले हुए फूल अपने हाथ में लिये और उन्हें मसल कर पृथ्वी पर डाल दिया, लेकिन वे फूल ज्यों के त्यों खिले हुए बने रहे।

''इन चमत्कारों को देखकर मुझे तो पूर्ण विश्वास हो गया है कि यह बाहुक एक साधारण सारथी नहीं है, बल्कि अलौकिक प्रतिभा वाला कोई महापुरुष है। इसके चरित्र में तो देवताओं के से लक्षण हैं।''

केशिनी की पूरी बात सुनकर दमयन्ती को अब तो पूर्ण विश्वास हो गया कि उसके प्राणनाथ नल के सिवा यह अलौकिक गुण और किसी प्राणी में नहीं हो सकता, अत: यह सर्वथा निश्चित है कि बाहुक के वेश में महाराज नल ही महाराज ऋतुपर्ण के रथ को हाँककर लाये हैं। फिर भी लेशमात्र सन्देह न रखने के लिए ही उसने फिर केशिनी को बुलाया और कहा, ''हे केशिनी! अबकी बार तुम बाहुक के पास और जाओ और उसके हाथों से पके हुए माँस में से थोड़ा-सा ले आओ।''

केशिनी अपनी कुशलता से माँस ले आयी। जैसे ही दमयन्ती ने माँस को चखा उसको पूर्ण विश्वास हो गया कि निश्चित ही ये राजा नल हैं। वह अपने प्रियतम को सरथी के वेश में आया हुआ देखकर रो पड़ी और काफ़ी देर तक रोती रही। मिलन की घड़ियाँ समीप थीं लेकिन उनकी भी एक विचित्र वेदना होती है। जब भटके हुए दो हृदय मिलते हैं तो एक बार तो रोकर अपनी पूरी व्यथा को धो लेना चाहते हैं। दमयन्ती रोती रही। केशिनी ने समझाया पर काफ़ी देर तक उसकी सिसकियाँ नहीं रुकीं। उसी समय इन्द्रसेन और इन्द्रसेना खेलते हुए उधर आ गये। दमयन्ती ने अपने पुत्र और पुत्री को गोद में बिठाकर पुचकारा और सिसकियाँ रोककर कहा, ''केशिनी! जाओ तुम इन बच्चों को बाहुक के पास ले जाओ।''

केशिनी बच्चों को लेकर बाहुक के पास पहुँची। बाहुक देखते ही अपने बच्चों को पहचान गया और उस क्षण असीम स्नेह से उसका हृदय भर गया। उसने दोनों बच्चों को उठकार अपनी गोदी में बिठा लिया और फिर अपने जीवन की बीती हुई कितनी बातें आकर उसके अन्तर को काटने लगीं। उनको याद करके वह रोता जाता था। आज दमयन्ती की याद बार-बार उसके हृदय में सिहरन-सी पैदा कर रही थी। जब विरह वेदना और भी तीव्र होकर उसके श्वासों को चीरने लगी तो उसने एक साथ व्याकुल होकर केशिनी को सम्बोधित करके कहा, ''हे भद्रे! मेरे पुत्र और पुत्री भी हूबहू इसी तरह के हैं, उन्हीं की याद करके मैं इस तरह रोने लग गया हूँ। मैं उन्हें घर पर छोड़ आया हूँ। क्या करूँ, बाप की आत्मा है। लेकिन देवी! मेरी तुमसे अब यह प्रार्थना है कि बार-बार मेरे पास मत आओ, नहीं तो न जाने कोई क्या सन्देह करेगा। मैं यहाँ अतिथि रूप से ही ठहरा हूँ इसीलिए तुम्हारा इस तरह आना उचित नहीं है। अब तुम जाओ।''

केशिनी चली गयी। दमयन्ती के पास आकर उसने सारा वृत्तान्त कहा। दमयन्ती ने केशिनी की तरफ कुछ विस्मय और कुछ हर्ष से आँखें फाड़कर देखा और उसी आवेश में कहा, ''क्या कहा केशिनी! क्या मेरे पुत्र और पुत्री की गोद में बिठा बाहुक रोया था? क्या वह यह भी कह रहा था कि इनकी आकृति ठीक उसके पुत्र और पुत्री से मिलती-जुलती है?''

केशिनी हाँ कहकर उत्तर देती गयी। अब तो अपने पति से मिलने के लिए अधीर होकर दमयन्ती ने केशनी को अपनी माँ के पास भेजा। केशिनी ने जाकर राजमाता से कहा, ''हे महारानी! महाराज ऋतुपर्ण के साथ आये हुए बाहुक नामधारी सारथी पर राजकुमारी को सन्देह हो रहा है। उसे गुप्तवेश में महाराज नल ही समझ रही है। राजकुमारी चाहती है कि या तो आप बाहुक को यहीं महल में बुलवा लीजिए जिससे रजाकुमारी उससे बातें करके अपना सन्देह दूर कर सकें या स्वयं जाकर बाहुक से मिलने की आज्ञा दे दीजिए।''

रानी ने सारी बात राजा भीम से कही। राजा ने उसी समय बाहुक को बुलवा लिया। बाहुक आया और जैसे ही उसने अपनी प्रिय दमयन्ती को अपने सामने खड़ी देखा तो उसकी आँखें नीचे झुक गयीं। हृदय में सोयी हुई वेदना कराह उठी। उसने फिर आँखें उठाकर दमयन्ती की ओर देखा और अबकी बार दमयन्ती के मुरझाये चेहरे की ओर देखकर सहसा उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। पुरुष के द्वारा स्त्री के प्रति किया गया अन्याय साकार होकर उसके हृदय को चीरने लगा। दमयन्ती बाहुक की आँखों में आँसू देख स्वयं दुख से व्याकुल हो गयी। उसने अपने दुखी स्वर में बाहुक से कहा, ''हे बाहुक! क्या तुमने पहले कभी ऐसे धर्मात्मा पुरुष को देखा है जिसने अपनी स्त्री को सोते हुए वन के बीच अकेले छोड़ दिया हो और स्वयं किसी उद्देश्य को लेकर चल दिया हो? बताओ, निषधराज नल के सिवाय क्या ऐसा कोई भी कठोर हृदय प्राणी है?

''हे सारथि! मुझे सबसे बड़ा दु:ख तो इस बात का है कि वे बिना किसी अपराध के ही मुझे यह दंड देकर चले गये। मैं अभी तक उनके इस निष्ठुर व्यवहार का कारण नहीं समझ पा रही हूँ। स्वयंवर में मैंने चारों देवताओं के सामने उन्हें अपना पति बनाया था फिर किस कारण से मुझे पुत्रवती का उन्होंने तिरस्कार किया है? आज भी मेरे कानों में वे शब्द चीखते हुए से आते हैं जब राजा नल ने विवाह मंडप के पास खड़े होकर घोषणा की थी, 'इन देवताओं और अग्नि को साक्षी बनाकर मैं कहता हूँ कि जन्म-भर तुम्हारी आज्ञा का अनुगामी पति रहूँगा।''

''हे बाहुक! क्या उन शब्दों का उनके जीवन में कोई मूल्य नहीं था। क्या सत्यव्रत होते हुए भी वे अपनी बात नहीं रख सके।''

यह कहते-कहते दमयन्ती जोर से रो पड़ी।

उसे इस तरह अधीर देखकर बाहुक रूपधारी नल ने कहा, ''हे शुभे! दैव की गति अति विचित्र है। मैं अपने वचन को नहीं निभा पाया, उसके लिए मैं उत्तरदायी नहीं हूँ। मेरा इसमें कोई अपराध नहीं है। देवी! कलियुग के प्रभाव से ही हमें यह सारी आपत्ति सहनी पड़ी है।

''हे दमयन्ती! उसके कारण मुझे पीड़ित देखकर ही तुमने उसे शाप दिया था वही कलियुग, आग के भीतर आग की तरह तुम्हारे शाप और कर्कोटक नाग के विष से जलता हुआ बड़े कष्ट से मेरे शरीर में रहता था। अब मेरी तपस्या के प्रभाव से वह पापी कलियुग मुझे छोड़कर चला गया है। इसीलिए मुझे लगता है प्रिये! अब हमारी आपत्तियों का अन्त ही आ गया है।

''हे देवी! मैं तुम्हें प्राप्त करने की ही इच्छा से यहाँ आया हूँ। मैंने सुना था कि तुम अपना दूसरा स्वयंवर करने जा रही हो। मुझे सहसा इस समाचार पर विश्वास नहीं हुआ था क्योंकि कठोर पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली

दमयन्ती इस तरह की कल्पना कभी मन में ला ही नहीं सकती फिर भी उत्सुक होकर मैं आ गया। महाराज ऋतुपर्ण भी स्वयंवर में भाग लेने आये हैं।''

यह सुनकर तो दमयन्ती घबरा गयी। उसने कहा, ''हे नरश्रेष्ठ! आप मेरे चरित्र पर किसी प्रकार का सन्देह न करें। आपका पता लगाने के लिए कुछ ब्राह्मण भेजे गये थे। उन्हीं में से पर्णाद नाम के ब्राह्मण ने आकर मुझे आपका समाचार दिया था। उसी समय मैंने अनुमान लगा लिया था कि आपके सिवाय बाहुक का नाम दूसरा व्यक्ति नहीं हो सकता। उस समय आपको किसी तरह यहाँ बुलाने का यही उपाय मुझे सूझ रहा और मैंने ब्राह्मण को स्वयंवर की सूचना देने भेज दिया।

''हे देव! मैं आपकी शपथ खाकर कहती हूँ कि आपके सिवाय किसी अन्य पुरुष को मैंने आज तक कल्पना तक नहीं की। मेरा हृदय पवित्र है नाथ! मैंने पूरी तरह अपने पातिव्रत धर्म का पालन किया है। मैं आपके सामने शपथ खाती हूँ कि यदि मैंने कोई भी पाप किया हो तो वायुदेव मेरे प्राणों को नष्ट कर डालें। यदि मैंने आपके सिवाय किसी अन्य पुरुष की कभी कल्पना भी की हो तो सब प्राणियों के साक्षी भगवान सूर्य मेरे प्राणों को नष्ट कर डाले। यदि मन-वाणी-काया से मैंने कभी कोई बुरा आचरण किया हो तो सब लोकों के साक्षी चन्द्रदेव अभी मेरी जान ले लें।

''हे देवताओ! मेरी रक्षा करो और स्वयं कहकर मेरे पति को मेरे चरित्र के बारे में विश्वास दिलाओ।''

उसी क्षण वायु के अन्तरिक्ष में स्थित होकर कहा, ''हे नल! मैं सत्य कहता हूँ कि दमयन्ती सदा अपने पातिव्रत धर्म का पालन करती रही और कभी भी इसने कोई बुरा आचरण नहीं किया। जब-जब भी आपत्ति पड़ी है तब-तब इस देवी ने आपका स्मरण करके अपने सतीत्व की रक्षा की है। स्वयंवर की बात पाप रूप में इस देवी के मस्तिष्क में कभी नहीं आयी, बल्कि आपको बुलाने के लिए ही इसे यह करना पड़ा। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि दमयन्ती का चरित्र निर्मल जल की भाँति पवित्र है। आप इसको स्वीकार करिए।''

वायु के पश्चात् सूर्य और चन्द्र ने भी यही कहा। उनके कह चुकने पर स्वर्ग से फूलों की वर्षा होने लगी। देवता दुन्दुभी बजाने लगे और शीतल मन्द समीर बहने लगी।

देवताओं की आकाशवाणी सुनकर नल को दमयन्ती पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह गया। दयमन्ती भी नल से लिपट गयी। उसी समय निषधराज ने कर्कोटक नाग के दिये हुए वस्त्र पहनकर ज्यों ही उसका स्मरण किया, नल का पहला रूप उसे प्राप्त हो गया। पतिव्रता दमयन्ती हर्ष से विह्वल हो उठी। उसी समय नल ने अपने पुत्र इन्द्रसेन और पुत्री इन्द्रसेना को गले से लगा लिया।

मिलन की बात चारों ओर फैल गयी। राजा भीम तो अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने राजधानी में चारों ओर उत्सव मनाने की घोषणा करवा दी। नगरवासी भी यह समाचार सुनकर अपने-अपने घरों को तरह-तरह से सजाने लगे। चारों तरफ़ मधुर संगीत के स्वर हवा पर तैरने लगे। राजा भीम ने भी अपने दामाद का स्वागत करने के लिए पूरी तैयारी की।

राजा नल राजसी वस्त्र और आभूषण पहनकर दमयन्ती के साथ राजा भीम के पास आये। उन्होंने देखा कि नगर में चारों ओर रंग-बिरंगी ध्वजाएँ फहरा रही हैं। नगरवासी तरह-तरह के पुष्प-हार लेकर देव-मन्दिरों में जा रहे हैं। उनका हृदय हर्ष से खिल उठा। राजदरबार पहुँच कर राजा ऋतुपर्ण से भी उनकी भेंट हुई। ऋतुपर्ण ने राजा नल से क्षमा-प्रार्थना करते हुए कहा, ''हे निषधराज! आपको देखकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। आपके जीवन में आया संकट किसी तरह समाप्त हो गया। दैव की गति बड़ी विचित्र है राजन्! मुझे क्षमा करना। आप मेरे यहाँ सारथी की तरह से अपना असली वेश छिपाकर रहे हैं। अगर मैंने आपके प्रति कोई अपराध किया हो तो आप क्षमा कर दें।''

ऋतुपर्ण की बात सुनकर राजा नल बोले, ''हे अयोध्यापति महाराज ऋतुपर्ण! आपने मेरे प्रति कोई भी अपराध नहीं किया और अगर भूल से किया भी होगा तो उसके लिए मैं आपसे क्रुद्ध नहीं हो सकता। आप मेरे पहले से ही सखा और सम्बन्धी थे। इसलिए क्षमा-प्रार्थना की आवश्यकता ही क्या है। आपने जो मुझे अपने यहाँ रखकर मेरा उपकार किया है उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। अब मेरी यही प्रार्थना है कि आपने जो अश्व विज्ञान विद्या मेरे पास धरोहर के तौर पर छोड़ रखी है उसे कब लीजिएगा? अगर चाहें तो अभी सीख लीजिए।''

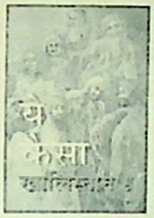
महाराज ऋतुपर्ण ने राजा नल से अश्व विज्ञान विद्या सीख ली और उन्हें अक्ष विद्या (पाँसों की विद्या) सिखा दी। इसके बाद महाराज ऋतुपर्ण महाराज भीम से आज्ञा लेकर अयोध्या चले गए।''

एक महीने अपनी ससुराल में रहकर राजा नल दमयन्ती को साथ लेकर निषध देश को चल दिये। चलते समय राजा भीम ने अपार धन, हाथी, घोड़े, आभूषण और कितनी ही अमूल्य वस्तुएँ उन्हें दीं। उन्हें लेकर वे निषध देश आये और वहाँ आकर फिर राजा नल ने पुष्कर को जुआ खेलने की चुनौती दी। पुष्कर राजा नल के पास बहुत-सा धन देखकर जुआ खेलने के लिए लालायित हो उठा। हृदय में यह भी इच्छा थी कि किसी तरह दमयन्ती को भी जीत कर सुख और ऐश्वर्य के साथ रहा जाए। पुष्कर पूरे विश्वास के साथ तैयार हो गया।

दोनों जुआ खेलने लगे। राजा नल पाँसों की विद्या में पूर्ण कुशलता प्राप्त कर चुके थे, इसलिए थोड़ी देर में ही उन्होंने पुष्कर का सारा राज्य तथा उसकी सारी धन-सम्पत्ति जीत ली। जीतकर राजा नल पुष्कर की तरफ़ देखकर मुस्कराने लगे। पुष्कर अपने आप को भी दाँव पर लगा गया था इसलिए राजा नल ने कहा, ''हे पुष्कर! तूने जो पाप किया है उसके बदले में अगर मैं चाहूँ तो तुझे प्राणदंड दे सकता हूँ लेकिन जा तू मेरा भाई है, इसलिए मैं तुझे क्षमा करता हूँ क्योंकि इसमें तेरा भी कोई दोष नहीं है। सारा दोष तो कलियुग का है। मैं कभी नहीं चाहता कि तेरी सम्पत्ति पर अधिकार करके तुझे भिखारी की तरह फिरता देखूँ। ले अपनी सम्पत्ति लेकर अपने राज्य को वापस चला जा और अपने राज्य पर मुझे शासन करने दे।''

पुष्कर नल के पैरों में गिर गया और बार-बार क्षमा-प्रार्थना करने के पश्चात् चला गया। राजा नल अपनी प्रिया दमयन्ती के साथ सुख-चैन से रहकर धर्म और सत्य का पालन करते हुए पुनः निषध देश पर राज्य करने लगे।

पुस्तकें मिलीं



ये कैसा खालिस्तान
बी.एस.बीर

नीला तारा ऑप्रेशन, चौरासी के भारत में हुए सिक्ख विरोधी दंगे, ब्लैक-थंडर, आतंकवाद के उतार-चढ़ाव इन सभी को बी.एस.बीर की कलम ने चित्रित किया है। पंजाब के लोगों ने अपने शरीर, दिलो-दिमाग़ पर जो ज़ख़्म सहन किये, उनकी साहित्यिक पेशकारी इन कहानियों में झलकती है।

महरम बुक क्लब, महरम स्ट्रीट, नाभा, पटियाला-147201, मू. :60 रु., पृ. : 176



बुद्धिजीवियों की अफीम : साम्यवाद एक विवेचन : शंकर शरण

यह पुस्तक साहित्य, राजनीति, इतिहास, दर्शन और मनोविज्ञान-इन सभी विषयों की सीमा में आती है। मार्क्सवादी वैचारिकता का पुनर्मूल्यांकन; साम्यवाद के सिद्धान्त और व्यवहार के आलोचनात्मक अध्ययन।

वाग्देवी प्रका. विनायक शिखर पॉलिटेक्निक कॉलेज के पास, बीकानेर-3, मू. : 250 रु., पृ. : 216



कथा यात्रा 2009 : सम्पा. महेश दर्पण, देवेन्द्र चौबे

हरियाणा के समकालीन हिन्दी कहानी परिदृश्य की एक झलक। संग्रह की कहानियों में यह कोशिश जरूर नज़र आती है कि अपने समय की हरकतों, धड़कनों और तस्वीरों को उनकी खूबियों और खामियों के साथ पकड़ा जाए।

हरियाणा साहित्य अकादमी, अकादमी भवन, पी-16, से.-14, पंचकूला, हरियाणा, मू. :100, पृ. : 336

1. **महामारी** : उपन्यास : शमोएल अहमद : शैवाल प्रकाशन, डी.आई.जी. आवास के सामने, चन्द्रवती कुटीर, दाऊदपुर, गोरखपुर, मू. : 160 रु., पृ. : 104
2. **अच्छे दिनों में ऊँटनियों का कोरस** : कविता-संग्रह : शहंशाह आलम : जनशब्द प्रकाशन, 82/400, राजवंशीनगर, रोड नं.-2, पटना-800 023, मूल्य : 150 रु., पृष्ठ : 128
3. **दूसरा पक्ष तथा अन्य कहानियाँ** : कहानी-संग्रह : तरसेम गुजराल : नवचेतन प्रका., जी-5, गली नं.-16, राजापुरी, उत्तमनगर, दिल्ली-59, मू. : 140 रु., पृ. : 112
4. **हीरामन-अमर्त्य सेन और कहानियाँ** : कहानी-संग्रह : द्वारकेश नेमा :शिल्पायन पब्लि. एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, 10295, लेन नं.-1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-32, मू. : 200 रु., पृ. : 168
5. **चल गोरी दोहापुरम्** : गीत-संग्रह : बेकल उत्साही : वाणी प्रका., 21-ए, दरियागंज, न.दि.-2, मू. : 250 रु., पृ. : 156
6. **मेरी पहचान** : कहानी-संग्रह : मनोज सिंह :वाणी प्रका., 21-ए, दरियागंज, न.दि.-2, मू. : 200 रु., पृ. : 104
7. **हिन्दी परम्परा के शिखर** : आलोचना : सीताराम यादव : जिज्ञासा प्रका., झेलम अपार्टमेंट, राजेन्द्रनगर, पटना-16, मू. : 375 रु., पृ. : 216
8. **ग़ज़ल बोलने लगी** : ग़ज़ल-संग्रह : सुधाकर राजेन्द्र : मीनाक्षी प्रका., एम.बी.-32/2बी, गली नं.-2, शकरपुर, दि.-92, मू. : 100 रु., पृ.: 80
9. **हर पल महाभारत** : कविता-संग्रह : अक्षय गोजा : मीनाक्षी प्रका., उपरोक्त, मू. : 100 रु., पृ. 80
10. **बर्गे-यासमन** : ग़ज़ल-संग्रह : डॉ. तारा सिंह : मीनाक्षी प्रका., उपरोक्त, मू. : 60 रु., पृ. 80
11. **तृषा** : लेख-संग्रह : डॉ. तृषा सिंह : मीनाक्षी प्रका., उपरोक्त, मू. : 60 रु., पृ. : 80
12. **चतुर-चतुर नाना** : उपन्यास : मनहर चौहान : पेंगुइन, यात्रा बुक्स-203, आशादीप 9, हेली रोड, न.दि.-1, मू. : 110 रु., पृ. : 116
13. **सुनहरी मछलियाँ** : कविता-संग्रह : सतीश वर्मा : साहित्यागार, धामाणी मार्केट की गली, जयपुर, मू. : 150 रु., पृ. : 140
14. **थोड़ी-थोड़ी धूप सबके लिए** : कविता-संग्रह : सतीश वर्मा : साहित्यागार, धामाणी मार्केट की गली, जयपुर, मू. : 250 रु., पृ. : 192
15. **साहित्यिक यात्रा और विश्लेषण** : सम्पा. डॉ. इन्दु बाली : एम.एन. पब्लि. एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, डब्ल्यू-112, ग्रेटर कैलाश, पार्ट-1,न.दि.-48, मू.:500 रु., पृ.: 304
16. **पृथ्वियाँ** : कविता-संग्रह : अरुणा : ओम प्रकाशन, जम्मू, मू. : 150 रु., पृ.: 128
17. **आदमी और चूहे** : उपन्यास : आबिद सुरती : रोहित पब्लिशिंग हाउस, 1586/1ई, नवीन शाहदरा, दि.-32, मू. : 170 रु., पृ. : 112
18. **प्रेम कहानियाँ** : कहानी-संग्रह : प्रेम प्रकाश : अंश प्रका., एक्स/3282, गली नं. 4, रघुबरपुरा नं. 2, गाँधीनगर, दि.-31, मू. : 150 रु., पृ.:112
19. **सामीप्य** : साक्षात्कार : डॉ.सूरज मृदुल : ज्योति इंटरप्राइज़िज़, 5825/7, न्यू चन्द्रावल, जवाहरनगर,दि.-7, मू.:499 रु., पृ.:208
20. **कविता की लोकधर्मिता** : आलोचना : डॉ. रमाकान्त शर्मा : रॉयल पब्लि., लोको शेड रोड, रातानाडा, जोधपुर-342 011, मू.: 250 रु., पृ.:208

ज्ञान चतुर्वेदी

पहला पहला प्यार



पहली बार प्यार में पड़ा था वह।

पहले कभी पड़ा ही नहीं था सो इसका पुराना कोई अनुभव था ही नहीं। सुना-सुना था इस बारे में पर जानता कुछ नहीं था। उसे कई दिनों तक तो समझ ही नहीं आया कि हुआ क्या है? अचानक ही उसने पाया कि उसका बदन गर्म रहने लगा है, दिल धक धक किया करता है और दिन भर गन्नाटे से आते हैं। इस चक्कर में एक डॉक्टर तक को दिखा आये जिसने मलेरिया के इंजेक्शन भी ठोक दिये। पैसे गये, नितम्ब में एक तरफ गुटटा सा हो जाने के कारण दर्द से तीन दिनों तक महबूब की गली तरफ भी नहीं निकल पाये और तबीयत में इसी कारण और गिरावट-सी आ गई। खाना छूट चला। नींद न आने के कारण रात में उठकर अँधेरे में घर में ही घूम रहा था कि सतर्क बाप ने चोर समझकर ठुकाई कर दी, और बाद में चोर न निकलने पर और पिटाई कर दी कि तू अँधेरे में क्या हमें डराने की कोशिश कर रहा था रे— सोता क्यों नहीं? क्या कहता? कुछ कहने का मन ही नहीं करता। शेविंग तक नहीं की। दाढ़ी बढ़ाये घूमने लगा। टाँगों पर चींटियाँ-सी रेंगतीं। दिमाग में चक्की-सी चलती रहती। गणित में कमज़ोर होने के कारण रात में सितारे तो न गिनता परन्तु गिनने का मन अवश्य करता। मुँह सूखता। बार-बार पेशाब लगती। छाती में आग-सी लगी रहती। दिनरात, रह रहकर उसकी याद आती और छाती में आग के अलावा न जाने कैसा क्या होने लग जाता। कोई कारण नहीं था परन्तु उसके लिए मर जाने को दिल करता। यह भी डर लगा रहता कि कहीं मर ही ना जाऊँ? दिल हथेली पर धरा महसूस होता और अन्दर से बलवती तमन्ना उठती कि यही हथेली ले जाकर उसके सामने पेश कर दूँ कि यह धड़कती चीज़ दरअसल आपकी है सो आपके हवाले करना चाहता हूँ। ऐसे और भी फड़कते संवाद मन में बनते मिटते रहते। पर बोल भी पायेगा यह भरोसा नहीं बन पाता— मुँह सूख रहा हो तो साधारण बातें तक बोलना कठिन है फिर ये तो...।

उसने अपनी परेशानी अपने एक अनुभवी टाइप के मित्र को बताकर पूछा तो उसने समझाया कि तुम्हें प्यार हो गया है। सुना तो पहले तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ। परन्तु मित्र इस क्षेत्र का पुराना विशेषज्ञ है। उसका चाहे जब प्यार हो जाया करता है। सो मानना पड़ा। फिर सोचा तो पाया कि वास्तव में यह तो प्यार ही है।

अब? अब अगली चिन्ता यह हुई कि हमें तो हो गया है परन्तु उसे भी है कि नहीं? प्यार करने वालों के बीच यह शाश्वत समस्या रही आती है। सन्देह तो है। आशा भी है। लगता तो है कि वह भी करती होगी। पर लगने भर से क्या होना है? मान लो कि न करती हो, तो? मान लो कि यूँ ही भलमनसाहत में मुस्काती हो और आपको फालतू ही प्यार का सन्देह होने लगा हो? मान लो कि प्यार न करती हो और यूँ ही हँसती, मुस्काती हो क्योंकि उसका 'नेचर' ही ऐसा है? हो सकता है कि अकेले बैठी-बैठी भी मुस्काती हो जबकि उसके मुस्काने से ही तो आपको भ्रम हुआ कि मुस्करा रही है तो कुछ बात तो होगी। ...तो अब चिन्ता यह बनी कि कैसे पता करें कि उसे भी है अथवा नहीं? वैसे वह, उसे देखकर बाकायदा शरमाती भी है यह उसने नोट करके अनुभवी मित्र को बताया। मित्र ने यही कहा कि यह एक लक्षण हो तो सकता है परन्तु यह भी हो सकता है कि वह वास्तव में शर्मीली ही हो और अपनी गली के खोमचे वाले से भी ऐसी ही शरमाती हो।

फिर? क्या करें? कैसे पता करें? बड़ी मुश्किल से तो पहला प्यार हुआ है और यह परेशानी। क्या सीधे ही पूछ डालें? कई बार यह भी एक तरीका होता तो है। आप सीधे पूछते ही हैं न कि क्यों साहब, क्या यह सड़क अजायबघर को जाती है? पूछो तो वे बता भी देते हैं। या कह देते हैं कि हमें नहीं पता क्योंकि हम ख़ुद शहर में नये हैं बल्कि आप बता सको तो बता दो कि तीन बटा छत्तीस, कोटरा सुल्तानाबाद किस तरफ पड़ेगा? तो सीधे भी उससे पूछ तो सकता है वह। करती होगी तो बता ही देगी। परन्तु डर इस बात का है कि न करती रही हो तब? यह धक्का वह बरदाश्त न कर सकेगा। पहले प्यार में ही ऐसी कल्टी वह सह न सकेगा। फिर यही बात नहीं कि वह मना कर देगी। कर दे, परन्तु यह न हो कि वह एकदम भड़क ही जाये। कहे कि ऐसा पूछने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई? ख़ुद थप्पड़ मार दे या बाप भाई को बुला ले जो ऐसे मौकों पर न जाने कैसे वहीं आसपास ही मिल जाते हैं और प्राय: संवाद तथा बातचीत की अपेक्षा मारपीट पर विश्वास रखते हैं। सो सीधे पूछना ठीक नहीं। फिर? किससे पता करें? बताने वाला कोई नहीं और यहाँ जान जा रही है।

फिर? फिर क्या? देखते चलो कि क्या होता है? अभी तो वह पहले प्यार में पड़ा है और इसी धक्के से लड़खड़ा-सा रहा है। थोड़ा सँभल ले। फिर यहाँ से वह कई दिशाओं में जा सकता है। एक तो यही कि बता ही न सके कभी। कह ही न पाये कि प्यार है तुमसे। बस, घिघियाता-सा फिरे। यह भी हो सकता है कि देर-सबेर यह बुखार उतर जाये और बाद में याद करे तो ठीक से याद ही न आये कि कभी ऐसा चुतियापा भी किया था। ...यह भी हो सकता है कि पहले प्यार को ज़िम्मेदारी से निभाने की कौल उठा ले और तब तक उठाये रहे जब तक कि पिट पिटा न जाये। पिटे। बार-बार पिटे। यहाँ पिटे। वहाँ भी पिटे। लगे कि पिटने के लिए ही जी रहा है। ...एक यह दिशा भी बन सकती है कि लड़की भी उससे प्यार करने लगे और उसका प्यार चल निकले। क्या इसे उसके प्यार का सफल हो जाना कहा जायेगा? इतनी जल्दी न करें। प्यार चल पड़ने के बाद भी कई सम्भावनाएँ हो सकती हैं। एक तो यही कि दोनों की आपस में शादी हो जाये और फिर वह रोता फिरे। एक यह कि लड़की इसे छोड़कर किसी और से शादी कर ले और फिर भी यह रोता फिरे। ...एक यह भी कि इस पहले प्यार के बाद वह दूसरे, तीसरे और चौथे प्यार से गुजरे और बार-बार गुजरता ही रहे।

कुछ भी हो सकता है प्यार में। अभी तो वह पहले प्यार में है। देखते रहिये। आगे जो हो।

ए-40, अलकापुरी, भोपाल - 462024

(A Government of India Enterprise - Mini Ratna)

TOURISM - TICKETING - HOSPITALITY

railtourismindia.com

RAIL TOUR PACKAGES - All inclusive tour packages include Rail travel, hotel accommodation ,meals, road transportation and sight seeing available to a range of destinations across the country including Vaishnodevi , Shimla , Mussoorie, Jammu & Kashmir, Rajasthan, Goa, Kerala, Tamilnadu, Karnataka, Darjeeling, & Puri etc. For detailed information please visit our website at www.railtourismindia.com.





MAHAPARINIRVAN EXPRESS - BUDDHIST CIRCUIT SPECIAL TRAIN

IRCTC is running a special AC Train on the Buddhist circuit, covering all major destinations of Lord Buddha i.e Bodhgaya, Rajgir, Nalanda, Varanasi, Sarnath, Kushinagar, Lumbini, Sravasti & Agra. Mahaparinirvan express enables the Buddhist pilgrims to discover the glory of the holy land of Buddha. The train offers a seven night eight days all inclusive tour package. For detailed information please visit our website at www.railtourismindia.com.

BHARAT DARSHAN SPECIAL TOURIST TRAINS

Bharat Darshan special Tourist Trains are specially designed for the budget travelers which are running successfully on different itineraries across the country and offer an all inclusive package to important centers of religious, cultural and historical interest at an affordable price of Rs. 500 per passenger/ day including rail travel, road transfer, meals, accommodation as well as sight seeing.
For detailed information please visit our website at www.railtourismindia.com.





HILL RAIL CHARTERS

IRCTC operates Heritage steam and Diesel charters on five scenic hill sections i.e. Darjeeling Himalayan Railway, Nilgiri Mountain Railway, Kalka-Shimla Section, Neral Matheran Railway, Kangra Valley Railway. All inclusive charters include on -board as well as off-board hospitality services provided by IRCTC.
For detailed information please visit our website at www.railtourismindia.com.

CHARTERED TRAINS AND COACHES

IRCTC arranges for booking of special trains , as well as exclusive coaches to be attached with regular trains with comprehensive on-board/off-board services including catering, bedroll, road transportation ,accommodation and sight seeing etc. for the convenience of the tourists traveling in large group.





INTERNET TICKETING

Print your own rail reservation ticket at home or get it delivered to your doorsteps at the click of mouse. IRCTC facilitates internet rail reservation through its official website www.irctc.co.in.

RAIL SAMPARK-139

IRCTC and Indian Railways have established all India call centers to provide basic train enquiry services to passengers such as PNR enquiry, current train running position, availability of berths/seats, fare enquiry etc and is in the process of providing premium services such as rail ticket reservation, hotel booking and booking of all other tourism products. IRCTC is also proud to announce the launch of their latest service of "Railways on SMS", now passengers can get all Rail Enquiry by sending SMS at 139.





FOOD PLAZAS AND ON-BOARD CATERING

IRCTC provides catering services in trains and at railways stations. IRCTC is setting up FOOD PLAZAS at all major railway stations to enjoy the contemporary decor and hygienic ambience of multi cuisine Food Plazas.

RAIL NEER

IRCTC manufactures and distributes Rail Neer packaged drinking water. Capacity of existing two plants is being expanded and two new plants are being set up at Chennai and Mumbai.

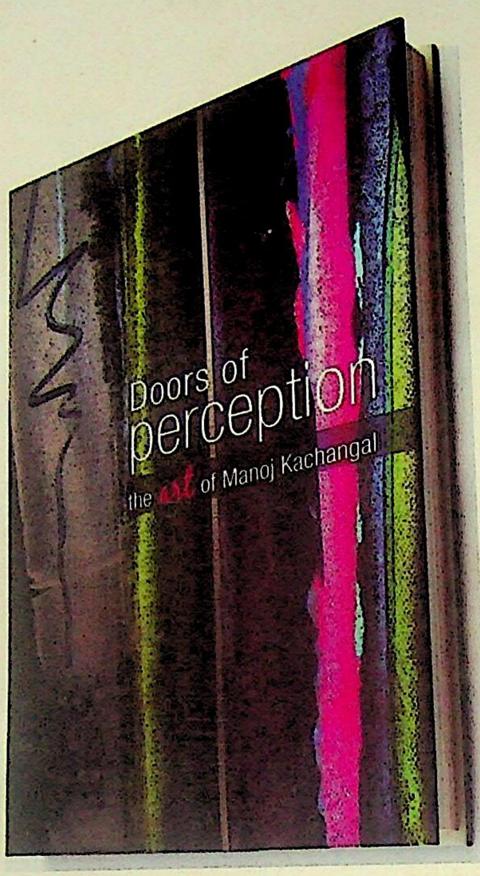


For Booking & Information, Please Contact IRCTC Facilitation Center, Ground Floor, STC Building, Tolstoy Marg, Janpath, Behind Central Cottage Industries Emporium, New Delhi-110001

Tel:- 91-11-23701100-01, 23701145-47 FAX: 23701185, 23701177

Corporate and Regd. Office-, Tel-91-11-23311263-64 FAX : 23311259

Regd. No. RNI : DEL-Hin / 2003 / 9468
Postal Regd. No. DL(S)-17 / 3089 / 2009-11
Pre-paid Lincence No. U [SE]-63/2009-11



Doors of Perception
the art of Manoj Kachangal

edited by
Ratnottama Sengupta

received
Award for Excellence
in Book Production 2009
from The Federation of Indian Publishers

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Instituonal Area
Lodhi Road, New Delhi - 110003

प्रकाशक : साहू अखिलेश जैन द्वारा भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003 के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित
मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स 1/11848, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली - 110 032
सम्पादक : रवीन्द्र कालिया